सुमिरन मेरा हरि करैं

प्रवचन-क्रम

1. फैलाओ--ध्यान, संन्यास, प्रेम...2
2. जीवित सदगुरु--जीवंत धर्म...24
3. भविष्य है धार्मिकता का..42
4. संन्यास की आग...60
5. मैं स्वयं साक्षी हूं..79
6. जीवन भी खेल, मृत्यु भी खेल...102
7. परमात्मा प्रकाश है--और अंधकार भी..122
8. सत्य की आंधी..143
9. धर्मः आत्यंतिक जिज्ञासा..164 10..जहां प्रेम है वहां सूर्योदय है .... 183 11...वासना दुख है 203

सुमिरन मेरा हरि करैं
पहला प्रवचन

फैलाओ--ध्यान, संन्यास, प्रेम

पहला प्रश्नः
आपने आज शुरू होने वाली प्रवचनमाला का शीर्षक दिया हैः सुमिरन मेरा हरि करैं। भगवान, इस शीर्षक का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

चैतन्य कीर्ति!
बाबा मलूक दास का प्रसिद्ध वचन हैः
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया बिसराम।।
मलूकदास उन अनूठे व्यक्तियों में एक हुए, जिनकी गिनती अंगुलियों पर
हो सकती है। मलूकदास अनूठों में भी अनूठे हैं। साधारण संत नहीं हैं, बड़े विद्रोही संत हैं--परंपरागत, रूढ़िगत, दकियानूसी उनका व्यक्तित्व नहीं, आग्नेय हैं। अग्नि जैसे प्रज्वलित हैं। उनका एक-एक वचन हीरों से भी तौलो तो भी वजनी पड़ेगा। हीरे धूल हैं उनके वचनों के समक्ष। और यह उनका प्यारे से प्यारा वचन है। इस वचन की गहराई में उतरो तो तुम ध्यान की गहराई में उतर जाओगे। इसमें ध्यान का सार आ गया है।
माला जपों न कर जपों...
मलूक कहते हैंः लाख माला जपो, कुछ भी न होगा। यह तो औपचारिकता है। बाहर का कोई कृत्य भीतर न ले जाएगा। बाहर का कृत्य तो और बाहर ही ले जाएगा। और आदमी ऐसा पागल है--अधर्म भी बाहर करता है और धर्म भी बाहर करता है। फिर धर्म और अधर्म में भेद क्या रहा? शराब घर भी बाहर है और तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारा मंदिर और तुम्हारा गुरुद्वारा और तुम्हारा गिरजा भी बाहर है। दोनों में एक बात समान हैः दोनों बाहर हैं! दोनों की यात्रा बहिर्यात्रा है। दोनों में से कोई भी स्वयं तक नहीं पहुंचा सकता। कोई फिल्मी गीत गा रहा है--अपनी धुन में मस्त; कोई राम-राम जपे जा रहा है--अपनी धुन में मस्त। मगर दोनों मन में उलझे हैं। चाहे फिल्मी गीत हो और चाहे राम का गुणगान हो-- मन की ही क्रियाएं हैं। मन की कोई क्रिया अमन में नहीं ले जा सकेगी। मनातीत जाना हो तो मन की सारी क्रियाओं को पीछे छोड़ देना होगा।
पाना हो सत्य को, पाना हो स्वयं को, तो न काबा साथ देगा, न काशी। संसार
ही नहीं छोड़ देना है। बाहर की यात्रा व्यर्थ है--यह बोध। और जो ऊर्जा बाहर संलग्न है, इस ऊर्जा को बाहर से मुक्त कर लेना है, ताकि यह अंतर्यात्रा पर निकल जाए। अपने ही भीतर डुबकी मारनी है। वहां कैसी माला, वहां कैसा नाम, वहां कैसा जाप! न मंत्र है वहां, न तंत्र है वहां, न कोई यंत्र है वहां। शास्त्र सब पीछे छूट गए! शब्द सब पीछे छूट गए, तो शास्त्र कैसे बचेंगे? माला जपों न कर जपों...
तो न तो माला फेरता हूं, न हाथ की अंगुलियों पर राम का स्मरण करता हूं। करता ही नहीं राम का स्मरण। यह क्रांतिकारी उदघोष देखते हो! छोड़ ही दिया है राम के स्मरण को, क्योंकि स्मरण मात्र बाहर का है। स्मृति मात्र बाहर की बनती है। मन बाहर की सेवा में संलग्न है। मन बाहर का दास है। फिर धार्मिक हो मन कि अधार्मिक, बहुत भेद नहीं पड़ता। दुर्जन का हो कि सज्जन का, समान है।
धर्म की आत्यंतिक दृष्टि में दुर्जन और सज्जन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; दोनों से कोई भी परमात्मा से न जुड़ सकेगा। और खतरा तो यह है कि वह जो दुर्जन है, शायद अपनी भीतरी पीड़ा के कारण, कि मैं क्या कर रहा हूं, शायद पश्चात्ताप के कारण, शायद आत्मदंश के कारण, किसी दिन अंतर्यात्रा पर भी निकल जाए; मगर सज्जन, जो सोचता है--दान दे रहा हूं, पुण्य कमा रहा हूं, मंदिर बना रहा हूं, पूजा कर रहा हूं, पाठ कर रहा हूं--वह तो क्यों छोड़ेगा! वह कुछ गलत काम तो नहीं कर रहा है! उसकी जंजीरें सोने की हैं। दुर्जन की जंजीरें लोहे की हैं। लोहे की जंजीरें तो खलती हैं, अखरती हैं--कोई भी तोड़ना चाहता

है। लेकिन सोने की जंजीरों को आभूषण मान लेना बहुत आसान है। और अगर हीरे- जवाहरात जड़े हों, फिर तो कहना ही क्या! फिर तो सोने में सुगंध आ गई।
तो पापी भी शायद कभी परमात्मा को स्मरण कर ले, लेकिन पुण्यात्मा तो भटकता ही रहेगा, अटकता ही रहेगा। पाप उतना नहीं अटकाता जितना पुण्य अटका लेता है। धर्म की दृष्टि में तो दोनों ही छोड़ने हैं, क्योंकि बहिर्यात्रा छोड़नी है। असल में कृत्य छोड़ना है, क्रिया छोड़नी है, मन छोड़ना है, मन का सारा व्यापार छोड़ना है। और उस अंतस्तल पर पहुंचना है, जहां कोई लहर भी नहीं उठती, न फिल्मी धुन उठती है, न गाली-गलौज उठती है, न हरि-स्मरण उठता है। वहां कोई तरंग ही नहीं उठती। निस्तरंग, निर्विचार, निर्विकल्प! उसी दशा में अनुभव होता है। उसी दशा में साक्षात्कार है, समाधि है। उसी दशा में समाधान है।
मलूक ठीक कहते हैंः माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम। क्या कहूं जीभ से राम को? जीभ से कहे राम का क्या अर्थ है? कोई अर्थ नहीं। और ध्यान रखना, जब भी संत "राम" शब्द का उपयोग करते हैं तो दशरथ के बेटे राम से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। राम शब्द दशरथ के बेटे राम से बहुत पुराना है। राम तो परमात्मा का एक नाम है। राम के पहले परशुराम हो गए। परशुराम का अर्थ हैः फरसा वाले राम। राम के पहले राम नाम तो था ही, इसलिए तो राम को भी राम नाम दिया गया था। नाम पहले से था। इसलिए इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि दशरथ के बेटे की बात हो रही है। यह तो परमात्मा का एक नाम है, जैसे हरि एक नाम है। वैसे राम एक नाम है, जैसे ओम एक नाम है। जो भी नाम चुन लो, क्योंकि वस्तुतः तो उसका कोई नाम नहीं है; वह अनाम है।
... जिभ्या कहों न राम।
क्यों कहूं जीभ से? कहूं ही क्यों? कहने से क्या होगा? पुकारूं क्यों? शोरगुल क्यों मचाऊं? प्रदर्शन क्यों करूं?
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया बिसराम।
मैं तो परम विश्राम में बैठ गया हूं।
यही ध्यान है। विश्राम यानी ध्यान। जहां कोई क्रिया नहीं, कोई हलन-चलन नहीं, कोई हिलन-डुलन नहीं। सब थिर हो गया। पत्ता भी नहीं हिलता। जहां सन्नाटा ही सन्नाटा है। उस परम शून्य की अवस्था में एक अदभुत घटना घटती है--मलूकदास कहते हैं--कि स्वयं परमात्मा तुम्हारा स्मरण करता है, तुम्हें करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह तुम्हारी फिक्र करता है। वह तुम्हारी चिंता लेता है। उसे ही लेनी चाहिए, वही ले सकता है। हम तो उसके ही अंग हैं। हम तो उसकी ही ऊर्जा की किरणें हैं। हम तो छोटे-छोटे दीये हैं, वही सूरज है। हम में तो उसी की रोशनी है।
परमात्मा से अर्थ हैः यह सारा अस्तित्व, इसका जोड़। यह अस्तित्व हमारे प्रति उपेक्षा से भरा हुआ नहीं है। यह अस्तित्व हमारे प्रति परम प्रेम से पूर्ण है। इस अस्तित्व से प्रतिक्षण हमारी तरफ प्रेम की अजस्र धाराएं बह रही हैं। लेकिन हम बंद बैठे हैं। वर्षा तो हो रही है, हमारे घड़े उलटे रखे हैं। वर्षा हो जाती है, हम खाली के खाली। हम रोते ही रहते हैं कि हमारी प्यास कब बुझेगी, हमारी अतृप्ति कब मिटेगी? और घड़ा उलटा रखे बैठे हैं।... "कि हम भरते क्यों नहीं? परमात्मा की सब पर कृपा होती है, हम पर कृपा क्यों नहीं होती? क्या हम से नाराज है? किन जन्मों के पापों का हम फल भोग रहे हैं?"
किन्हीं जन्मों के पापों का फल नहीं भोग रहे हो। ये तरकीबें हैं तुम्हारी अपने को समझा लेने की। घड़ा सीधा नहीं करना है। तो क्या-क्या ईजादें करते हो! क्या-क्या सिद्धांत खोज लाते हो! कैसे कुशल हो! कैसे चालबाज हो! ऐसे-ऐसे सिद्धांत खोजते हो--बेईमानी से भरे हुए--कि जिनका कोई हिसाब नहीं। और एक बार तुम्हें सिद्धांत मिल जाते हैं तो बस पकड़ कर बैठ जाते हो।
हजारों साल से तुम गरीबों को समझा रहे हो कि तुम पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब हो। अमीरों को समझा रहे हो कि तुम पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर हो। ऐसे पंडित की बन आती है। पंडित को लाभ ही लाभ है। अमीर खुश होता है--दोहरे कारणों से। एक तो इसलिए कि उसके पिछले जन्मों के

पुण्य की घोषणा की जा रही है। दुनिया जानती है उसकी बेईमानी को। दुनिया जानती है कैसे उसने यह धन इकट्ठा कर लिया है। दुनिया जानती है कितने गले काटे हैं, किस-किस का खून पीया है। पानी छान कर पीता होगा, खून बिना छाने पी जाता है। उसके शोषण का सबको पता है। और इसने पिछले जन्मों में पुण्य-कर्म किए हैं, पंडित गुहार मचाए रखते हैं। तो एक तो फायदा यह कि उनकी गुहार से पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण इस जन्म में वह जो पाप कर रहा है वे छिप जाते हैं, छोटे पड़ जाते हैं। बड़ी-बड़ी लकीरें खींच देता है पुण्य की तो पाप तो छोटे-मोटे हो जाते हैं। दीये जला देता है पुण्य के, चारों तरफ पुण्य की चर्चा गूंज उठती है, घंटनाद हो जाता है। तो इस जन्म के पाप कौन गिनती में रह जाते हैं! एक तो फायदा यह।
दूसरा फायदा यह कि वह जो व्याख्या दे रहा है, उससे गरीब को किसी तरह की बगावत करने की सुविधा नहीं रह जाती। बगावत करने में क्या सार है! पिछले जन्मों में पाप किए हैं, सो भोगोगे ही भोगोगे! जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा। जो जैसा बोएगा वैसा काटेगा। किए हैं पाप, सो भोगो। इतना ही करो कम से कम, अब मत करना, नहीं तो अगले जन्म में भी भोगोगे। सो विद्रोह नहीं, क्रांति नहीं, बगावत नहीं; क्योंकि यह सब पाप है। फिर और भोगोगे। अब जितना हो चुका हो चुका। इसी को रफा-दफा करो, किसी तरह इसी हिसाब-किताब को सुलझा लो। पिछला ही काफी है। इससे ही छुटकारा हो जाए, अब और नया उपद्रव न बांधो।
तो धनी दोहरे ढंग से खुश हैं। इस जन्म के पाप छिप जाते हैं पिछले जन्म
के पुण्यों के शोरगुल में और गरीबों से सुरक्षा मिल जाती है। इसलिए इस देश में कोई बगावत नहीं हो सकी। इस देश में मार्क्स पैदा नहीं हो सकता था। हो ही नहीं सकता था! इस देश में साम्यवाद की कोई धारणा पैदा नहीं हो सकती थी-- असंभव थी, क्योंकि इस देश की परिभाषाएं, इस देश के मन का जो निर्माण हुआ है, वह बड़ा बुर्जुआ है। इस देश के चित्त की जो संस्कारिता है, वह बड़ी जड़ है। इस देश के जो संस्कार हैं वे क्रांति-विरोधी हैं। इसलिए पांच हजार साल में यह शायद अकेला देश है जहां कोई क्रांति नहीं हुई। आज भी क्रांति की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि आज भी हमारे पास वही सड़ा-गला दिमाग है।
और गरीब को भी इसमें एक लाभ दिखाई पड़ता है। गरीब को सांत्वना मिल जाती
है कि अगर मैं दुख भोग रहा हूं तो मेरे दुख का कारण है। कारण मिलते ही आदमी को बड़ी सहानुभूति, सांत्वना उपलब्ध होती है। सहानुभूति इस तरह मिलती है कि लोग कहते हैं कि बेचारा क्या करे! मजबूरी थी, पिछले जन्मों में जो हुआ, अब तो कुछ किया नहीं जा सकता। जो हो गया हो गया। कब किया था, अब उसको अनकिया तो किया नहीं जा सकता। इसलिए भोगना ही पड़ेगा।
इसलिए इस देश में गरीब की सेवा करने का कोई सवाल नहीं उठता; वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। उसके फलों में बाधा डालनी है? उसको फल भोग ही लेने दो। अगर तुम बाधा डालोगे सेवा करके, तो अगले जन्म में फिर फल भोगेगा। तो तुम कुछ लाभ नहीं पहुंचाओगे, हानि ही पहुंचाओगे।
जैनों में तेरापंथ है एक। आचार्य तुलसी उसके आचार्य हैं। तेरापंथियों की धारणा है कि अगर कोई आदमी कुएं में भी गिर जाए तो उसे बचाना मत, चूंकि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। किसी को धकाया होगा पिछले जन्म में। अगर तुम उसको निकाल लोगे तो वह फल कैसे भोगेगा? और फल नहीं भोगेगा... और फल तो भोगना ही पड़ेगा। फिर गिरेगा। सो एक ही बार गिरने से काम हो जाता, तुमने और उपद्रव कर दिया, तुमने दो बार गिरने का इंतजाम कर दिया। और तुमने जो बाधा डाली जीवन के क्रम में, जीवन की व्यवस्था में, उसका कर्मफल तुमको भोगना पड़ेगा। न भी गिरे कुएं में तो छोटी-मोटी हौज में गिरोगे। मगर गिरोगे तुम भी। सो तुमने दोहरे उपद्रव कर लिएः अपने लिए पाप और इस आदमी के जीवन में बाधा डाल दी।
यहां तक तेरापंथ की धारणा है कि कोई प्यासा भी मरता हो मरुस्थल में तो तुम पानी मत पिलाना। तुम चुपचाप अपनी राह चले जाना। तुम डिगना ही मत। तुम अडिग भाव रखना। तुम अविचलित रहना, क्योंकि वह अपना फल भोग रहा है, बेचारे को भोग लेने दो। किया है सो भोगेगा।
कैसे-कैसे सिद्धांत! कैसा-कैसा अदभुत अध्यात्म!

इसलिए इस देश का साधु-संन्यासी किसी की सेवा नहीं करता; सेवा लेता है।
यह सेवा करने की बात तो ईसाई ले आए। यह तो ईसाई धारणा है। यह हिंदुओं की, जैनों की, बौद्धों की धारणा नहीं है। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते कि जैन मुनि और किसी की सेवा कर रहा हो। जैन श्रावक अपने मुनि के दर्शन करने को जाते हैं तो उनकी भाषा ही यह है। पूछो उनसे कहां जा रहे, तो वे कहते हैंः मुनि महाराज की सेवा को जा रहे हैं। यह कल्पनातीत है कि शंकराचार्य, फिर वे पुरी के हों कि द्वारिका के, कि कहीं और के, कि सेवा कर रहे हों। असंभव। इसलिए शूद्रों को हम पांच हजार साल तक सताते रहे। हम उनको उनके कर्मों का फल दे रहे हैं। नहीं तो वे शूद्र ही क्यों होते! शूद्र हुए ही इसलिए हैं कि पाप किए हैं। भोगने दो फल। और हम ही फल नहीं देंगे तो कौन उनको फल देगा? भगवान के काम में ही लगे हैं! उनको दो फल, अच्छा फल दो, ताकि दुबारा फिर ऐसी भूल न करें। जैसे न्यायाधीश अच्छा फल देता है न--चोरी करोगे, बेईमानी करोगे, धोखाधड़ी करोगे, तो न्यायाधीश का काम यह है कि अच्छी तरह से फल दे कि दुबारा फिर ऐसा काम न करो। यही कार्य ब्राह्मण का है, पुरोहित का है, तुम सब सज्जनों का है। सेवा करने का सवाल ही नहीं उठता। सेवा से बच गए, क्रांति से बच गए। और एक बड़ी अजीब सहानुभूति कि भई क्या
कर सकते हो! तुम भी क्या करोगे! तुम्हारा भी अब कोई कसूर नहीं। यह पुराना कसूर है। और दूसरी बात, गरीब को भी एक राहत, एक सांत्वना, क्योंकि उसको कारण मिल गया।
एक बड़ी मजे की बात है आदमी के मन की, कि जब तक उसे कारण न मिल जाए किसी चीज का, उसे बेचैनी होती है। फिर चाहे झूठा कारण ही मिल जाए तो भी उसे चैन आ जाता है। जब तक कारण न मिले तब तक वह पूछता हैः क्यों? ऐसा क्यों? विचार उठता है, चिंता उठती है। जैसे ही कारण मिल जाए, गणित हल हो गया। मन को जवाब मिल गया। इसलिए अगर तुम गरीब हो, अंधे हो, लंगड़े हो, लूले हो--उत्तर साफ हैः पिछले जन्मों का कर्म भोग रहे हो! भोगना ही पड़ेगा। इससे एक राहत मिल गई, एक सांत्वना मिल गई। अब इतना ही खयाल रखो कि आगे ऐसी भूल न हो।
हमने अजीब-अजीब सिद्धांतों का जाल बुन रखा है! सचाई कुछ और है। सचाई
यह है कि तुम अपना घड़ा उलटा रखे बैठे हो; सीधा करो, अभी भर जाए। या कुछ लोग अगर सीधा भी किए हुए हैं तो यही नहीं देखते कि उनकी तलहटी फूटी हुई है। सो वे सीधा रखे बैठे हैं। वे कहते हैंः आप क्या बातें कर रहे हो! घड़ा तो हम सीधा रखे हैं, मगर भरता नहीं। तो जरा यह भी तो देखो कि तलहटी भी है कि फूटी हुई है? तो तलहटी फूटी हुई है। कोई हैं जिनकी तलहटी भी ठीक है, मगर घड़े में इतने छेद हैं कि भरता-भरता है कि खाली हो जाता है। फिर कुछ ऐसे भी हैं जिनके घड़े में छेद भी नहीं हैं, तलहटी भी ठीक है, सीधा भी रखा है; मगर घड़ा इतना गंदा है कि आकाश से अमृत भी बरसे तो जहर हो जाए। शुद्धतम पानी गिरता है, मगर तुम्हारे घड़े में पहुंचते ही, पीने की बात दूर, छूने योग्य भी नहीं रह जाता। तो घड़े की सफाई करनी होगी। सारी बात अभी करने की है।
ध्यान से यह सारी प्रक्रिया पूरी हो जाती है। पहला कामः घड़ा सीधा हो जाता है। मन हटा कि चेतना परमात्मा के सन्मुख हो जाती है; यह घड़े का सीधा होना है। विचार हटे कि छिद्र हटे। विचार, वासनाएं, आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं, अभीप्साएं, लालसाएं--ये सारे के सारे छेद हैं, हजारों छेद हैं। जैसे ही ये हटे कि घड़े में छेद नहीं रह गए। अहंकार हटा कि घड़े की तलहटी फूटी नहीं रह जाती। अहंकार फोड़े हुए है तुम्हें। अहंकार तुम्हें मार रहा है।
और अहंकार भी कैसा गजब का है! उसने भी सीढ़ियां बना रखी हैं। ब्राह्मण अहंकार से भरा हुआ है; वह क्षत्रिय को नीचे देखता है। क्षत्रिय का मजा यह है कि वह वैश्य को नीचे देखता है। वैश्य का मजा यह है कि वह शूद्र को नीचे देखता है। शूद्र को भी तुम यह मत सोचना, उसने भी इंतजाम कर रखा है। चमार भंगी को नीचे देखता है। शूद्रों में भी सब शूद्र अपने को एक सा शूद्र नहीं मानते। उन्होंने भी सीढ़ियां बना रखी हैं।
मैं एक नाइयों की सभा में बोलने गया। एक अदभुत संत हुए--सेना नाई। उनका जन्मदिन था। लोग आए। मैंने कहा कि जरूर आऊंगा। मगर नाइयों के

अतिरिक्त कोई नहीं आया सुनने। जो लोग मुझे भी सुनने आते थे सदा, वे भी नहीं आए। मैंने उनसे बाद में पूछा कि तुम कोई दिखाई नहीं पड़े!
उन्होंने कहाः अब क्या हम नाइयों के पास बैठ कर उनके बीच में बैठें! नऊओं के बीच में बैठें! नाई तो शूद्र हैं!
कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है; वह शूद्रों में बैठे! फिर एक बार मैं चमारों की एक सभा में बोलने गया। रैदास की वाणी पर वे सुनना चाहते थे मुझे। तो मैंने सोचा, यहां कम से कम नाई तो आएंगे; वहां नाई तक नहीं आए। तो मैंने पूछा उन नाइयों से कि क्यों भाई, तुम बड़े नाराज थे कि दूसरे नहीं आए थे, तुम्हें तो कम से कम आना था। तुम भी शूद्र हो, ये भी शूद्र हैं!
उन्होंने कहाः आप क्या कहते हैं! चमरट्टों की सभा में और हम आएं! अरे
हम नाई हैं! अब आजकल वे अपने को नाई भी नहीं कहते, अपने को सेन कहते हैं, कि हम सेन हैं, हम ऐसे चमारों की सभा में नहीं आ सकते! चमारों के बीच हम बैठेंगे?
चमारों की सभा में सिर्फ चमार आए, कोई और नहीं आया। उसमें भी सब चमार नहीं आए। मैंने पूछा कि बस इतने ही चमार हैं यहां? उन्होंने कहाः नहीं, चमार तो और भी हैं। लेकिन हममें भी छोटी-बड़ी जातियां हैं। जो चमार अच्छे काम करते हैं उनकी अलग जाति है। वे लोग अपने को ऊंचा मानते हैं। जो जूते बेचते हैं, वे अपने को ऊंचा मानते हैं--उनसे, जो मरे हुए जानवरों की खाल निकालते हैं।
तो सीढ़ी पर सीढ़ी खड़ी कर दीं हमने। आदमी को ऐसा खंडित कर दिया।
अहंकार होगा तो यह होने वाला है। अहंकार सभी की तलहटी फोड़ देता है।
और जहां अहंकार है वहां परमात्मा से संबंध नहीं हो सकता। परमात्मा बरसता रहेगा, तुम खाली के खाली रहोगे। अहंकार भर नहीं सकता। अहंकार कब किसका भरा है? अहंकार खाली है और खाली ही रहता है, लाख भरने के उपाय करो। ध्यान यह सारी अदभुत क्रिया को कर लेने की कीमिया है। यह तुम्हारे अहंकार को मिटा देगा। क्योंकि जो शून्य हुआ वहां कैसा मैं-भाव! और जहां मैं नहीं है वहां कैसा ब्राह्मण, कैसा शूद्र, कैसा क्षत्रिय, कैसा वैश्य! और जहां मन गया वहां घड़ा सीधा हुआ, चेतना सीधी परमात्मा से जुड़ी। और जहां वासनाएं न रहीं, वहां छिद्र न रहे।
और सारा कलुष क्या है? क्रोध का है, वैमनस्य का है, ईर्ष्या का है। ये
तो जहर हैं, जो तुम्हारे घड़े में लिपटे हुए हैं। लेकिन मन से हटे कि ये सारे जहर से हट गए। ये सारे जहरों की सीमा मन तक है; मन के पार इनकी कोई पहुंच नहीं है। यह सारी अशांति, यह सब उपद्रव मन का है।
ठीक कहते हैं मलूकदासः सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया बिसराम।
वे कहते हैंः मेरा तो विश्राम हो गया। मैं बचा ही नहीं। मैं तो ऐसा विश्राम को पा गया हूं, ऐसा ठहर गया--सारी गति गई, सारी क्रिया, दौड़-धूप, आपाधापी गई--कि तब मैंने एक अदभुत बात पाई, एक अनूठा चमत्कार देखा, आश्चर्यों का आश्चर्य--कि मैं तो राम का नाम नहीं जप रहा हूं, लेकिन परमात्मा मेरा स्मरण करता है, चौबीस घंटे मेरी याद रखता है! चौबीस घंटे उसकी अनुकंपा मुझ पर बरस रही है। बिन मांगे बरस रही है।
बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून।
इसलिए इस शीर्षक को मैंने चुना है--इन आने वाले दस दिनों के लिए। काश, तुम्हारे जीवन में भी ऐसा हो सके, तो ही जानना कि तुम जीए, तो ही जानना कि तुमने कुछ पाया, तो ही जानना कि जीवन सार्थक हुआ है!

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं चारों ओर ऐसे लोग देख रही हूं जो आनंदित हैं।
यह सुंदर बात है। लेकिन मैं अपने आप से पूछती हूं कि इनमें से कितने युवक-युवतियां अपने माता-पिताओं को घर पर संताप में छोड़ आए हैं? क्या यह उचित है कि वे केवल अपनी ही फिक्र करें और दूसरे दायित्वों को भूल जाएं?

पावला फलाची! पहली बातः जो अपनी फिक्र नहीं कर सकता वह कोई और दूसरा दायित्व कभी पूरा नहीं कर सकता। पहला दायित्व अपनी तरफ है और जो वहां चूका

वह सभी दायित्वों में चूक जाएगा। जो स्वयं शांत नहीं है वह किसी को भी शांत नहीं कर सकता। जो स्वयं आनंदित नहीं है वह किसी को भी आनंदित नहीं कर सकता।
हम इस जगत में दूसरों को वही दे सकते हैं जो हमारे पास है। अगर दुख हमारे पास है तो हम दुख ही देंगे, और कोई उपाय नहीं है, अन्यथा हो ही नहीं सकता। यह जीवन की अनिवार्यता है। हां, यह हो सकता है कि हम चाहें कि सुख दें। मगर स्वर्ग चाहने से किसी को हम नहीं दे सकते। नरक का रास्ता, कहते हैं, शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है। क्यों?
पावला फलाची, जो बेटे और बेटियां अपने मां-बाप के पास हैं, क्या उनके मां-बाप उन बेटे और बेटियों से संतुष्ट हैं, तृप्त हैं? कौन मां-बाप अपने बेटे और बेटियों से तृप्त है, संतुष्ट है? कौन मां-बाप शिकायत से नहीं भरा है? कौन पति शिकायत से नहीं भरा है पत्नियों की, कौन पत्नी शिकायत से नहीं भरी है पतियों की? कौन बच्चे शिकायत से नहीं भरे हैं मां-बाप की? और सारी दुनिया में सभी लोग कहते हैं कि हम प्रेम कर रहे हैं, लेकिन कहीं प्रेम दिखाई पड़ता नहीं। प्रेम का संगीत सुनाई पड़ता नहीं। प्रेम के फूल खिलते अनुभव में नहीं आते। कहीं प्रेम की सुगंध उड़ती नहीं। सब तरफ अप्रेम है, घृणा है। कारण क्या होगा? कारण यही है कि जो हमारे पास नहीं है वह हम दूसरे को देना चाहते हैं। पति स्वयं आनंदित नहीं है और पत्नी को आनंदित करने में लगा है, यह कैसे हो सकता है? पत्नी स्वयं आनंदित नहीं है और पति को आनंदित करने में लगी है, यह कैसे हो सकता है? यह तो दो भिखमंगों जैसी हो गई बात, एक-दूसरे के सामने झोली फैलाए खड़े हैं। कौन किसको दे! दोनों की झोली खाली है। दोनों एक-दूसरे पर नाराज हो रहे हैं।
दो ज्योतिषी एक रास्ते पर मिले। रोज मिलते थे। सुबह-सुबह उसी रास्ते
से गुजरते थे बाजार जाने के लिए। एक-दूसरे को अपना हाथ दिखाते थे कि भई, जरा मेरा हाथ तो देखो। आज व्यवसाय कैसा चलेगा?
अब जो ज्योतिषी एक-दूसरे को अपना हाथ दिखा रहे हैं, ये किसका हाथ देख सकेंगे? इनको खुद अपना पता नहीं है, ये किसको किसका पता दे सकेंगे!
दो मनोवैज्ञानिक एक बार बगीचे में मिले। सुबह घूमने गए होंगे। एक मनोवैज्ञानिक ने दूसरे से कहाः तुम तो भले-चंगे हो। मेरे संबंध में कुछ कहोगे, मेरी हालत कैसी है?
दूसरे को बाहर से देख सकते हो, भला-चंगा दिखाई पड़ रहा है। अपने को तो देखने तक की क्षमता नहीं है, क्योंकि अपने भीतर उतरने की क्षमता नहीं है। मेरी हालत कैसी है, कुछ मेरे संबंध में कहो--यह हम दूसरे से पूछ रहे हैं। पावला, तेरे मन में यह विचार तो उठा कि ये युवक और युवतियां यहां आकर इतने आनंदित हैं, लेकिन घर पर अपने माता-पिताओं को संताप में छोड़ आए हैं। जो नहीं छोड़ कर आए हैं अपने माता-पिता को, उनके माता-पिता आनंदित हैं? यह भी सोच। और फिर माता पिता अगर संताप में हैं तो जरूरी नहीं है कि कारण उनके बेटे-बेटियों का यहां आना हो। कारण उनकी अपनी मूढ़ता हो सकती है, अपनी जड़ता हो सकती है। उनकी जड़ता के लिए उनके बेटा-बेटी जिम्मेवार नहीं हैं।
अभी एक महिला का पत्र आया--उसकी बेटी के नाम। उसकी बेटी ने-- संन्यासिनी है और पावला के देश की ही है, इटली से ही है--अपनी मां को मेरी किताबें भेजी होंगी। उसकी मां ने किताबें पढ़ीं और उसने पत्र लिखा कि मैं किताबों को पढ़ कर प्रसन्न हुई, बातें बिल्कुल ठीक हैं, सिर्फ एक बात जानना चाहती हूं कि क्या यह व्यक्ति जिसके पास तुम रुक गई हो, कैथेलिक ईसाई है या नहीं? अगर कैथेलिक ईसाई है तो बिल्कुल ठीक। और अगर कैथेलिक ईसाई नहीं है तो जितने शीघ्र घर आ सको आ जाओ।
मेरी बातें ठीक हैं, वह लिखती है। मगर मेरी बातों के ठीक होने से क्या लेना देना है? उसकी बेटी आनंदित है, यह वह जानती है, लेकिन उससे भी कोई प्रयोजन नहीं है; प्रयोजन इस बात से है कि जिस व्यक्ति के पास रुकी हो, वह कैथेलिक ईसाई है या नहीं? निश्चित ही मैं न कैथेलिक हूं, न प्रोटेस्टेंट हूं, न हिंदू हूं, न मुसलमान हूं, न जैन हूं, न बौद्ध हूं। मैं निपट आदमी हूं--खालिस, बस आदमी हूं! कोई विशेषण नहीं। अब अगर यह मां संतापग्रस्त हो जाए तो क्या इसकी बेटी जिम्मेवार है? यह इसकी मां की मूढ़ता है। अब मां की

मूढ़ता के लिए बेटी क्या करे? चेष्टा करती है, किताबें भेजती है, पत्र लिखती है, समझाने की कोशिश करती है, और क्या कर सकती है? क्या तुम सोचती हो, यह बेटी वापस चली जाए तो यह अपनी मां को आनंदित कर सकेगी? अपने आनंद को भी गंवा देगी और इसकी मां ने क्या खाक आनंद पाया होगा, जिसको अभी इतनी भी समझ नहीं आई जीवन में कि धर्म का कोई संबंध कैथेलिक, ईसाई या हिंदू या मुसलमान से नहीं होता! इसकी मां अंधविश्वासी है। अब अगर कोई अपने अंधविश्वासों के कारण दुखी हो रहा हो तो इसमें कसूर किसका है? इसमें भूल-चूक किसकी है?
तब तो हमें सारे शिक्षालय बंद कर देने चाहिए, क्योंकि ईसाई मानते हैं
कि पृथ्वी चपटी है। और विश्वविद्यालय में बच्चे पढ़ कर लौटेंगे कि पृथ्वी गोल है, मां-बाप को संताप होगा। ईसाई मानते हैं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है और बच्चे विश्वविद्यालयों से पढ़ कर लौटेंगे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता, पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। इससे मां-बाप को संताप होगा। क्या करना है? मां-बाप के संताप को देखना है या सत्य को देखना है? तो ये सारे विश्वविद्यालय बंद हो जाने चाहिए। और फिर भी क्या तुम सोचती हो कि मां-बाप आनंदित हो जाएंगे? मां-बाप आनंदित होते ही कहां हैं! किसके मां- बाप आनंदित होते हैं? मां-बाप को हमेशा शिकायत बनी रहती है।
इस दुनिया में कोई किसी दूसरे से आनंदित हो ही नहीं सकता; किसी दूसरे
के कारण आनंदित हो ही नहीं सकता। आनंद भीतर की घटना है, स्वस्फूर्त होता है। आनंद ध्यान से उपजता है, संबंधों से नहीं।
इसलिए यह जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है पावला कि यहां चारों ओर तुम देख रही हो लोग आनंदित हैं, तुम्हें भी लग रहा है यह बात सुंदर है। ऐसे आनंदित लोग, जो मां-बाप के पास हैं, वे भी तुम्हें दिखाई पड़ते हैं? अगर नहीं तो वे निरानंद लोग कैसे अपने दायित्वों को पूरा कर रहे होंगे? जबरदस्ती ढो रहे होंगे। मगर भीतर-भीतर बच्चे सोचते हैं--कब इस खूसट बुड्ढे से छुटकारा मिले, कब यह बुढ़िया मरे तो झंझट मिटे! और पश्चिम में तो बच्चे आज नहीं कल मां-बाप को छोड़ कर चले ही जाते हैं। पश्चिम में तो बूढ़े मां-बाप अस्पतालों में या वृद्धालयों में रह रहे हैं। ये तो कहीं न कहीं छोड़ कर जाएंगे ही। अगर ये यहां आ गए हैं तो तत्क्षण सवाल उठता है कि उन्होंने अपना दायित्व छोड़ दिया। अगर ये कहीं जाकर नौकरी करते, धन कमाते--चाहे चोरी से ही धन कमाते, चाहे बेईमानी से ही धन कमाते, तो भी अपना दायित्व पूरा कर रहे होते। लेकिन इनका आनंदित होना दायित्व का पूरा करना नहीं है।
मेरी दृष्टि में तो अगर ये आनंदित होकर वापस लौटेंगे किसी दिन तो शायद आनंद को बांट सकेंगे। ये जहां जाएंगे वहां आनंद की किरणें बिखेरेंगे। मेरे हिसाब में दायित्व गौण है, नंबर दो है; आनंद प्रथम है। और आनंदित व्यक्ति ही केवल अपने कर्तव्य पूरे कर सकता है। दुखी व्यक्ति अपने कर्तव्य पूरे नहीं कर सकता। करे भी तो जबरदस्ती करता है; मजबूरी में करता है; करना पड़ता है, इसलिए करता है। उसका कोई रस नहीं होता करने में।
और अगर मेरी बात तुम्हें समझ में आए... कठिन पड़ेगी समझना। मैं तो स्वार्थ सिखाता हूं। मेरे लिए स्वार्थ शब्द बुरा शब्द नहीं है। स्वार्थ शब्द का अर्थ हैः स्वयं का अर्थ। स्वार्थ शब्द का अर्थ हैः मैं कौन हूं, इसको जानना। और जो व्यक्ति स्वयं को जान लेता है उसके जीवन में क्रांति हो जाती है। वह अच्छा पति होगा, अच्छी पत्नी होगी, अच्छा बेटा होगा, अच्छी बेटी होगी, अच्छा बाप होगा, अच्छी मां होगी। वह जो भी होगा, जहां भी होगा, उसके जीवन में एक सुगंध होगी, उसके संबंधों में एक रस होगा। क्योंकि उसकी हर जीवनशैली में परमात्मा की छाप होगी। मैं स्वार्थ-विरोधी नहीं हूं।
और भी जान कर तुम्हें हैरानी होगी पावला, कि मेरी मान्यता है कि जो स्वार्थ को ठीक से समझ लेता है वही परार्थी हो सकता है। स्वार्थ और परार्थ में मैं विरोध नहीं देखता। जो स्वार्थी ही नहीं है वह परार्थी तो कभी हो ही नहीं सकता। जिसने स्वयं का ही अर्थ नहीं साधा अभी, वह औरों का क्या खाक अर्थ साधेगा? हां, जबरदस्ती उससे सधवा दो दूसरों का अर्थ, धक्के दे-दे कर उससे सेवा करवा लो, तो कर देगा। लेकिन मजबूरी होगी, जबरदस्ती होगी; उसका आनंद नहीं हो सकता है। और मजा क्या उस बात में, जिसमें आनंद न हो? रस क्या उस बात में, जो तुम्हारे भीतर से उपजती न हो?

मैं स्वार्थ सिखाता हूं। परार्थ के फूल स्वार्थ में ही लगते हैं। हालांकि तुम्हें आज तक यही बात कही गई है, सदा यही दोहराया गया है कि स्वार्थ और परार्थ विरोधी हैं, स्वार्थ छोड़ो और परार्थ करो। आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में यही मूढ़तापूर्ण बात समझाई गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि परार्थ तो हुआ ही नहीं, स्वार्थ भी नहीं हो पाया। पहले तो मैं कहता हूंः अपनी जड़ें मजबूत करो, ताकि तुम्हारे जीवन में फूल खिलें। फूल खिलेंगे तो सुगंध दूसरों को मिलेगी ही मिलेगी। और तुम्हारी अपनी ही जड़ें मजबूत नहीं हैं तो तुम इस भ्रांति में मत पड़ना कि तुम किसी को सुगंध देने में कभी भी समर्थ हो सकते हो।

पावला का दूसरा प्रश्न हैः ओशो, आप जानते हैं कि इस समय दुनिया में युद्ध की चर्चा चल रही है। इस खतरे को रोकने के लिए हम में से प्रत्येक व्यक्ति क्या कर सकता है?

पावला, अब तक तुम्हें युद्ध ही सिखाया गया है। अब तक तुम्हें प्रेम सिखाया नहीं गया। अब तक तुम्हें युद्ध के लिए ही तैयार किया गया है; तुम्हें प्रेम की कोई भूमिका नहीं दी गई; तुम्हें शांति का कोई पाठ नहीं पढ़ाया गया। यद्यपि कहते हैं राजनेता कि हम शांति चाहते हैं, मगर बड़ी अजीब है उनकी शांति! शांति चाहते हैं, बनाते हैं एटमबम! शांति चाहते हैं, बनाते हैं हाईड्रोजन बम!
औरों की तो बात छोड़ दो, यह गांधीवादी देश है भारत, यह तो अहिंसा की बात करता है। मगर यह भी अपना सत्तर प्रतिशत धन फौजों पर खर्च करता है। भूखा मर रहा है, अधनंगा है, कपड़ा नहीं, मकान नहीं, मिट्टी का तेल नहीं, जीवन की साधारण जरूरतें पूरी नहीं होतीं, मगर मिलिटरी में सांडों को पाल रहा है। कर्नल, जनरल, मेजर--ये सब सांड हैं, जिनका कुछ काम नहीं है। कवायद करो, क्योंकि खतरा है--पड़ोस में दूसरे देश अपने-अपने सांडों को पाल रहे हैं! उनके सांड डंड-बैठक लगा रहे हैं तो अपने सांडों को भी डंड-बैठक लगवाओ। सबको अपना झंडा ऊंचा रखना है। झंडा-वंडा से किसी को मतलब नहीं है, सबको अपना डंडा ऊंचा रखना है! झंडा तो बहाना है, झंडे में छिपा डंडा है।
जब तक दुनिया में देश हैं तब तक युद्ध होंगे। देश मिटने चाहिए। बहुत
हो चुका। अब कोई जरूरत नहीं है कि भारत हो, पाकिस्तान हो, चीन हो, रूस हो, इटली हो, जापान हो, जर्मनी हो। बहुत हो चुका। दुनिया से राष्ट्र मिटने चाहिए। जब तक राष्ट्र हैं तब तक युद्ध जारी रहेंगे।
मैं यह प्रयोग यहां कर रहा हूं। यहां किसी को पता नहीं कौन कौन है। किसी को चिंता भी नहीं। यहां सारी दुनिया एक परिवार की तरह रह रही है। छोटा सा परिवार, लेकिन इस परिवार में सारे लोग हैं। कोई तीस-पैंतीस राष्ट्रों के लोग हैं। लेकिन कोई भेदभाव नहीं।
धर्म मिटने चाहिए। धर्म बचेगा, धर्म मिट जाने चाहिए। बहुवचन में धर्मों की कोई जरूरत नहीं, एकवचन काफी है। हिंदू की क्या जरूरत है, मुसलमान की क्या जरूरत है, ईसाई की क्या जरूरत है? पोप की क्या जरूरत है और शंकराचार्य की क्या जरूरत है? इतना काफी है कि लोग धार्मिक हों और धार्मिक होने के लिए ध्यान की जरूरत है, और किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। न बाइबिल को मानने की जरूरत है, न कुरान को, न वेद को। और इन बाइबिल और कुरान और वेदों में ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें भरी हैं कि इनको मानने वाले अंधे ही लोग हो सकते हैं। अगर इनको कोई जरा आंख खोल कर देखे तो बहुत घबड़ाएगा कि कैसे मानें इनको! इनमें कचरा ज्यादा है, हीरे तो कभी-कभार मिलेंगे। और जो हीरे हैं वे तो तुम्हें अपने ध्यान में खोदने से खुद ही मिल जाएंगे, तो इस कचरे में इतना क्यों परेशान होना? और जब तक तुमने अपने हीरे नहीं पहचाने, तब तक तुम यह भी नहीं जान पाओगे कि वेद में क्या कचरा है और क्या हीरा है। कैसे जानोगे? तुम्हारे पास कोई कसौटी नहीं, कोई मापदंड नहीं, कोई तराजू नहीं।
अगर दुनिया से युद्ध मिटाने हैं पावला, तो राष्ट्र मिटने चाहिए, धर्म मिटने चाहिए, सीमाएं मिटनी चाहिए--सब तरह की सीमाएं मिटनी चाहिए। पृथ्वी

एक है। पृथ्वी एक है और पृथ्वी को एक ही होना चाहिए। सारी पृथ्वी पर एक शासन काफी है; इतने राष्ट्र, इतनी सत्ताएं, इतनी सरकारें, इनकी कोई आवश्यकता नहीं है।
मेरे संन्यासी उसी दिशा में पहला कदम उठा रहे हैं। जैसे-जैसे संन्यासियों की संख्या बढ़ेगी वैसे-वैसे राजनेताओं को चिंता बढ़ेगी, क्योंकि मेरा संन्यासी सब तरह की बगावत करने वाला है, कर ही रहा है। पावला, अगर युद्ध मिटाना है, संन्यासी फैलाओ; अगर युद्ध बढ़ाना है तो सैनिक बनाओ। सैनिक और संन्यासी विपरीत हैं। सैनिक का अर्थ हैः युद्ध, युद्ध की तैयारी। और संन्यासी का अर्थ हैः शांति, शांति की तैयारी। फैलाओ संन्यासी को! फैलाओ संन्यासी के रंग को! डुबा दो सारी पृथ्वी को ध्यान में! अपने आप युद्ध समाप्त हो जाएंगे। युद्धों की कोई भी जरूरत नहीं है; अकारण लड़े गए हैं, व्यर्थ लड़े गए हैं। तीन हजार सालों में पांच हजार युद्ध हुए हैं। और अब तक तो हो भी सकते थे, क्योंकि टुच्ची-टुच्ची हमारे पास साधन-सामग्री थी। अब तो बड़ा मुश्किल मामला है। अब तो युद्ध होगा तो पूर्ण युद्ध होगा। एक युद्ध में सारी दुनिया समाप्त होगी। न आदमी बचेगा, न पशु- पक्षी बचेंगे, न पौधे बचेंगे, कीड़े-मकोड़े भी नहीं बचेंगे। जीवन ही नहीं बचेगा। एक भयंकर युद्ध के द्वार पर हम खड़े हैं।
एक लिहाज से यह अच्छा है, क्योंकि हमें कुछ निर्णय करना होगा। और इतने
ही खतरे के क्षण में लोग निर्णय करते हैं, नहीं तो निर्णय कोई करता भी नहीं। जब जान पर ही आ बनती है तब ही लोग निर्णय करते हैं। अब जान पर बनी आ रही है बात। इस सदी के पूरे होते-होते दुनिया को निर्णय करना पड़ेगा कि अगर युद्ध चाहिए तो राष्ट्रों को चलने दो और अगर युद्ध नहीं चाहिए तो राष्ट्रों को विदा करो। राष्ट्रों के विदा करते ही हिंदुस्तान को फौजें रखने की जरूरत नहीं, किसके खिलाफ फौज रखनी है? पाकिस्तान को फौजें रखने की जरूरत नहीं, किसके खिलाफ फौज रखनी है? और अभी तो फौजें ही खाए जा रही हैं। सत्तर प्रतिशत दुनिया की संपत्ति फौजें खा जाती हैं। यह दुनिया स्वर्ग बन सकती है। जरा सोचो तो, अगर यह सत्तर प्रतिशत संपत्ति दुनिया में उत्पादक कामों में लगे... और ये फिजूल बैठे हुए लोग, जो दिन भर कुछ भी नहीं करते, कवायद करते हैं, मूर्खतापूर्ण! बाएं घूम, दाएं घूम! क्या मतलब है बाएं घूम दाएं घूम से? काहे के लिए बाएं घूम रहे, काहे के लिए दायें घूम रहे हो? कोई दिमाग खराब हो गया है? काम हो तो जरूर घूमो, मगर बेकाम बाएं-दाएं घूम रहे हो! आगे बढ़, पीछे हट! कोई पूछता भी नहीं किसलिए आगे बढ़ना, किसलिए पीछे हटना! तैयारी चल रही है। हमेशा खतरा बना हुआ है पड़ोसी का।
अगर दुनिया से राष्ट्र समाप्त हो जाएं तो यह खतरा समाप्त हो जाता है,
यह भय समाप्त हो जाता है। अब दुनिया में राष्ट्रों के दिन लद चुके, राजनीति के दिन लद चुके। यह सड़ी-गली दुनिया राजनीतिज्ञों की अब समाप्त होने का वक्त आ गया। बहुत सता लिया है दुनिया को। अब वे खुद ही अपने हाथ से उस जगह ले आए हैं जहां आदमी को तय करना होगा कि या तो मर जाओ, या तो सामूहिक आत्मघात, सार्वलौकिक आत्मघात, विश्व-आत्मघात--और या फिर एक महाक्रांति, जिसमें कि हम पुराने सारे तौर-तरीकों को बदलें, जिसमें कि हम पुराने सारे ढंग-ढर्रों को बदलें, कि हम आदमी का फिर क ख ग से निर्माण करना शुरू करें। आदमी को फिर से बनाने की जरूरत है।
वही महत कार्य इस छोटे से पैमाने पर हो रहा है। यह आज काम छोटा है, यह बीस वर्षों में बड़ा हो जाएगा। इस सदी के पूरे होते-होते तुम देखोगे कि इस काम से आदमी के जीवन के लिए एक दिशा मिलनी शुरू हो गई।
ध्यान की ऊर्जा जगत में फैलनी चाहिए और प्रेम का वातावरण जगत में फैलना चाहिए। मेरी दो ही शिक्षाएं हैंः अपने भीतर ध्यान में उतरो और अपने बाहर प्रेम में उतरो।
मेरा विरोध होने वाला है। मेरा विरोध पंडित करेंगे, पुरोहित करेंगे, पोप करेंगे, पादरी करेंगे। मेरा विरोध राजनीतिज्ञ करेंगे, समाज के ठेकेदार करेंगे, न्यस्त स्वार्थ करेंगे; जिनके हाथ में अब तक सत्ता रही है, वे करेंगे। यह स्वाभाविक है, क्योंकि मैं उनको जड़ से काट डालना चाहता हूं। यह जड़-मूल से क्रांति है।

मेरा संन्यासी कोई पुराने ढंग का संन्यासी नहीं है, कोई भगोड़ा नहीं
है कि उसे चले जाना है दूर हिमालय में किसी गुफा में बैठ जाना है। मेरा संन्यासी जिंदगी में खड़ा होगा और वहां एक नये ढंग से जीएगा। उसके जीने के दो पहलू होंगे--भीतर प्रेम और ध्यान। ध्यान अपने लिए, प्रेम औरों के लिए। ध्यान उसका केंद्र होगा, प्रेम उसकी परिधि होगी। और जितने लोग ध्यान और प्रेम से भरते चले जाएंगे उतनी ही दुनिया में युद्ध की संभावना क्षीण होती चली जाएगी।
राजनीतिज्ञ तो पिट चुके, सड़ चुके, लाशें खड़ी हैं; सिर्फ धक्का मारने
की जरूरत है, गिर जाएंगे। कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत भी नहीं है राजनीति में।
मैंने सुना है, एक आदमी को अपना मस्तिष्क बदलना था। उसका पुराना मस्तिष्क सड़ गया था, तो वह गया एक सर्जन के पास। सर्जन ने कहा कि मस्तिष्क बदला जा सकता है। तुम जो मस्तिष्क पसंद करो, जितनी तुम्हारी हैसियत, जितनी तुम्हारी जेब की ताकत। उसने जाकर उसे बहुत से मस्तिष्क दिखाए अपनी प्रयोगशाला में। एक वैज्ञानिक का मस्तिष्क था, दाम थे केवल बीस डालर और एक राजनीतिज्ञ का मस्तिष्क था, दाम थे दो हजार डालर। उस आदमी ने पूछाः हद हो गई! मैं तो सोचता था वैज्ञानिकों के मस्तिष्क बहुमूल्य होते हैं। राजनीतिज्ञ के मस्तिष्क के दाम दो हजार डालर और वैज्ञानिक के मस्तिष्क के दाम केवल बीस डालर! और इस वैज्ञानिक को नोबल-प्राइज मिली थी।
वह चिकित्सक हंसने लगा और उसने कहाः तुम समझे नहीं। वैज्ञानिक के मस्तिष्क को नोबल-प्राइज मिली थी, इसीलिए तो उसके दाम बीस डालर। यह तो अपने मस्तिष्क का उपयोग कर चुका। यह राजनीतिज्ञ ने तो मस्तिष्क का कभी उपयोग किया नहीं, जरूरत पड़ी नहीं; यह काम में आया ही नहीं है। यह तो ब्रैंड न्यू समझो! इसलिए इसके दाम दो हजार डालर।
राजनीतिज्ञ को मस्तिष्क की क्या जरूरत है! जितना कम मस्तिष्क हो, उतनी राजनीति में ज्यादा सफलता की गुंजाइश है। वह मूढ़ों की दुनिया है और मूढ़ काफी सता चुके हैं। ये चंगीज खां और तैमूरलंग और ये नादिरशाह और ये सिकंदर... और इनको हम कहते रहे--महान! इतिहास भरा है इनसे और हम बच्चों की खोपड़ी इन कचरा नामों से भरते हैं। यह सारा इतिहास जला दो! इस इतिहास की कोई जरूरत नहीं है। ये थोड़े से नाम बच्चों को समझा दो--बुद्ध के, जीसस के, जरथुस्त्र के, लाओत्सु के, मोहम्मद के, महावीर के, फरीद के, नानक के, मलूक के--काफी हैं।
हमें इतिहास पूरा का पूरा और ढंग से पढ़ाना चाहिए। उनकी बात पढ़ाओ, जिन्होंने प्रेम की कही बात। उनकी बात पढ़ाओ, जिन्होंने परमात्मा की कही बात। उनकी बात पढ़ाओ, जिन्होंने जगत को ध्यान के सूत्र दिए। किन गधों की बात पढ़ा रहे हो--जिन्होंने जिंदगी को बरबाद किया, तहस-नहस किया, हत्याएं कीं, जो जमीन को खून से भर गए!
हमें सारा का सारा रंग-ढंग बदलना होगा। अब बदलना ही होगा, पावला, क्योंकि तू ठीक पूछती हैः आप जानते हैं इस समय दुनिया में युद्ध की चर्चा चल रही है। और यह चर्चा अब साधारण नहीं है, यह असाधारण है। क्योंकि अब जो युद्ध होगा वह आखिरी है, निर्णायक है। या तो आदमी बचेगा या खत्म होगा। अगर बचना होगा आदमी को तो मेरे जैसे लोगों की बात सुननी ही पड़ेगी और अगर नहीं बचना है तो ठीक है, तुम जिस ढंग से रहते रहे हो रहते रहो। ऐसे मर जाओगे जैसे खटमल-मच्छर मर जाते हैं। यह पृथ्वी खाली हो जाएगी। यह पृथ्वी सूनी हो जोगी। यह सदियों-सदियों में जो थोड़े से लोगों ने मनुष्य-जाति में चैतन्य की अपूर्व ज्योति जलाई है, वह बुझ जाएगी। यह महत कार्य जो बुद्धों ने किया है, खो जाएगा। यह मंदिर जो बुद्धों ने बनाया है, यह धूल-धूसरित हो जाएगा। सब तुम्हारे हाथ में है।
सैनिक को विदा करो संन्यासी को जगह दो। युद्ध की भाषा बंद, प्रेम की भाषा के पाठ पढ़ाओ। लेकिन प्रेम की भाषा के पाठ पढ़ाना, सब कुछ बदलना होगा। आमूल-चूल बदलना होगा। यह कुछ ऐसा नहीं है कि कुछ शांति के नारेबाजी लगा दिए और कुछ झंडे लेकर शांति का जुलूस निकाल दिया कि हम युद्ध नहीं चाहते

हैं, इससे कुछ हल हो जाएगा। इससे कुछ हल होने वाला नहीं है। इसके लिए कोई सृजनात्मक कार्य... वैसा ही सृजनात्मक कार्य यहां हो रहा है।
पावला, इसे समझने की कोशिश करो। यह सूत्रपात है। मेरी दृष्टि में ये सारी बातें हैं। मैं जो कर रहा हूं, उसमें एक बहुत पूरी की पूरी योजना है। उसमें मनुष्य के भविष्य के लिए पूरा का पूरा जीवन-दर्शन है।

तीसरा प्रश्न पावला का हैः ओशो, मैं जानती हूं कि कुछ इटलीवासी अपनी नशीली आदतों से छुटकारा पाने के लिए आपके पास आ रहे हैं। क्या उनके लिए कोई उम्मीद है? क्या आप उनका इलाज कर सकते हैं?

निश्चय ही, क्योंकि मैं उन्हें और बड़ा नशा पिलाता हूं। वे क्या खाक नशा करेंगे इटली में! कोई मारिजुआना, कोई हशिश, कोई गांजा, कोई अफीम, कोई एल.एसड़ी.। मैं उन्हें ध्यान दे रहा हूं। जिसको ध्यान का नशा लग गया, फिर सब नशे छूट जाते हैं। और ध्यान के नशे की एक खूबी हैः यह नशा है भी और नशा नहीं भी है। ध्यान बड़ा विरोधाभासी नशा है। यह जगाता भी है और डुबाता भी है। यह मदमाता भी है। यह मस्ती से भी भर देता है, और यह परम बोध को भी जगा देता है। यह तुम्हारे भीतर चैतन्य को भी प्रखर करता है, तुम्हारी मूर्च्छा को भी तोड़ता है, और तुम्हारे पैरों में नृत्य भी दे देता है, और तुम्हारे गले में गुनगुन भी भर देता है। यह तुम्हें गीत भी देता है--ऐसे गीत, ऐसे रंग कि तुम्हारे प्राणों में इंद्रधनुष फैल जाएं, कि तुम्हारे प्राणों में कमल खिल जाएं! जिसने इस नशे को किया उसके सब नशे छूट जाते हैं।
मेरी तो दृष्टि ही यही है कि जो लोग भी दुनिया में नशा कर रहे हैं वे असल में ध्यान की ही तलाश कर रहे हैं। उन्हें ध्यान का पता नहीं चल रहा, इसलिए बेचारे अंधेरे में टटोल रहे हैं, जो हाथ लग जाता है। शराब किसी ने पी ली, मैं मानता हूं कि वह ध्यान की ही तलाश कर रहा है। लेकिन ध्यान तो बोतलों में बंद हर जगह मिलता नहीं; शराब मिल जाती है। शराब पीकर भी वह क्या कर रहा है? वह यही कर रहा है कि थोड़ी देर को मन के उपद्रव भूल जाना चाहता है। मगर मन के उपद्रव मिटते नहीं; दूसरे दिन सुबह फिर वापस खड़े हैं, दुगनी ताकत से खड़े हैं।
जो आदमी मारिजुआना, एल.एसड़ी. और इस तरह के नशे ले रहा है, वह क्या कर रहा है? उसकी जिंदगी फीकी हो गई है, उदास हो गई है, ऊब से भर गई है। अब उसे जिंदगी में कुछ रस और अर्थ नहीं मालूम होता। वह घबड़ा गया है। सब रंग खो गए हैं, सब गीत उजड़ गए हैं। कहीं कुछ ऐसा नहीं लगता जिसमें गरिमा हो, महिमा हो। उसे लगता है कि मिट जाऊं मर जाऊं या कुछ रास्ता मिले--जिससे अर्थवत्ता पैदा हो। तो बेचारा नशा कर लेता है। नशा कर लेता है तो फिर वृक्ष हरे दिखाई पड़ते हैं थोड़ी देर को, फिर फूल सुंदर मालूम होते हैं, फिर तितलियों में परमात्मा के हस्ताक्षर अनुभव होते हैं, फिर चांद-तारों में रोशनी आ जाती है, फिर उसकी आंखें चमकती हैं बच्चों की तरह, फिर आश्चर्य-विमुग्ध होता है वह। लेकिन यह कितनी देर टिकेगा? थोड़ी देर बाद फिर वापस इसी भूमि पर खड़ा है। वह सिर्फ कल्पना थी। वह ध्यान का भ्रम था। ध्यान इसी को स्थायी रूप से देता है। नशे, जिसकी केवल भ्रामक अनुभूति देते हैं, ध्यान उसी को स्थिर रूप से देता है। और एक बार देता है तो फिर जाता नहीं।
मैं कोई नशे करने वालों का इलाज नहीं कर रहा हूं। मैं उनकी खोज पहचानता हूं। इसलिए मेरे पास जब आकर कोई नशे करने वाला कहता है कि क्या मैं भी संन्यासी हो सकता हूं, क्योंकि मैं शराबी हूं, क्योंकि मुझे गांजा पीने की आदत है? मैं कहता हूंः तुम इसीलिए तो शराबी हो, इसीलिए तुम गांजा पीते थे कि अंधेरे में टटोलते थे। अब तुम रोशनी में आ गए। अब तुम संन्यासी हो ही जाओ। जिसने कभी गांजा नहीं पिया, कभी अफीम नहीं खाई, जो गोबरगणेश की तरह किसी दुकान पर बैठा रहा हमेशा, वह क्या खाक संन्यासी होगा! तुम कम से कम तलाश तो करते थे! तुम खोज तो करते थे। खोज गलत जा रही थी, मगर खोज तो खोज है। गलत हो तो भी, कम से कम है तो! जो गलत खोजता है वह एक दिन ठीक भी खोज लेगा।

मैं कोई इलाज नहीं करता। लेकिन मैं इतना बड़ा नशा दे देता हूं, उसके सामने छोटे नशे अपने से डूब जाते हैं। तुम चुल्लू भर पानी में डूबने की कोशिश कर रहे थे। मैं कहता हूंः सागर है पूरा, कहां तुम चुल्लू भर पानी में डूब रहे हो! कैसे डूबोगे? डूब ही नहीं सकते। यह रहा सागर, मारो डुबकी, ऐसी कि फिर निकलना ही नहीं।
तीन बच्चे स्कूल में चर्चा कर रहे थे। एक बच्चे ने कहा कि मेरे पिता बड़े गोताखोर हैं, जब पानी में गोता मारते हैं, पांच-सात मिनट तक बाहर नहीं निकलते।
दूसरे बच्चे ने कहाः यह कुछ भी नहीं। गोताखोर हैं मेरे पिता। जब गोता मारते हैं तो आधा-आधा घंटे तक पानी में नदारद हो जाते हैं।
तीसरे ने कहाः अरे यह कुछ भी नहीं, गोताखोर हैं मेरे पिता, आज सात साल
हो गए, जो गोता मारा सो निकले ही नहीं।
मैं तो तीसरी तरह का गोता सिखाता हूं कि जिसने मारा सो मारा, फिर निकलने का कोई सवाल नहीं है।

पांचवां प्रश्नः आप कहते हैं कि पंडित-पुरोहितों द्वारा चलाए जा रहे धर्म नकली हैं। फिर वे सदियों-सदियों से चले आ रहे हैं। क्यों?

धर्म ज्योति! इसीलिए! असली को चलाना मुश्किल है, क्योंकि असली को खरीदने वाले मुश्किल से मिलते हैं। असली जरा मंहगा सौदा है। असली के लिए कीमत भी असली चुकानी पड़ती है। नकली सस्ता मिल जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। एक हीरे की अंगूठी लाकर भेंट की। बड़ा हीरा! बेर के बराबर हीरा होगा। स्त्री भी चौंकी। सोने में जड़ा, ऐसे चमकता था! खुश हो गई, अंगुली में पहनाया जब नसरुद्दीन ने उसे। एकदम नसरुद्दीन के गले लग गई और कहाः नसरुद्दीन, तुम सच ही मुझे प्रेम करते हो! तुम जैसा मुझे कोई प्रेम नहीं करता। मगर एक बात तो बताओ, क्या यह हीरा असली है?
नसरुद्दीन ने कहाः असली नहीं है तो जिस हरामजादे से मैंने खरीदा, उसने डेढ़ रुपये मेरे मुफ्त खा गया।
डेढ़ रुपये में असली हीरा--बेर के बराबर! वह भी सोने में जड़ा! नसरुद्दीन बोला कि अगर नकली हो तो तू बता, खोपड़ी खोल दूंगा उसकी जिसने मुझे बेचा है, असली कह कर बेचा है। और नगद डेढ़ रुपये दिए हैं। हालांकि जो डेढ़ रुपये मैंने उसे पकड़ाए हैं, वे भी कोई असली नहीं थे। इसलिए अगर नकली भी है तो अपना कुछ गया नहीं, अपना कुछ खोया नहीं। मगर उसको मजा चखा कर रहूंगा! नकली हैं धर्म पंडित-पुरोहितों द्वारा चलाए हुए, इसीलिए चलते हैं। मगर तेरा पूछना भी ठीक है कि फिर सदियों-सदियों से क्यों चलते हैं? यह सवाल उठता है कि जब इतनी सदियों से चल रहे हैं तो जरूर कोई सचाई होगी! हमारा गणित ऐसा है कि जब इतनी पुरानी कोई बात चलती है तो इसमें सचाई होनी ही चाहिए।
पुरानी बात में सचाई का कोई संबंध नहीं है। पुराने होने से सत्य का कोई नाता नहीं है। पुराना सिर्फ इतना ही बताता है कि भीड़ को रुचता रहा है। और भीड़ को सत्य से क्या लेना-देना है! भीड़ को असत्य रुचता है। भीड़ को चाहिए सांत्वना, संतोष। और असत्य बड़े संतोषदायी हैं। असत्य बड़ी सांत्वनाएं देते हैं। सत्य कमाना हो तो कीमत चुकानी पड़ती है--शायद जीवन से कीमत चुकानी पड़े; शायद अपने को कुर्बान करना पड़े; शायद गर्दन उतार कर रखनी पड़े। असत्य कुछ नहीं मांगता तुमसे। असत्य तुमसे मांगता है कि कुछ चढ़ा दो दो पैसे। और तुम भी होशियार हो, तुम दो पैसे भी नकली चढ़ा आते हो।
मेरे गांव में झांकियां कृष्ण की बड़े जोर-शोर से मनाई जाती थीं। वह उस गांव की खास बात थी। आसपास दूर-दूर से गांव के लोग झांकियों को देखने आते थे। कृष्णाष्टमी के समय सावन में जब झूले पड़ते तो मंदिर ऐसे सज जाते और बड़ी भीड़ लगती। तो मैं भी चार-छह बच्चों का झुंड बना कर झांकियों में पहुंचता था। और हमने एक तरकीब निकाल रखी थी। उस समय दो पैसे का एक सिक्का चलता था, जो करीब-करीब रुपये के बराबर होता था। उस पर हम चांदी का वर्क चढ़ा

लेते थे, तो बिल्कुल रुपया मालूम होता था। और झांकियों में इतनी भीड़ होती थी और इतने पैसे चढ़ते थे कि सवाल ही नहीं था हाथ में देने का पुरोहित के, लोग यूं फेंकते थे। सो वह नकली दो पैसे का जो सिक्का होता था, चांदी का वर्क चढ़ा, उसको हम भी फेंकते थे जोर से, काफी खनखना कर, ताकि पुजारी को दिखाई पड़ जाए कि रुपया फेंका गया है। और तत्क्षण मांगते कि आठ आने वापस! सो झांकियों के दिन बड़े लाभ के दिन थे। एक-एक मंदिर में चार-चार छह-छह दफे जाते। फिर पुजारियों को थोड़ा शक होने लगा कि मामला क्या है! यह लड़का छह-छह दफे आता है एक ही रात में! और हर बार रुपया और क्या खनक कर फेंकता है! फिर वे जब रात को इकट्ठे होकर पैसे गिनते होंगे तो उनको पता चलना शुरू हुआ कि ये छह दो-दो पैसे के सिक्के नकली हैं और इन पर चांदी का वर्क चढ़ाया हुआ है। एक दिन एक पुजारी ने, जैसे ही मैंने रुपया फेंका, उसने तत्क्षण वह रुपया पकड़ा और कहा कि तुम रुको, आज धोखा न दे सकोगे। नकली दो पैसे पकड़ा जाते हो और साथ में अठन्नी भी हमसे ले जाते हो।
मैंने उनसे कहा कि तुम जो झूला लटकाए हो, इसमें कोई असली कृष्ण बैठे हैं? किसको झूला झूला रहे हो तुम? हम वही कर रह हैं जो तुम कर रहे हो। तुम जरा बड़े पैमाने पर कर रहे हो, हमें जरा छोटे पैमाने पर। हमारी उम्र भी अभी कम है; जब बड़े हो जाएंगे, हम भी बड़े पैमाने पर करेंगे। अभ्यास तो करने दो जी! अभी से अभ्यास करेंगे, तभी तो करते-करते बात बनेगी।
वह भी हंसने लगा। उसने कहाः यह बात तो ठीक है। यह ले भैया अठन्नी। तू औरों को मत बताना। यह राज अपने तक रखना।
और मैंने कहा कि तुम्हीं को हम थोड़े ही धोखा देते हैं; कोई गांव में कोई तीस-पैंतीस मंदिर हैं, सभी को देते हैं, सबको समान भाव से देते हैं। हम सबको समदृष्टि से देखते हैं। यही तो गीता में कहा है कृष्ण ने कि सबको समदृष्टि से देखो।
यह धोखाधड़ी चलती है। और जब तुम धोखाधड़ी चलाओगे तो जनता भी जानती है। चार पैसे में मिल जाता है पुरोहित, सत्यनारायण की कथा करा जाता है। मोक्ष भी सध गया। चार पैसे में मोक्ष साध रहे हो! महावीर मूरख थे, जो बारह वर्ष मेहनत की, ध्यान पर सिर पटका! बुद्ध बुद्धू थे, छह वर्ष तक जान दांव पर लगाई, तब कहीं ध्यान को उपलब्ध हुए। और तुम सत्यनारायण की कथा करवा रहे हो चार पैसे में--उस आदमी से, जिसको सत्य का कोई भी पता नहीं। तुम भी जानते हो। चार पैसे में कोई सत्यनारायण की कथा कहने आएगा! और उस सत्यनारायण की कथा को तुमने कभी सुना है? न उसमें सत्य है, न कहीं नारायण है। मगर सुनता कौन है! किसको पड़ी है सुनने की! किसको लेना-देना है! झूठ का व्यापार काफी गरम है। झूठ चलना बड़ा आसान है।

असली चीज से नकली चीज अधिक चलती है।
प्यारे!
सिर पीट रहे हैं आसमान के तारे
उन्हें कोई पूछता नहीं
चमक रहे फिल्म के सितारे।
किस्मत के मारे चांद को
चांद-सी सूरत खलती है।
क्योंकि असली चीज से नकली अधिक चलती है।

रात-रात आंखें फोड़ीं
सारी गरमी के सीजन
दस दफे किया रिवीजन
फिर भी न हुए पास
टूट गई आस
जो मस्ती मारे साल भर
वे ही मार ले गए फर्स्ट डिवीजन
समझे प्रियजन!
विद्या के अध्ययन से नकल अधिक फलती है।

आत्मकथा होती सच्ची
व्यंगकथा झूठी
इसलिए आत्मकथा से ज्यादा व्यंग पढ़ा जाता। पहलवान रियाज करते रह जाते
नकली मूंछों वाले बन जाते दादा
नेताजी को वोटें कैसे मिलीं
राज है उसका झूठा वादा।
गाने को लोग भूल जाते, पर पैरोडी चलती है, झूठों के आगे सच्चे की दाल नहीं गलती है क्योंकि असली चीज से नकली अधिक चलती है।

असली फूल से ज्यादा कागज के फूल जीते हैं।
शराब से ज्यादा लोग काकटेल पीते हैं क्योंकि अर्धनारीश्वर को पूजने वाले
हम भारतवासी हैं।
समन्वयवादी हैं।
मिलावट के आदी हैं।
मेलजोल से रहो
कह गए हमारे दादा-दादी हैं
अपनी से ज्यादा "पराई" हमें जंचती है प्योर चीज से ज्यादा
मिली-जुली भली लगती है
दूध में कहां वह मजा
हमें तो चाय अच्छी लगती है
क्योंकि असली चीज से नकली अधिक चलती है।

डाक्टरों की सलाह भी सुन जाइए
बच्चों को असली दूध न पिलाइए
अगर लिखा होगा उनके भाग्य में
तो अमूल या लेक्टोजन मिल जाएगा बाजार में उसी को घर लेते आइए।
डिब्बों के दूध से बच्चों की हेल्थ बनती है केवल नासमझों के घर में आजकल गाय पलती है। क्योंकि असली चीज से नकली अधिक चलती है।

रोती है बुद्धिमानी, चालाकी हंसती है
मुस्कुराती बेईमानी, ईमानदारी फंसती है
दीये सभी चुक जाते, अंधियारी नहीं मिटती है
जिंदगी का अंत है, पर मौत नहीं मरती है
पैर तो थक जाते, बैसाखी नहीं थकती है
क्योंकि असली चीज से नकली अधिक चलती है।

धर्म ज्योति, वह जो नकली है, चलता रहा--स्वभावतः इसलिए चलता रहा कि नकली है। असली को अड़चन है। असली को हजार बाधाएं हैं। वह बिल्कुल स्वाभाविक है। जितनी पुरानी चीज हो, उतने समझ-बूझ कर, सोच-विचार कर ग्रहण करना। समझ लेना कि इतनी पुरानी है तो जरूर नकली होगी। इतनी देर चलती रही, इतनी भीड़ में चलती रही--असली हो कैसे सकती है?
सत्य सदा नया है, नितनूतन है। सत्य उतना ही नया है जैसे सुबह की ओस नई है, जैसे सुबह की सूरज की किरण नई है। झूठ तो पुराना, बहुत पुराना। लेकिन झूठ अपना खूब प्रचार कर लेता है। झूठ ही अपना प्रचार करता है। झूठ प्रचार पर जीता है। और प्रचार के करिश्मे हैं, विज्ञापन के अदभुत करिश्मे हैं। खूब जोर-शोर से प्रचार करो!

वही तो पंडित-पुजारी कर रहे हैं हजारों साल से। तुमको फिर खयाल भी नहीं आता कि हम यह क्या कर रहे हैं। पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ झुकाए खड़े हो! आदमी की बनाई मूर्ति, आदमी की सजाई मूर्ति--और तुम हाथ झुकाए खड़े हो! और जिंदा आदमी को हाथ जोड़ने में तुम्हें मुश्किल हो जाती है। पत्थर की मूर्ति भगवान बनी बैठी है और जिंदा आदमी में तुम्हें भगवान दिखाई नहीं पड़ता! कैसा गजब है! प्रचार ने कैसा तुम्हें अंधा किया है। कैसे आंखों पर चश्मे चढ़ा दिए--रंगीन चश्मे! जो चढ़ा दिया वही दिखाई पड़ने लगा।
नया हो तो संभावना भी है सत्य की। और ध्यान रखना, सत्य को चुनना हमेशा सूली को चुनना है। सत्य को चुनना हमेशा दुर्गम को चुनना है। सत्य को चुनना हमेशा खड़ग की धार पर चलना है। इसलिए थोड़े से ही साहसी चुन पाते हैं।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं डाक्टर हूं, लेकिन मेरी डाक्टरी चलती नहीं। क्या परमात्मा मुझसे नाराज है? आपका आशीष चाहिए!

डाक्टर शोभालाल! मुझे तो कुछ लगता नहीं आशीर्वाद देने में। मेरा क्या जाता? लेकिन फिर मरीजों का भी खयाल आता है। नहीं चलती तो कुछ राज होगा। डाक्टरी कोई हवा में तो चलाओगे नहीं। कोई पतंग तो नहीं है डाक्टरी, कि हवा में उड़ाओगे। मरीजों पर चलाओगे। मरीजों की तुम दुर्गति किए होओगे; नहीं तो चल गई होती।
परमात्मा क्यों नाराज होने लगा! परमात्मा तो तुम पर खुश ही होगा। तुम लोगों को परमात्मा के प्यारे बना देते होओगे। वह तो बहुत चाहता होगा कि शोभालाल की चले, खूब चले, शोभालाल भेजे और-और आदमी। मगर मरीज को भी तो हक है अपनी जान बचाने का कि नहीं? मरीज को भी आत्मरक्षा का जन्म सिद्ध अधिकार है या नहीं?
तुमको तो मैं आशीर्वाद दे दूं, तुम तो एक, और मरीज अनेक। तुम्हारा प्रश्न देख कर मैं सोच ही रहा था कि दे ही दूं आशीर्वाद। फिर मैंने सोचा मगर आशीर्वाद का मतलब क्या होगा! पता नहीं तुम कितने मरीजों को एकदम स्वर्गवासी बना दो। और बहुत दिन से अगर चली नहीं है तो तुम एकदम तैयार ही बैठे होओगे, अपनी छुरी-कांटे पर धार रख रहे होओगे, अपना साज-समान बिल्कुल तैयार किए बैठे होओगे, एकदम टूट पड़ोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन आपरेशन कराने गया था। घबड़ा रहा था। कोई भी घबड़ाता है। अपेंडिक्स का आपरेशन था, पेट कटेगा। पसीना-पसीना हुआ जा रहा था। यद्यपि आपरेशन थियेटर तो वातानुकूलित था, लेकिन पसीना चू रहा था। डाक्टर ने कहाः ऐसा क्यों घबड़ाते हो नसरुद्दीन?
नसरुद्दीन ने कहाः इसलिए घबड़ाता हूं कि यह मेरा पहला ही आपरेशन है। अरे, डाक्टर ने कहा, तू फिक्र मत कर। मैं घबड़ाता हूं? मेरा भी यह पहला ही आपरेशन है। जब मैं नहीं घबड़ा रहा, तू क्यों घबड़ा रहा है?
नसरुद्दीन उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहाः फिर हम चले। यह तो बहुत झंझट
हो गई। पहला ही आपरेशन है, तो तुम जरा किसी और पर अभ्यास करो। पहले पशु- पक्षियों पर अभ्यास करो, फिर आदमियों पर करना।
शोभालाल, तुम एकदम आदमियों पर अभ्यास करना चाहते हो, क्या विचार है? चलती नहीं तो कुछ कारण होगा। कारण खोजो। कहीं भूल-चूक होगी। लेकिन हमारे मुल्क में कारण-वारण खोजने की किसी को जरूरत नहीं। नहीं चलती तो इसका मतलब हैः किस्मत में खराबी है। अरे वाह! अरे दूसरों की किस्मत अच्छी है, यह कहो। तुम्हारी किस्मत में खराबी है, ऐसा कुछ नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर से गिर पड़ा। मैं उसे देखने गया। मैंने कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हारे गधे ने बड़े गजब का काम किया! बड़ा होशियार गधा है! मैंने सुना कि तुम तो गधे से गिर पड़े और गधा गया और डाक्टर को बुला लाया!
अरे, नसरुद्दीन बोला, क्या डाक्टर को बुला कर लाया--डाक्टर शोभालाल को बुला लाया! गधा ही है, इसको कोई और डाक्टर न मिला बस्ती में।
तुम पहले अभ्यास करो। जैसे नसरुद्दीन के गधे पर अभ्यास करो। और भी गधे मिल जाएंगे। पहले मुफ्त अभ्यास करो या कुछ पैसे देकर अभ्यास करो। और

अगर नहीं यह सब सुविधा हो तो तुम पंजाब चले जाओ और होशियारपुर में बस जाओ, क्योंकि मैंने यह कहानी सुनी है--
मुल्ला नसरुद्दीन अपने काम के सिलसिले में एक बार होशियारपुर गया। रात दस बजे गाड़ी होशियारपुर पहुंची। इस लंबे सफर में मुल्ला को पेट में जोर का दर्द हो गया। जाकर उसने स्टेशन मास्टर से पूछा कि क्या यहां सवारी का कोई इंतजाम हो सकता है? स्टेशन मास्टर बोलाः बड़े मियां, सवारी के नाम पर तो यहां बस तांगे-इक्के चलते हैं। मुल्ला किसी तरह स्टेशन से बाहर निकला, देखा सामने ही एक तांगा खड़ा हुआ था तथा घोड़ा रात के अंधेरे में ही सड़क पर डाली गई घास चर रहा था। उसने पास से जाते हुए व्यक्ति से पूछाः क्यों भाई, इस तांगे का ड्राइवर कहां है? वह गांव का व्यक्ति बोला कि भैया, यह ड्राइवर क्या होता है?
नसरुद्दीन बोलाः अरे हद कर दी मूर्खता की! जैसा सुना था वैसा ही पाया। अरे जो तांगा चलाए उसे ड्राइवर कहते हैं।
इस पर वह व्यक्ति प्रसन्न होकर बोलाः अच्छा-अच्छा, अब पता चला कि ड्राइवर किसे कहते हैं। तो वह देखो सामने ही रहा इस तांगे का ड्राइवर, जो तांगे में जुता घास चर रहा है। मुल्ला को ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों से बड़ा दुख हुआ। कुछ समय बाद तांगे वाले आया, उसने तांगे वाले से किसी तरह डाक्टर के यहां चलने को कहा। तांगे में जो दचके खाए, दर्द और बढ़ गया। रास्ते में मुल्ला ने देखा घर-घर दीये जल रहे हैं--कहीं पांच दीये जल रहे हैं तो कहीं दस, तो कहीं पूरी दीपावली। दीये ही दीये! थोड़ी देर बाद तांगा एक टूटे से घर के आगे जाकर रुका और तांगे वाले ने कहाः लीजिए बड़े मियां, सामने ही डाक्टर साहब का घर है।
मुल्ला ने जाकर दरवाजा खटखटाया। एक वृद्ध व्यक्ति ने लालटेन हाथ में लिए दरवाजा खोला। नसरुद्दीन को देख कर बोलाः आओ, मियां आओ, सुनाओ क्या तकलीफ है?
नसरुद्दीन बोलाः बड़े मियां, मैं बाहर से आया हूं और पेट में बड़े जोरों
का दर्द हो रहा है। दर्द तो वैसे ही जोर से हो रहा था, इस तुम्हारे होशियारपुर के तांगे में बैठ कर तो बिल्कुल प्राण निकले जा रहे हैं, आत्मा ही उड़ी जा रही है। जल्दी कोई दवा दीजिए, नहीं तो पिंजड़ा ही पड़ा रह जाएगा, पक्षी उड़ जाएगा।
बड़े मियां बोलेः चिंता मत करो, बरखुरदार। अभी लो, ऐसी दवा देता हूं कि मर्ज जड़ से ही खत्म हो जाए।
बड़े मियां दवा बनाने लगे और साथ ही दोनों की बातचीत भी होने लगी। नसरुद्दीन ने पूछा कि अच्छा यह तो बताओ बड़े मियां, कि ये घरों-घर दीये क्यों जल रहे है? बड़े मियां बोलेः बात यह है बरखुरदार कि जिस डाक्टर के हाथ से जितने मरीज मरते हैं वह अपने घर के सामने उतने ही दीये जलाता है। तो रास्ते में तुमने जो दीपावली देखी वह मरीजों के मरने के उत्सव में मनाते हैं हम लोग।
इतनी देर में दवा तैयार हो चुकी थी। मुल्ला ने दवा पीते हुए कहाः मगर बड़े मियां, हर घर के ऊपर कहीं पांच दीये, कहीं दस दीये, तो कहीं कतार ही कतार लगी है दीयों की, मगर आपके घर के ऊपर तो एक भी दीया नहीं जल रहा है! क्या बात है?
बड़े मियां खीसे निपोरते हुए बोलेः हें-हें-हें, जलेगा बरखुदार जलेगा। अरे परमात्मा ने चाहा तो आज ही जलेगा। उसी ने तो तुम्हें मेरे पास भेजा है! डाक्टर शोभालाल, अब पता नहीं तुम किस प्रकार के डाक्टर हो। होम्योपैथी के डाक्टर हो कि ऐलोपैथी के डाक्टर हो कि आयुर्वेदिक डाक्टर हो, कि बायो-केमिस्ट्री के डाक्टर हो कि नैचरोपैथी के डाक्टर हो। इस वक्त इतने डाक्टर हैं, मरीजों को मारने के लिए इतने लोग पीछे पड़े हैं! एक मरीज और हजार मारने वाले। जड़ से ही काट डालते हैं। और बीमारी हो या न हो, इलाज करने वाले एकदम पीछे पड़ जाते हैं। इलाज ही इलाज करने वाले चारों तरफ मौजूद हैं। पता नहीं तुम किस तरह के डाक्टर हो। और आशीर्वाद मांग रहे हो। और मैं ध्यान करता हूं तुम्हारे मरीजों का।

परमात्मा नाराज नहीं है, लेकिन कुछ सोचो, कहीं कुछ भूल तुम्हारी हो रही होगी। यह हमारी पुरानी आदत हो गई है, परंपरागत आदत हो गई है। हम अपनी भूल ही नहीं देखते। हम हमेशा भूल किसी और जगह खोजते हैं--किस्मत में, परमात्मा में, कर्मों में। अपने में नहीं, कहीं और टालते हैं दायित्व को। यह सोचने की प्रक्रिया गलत है। यह सोचने की प्रक्रिया अवैज्ञानिक है। तुम सोचो, ध्यान करो--क्या भूल-चूक हो रही है? और कहीं ऐसा तो नहीं कि जबरदस्ती डाक्टर बन गए। कई दफा यूं हो जाता है कि मां-बाप को डाक्टर बनाना है, सो वे बना देते हैं। जिसको दर्जी बनना था वह डाक्टर हो गया है। जिसको डाक्टर बनना था वह चमार है। जिसको चमार बनना था वह मिठाई बेच रहा है। जिसको मिठाई बेचना था वह कपड़े बना रहा है। सब गड़बड़ हो गया है। कोई किसी को सुविधा ही नहीं देता, मौका ही नहीं देता कि वह जो होना चाहे हो।
एक छोटे बच्चे से मैंने पूछा कि तू क्या बनना चाहता है? उसने कहाः मैं बड़ी उलझन में हूं। मेरे बाप मुझे डाक्टर बनाना चाहते हैं, मेरी मां मुझे इंजीनियर बनाना चाहती है। मेरे चाचा संगीतज्ञ हैं, वे मुझे संगीतज्ञ बनाना चाहते हैं। और मेरी चाची मेरे चाचा से परेशान है, उनको तलाक दे रही है। वह कहती है कि भूल कर संगीतज्ञ मत बनना। ये संगीतज्ञ बड़े चरित्रहीन होते हैं। यह लफंगों की तरह न मालूम कहां-कहां संबंध बना लेता है। इसलिए तो इसको तलाक दे रही हूं। तू संगीतज्ञ भर मत बनना। तू कुछ भी बन जा, मगर संगीतज्ञ नहीं।... सो मैं बड़ी उलझन में पड़ा हूं कि अब क्या बनूं क्या न बनूं! और मुझसे तो कोई पूछता ही नहीं कि तुझे क्या बनना है। सब थोप रहे हैं अपनी-अपनी।
करीब-करीब दुनिया में यह अस्तव्यस्तता है। और लोग थोप रहे हैं तुम पर
कि तुम्हें क्या बनना है। इसलिए तुम्हें ठीक से तय ही नहीं हो पाता कि तुम्हारे जीवन की अपनी स्वाभाविकता कहां खिलेगी, कहां फलेगी।
मैं चाहता हूं एक ऐसा जीवन, एक ऐसी व्यवस्था, जहां प्रत्येक बच्चे को धीरे-धीरे हम उसकी नियति की तरफ ले जाएं। उस बच्चे को समझें, नहीं अपनी आकांक्षाएं आरोपित करें। नहीं तो गड़बड़ होगी। जिसको लोहार बनना था, वह डाक्टर बन गया, तो गड़बड़ तो होने ही वाली है। जिसको दर्जी बनना था वह इंजीनियर बन गया, वह क्या खाक इंजीनियर बनेगा! जिसको चमार होना था वह शिक्षक हो गया। वह चमारी जारी रखेगा। शिक्षक के बहाने चमारी ही जारी रहेगी।
इस दुनिया में आज हालत ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति वहां है जहां उसे नहीं होना चाहिए। बहुत कम लोग वहां हैं जहां उन्हें होना चाहिए। इसलिए इतनी अस्तव्यस्तता है, इतनी अराजकता है। इसमें भगवान का कोई कसूर नहीं है। इसमें आशीर्वादों की कोई भूल-चूक नहीं है। हमें पुनर्विचार करना चाहिए।
तुम फिर से सोचो, शोभालाल। अगर तुम्हें लगता हो कि यह तुम्हारा रस नहीं है, इसमें तुम्हारा आनंद नहीं है, अभी भी छोड़ दो। अभी क्या बिगड़ा है? बढ़ई हो जाओ, दुकान खोल लो, नौकरी कर लो, बर्तन मलो, तंदूरी रोटी बनाओ--कुछ भी करो। मगर जिसमें तुम्हारा रस हो।
और एक बात ध्यान रखो कि सवाल यह नहीं है कि कौन ऊंचा काम कर रहा है; सवाल यह है कि जो भी जो कर रहा है, उसे परम कुशलता से कर रहा है या नहीं?
जब लिंकन राष्ट्रपति हुआ अमरीका का तो एक आदमी ने उसका अपमान करने के लिए--पहले ही दिन जब वह अपनी सभा में संसद की बोल रहा था--बीच में खड़ा हो गया और कहा कि एक बात न भूल जाना महाशय लिंकन, कि तुम्हारे पिता मेरे घर जूते सीते थे! लिंकन के बाप चमार थे। सन्नाटा हो गया संसद में कि यह क्या भद्दी बात, मगर अपमान करने के लिए कही गई थी। लेकिन लिंकन अपने किस्म का आदमी था। लिंकन ने कहाः अच्छी याद दिलाई। मैं अपने पिता का अनुग्रह मानता हूं। एक बात मैं जानता हूं कि उन जैसे जूते सीने वाला आदमी मैंने दूसरा नहीं देखा। मुझ जैसे प्रेसीडेंट तो बहुत हो गए और बहुत होंगे, मगर उन जैसा जूते सीने वाला बस उन जैसा ही था। उनकी जगह कोई भर नहीं सकता। और मैं यह पूछना चाहता हूं, उन्होंने तुम्हारे घर जूते सीए, क्या तुम्हें कोई शिकायत? क्या अभी भी उनके बनाए जूते तुम्हें काट रहे हैं, कोई तकलीफ?

तुम्हें आज क्यों याद आई? अब तो वे जिंदा भी नहीं हैं। लेकिन मैं धन्यभागी हूं कि मैं उस बाप का बेटा हूं, जिसने कभी गलत जूते नहीं सीए। और जिसके जूते एक बार सीए, वह सदा फिर उनके पास ही जूते सिलवाने आया। वे अदभुत चमार थे, वे कलाकार थे!
यही मेरी जीवन के संबंध में दृष्टि हैः न कोई काम बड़ा होता है, न कोई छोटा होता है। तुम जो करो वह श्रेष्ठता से करो, कुशलता से करो; उसमें कला हो, प्रतिभा हो। फिर तुम जो भी करो, बुहारी लगाओ, कोई हर्जा नहीं। कोई डाक्टर या इंजीनियर होना या राजनेता होने की जरूरत नहीं। राष्ट्रपति होने की जरूरत नहीं है। अगर जूते भी तुम सी सकते हो--बेजोड़, अद्वितीय--तो तुम्हारे जीवन में धन्यता होगी। तुम जीवन में तृप्त होओगे। जो व्यक्ति जो करने को पैदा हुआ है अगर वही कर पाए, तो उसके भीतर बड़ी कृतार्थता का अनुभव होता है।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
दूसरा प्रवचन

जीवित सदगुरु--जीवंत धर्म

पहला प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं--शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान उधार एवं बासा है और जीवन के लिए इसका कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन मुझे तो आपका साहित्य ही पढ़ कर संन्यास लेने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

प्रेम मूर्ति! शास्त्र-ज्ञान बासा है, उधार है--इसका अर्थ तुम समझे नहीं। शास्त्र-ज्ञान का जीवन के लिए कोई प्रयोजन नहीं है, यह तीर भी निशाने से थोड़ा चूक कर लगा। मगर हम नींद में हैं और नींद में अक्सर ऐसा ही होना स्वाभाविक है।
जब मैं कहता हूं शास्त्र-ज्ञान बासा है, तो उसका अर्थ है शास्त्र के ज्ञान को अपना ज्ञान मत समझ लेना; वह तुम्हारा नहीं है। बुद्ध का होगा, महावीर का होगा, कृष्ण का होगा, क्राइस्ट का होगा, मेरा होगा, किसी का भी होगा, मगर तुम्हारा नहीं है। और अहंकार की यह बड़ी सहज प्रक्रिया है कि जो अपना नहीं है, उसे अपना मान लेता है।
तुम इस संसार में कुछ भी लेकर नहीं आते, मगर कितनी चीजों को अपना मान लेते हो! हीरे-जवाहरात, तुम नहीं थे, तब भी यहां पड़े थे; तुम चले जाओगे, फिर भी पड़े रहेंगे। फिर भी तुम उन्हें अपना मान लेते हो। अपना ही नहीं, झगड़ने को, मरने-मारने को तैयार हो जाते हो। जीवन गंवाने को राजी हो जाते हो पत्थरों के लिए! जो अहंकार इतना मूढ़ है कि उस सबको अपना मान लेता हो, जिसमें कुछ भी अपना नहीं है... और ध्यान रहे, हीरे-जवाहरात तुम्हें नहीं पकड़ते; तुम्हीं उन्हें पकड़ते हो। तुम्हारे मर जाने पर हीरे-जवाहरातों की आंखों से कुछ आंसू न झरेंगे। हीरे-जवाहरात खो जाएंगे तो तुम रोओगे। कौन किसका मालिक था? तुम रोते हुए आदमी, तुम मालिक थे?
सूफी फकीर जुन्नैद एक गांव से गुजर रहा था। उसका यह ढंग था... सूफियों
के अपने ढंग होते हैं। उसके शिष्य उसके साथ थे। एक आदमी एक गाय को बांध कर कहीं ले जाता था। जुन्नैद ने कहाः भाई रुक, एक क्षण रुक। मेरे शिष्यों को कुछ समझ लेने दे। शिष्यों से कहाः घेर कर खड़े हो जाओ। एक प्रश्न पूछता हूं, जवाब दो।
सूफी जीवंत प्रश्न पूछना पसंद करते हैं और जीवंत जवाब चाहते हैं। यह आदमी तुम देखते हो, इसके हाथ में रस्सी है, गाय के गले में बंधी है। सब शिष्यों ने कहा कि देखते हैं, इसमें कुछ ऐसी क्या खूबी की बात है? इसमें क्या सीखने की बात है?
जुन्नैद ने कहाः मैं यह पूछता हूं, मालिक कौन है? गाय मालिक है या यह आदमी मालिक है? वह आदमी भी थोड़ा उत्सुक हो गया कि यह भी खूब बात रही। वह भी सुनने लगा गौर से कि क्या जवाब होता है। सारे शिष्यों ने कहा कि जाहिर है कि मालिक यह आदमी है, रस्सी इसके हाथ में है।

जुन्नैद ने अपने झोले में से कैंची निकाली और रस्सी काट दी। गाय भाग खड़ी हुई। वह आदमी गाय के पीछे भागा। जुन्नैद ने अपने शिष्यों से पूछाः अब क्या कहते हो? कौन किसके पीछे भाग रहा है? गाय आदमी के पीछे भाग रही है कि आदमी गाय के पीछे भाग रहा है? रस्सी ने तुम्हें धोखा दे दिया था, इसलिए मैंने रस्सी काट दी।
वह आदमी भी चिल्लायाः खूब आप भी फकीर हैं! अरे, मैं समझा कि प्रश्न-उत्तर चल रहा है। अब यह गाय भाग खड़ी हुई है, इसको कौन पकड़ेगा?
फकीर ने कहाः इतना काम तू कर ले। तेरी ही गाय है?
उसने कहाः मेरी नहीं तो किसकी है?
"तेरी है तो आ जाएगी। तू अपने घर जा।"
उसने कहाः तुम पागल हो और तुम्हारे शिष्य पागल हैं। वह भागा अपनी गाय
के पीछे कि गाय कहीं दूर न निकल जाए। कहां के फकीरों की बकवास में पड़ गया! मगर जुन्नैद जो कह रहा है, ठीक कह रहा है। वह यह कह रहा है कि रस्सी तो आदमी

के हाथ में है, मगर गला आदमी का बंधा है, गाय का नहीं बंधा है। गाय तो एकदम मुक्त हो गई और भागी। गाय तो भागना ही चाहती थी। गाय को कोई रस नहीं है इस आदमी में।
धन को, पद को, प्रतिष्ठा को, सबको तुम पकड़ते हो। ऐसे ही तुम ज्ञान को पकड़ते हो। और धन के तो दावेदार भी होते हैं, लेकिन ज्ञान में तो कोई अड़चन ही नहीं। गीता को कोई भी चाहे पढ़े, कुरान को कोई भी पढ़े। जिसकी मर्जी वह आयतें कंठस्थ कर ले। कोई प्रतिस्पर्धा भी नहीं है। और जितनी आयतें तुम्हें कंठस्थ हो गईं उतनी तुम्हारी हो गईं! काश, बात इतनी आसान होती! गीता कंठस्थ हो गई तो गीता तुम्हारी हो गई! तब तो तुम कृष्ण हो जाते! फिर कृष्ण में और तुममें भेद ही क्या रहा? इतनी ही तो कृष्ण की खूबी थी कि गीता बोले; अब तो तुम भी बोलने लगे। बस अर्जुन की कमी है, सो कहीं भी मिल जाएगा। जगह-जगह अर्जुन तैयार हैं, जिज्ञासु मौजूद हैं। और न कहीं कोई मिले तो घर में ही पत्नी है, बच्चे हैं, किसी की भी गर्दन पकड़ लेना। और किसी के भी कंठ में पिला देना गीता।
लेकिन गीता कंठस्थ हो जाए, इससे तुम कृष्ण नहीं होते। मेरा यही अर्थ
है जब मैं कहता हूं कि शास्त्र-ज्ञान बासा है। बासे का अर्थ, यह किसी और का है। अब कृष्ण ने पांच हजार साल पहले कहा, बासा कैसे नहीं होगा? ताजा कैसे हो सकता है? मैं अभी कह रहा हूं, मगर तुम तक पहुंचते-पहुंचते बासा हो जाएगा। समय बीत गया कुछ क्षण, बासा तो हो ही जाएगा। तत्क्षण तो तुम नहीं सुन सकते हो। मेरे कहने और तुम्हारे सुनने में समय का अंतराल होगा, व्यवधान होगा। उतना तो अतीत हो गया। उतनी देर तो बीत गई। उतना तो बासा हो गया। मेरा बोला हुआ भी, जो तुम अभी सुन रहे हो, सुनते-सुनते बासा हो जाता है; तुम तक पहुंचते-पहुंचते बासा हो जाता है। उधार तो होगा ही। तुम ठीक मेरे जैसी बातें कहने लगोगे। मगर मेरे भीतर वे बातें किसी अनुभव से जनम रही हैं और तुम्हारे भीतर उनकी बातों के लिए कोई स्रोत नहीं होगा।
तुमने हौज देखी और कुआं देखा? कुएं और हौज में जो फर्क है वही बासे ज्ञान में और अपने ज्ञान में फर्क होता है। हौज में भी पानी भरा होता है, ठीक वैसा ही जैसा कुएं में, लेकिन हौज में झरने नहीं होते। हौज में किसी कुएं का ही पानी भरा होता है, बासा होता है। हौज में से पानी उलीचोगे तो कम हो जाएगा। फिर हौज अपने आप उसे भर नहीं सकती। लेकिन कुएं में से पानी उलीचे चले जाओ, और नये झरने उस पानी को भरते चले जाते हैं। हौज का कोई संबंध नहीं है सागरों से, वह अपने में बंद है--क्षुद्र उसकी दीवालों में आबद्ध। कुआं दिखता छोटा है। कुआं तो सिर्फ मुंह है सागर का। दूर-दूर सागर तक उसके झरने फैले हैं--पृथ्वी के अंतरगर्भ में।
और एक मजे की बात समझना। हौज का पानी उलीचोगे, कम हो जाएगा, चुक जाएगा। कुएं का पानी नहीं उलीचोगे तो सड़ जाएगा। उलीचोगे तो ताजा रहेगा, तो बढ़ता रहेगा, तो नये झरने फूटते रहेंगे, नई जलधार आती रहेगी।
बुद्ध, कृष्ण, महावीर कुएं हैं, पंडित हौज। मैं चाहता हूं तुम पंडित न
बन जाओ। प्रेम मूर्ति, इसलिए कहता हूंः शास्त्र-ज्ञान बासा है, उधार है। अब पांच हजार साल से जो हौज भरी है, बासा ही नहीं, बिल्कुल सड़ गया होगा, कीड़े पड़ गए होंगे उसमें। जहर हो गया होगा। पीना मत। भूल-चूक से भी पी मत लेना। उससे प्यासे रहना बेहतर है।
इसलिए कहता हूं कि जीवन के लिए कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि तुम इतने बेईमान हो कि तुम्हें जरा भी कोई आसरा मिल जाए, सहारा मिल जाए, बहाना मिल जाए, तुम उसी बहाने को लेकर और गटक जाओगे। तुमको जरा सा भी मैं मौका दे दूं, तो तुमको मौका मैं नहीं देना चाहता। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैंने कहा गीता मत पढ़ना। और यह भी अर्थ नहीं है कि मैंने कहा कि गीता मत समझना। पढ़ो भी, समझो भी, मगर एक बात कभी मत भूलना कि जो ज्ञान अपना नहीं है, वह काम नहीं आएगा। उस ज्ञान का कोई भी तुम्हारे जीवन में क्रांति लाने में उपयोग नहीं हो सकता है।
हां, अगर किसी सदगुरु की वाणी तुम सुनोगे तो वाणी से इतना फायदा हो सकता है--वाणी से, स्मरण रखना; वह भी शास्त्र से नहीं। अगर सदगुरु जीवित हो तो इतना फायदा हो सकता है कि उसकी वाणी तुम्हें सदगुरु के पास ले आए; उसकी

वाणी तुम्हें खींच लाए, प्यास जगा दे, तुम्हारे भीतर एक अभीप्सा पैदा कर दे।
तुम कहते होः आपका साहित्य पढ़ कर ही तो संन्यास लेने की प्रेरणा प्राप्त हुई।
मैं जिंदा था तो तुमने संन्यास ले लिया। मैं जिंदा नहीं होता तो मेरे साहित्य को तुम सिर पर ढोते रहते या और शास्त्र ढोने वाले, जो तुमसे भी ज्यादा ढेर अपने सिर पर लगाए होते पहाड़ का, उनसे तुम संन्यास ले लेते। वे भी उधार, तुम भी उधार।
जीवित गुरु बोलता है--सिर्फ इसीलिए कि बोलना तो सिर्फ निमंत्रण है।
यह तो प्रेम-पाती है। कृष्ण की गीता पढ़ कर क्या करोगे तुम? कृष्ण को कहां खोजोगे? मंदिरों में कृष्ण की मूर्तियां हैं पत्थर की। कृष्ण की गीता में बहुत रस भी आ गया, तो उन मूर्तियों के सामने जाकर हाथ जोड़ कर बैठ जाओगे। वे मूर्तियां हंस सकती होतीं तो तुम्हारी मूढ़ता पर हंसतीं। मगर वे हंस भी नहीं सकतीं। वे सिर्फ पत्थर की हैं। उनमें कोई जीवन नहीं है। कृष्ण तो कब के विदा हो चुके। अर्जुन को लाभ हो सका होगा। सामना, सदगुरु से सामना सत्संग है। आमना-सामना होना चाहिए।
और यह खतरा है पुराने ज्ञान का कि पुराना ज्ञान तुम्हें नये सदगुरुओं
के पास जाने से रोकता है। नये गुरु की बात तुम्हें जंचते-जंचते ही इतनी देर हो जाती है कि तब तक गुरु जा चुका होता है जब तक तुम्हें बात जंचती है। जब तक तुम्हें बात जंचती है तब तक उस बात का जो मालिक था, वह मौजूद नहीं रहा। फिर पंडितों के हाथ में तुम पड़ जाओगे।
मैंने सुना है, शैतान के पास उसका एक शिष्य भागा हुआ पहुंचा और उसने कहाः कुछ जल्दी करें, एक आदमी को सत्य मिल गया है। और खतरा है, हमारे पूरे धंधे को खतरा है। अगर उसने सत्य पा लिया है और रास्ता बता दिया है और भी लोग सत्य पा लेंगे, तो हमारा क्या होगा?
शैतान ने कहाः तू फिक्र मत कर। तू अभी नया-नया है, सिक्खड़ है। कोई चिंता मत कर। पा लेने दे उसको सत्य। हमने अपने आदमी छोड़ रखे हैं।
शैतान के शिष्य ने कहाः मैं तो वहां गया, वहां कोई अपने आदमी नहीं दिखाई पड़े।
तो शैतान ने कहाः तू अभी नहीं पहचानेगा। तू अभी बिल्कुल नया है। वे जो पंडित वहां बैठे थे तिलक इत्यादि लगाए हुए, वे अपने आदमी हैं। जब तक उसकी बात लोगों तक पहुंचेगी, पहले तो वे पंडित उसकी बातों को पहुंचने नहीं देंगे, अगर पहुंचने भी दिया तो तोड़-मरोड़ कर देंगे, उसमें अपना कूड़ा-कर्कट मिला देंगे।
मैं अमृतसर जाता था, तो एक गुरु-ग्रंथ साहब को जानने वाले एक ज्ञानी
जी को मेरे मित्र ले आते थे। वे कहते थेः ज्ञानी जी आपके बड़े भक्त हैं! आपकी बड़ी सेवा में लगे रहते हैं।
क्या सेवा करते हैं?
कहाः इनकी सेवा यह है कि आप जो भी बोलते हैं, ये गुरु-ग्रंथ साहब में
से निकाल कर बता देते हैं कि गुरु-ग्रंथ साहब में यह है। और सिक्खों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है, सो सिक्ख भी आपको मानने लगे।
मैंने कहाः सिक्ख मुझे नहीं मान रहे हैं। वे तो गुरु-ग्रंथ साहब को ही मान रहे हैं। और यह आदमी जोड़-तोड़ कर रहा है। यह मेरे साथ भी धोखा कर रहा है और गुरु-ग्रंथ साहब के साथ भी धोखा कर रहा है। चूंकि गुरु-ग्रंथ साहब में और मुझमें पांच सौ साल का फासला है। बात एक हो कैसे सकती है? गुरु-ग्रंथ साहब का अपना कहने का ढंग था। वह जमाना गया। वह बात गई। वह हवा न रही। वह मौसम न रहा। लोग बदल गए। परिस्थितियां बदल गईं। जरूरतें बदल गईं। यह आदमी सिक्खों को भरमा रहा है और यह तुमको भी भरमा रहा है। तुम मुझे प्रेम करते हो। यह दोहरे काम कर रहा है। तुम मुझे प्रेम करते हो, तुम सोचते हो कि यह भला आदमी है क्योंकि मेरी बातें सिक्खों को समझा रहा है। और सिक्ख समझते हैं कि यह भला आदमी है, क्योंकि गुरु-ग्रंथ साहब की बातें मेरे भक्तों को समझा रहा है। और यह आदमी सिर्फ पंडित है। यह शैतान का शिष्य है। इसको न मुझसे मतलब, न गुरु-ग्रंथ साहब से मतलब है। इसको दोनों तरफ से जो आदर मिल

रहा है, सम्मान मिल रहा है, जो अहंकार की तृप्ति हो रही है... यह वही काम कर रहा है।
वे ज्ञानी जी तो एकदम नाराज हो गए, एकदम उठ कर खड़े हो गए। मैंने कहाः
इस बात को समझाओ अब गुरु-ग्रंथ साहब में, कहीं है जो मैंने कही है?
फिर उनका पता नहीं चला। फिर मैं जब भी जाता, पूछताः ज्ञानी जी कहां हैं?
उन्होंने कहाः वे तब से आपके दुश्मन हो गए। अब वे यह सिद्ध करते हैं
कि आप जो भी कहते हैं वह गुरु-ग्रंथ साहब के खिलाफ है।
मैंने कहाः देखा! यही आदमी सिद्ध करता था कि मैं जो कहता हूं वह गुरु- ग्रंथ साहब के पक्ष में है। अब यही आदमी सिद्ध कर रहा है कि जो मैं कहता हूं वह गुरु-ग्रंथ साहब के विपक्ष में है। इसी आदमी ने दोनों काम कर लिए हैं।
पंडित तो वेश्याओं जैसे होते हैं। उनका कोई भाव नहीं होता, भक्ति नहीं होती। उन्हें तो जहां चार पैसे मिल जाएं, वे उसी की सेवा में नियुक्त हो जाते हैं। जहां उनके अहंकार को आदर मिल जाए, उसी की सेवा में नियुक्त हो जाते हैं। चूंकि मैंने इनकी पीठ नहीं थपथपाई, अगर मैं भी कह देता कि वाह-वाह, बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, तो अभी उन्होंने काम जारी रखा होता। तुम भी उनको भोज देते थे। तुम भी उनको दुशाला ओढ़ाते थे और सिक्ख भी उनको दुशाला ओढ़ाते थे। अब तुमने उनका सम्मान बंद कर दिया। अब वे सिक्खों को भड़काने में लगे हैं। अब वे उपद्रव करवाने में लगे हैं।
वे मेरी सभाओं में उपद्रव करवाने लगे। वे सिक्खों को ले आते थे-- शोरगुल मचाने को, पत्थर फिंकवाने को। मेरी एक सभा चल रही थी, उसके पास में ही एक छोटा सा गुरुद्वारा था, उसमें उन्होंने जपु जी का अखंड पाठ शुरू करवा दिया--माइक लगा कर, ताकि मैं बोल न सकूं। एक दस-पंद्र्रह सिक्ख जपु जी का पाठ करने लगे। अब दस-पंद्रह सिक्ख पास में ही माइक लगा कर चिल्ला रहे हों... एक तो सिक्ख और फिर माइक! तो जो मुझे सुनने आए थे, कोई दस हजार लोग इकट्ठे थे, मैंने कहाः तुम ऐसा करो, अब यह अच्छा मौका छोड़ो मत। तुम सब आंख बंद करके ध्यानपूर्वक जपु जी को सुनो। साक्षीभाव से। अब इसका ध्यान के लिए उपयोग कर लेना चाहिए। बेचारे इतनी मेहनत कर रहे हैं! और ज्ञानी जी ने इतना इंतजाम किया है तो हम इसका लाभ ले लें।
सो दस हजार लोग बिल्कुल चुप होकर बैठ गए। थोड़ी देर तो जपुजी का पाठ चला, शोरगुल रहा, फिर धीरे-धीरे वह ठंडा पड़ने लगा जोश कि मामला क्या है। एकाध आदमी उनमें से आकर देख गया कि वे तो दस हजार आदमी बैठे चुपचाप आंख बंद किए सुन रहे हैं। तो उनको लगा, हम तो बुद्धू बन रहे हैं! वे तो जपु जी वगैरह बंद करके, माइक-वाइक बंद करके भाग गए। कोई पंद्र्रह मिनट--। तो मैंने कहा कि अब अपन अपना काम शुरू करें। अच्छा ही हुआ, शुभ आरंभ हो गया।...
(... इसी बीच एक व्यक्ति खड़ा होकर गुस्से में बोलाः भगवान रजनीश, आप हमारे धर्म के खिलाफ काम कर रहे हैं, हम नहीं सहन करेंगे। ऐसा कहते हुए भगवान की ओर छुरा फेंका। सौभाग्य से छुरा किसी को न लगा। सभा में एक घना सन्नाटा छा गया। दो-तीन संन्यासी उस व्यक्ति को प्रेमपूर्वक सम्हाल कर बुद्ध-कक्ष से बाहर ले गए। ओशो की अमृत-वाणी झरती रहीः बैठ जाएं... अपनी जगह बैठ जाएं... अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं। फिकर न करें।... उन्हीं शैतान के शिष्यों में से कोई आ गया होगा। कोई चिंता न लें।)
बासा ज्ञान बासा ही होगा। बासे ज्ञान के परिणाम दुर्गंध ही हो सकते हैं। ऐसी ही दुर्गंध पैदा होगी बासे ज्ञान से, कुछ और होने का उपाय नहीं है।
मैं चाहता हूं तुम्हारे भीतर ज्ञान की ऊर्जा जगे। तुम्हारे भीतर अपना स्वयं का साक्षात पैदा हो। इतना लाभ जरूर हो सकता है साहित्य से। मगर उस साहित्य से लाभ हो सकता है, जो सदगुरु जीवित हो। सदगुरु जीवित हो तो उसकी वाणी तुम्हें ले जा सकती है खींच कर। उसकी वाणी किरणों की तरह, सुगंध की तरह तुम्हें घेर लेगी।
वही, प्रेम मूर्ति, तुम्हें यहां ले आई, तुम संन्यस्त बने। लेकिन इससे तुम यह मत समझना कि इससे सिद्ध हुआ कि शास्त्र-ज्ञान की कोई उपादेयता है।

यह शास्त्र-ज्ञान की तुम उपादेयता देखते हो! अब इस बेचारे को कुछ भी पता नहीं कि यह क्या कर रहा है। यह मूर्च्छित है। इसे होश नहीं। यह सोच रहा है कि धर्म की रक्षा कर रहा है। धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा या तुम धर्म की रक्षा करते हो? यह सोच रहा है--हमारा धर्म! जैसे कि धर्म भी किसी की बपौती होता है! धर्म न तो मेरा होता है, न तुम्हारा होता है। धर्म तो वह है जो हम सबको सम्हाले हुए है। धर्म तो वह है जो हमारी श्वास है, हमारा प्राण है, हमारा आधार है। वह किसका हो सकता है? वह किसी का भी नहीं हो सकता। उसका कोई दावेदार नहीं है।
इस तरह के नासमझों और पागलों का मैं कोई बीस वर्ष तक देश भर में दर्शन करता रहा। फिर इनसे मैं थक गया। फिर मैंने देखा निष्प्रयोजन इनके साथ सिर पचाना है, कोई इसमें अर्थ नहीं है। इनके जीवन में कोई क्रांति हो नहीं सकती। ये सदियों का सड़ा-गला, इतना बासा, कूड़ा-करकट ढो रहे हैं कि तुम इन्हें हीरे देना भी चाहो तो इनकी समझ में नहीं आते, इनकी परख में नहीं बैठते। इनकी आंखें ही अंधी हो गई हैं। ये अंधेरे के ही आदी हो गए हैं। इन्हें अंधेरा ही रुचता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं एक बात से सदा भयभीत रहता हूं कि लोग कहीं मेरे संबंध में कुछ बुरा न सोच लें। इसलिए आपका संन्यास लेने से भी चूक रहा हूं। क्या करूं?

नरेश सिंह! यह अधिकतर लोगों की मनोदशा है, तुम्हारी कुछ विशिष्ट बात नहीं। अधिकतर लोग ऐसे ही जीते हैं--औरों से भयभीत, कि कोई दूसरा हमारे संबंध में बुरा न सोच ले। तुम जिनसे डर रहे हो वे तुमसे डर रहे हैं। यह बहुत अचंभे की दुनिया है। तुम उनसे भयभीत हो, वे तुमसे भयभीत हैं। भय के कारण तुम उनके अनुसार चल रहे हो, भय के कारण वे तुम्हारे अनुसार चल रहे हैं। न तुम जी रहे हो स्वभावतः, न वे जी रहे हैं स्वभावतः न तुम अपने को जीने की स्वतंत्रता दे रहे हो, न उनको जीने की स्वतंत्रता दे रहे हो।
और स्वभावतः जब तुम दूसरों से भयभीत रहोगे तो तुम दूसरों को भयभीत करोगे भी, क्योंकि तुम बदला चुकाओगे। तुम बदला लोगे। तुम्हारे भीतर प्रतिशोध की अग्नि जलेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन एक मरघट के पास से गुजर रहा था। सांझ का धुंधलका था
और उसने देखा, कुछ लोग चले आ रहे हैं, बैंड-बाजा है और एक आदमी घोड़े पर सवार है, बंदूकें चलाई जा रही हैं। वह तो समझा कि अरे (... शेखचिल्ली तो है ही)... कोई दुश्मन ने हमला बोल दिया, कहां छिपूं! कहां छिप जाऊं! कहां बच जाऊं! मरघट की दीवाल छलांग लगा कर कब्रिस्तान में उतर गया। वहां एक ताजी कब्र खुदी थी। लोग कब्र खोदकर मुर्दे को लेने गए थे। सोचा उसने इसी में लेट जाऊं। तो वह उसी में लेट गया।
वे कुछ दुश्मन नहीं थे--बरात आ रही थी। और बरात में बंदूकें चलायी जा रही थी स्वागत में। दूल्हा कटार इत्यादि बांध कर घोड़े पर बैठा हुआ था। बराती जा रहे थे। बैंड-बाजे बज रहे थे। उन लोगों ने देखा कि एक आदमी दीवाल के पास खड़ा था, एकदम से दीवाल से छलांग लगाई, कब्रिस्तान के भीतर चला गया-- कोई उपद्रवी न हो, अंदर से कुछ गोला वगैरह फेंक दे, कोई दुश्मन न हो! सो बैंड-बाजे रुक गए। बैंड-बाजे रुके तो मुल्ला नसरुद्दीन की तो सांस ही रुक गई। उसने कहा--मारे गए, दिखता है देख लिया इन लोगों ने! अब तो भागने की भी जगह नहीं है। सोचा यूं करो, आंखें बंद कर लो और सांस रोक कर पड़ रहो। अब मुर्दों को तो कोई मारता ही नहीं। देखेंगे मुर्दा है, मरघट में पड़े हैं, वैसे ही लाश मेरी पड़ी है, छोड़ कर चले जाएंगे।
बराती आकर रुके दीवाल के पास। बड़े घबड़ाए हुए। आहिस्ता से दीवाल पर चढ़े, चारों तरफ देखा, यह आदमी दिखाई पड़ा धुंधलके में। ताजी खुदी कब्र में लेटा है। मुर्दे कहीं ऐसे लेटे होते हैं! मुर्दे तो ढंके होते हैं। और कितनी ही सांस रोके हो, जिंदा आदमी जिंदा ही आदमी लगता है। वे और भी घबड़ाए कि यह आदमी है कोई शैतान, कोई हरकत करने की पक्की इसने कर रखी है।

मुल्ला ने भी धीरे से एक आंख खोल कर देखी कि कई लोग दीवाल से झांक रहे हैं। उसने कहा कि मैंने बिल्कुल ठीक सोचा था कि दुश्मन आ गए। अब मारे गए! वह तो परमात्मा का स्मरण करने लगा कि हे प्रभु, बस अब आखिरी समय है, मेरी पत्नी का खयाल रखना, बच्चों का खयाल रखना, बड़े लड़के की शादी करवा देना, लड़की की शादी करवा देना, ऐसा कर देना, वैसा... जो भी उसको कहना था परमात्मा से, आखिरी वसीयतनामा परमात्मा के नाम करने लगा। अब और तो कोई उपाय न था। लोग उतरे दीवाल से आहिस्ता-आहिस्ता, कब्र को जाकर घेर लिया। बंदूकें
जो चला रहे थे, उन्हीं के हुद्दे से इसको हिलाया कि जिंदा है कि मुर्दा। अब कोई बंदूक के हुद्दे से हिलाए तो सांस निकल गई उसकी, रोके कब तक रोके रहेगा। एकदम से सांस निकली तो वे लोग भी चौंक गए। आखिर उन्होंने कहाः तुम यहां क्या कर रहे हो?
मुल्ला ने कहा, अब जो होगा होगा। मुल्ला ने कहा कि मैं पूछना चाहता हूं तुम यहां क्या कर रहे हो?
उन्होंने कहाः तुम पूछने वाले कौन?
मुल्ला ने कहाः तुम पूछने वाले कौन?
उन्होंने पूछा कि भाई तू आदमी कैसा है, यहां क्यों मरघट में लेटा हुआ है? तब तक मुल्ला को भी समझ में आया कि कुछ भूल हो रही है। ये तो कुछ बराती से दिखते हैं। पास से गौर से देखा, दूल्हा भी खड़ा है मोर मुकुट बांधे हुए और कोई दुश्मन नहीं दिखाई पड़ते। सजे-बजे लोग, इत्र-फुलेल लगाए हुए। मुल्ला ने कहाः तुम मुझसे पूछ रहे हो मैं यहां क्यों लेटा हुआ हूं? अरे तुम्हारे कारण। तुम यहां क्या खड़े हुए हो?
उन्होंने कहाः यह भी खूब रही! तुम्हारे कारण।
मुल्ला उठ कर बैठ गया। उसने कहा कि सब नासमझी है। मैं तुम्हारी वजह से यहां लेटा हूं इस डर से कि दुश्मन आ गएः तुम इस डर से यहां आकर खड़े हो गए हो कि कोई दुश्मन यहां छिपा हुआ है। तुम अपने रास्ते लगो, मैं अपने घर जाऊं। और हे परमात्मा, मैंने तुमसे जो वसीयत की, वापस लेता हूं। कोई खयाल न करना। जो बात हो गई गलती में, हो गई।
तुम कहते हो नरेश सिंह कि मैं एक बात से सदा भयभीत रहता हूं कि लोग कहीं मेरे संबंध में कुछ बुरा न सोच लें! क्यों भयभीत हो? बुरा ही सोच लेंगे तो क्या हर्जा हो जाएगा? और यूं भी क्या तुम सोचते हो कि भला सोचते होंगे? लोग एक-दूसरे की पीठ के पीछे जो कहते हैं, अगर मुंह के सामने कहें तो दुनिया में दो दोस्त भी न बचें।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सारे लोग चौबीस घंटे सत्य-सत्य बातें
कह दें, जो एक दूसरे के संबंध में सोचते हैं, बिल्कुल सत्य सत्य कह दें, निपट, बिना लाग-लगाव के, बिना मिलावट के--तो दुनिया में एक दोस्ती भी न बचे; सारी दोस्तियां खत्म हो जाएं, सारे पति-पत्नी तलाक दे दें। अगर पति सच्चा- सच्चा कह दे पत्नी से, अगर पत्नी सच्ची-सच्ची बात कहे दे पति से, अगर बच्चे मां-बाप से सच्ची-सच्ची बात कह दें और मां-बाप बच्चों से सच्ची-सच्ची बात कह दें। तो सारे परिवार टूट जाएं। मगर कोई किसी से सच्ची बात कहता नहीं। फ्रेड्रिक नीत्शे कहता थाः मत लोगों को सत्य की बातें कहो, अन्यथा उनकी जिंदगी टूट जाएगी। उनको झूठ में जीने दो। वे झूठ में ही रगे-पगे हैं। झूठ ही उनका आसरा है, झूठ ही उनका सहारा है। झूठ ही उनकी जिंदगी है। झूठ को मत छीनो उनसे, अन्यथा वे मर जाएंगे।
वह बात ठीक ही कह रहा था एक अर्थों में। झूठ को छीनना बड़ा कठिन पड़ जाता
है लोगों को। वही तो उनका प्राण बन गया है।
तुम्हें क्या भय है? और लोग कोई तुम सोचते हो कि तुम्हारे संबंध में पीछे अच्छी बातें सोचते होंगे? जैसे वे दूसरों की तुमसे बुराई करते हैं, दूसरों से तुम्हारी बुराई करते होंगे। तुम जैसे दूसरों से उनकी बुराई करते हो... निंदा में कितना रस जगह-जगह लोग लेते हैं! पता नहीं जिन्होंने रसों का वर्णन किया है, उन्होंने निंदा-रस को क्यों नहीं गिना है! बाकी सब रस तो फीके मालूम पड़ते हैं। बाकी सब रसों में तो कभी कोई कविता वगैरह करता है। वीर-रस इत्यादि में कोई कभी कविता वगैरह करता है। मगर निंदा-रस में तो

प्रत्येक व्यक्ति निपुण है। आदमी ही खोजना मुश्किल है जो निंदा न करता हो।
मगर तुम्हें भय क्यों लगता है? तुम अपने भीतर इस बात का निरीक्षण करो।
भय लगने का एक ही कारण हो सकता हैः तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। तुम लोगों की ही मान्यताओं पर अपना परिचय बनाए हुए हो। लोग जैसा कहते हैं, वही तुम मानते हो। लोग कहते हैं सुंदर, तो तुम सुंदर मानते हो। लोग कहते हैं बुद्धिमान, तो तुम अपने को बुद्धिमान मानते हो। इससे डर लगता है। लोगों की ही मान्यताओं पर तो तुम्हारा सारा अस्तित्व खड़ा है। अगर उन्होंने खींच ली एक-एक ईंट अपनी मान्यता की, अगर उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि तुम सुंदर नहीं हो, तो फिर क्या होगा? तुम्हें तो अपने सौंदर्य का कोई पता नहीं है। और संन्यास इसी बात की प्रक्रिया का नाम है कि तुम्हें अपने सौंदर्य
का स्वयं अनुभव हो सके, ताकि तुम दूसरों पर निर्भर न रह जाओ। तुम्हें अपनी बुद्धिमत्ता का स्वयं अनुभव हो सके, ताकि दूसरों पर निर्भर न रह जाओ। फिर दूसरे क्या कहते हैं कहने दो, क्या बनता-बिगड़ता है? दूसरों से क्या डर है? डर है तो इस कारण कि हमने दूसरों के ही आधार पर अपने जीवन की आधारशिला रख ली है। अपने जीवन का शिलान्यास करवा लिया है दूसरों से। तो भयभीत हैं, कहीं वे अपनी ईंटें न ले जाएं, नहीं तो हमारा भवन गिर जाएगा, हमारे मंदिर का क्या होगा?
और संन्यास का इतना ही अर्थ है, मेरे संन्यास का तो निश्चित इतना ही अर्थ है कि मैं चाहता हूं कि तुम अपने जीवन के मंदिर को स्वयं बनाओ, ताकि किसी पर निर्भर नहीं होगा, भय नहीं होगा, कोई चिंता नहीं होगी, कोई पीड़ा नहीं होगी। फिर लोग क्या कहते हैं, क्या फर्क पड़ेगा? मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता लोग मेरे संबंध में क्या कहते हैं। जितनी गालियां मुझे पड़ती हैं, शायद ही किसी आदमी को इस समय पृथ्वी पर पड़ती होंगी। मगर क्या फर्क पड़ता है?
तो एक तो इस कारण तुम भयभीत हो। और दूसरे इस कारण तुम भयभीत होते हो कि तुम कुछ काम कर रहे हो जो तुम खुद ही समझते हो कि गलत है। मगर छिपा कर कर रहे हो! मगर कितना ही छिपाओ, आखिर इस जिंदगी में लाख छिपाओ तो भी किसी न किसी को तो पता चल जाएगा। अकेले तो तुम कोई भी काम नहीं कर सकते, निपट एकांत में तो कोई भी काम नहीं कर सकते। अगर तुम्हारा पड़ोसी की पत्नी से प्रेम हो गया है तो कम से कम पड़ोसी की पत्नी को तो पता है। और आज नहीं कल, पड़ोसी को भी पता चल जाएगा। और आज नहीं कल तुम्हारी पत्नी को भी पता चल जाएगा। पत्नियों से छिपाना बहुत मुश्किल मामला है। क्या छिपाओगे पत्नियों से? कुछ भी छिपाना मुश्किल है। वे तुम्हारा रोआं-रोआं पहचानती हैं। अगर वे तुमको प्रसन्न देखेंगी तो भी समझ जाएंगी कि कुछ गड़बड़ है। और कोई न कोई देख लेगा कभी, फिर क्या करोगे?
मैं छोटा था तो मुझे कुओं में उतर कर नहाने का बहुत शौक था। अब कुआं कोई नहाने की जगह नहीं है। और किसी के कुएं में नहाओगे तो वह नाराज होगा ही क्योंकि कुआं पानी पीने के लिए है, नहाने के लिए नहीं है। और मुझे इसमें मजा आता था कि कुएं में कूद पड़ना। कबीर पंथियों का एक आश्रम था, मेरे मकान से पीछे ही। उनका बढ़िया कुआं था और उनका शानदार बगीचा था। उस कुएं में मुझे खास रस था। वह गहरा भी काफी था, गांव के बाहर भी था। वहां कोई जाता-आता भी नहीं था; केवल जो उस मठ के महंत थे--साहबदास, वे वहां रहते थे, एक दो माली वहां काम करते थे। बड़ा उनका बगीचा था, वे माली भी यहां-वहां काम में लगे रहते थे। एकाध-दो और नौकर-चाकर थे। कुछ ज्यादा वहां भीड़-भाड़ नहीं होती थी। कुआं गहरा भी बहुत था, पानी भी बड़ा निर्मल था। और पानी भी खूब गहरा था। फिर उसमें एक और सुविधा थी कि उसमें जंजीर लगी हुई थी। वह कुएं की सफाई करने के लिए आदमियों को उतरने के लिए थी। तो चढ़ने की उसमें सुविधा थी। कूद गए, फिर चढ़ने की भी सुविधा थी। यह मेरा नियमित काम था कि जब भी मौका देखा कि वहां कोई नहीं है, जाकर उसमें कूद जाना। मगर यह बात कब तक छिपती! एक तो आवाज होती कूदने से कुएं में। एक दिन साहब दास आ गए, उन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं कुएं में अंदर ही था। वे भी एक पहुंचे हुए पुरुष थे। उन्होंने देखा यह अच्छा मौका है। मुझे ऐसे फांस भी नहीं पाते थे।

उन्होंने कहाः आज तुम अच्छे फंसे! उन्होंने जंजीर खींच ली बाहर, कि मैं तुम्हारे पिता को बुलवाता हूं। पिता के मेरे दोस्त थे वे। पिता से उनका सत्संग चलता था। कहा कि मुझे खबर तो थी, कई दफा मुझे लोगों ने कहा भी था, मालियों ने भी कहा था कि तुम मेरे वृक्षों से फल भी चुराते हो, मेरे झाड़ों पर भी चढ़ते हो, तुमने मेरे तार भी काट डाले हैं जहां से तुम बगीचे में घुस आते हो। और तुम कुएं में भी कूद कर नहाते हो! और एक ही कुआं है हमारा, इसी में हमको पानी पीना। लेकिन आज तुम अच्छे फंसे, अब तुम भाग कर कहीं जा भी नहीं सकते।
मैंने उनसे कहा कि आप गलती में हैं। आप जंजीर शीघ्रता से डाल दो, नहीं
तो आप मुश्किल में पड़ोगे। उन्होंने कहाः क्या कहा! मैं कैसे मुश्किल में पडूंगा? वे एक बांस ले आए। उन्होंने कहा कि मैं बांस से तुम्हें मारूंगा भी। अब सच में मैं मुश्किल में था, क्योंकि नीचे कुएं में, ऊपर से बांस भी वे मारें और चढ़ने का भी कोई उपाय नहीं। मैंने कहा कि तुम बांस भी मारो, मगर बहुत पछताओगे। उन्होंने कहाः तुम करोगे क्या, यह तो बताओ!
मैंने कहा कि पहली तो बात यह कि मैं तुम्हारा कुआं भ्रष्ट कर दूंगा। मुझे लघुशंका लगी है। तुम डालते हो सांकल वापस कि नहीं? अब मैं ज्यादा नहीं रोक सकता।
उन्होंने कहाः भाई रुक, कुआं खराब मत कर देना! हम सांकल डालते हैं।
और मैंने कहा कि मेरे पिता को बुलाने तुमने जो माली भेजा है, दूसरा माली भेजो उसको बुलाने कि मेरे पिता को न लाए। उन्होंने कहाः क्यों?
तो मैंने अपनी एक आंख पर अंगुली रख कर उनको बता दी। वे तो फौरन समझ गए। उन्होंने जल्दी माली भेजा। दो आदमी उनके नौकर खड़े थे, वे कुछ समझे नहीं कि मामला क्या है, यह मेरा एक आंख पर अंगुली रख कर बताना! उनकी जो महाराजिन थी, उसकी एक ही आंख थी, उनसे उनका प्रेम चल रहा था। तो मैंने कहा कि बस खयाल रखना, वह मुझे पता है, सबको बता दूंगा। उन्होंने जल्दी से सांकल डाली, मुझे निकाला। माली को भेजा कि जा उस माली को बुला ला। मुझसे बोलाः बेटा, तू अंदर आ। आम पक गए थे, आम मुझे खिलाए; जामुन पक गई थीं, जामुन खिलाईं। और कहा कि यह तेरा बगीचा है, अरे अपना घर है! जब आना हो आ। अरे कुआं क्या, अपना ही है, नहाओ, कूदो, जो करना है करो। मगर देख यह बात किसी से कहना मत। तुझे कैसे पता चला?
मैंने कहा कि मैं यहां ऐसा कोई दिन जाता नहीं जिस दिन मैं आता न होऊं। कभी इस झाड़ पर, कभी उस झाड़ पर। आपकी रासलीला देखता हूं, सो मुझे पता है। उस दिन से वे मुझे बुला-बुला कर फल खिलाते थे। मेरे पिता भी बड़े हैरान थे कि आजकल साहबदास तुम पर बड़े प्रसन्न हैं, क्या बात है? घर भी भेजते थे फल। मैंने कहाः वह बात आप न ही पूछो। वह मेरे और उनके बीच है।
मगर वे मुझसे इतना डरने लगे कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मैं अपने मित्रों को भी ले जाता बगीचे में तो कोई रुकावट नहीं; सीधे दरवाजे से हम प्रवेश करने लगे। अब कोई तार वगैरह काटने की और इधर-उधर से घुसने की और चोरी करने की कोई जरूरत न रही। उन्होंने सब मालियों को कह दिया कि यह अपने घर का ही बेटा है, इसको आने दो, जाने दो, इसको कोई रुकावट नहीं डालना, कोई बाधा नहीं डालना, इसको जो करना हो करने दो। अरे क्या है दस-पच्चीस फल खाएगा तो खाने दो। खिलाएगा दस-पांच को लाकर, कोई बात नहीं। इतना बड़ा बगीचा है। आखिर है ही यह धर्म-क्षेत्र! मैंने उनसे एक दिन पूछा कि आप इतने क्यों घबड़ा गए? उन्होंने कहाः घबड़ाऊं न तो क्या करूं! अगर तुम किसी को कह दो, मेरी सारी प्रतिष्ठा पानी में मिला दो!
तो मैंने कहा कि ऐसी प्रतिष्ठा का क्या मूल्य, जो एक बच्चे से भयभीत हो? ऐसी प्रतिष्ठा का क्या करोगे? इस प्रतिष्ठा का कितना बल है?
मगर उनको भीतर ही पीड़ा है, भीतर ही दंश है। उनका अंतःकरण उनको खुद ही काट रहा है कि वे कुछ गलत कर रहे हैं। मैंने कहाः तुम गलत बिल्कुल कर ही नहीं रहे।
उन्होंने कहाः तुम्हारा मतलब?
मैंने कहाः यह तो ऋषि-मुनि सदा से करते रहे। वेदों में इसका उल्लेख है।

वह जो एक आंख वाली उनकी महाराजिन थी, विधवा भी थी और निःसंतान भी थी। वेदों में इस बात की चर्चा है कि अगर कोई निःसंतान स्त्री विधवा हो, या विधवा न भी हो, अगर विधवा हो तब तो वह स्वयं किसी ऋषि-मुनि से नियोग करवा सकती है। नियोग का अर्थ है, संतान पैदा करवा सकती है। और अगर अभी उसका पति जिंदा है तो पति की आज्ञा से नियोग करवा सकती है।
तुम वेदों को इतना सम्मान देते हो, अगर तुम उनको गौर से देखोगे तो तुम बड़े हैरान होओगे। तुम चकित रह जाओगे कि इसमें सम्मान देने योग्य बात है, या कि हर तरह की गलत बातों को भी धर्म के आधार पर आरोपित कर दिया है? यह ऋषि-मुनियों को सुविधा बना दी। ऋषि-मुनि संतान पैदा कर रहे हैं। उसको नाम सुंदर दे दियाः नियोग।
तो मैंने कहाः यह नियोग है। एक तो यह विधवा है, दूसरे निःसंतान है। आप
तो यूं समझो कि वैदिक धर्म का पुनरुद्धार कर रहे हो।
अरे--उन्होंने कहाः भैया तू बिल्कुल किसी से कहना मत! तू और न मालूम कहां-कहां की बातें खोज ले आता है!
मैंने कहाः आप कहें तो मैं आपको वेद की किताबें लाकर बता दूंगा। मैं वेद पढ़ता ही इसीलिए हूं। उसमें जो भी गहरी-गहरी बातें हैं, वह निकाल कर आपके काम की हों तो निकाल कर ले आऊं? यह नियोग उसमें एक गहरी बात है। ऋषि-मुनियों को तुम बड़ा आदर देते रहे हो। लेकिन अगर गौर करोगे तो तुम बहुत चकित होओगे, आदर जैसा कुछ भी नहीं है। मगर पिटी-पिटाई, लकीरों को हम पीटते रहते हैं। और सदियां बीत जाती हैं तो हमारा अहंकार जुड़ जाता है। अब अगर आज मैं यह कहूं कि यह नियोग की व्यवस्था एक अनैतिक व्यवस्था थी और ऋषि- मुनियों के व्यभिचार को छिपाने का एक आयोजन था, तो हिंदू नाराज हो जाएंगे, एकदम नाराज हो जाएंगे--उनके धर्म पर हमला हो गया, मैं उनके धर्म के खिलाफ बात कर रहा हूं! तो चुप रहो, कहो मत कुछ! ये लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुंचाओ! और धर्म के नाम पर जितना पाखंड चल रहा है, वह सब चलने दो! क्योंकि लोगों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचती है, अगर तुमने सत्य बातें कहीं।
मैं तो सत्य बातें कहूंगा। जैसी हैं वैसी ही कहूंगा। फिर धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती हो तो तुम्हें अपनी धार्मिक भावनाएं थोड़ी मजबूत बनानी चाहिए। और या फिर अपने धर्म में थोड़े सुधार करने चाहिए, रद्दोबदल करने चाहिए। या धर्म अपना ऐसा बनाना चाहिए कि जिसमें ठेस पहुंचाने की जगह न रह जाए।
मेरा संन्यासी होना, नरेश सिंह, खतरनाक तो है ही। तुम अड़चन में तो पड़ोगे ही, क्योंकि मेरे साथ खड़े होना खतरे का काम है, बगावत का काम है, विद्रोह का काम है। तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी समाज में, सब खत्म हो जाएगी। लोग समझेंगे पागल हो गए। लोग यह भी समझेंगे अधार्मिक हो गए। क्योंकि जिसको वे धर्म समझते हैं, उसको मैं अधर्म कहता हूं। और जिसको मैं धर्म समझता हूं, स्वभावतः वह उनकी समझ के बाहर है, उनकी पकड़ के बाहर है।
मगर अगर तुम्हारे मन में संन्यास का भाव उठ रहा है--तुम कह रहे हो कि मैं इसी कारण संन्यास लेने से चूक रहा हूं--जरूर भाव उठ रहा होगा, तो किन लोगों के डर के कारण यह भाव से तुम चूक रहे हो? और ये लोग तुम्हारे काम पड़ेंगे? मौत कल द्वार पर खड़ी होगी तो ये आदमी तुम्हारे काम पड़ेंगे? और इनका सम्मान काम पड़ेगा? इनका सत्कार काम पड़ेगा? उस समय तो तुम्हें सिर्फ तुम्हारे भीतर समाधि जन्मी होगी तो काम आएगी।
और मेरा संन्यास तो समाधि तक पहुंचने की एक प्रक्रिया है। और मेरा संन्यास तो धर्म का अधुनातन रूप है। धर्म से उस सारे कचरे को छांट डालने की चेष्टा है, जो सदियों-सदियों में अपने आप इकट्ठा हो जाता है। हर युग में धर्म को पुनः-पुनः कचरे को जलाना पड़ता है। जैसे हर साल तुम होली जलाते हो न, ऐसे हर युग में पुराने धर्मों में से कचरे को जलाना पड़ता है, ताकि जो खालिस सोना है वह बच जाए। स्वभावतः जिनका पुराने से लगाव बन गया होता है, आसक्ति बन गई होती है, उनको पीड़ा होती है। उनको भारी पीड़ा होती है। उनको कष्ट होता है। उनका कष्ट मैं समझता हूं। उन पर मुझे दया भी आती है। उनके

प्रति मेरे मन में सिर्फ क्षमा का भाव होता है। क्योंकि मैं जानता हूं, वे नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।
अभी यह जो आदमी यहां पत्थर फेंक गया है, इसे पता नहीं है कि यह क्या कर रहा है। यह अपने धर्म को लांछित कर रहा है सिर्फ और अपनी मूढ़ता का, अज्ञान का प्रदर्शन कर रहा है। ऐसे इसके धर्म की रक्षा होने वाली नहीं है। यह तो सिर्फ अपने धर्म की नपुंसकता जाहिर कर रहा है। यह तो सिर्फ इस बात की खबर दे रहा है कि अब हमारे पास और कुछ भी नहीं है, कोई और बौद्धिक बात कहने को बची नहीं है। मैं तो जो कह रहा हूं वह सीधा-साफ है। अगर उसके विपरीत कुछ कहना हो, लिखो, कहो। लेकिन मेरे खिलाफ जो बातें कही जाती हैं, उसमें मेरे मंतव्यों का कोई खंडन नहीं किया जाता। उसमें ऊलजलूल बातें होती हैं, जिनसे कुछ मेरा लेना-देना नहीं। मैं जो कहता हूं उसको छूते भी नहीं लोग। मेरे विचारों पर कोई आलोचना नहीं होती मैं तो निमंत्रण देता हूं कि आलोचना हो। अच्छा ही होगा, आलोचना से निखार होगा। लेकिन वे टुच्ची बातों की चर्चा करते हैं, जिनसे कुछ प्रयोजन नहीं हैः वे इस बात की चर्चा करेंगे कि मैं किस कार में बैठता हूं, किस मकान में रहता हूं। मेरे आश्रम में वैभव है। इससे कुछ लेना-देना नहीं मेरी बातों का।
मैं तो वैभव का पक्षपाती हूं। मैं दरिद्रता का पोषक नहीं हूं। मैं दरिद्र को दरिद्रनारायण नहीं कहता हूं, क्योंकि अगर दरिद्र दरिद्रनारायण है, तब तो नारायण को बचाना होगा। नारायण को मिटाते तो नहीं! फिर तो दरिद्रों को बचाना होगा। जितने दरिद्र हों उतना ही अच्छा, क्योंकि उतने ही दरिद्रनारायण पृथ्वी पर रहेंगे और उतना ही धर्म का विस्तार होगा।
मैं दरिद्र को नारायण नहीं कहता। मैं दरिद्रता को तो महारोग कहता हूं। वह तो आत्मा का रोग है। उस रोग को तो नष्ट करना है। उसको तो जड़ से काट डालना है। मैं भौतिकवाद का विरोधी नहीं हूं।
इसलिए जो लोग इन बातों की आलोचना करते हैं, उन्हें आलोचना करनी चाहिए मेरे विचार की। मैं तो कहता हूं भौतिकवाद का मैं विरोधी नहीं हूं। मैं तो कहता हूं कि भौतिकवाद की ही पराकाष्ठा पर वास्तविक धर्म का शिखर पैदा होता है। भौतिकवाद का मंदिर होगा तो धर्म के स्वर्ण-शिखर होंगे।
इसलिए मैं कोई तपश्चर्या में, कोई शरीर को गलाने में, कोई शरीर का दुश्मन नहीं हूं, कि कांटों पर लेटूं कि धूप में पड़ा रहूं, कि भूखा मरूं। इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों में मेरी आस्था नहीं है।
इसलिए जो लोग इस बात की चर्चा करते हैं कि आश्रम में वैभव है... यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो सिर्फ शुरुआत है। यह तो अभी परीक्षण है। मैं तैयारी कर रहा हूं एक बड़े आश्रम की, जो कि इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा वैभवशाली आश्रम होगा; जहां कि तुम भौतिकवाद को और अध्यात्म को गले में गला डाले, गले में हाथ डाले, आलिंगनबद्ध पाओगे; जहां तुम भौतिकवाद और अध्यात्म को एक साथ समन्वित पाओगे, जहां दोनों अपने शिखर पर होंगे।
मगर मेरी बात का विरोध करो, मेरी बात की आलोचना करो। मैं तो मानता ही यही हूं कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्यों राजपुत्र थे, बुद्ध क्यों राजपुत्र थे, राम और कृष्ण क्यों राजपुत्र थे--सिर्फ इसलिए कि केवल राजपुत्रों में ही यह संभावना थी कि वे उठ सकें इस ऊंचाई पर कि धर्म की भावना उनमें जग सके। जिसका पेट ही अभी भूखा है, वह क्या संगीत सुनेगा? और जिसने संगीत भी नहीं सुना, कला नहीं परखी, गीत नहीं गुनगुनाए, वह क्या ध्यान करेगा? क्रमिक विकास होता है आदमी का। पहले देह, फिर मन, फिर आत्मा-- और फिर परमात्मा। परमात्मा चतुर्थ है--तुरीय अवस्था है। उसके पहले ये तीन सीढ़ियां पार करनी होंगी।
लेकिन मेरी बातों की कोई आलोचना नहीं होती। इस बात की आलोचना होगी कि मेरे आश्रम में स्त्री और पुरुष हाथ में हाथ डाले हुए चलते हैं। मैंने कभी इनकार किया नहीं, इसलिए इसकी आलोचना करने का कोई कारण नहीं। मैं तो मानता ही यह हूं कि प्रेम की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह अजीब दुनिया है! यहां अगर दो आदमी सड़क पर लड़ रहे हैं तो कोई हर्जा नहीं, अगर एक-दूसरे को घूंसाबाजी कर रहे हैं तो कोई हर्जा नहीं। लेकिन दो आदमी अगर हाथ में हाथ डाले जा रहे हैं तो हर्जा है। अगर दो व्यक्ति प्रेम से आलिंगनबद्ध

हों तो अनैतिक कृत्य हो रहा है! और दो आदमी गुत्थमगुत्था हो जाएं, घूंसेबाजी करें, तो बड़ा नैतिक कृत्य हो रहा है! यहां युद्ध की प्रशंसा होती है और प्रेम की निंदा।
अगर मैं जो कह रहा हूं उसके विपरीत कर रहा होता, तो मेरी आलोचना की जा सकती थी। मैं तो जो कह रहा हूं वही कर रहा हूं। उसको भी पूरी तरह नहीं कर पा रहा हूं, क्योंकि चारों तरफ पागलों से घिरा हुआ हूं। मेरी पूरी बस्ती बसने दो, तब उस बस्ती में तुम देखना--उसका रंग, उसका राग, उसका आनंद; उसका उत्सव, उसके गीत! वहां बांसुरी बजेगी पूरी तरह! वहां नृत्य होगा! वहां मृदंग बजेगी! वहां पैरों में घुंघरू बंधेंगे! अभी तो मजबूरी में जीना पड़ रहा है। लेकिन जो भी आलोचना की जाती है वह आलोचना नहीं है, क्योंकि वह तो मेरा वक्तव्य ही है। वह तो मैं चाहता ही हूं कि होना चाहिए। व्यक्तियों को प्रेम की स्वतंत्रता होनी चाहिए, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। और दुनिया में जितना प्रेम फैलेगा, उतनी ही घृणा कम होगी। स्वभावतः वही ऊर्जा तो प्रेम बनती है, वही घृणा बनती है। और अगर हम चाहते हैं कि दुनिया से युद्ध मिट जाएं तो एक ही उपाय है कि दुनिया में प्रेम का एक ऐसा ज्वार आए, महाज्वार आए कि सारे युद्धों को बहा ले जाए। अब प्रेम का भी विस्फोट इतना ही बड़ा होना चाहिए जितना अणु का विस्फोट है, तो ही हम पृथ्वी को बचा सकते हैं, अन्यथा पृथ्वी को बचाने की अब कोई संभावना नहीं है।
नरेश सिंह, संन्यास लोगे तो अड़चन में तो पड़ोगे, क्योंकि मेरा संन्यास दकियानूसी नहीं है। मेरा संन्यास पुराने संन्यास से कुछ संबंध ही नहीं रखता। तुम यह भी पूछोगे कि फिर मैं इसको संन्यास नाम क्यों दिया हूं! सिर्फ इसलिए दिया हूं, ताकि पुराने शब्द की जो महिमा है वह पुरानों से छीन लूं। इसलिए गैरिक वस्त्र मैंने चुने, ताकि गैरिक वस्त्रों की जो महिमा है वह पुराने के हाथ में नष्ट न हो जाए। पुराने में जो भी श्रेष्ठ है वह सब बचा लूंगा और जो-जो नया संभव है जोड़ना, वह सब जोड़ दूंगा।
तुम कठिनाई में तो पड़ोगे। लोग न मालूम क्या-क्या कहेंगे! लेकिन मेरे साथ बदनाम होने का भी मजा है। नहीं तो इतने लोग बदनाम होने को राजी न होते। और इनकी संख्या रोज बढ़ती जाती है। और तुम्हारा नाम है नरेश सिंह! थोड़ा सिंह जैसी हिम्मत करो! क्या भेड़ों जैसी बातें कर रहे हो! क्या मेमने जैसी बातें कर रहे हो! भेड़ें भीड़ से डरती है; सिंह तो अकेले चलते हैं, भेड़ों की तरह नहीं। सिंह तो डरते नहीं। यह तो भेड़चाल है, भीड़ की जो गति है उससे अपने को मुक्त करो। फिर किसी भी भीड़ के हिस्से तुम क्यों न होओ।
मेरा संन्यासी व्यक्तित्व की तलाश कर रहा है, व्यक्तित्व की खोज कर रहा है, निजता की खोज कर रहा है। जरूर कठिनाइयां होंगी। आग से बिना गुजरे कोई भी शुद्ध सोना नहीं बनता है। और तुम्हें बहुत तरह की आग से गुजरना होगा, तो ही तुम खालिस सोना बन सकोगे।
पूछते होः मैं क्या करूं?
हिम्मत करो! साहस करो! भयभीत न रहो। जिंदगी चार दिन की है, इस चार दिन
की जिंदगी में क्या भय करना, किसका भय करना! बहुत से बहुत मौत ही तो हो सकती है न! मौत तो होनी ही है। इसलिए मौत तो एक ऐसी चीज है, जिसको कि बिल्कुल ही एक किनारे रख दो, उसकी तो कोई कीमत ही मत मानो। जो होना ही है वह होना ही है। उसके लिए क्या फिक्र करनी! जीने का मजा क्यों छोड़ो? जीने की पूर्णता क्यों छोड़ो? जीने का निखार क्यों छोड़ो? हां, अगर ऐसा होता कि मौत से सदा के लेकिन बच सकते तो बात सोचने की भी थी, विचारने की भी थी। बच तो सकोगे नहीं, ऐसे भी मरोगे, वैसे भी मरोगे। मिट जाना है, मिट्टी में गिर जाना है। इसके पहले कि मिट्टी में गिरो, अपने भीतर अमृत को खोज लेना आवश्यक है।

तीसरा प्रश्नः मैं अपनी पत्नी पर कभी भी संदेह नहीं करता हूं, लेकिन
यह जिज्ञासा जरूर होती है कि और लोग क्यों संदेह करते हैं।

रामदास! यह भी खूब रही! अगर तुम संदेह नहीं करते हो तो यह जिज्ञासा भी क्यों? जरूर कहीं संदेह का कीड़ा सरकता होगा। कहीं बहुत गहरे में होगा, पता न चलता होगा, चेतन तक न आता होगा, दबा रखा होगा। और दूसरे क्यों करते हैं,

इसकी भी तुम्हें क्या चिंता? सबको अपनी-अपनी चिंता लेने दो। सबको अपनी- अपनी फिक्र करने दो।
पुरुष पत्नियों पर संदेह करते हैं, पहला तो कारण यह होता है कि उन्हें अपने पर भरोसा नहीं है। वे खुद बेईमान हैं। वे खुद धोखेबाज हैं। वे खुद जानते हैं कि उनकी नजर यहां-वहां भटकती है। तो स्वभावतः उनके मन में यह सवाल उठता है कि मेरी पत्नी की नजर भी न भटकती हो और इसमें कुछ अस्वाभाविक भी नहीं है। अगर स्वाभाविक ही है यह बात, तो तुम्हारी भी नजर भटकेगी, तुम्हारी पत्नी की भी नजर भटकेगी। इसको हमें स्वीकार ही कर लेना चाहिए। इसको नाहक समस्या बनाने की जरूरत नहीं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। एक सुंदर पुरुष जा रहा हो और स्त्री को बिल्कुल भी सुंदर पुरुष को देख कर कुछ खयाल न उठे, तो या तो वह मर चुकी हो, बिल्कुल मर चुकी हो, जड़ हो चुकी हो, विक्षिप्त हो और या फिर बुद्धत्व को उपलब्ध हो चुकी हो, इसके अलावा तो हर हालत में एक क्षण को तो उसकी आंखें ठगी रह जाएंगी। पुरुष की भी यही दशा है। और स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। एक सुंदर स्त्री सामने से गुजरे, सुंदर फूल खिले, सुंदर सूरज निकले और तुम न देखो, एक सुंदर स्त्री पास से गुजर जाए और तुम्हारी आंख थोड़ी देर को उसके रूप से न भर जाएं... !
मगर इसका कुछ यह अर्थ तो नहीं कि कुछ पाप हुआ। इसका कुछ यह भी अर्थ नहीं है कि तुम उस स्त्री के पीछे ही हो लिए। इसका यह भी कुछ अर्थ नहीं है कि तुमने अपनी स्त्री के साथ कुछ दगा किया या धोखा किया। सिर्फ इतना ही अर्थ है कि यह स्वाभाविक है। और यह तुम्हारी स्त्री को भी होता होगा, इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
अगर दुनिया बेहतर हो और लोग अगर एक-दूसरे को ईमानदारी से स्वीकार करते हों तो एक-दूसरे से कह भी सकेंगे और इससे कुछ अड़चन न होगी। हंसेंगे इस बात पर। अगर पति-पत्नी में सच में प्रेम हो तो पति कह सकेगा कि आज रास्ते पर तुमने देखा, जो स्त्री जाती थी, उसे देख कर एक क्षण को मैं ठगा रह गया था! और पत्नी भी कह सकेगी कि आज जो मेहमान घर पर आए थे, मेरा मन डांवाडोल हो गया था। मगर अभी तो हम स्वीकार नहीं करते। इस तरह की बात एक-दूसरे से कहने का मतलब होगाः झगड़ा-झांसा, उपद्रव। तो छिपा लो! छिपा लेते हैं तो यही बातें घाव बन जाती हैं। छिपा लेते हैं तो यही बातें रुग्ण बन जाती हैं। छिपा लेते हैं तो इन्हीं बातों के कारण भीतर पीड़ा अनुभव होती है, पाप अनुभव होता है, अंतःकरण नाहक कचोटता है। और हमने इस तरह सारे लोगों को दुखी कर दिया है। यहां हर आदमी अपराध-भाव से भरा है--स्त्रियां, पुरुष सब! जब कि अपराध-भाव की कोई भी आवश्यकता नहीं है।
रामदास, अगर तुम मुझे समझो तो मैं तो कहूंगा यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। जब तक कि तुम बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाओ, यह होगा। हां, बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ तो फिर न कोई स्त्री है, न कोई पुरुष है; न कोई सुंदर है, न कोई असुंदर है। तब क्रांति हो जाती है। तब तुम चैतन्य को देखने लगते हो। तब देह से तुम्हारी आंखें ऊपर उठ जाती हैं। मगर जब तक यह नहीं हुआ है, तब तक जो हो रहा है उसमें पाप मत समझना।
फिर तुम क्या फिक्र करते हो कि और-और लोग ऐसा क्यों सोचते हैं? उनके अपने-अपने अनुभव होंगे। हर आदमी के अलग अनुभव हैं। हर आदमी अलग है, अद्वितीय है, बेजोड़ है।
गुलजान, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी, ने अखबार पढ़ते हुए अपने पति से कहाः सुनो, कैसी अच्छी खबर है! एक गुंडा रात दो बजे किसी के घर में घुस गया और उसकी पत्नी का अपहरण करके भागने लगा। पति की नींद खुल गई, तो उसने बहादुरी के साथ उस पिस्तौलधारी लफंगे का सामना किया और उसकी अच्छी मरम्मत की। यदि कहीं अपने घर में ऐसा कोई चोर घुस आए और मुझे भगा कर ले जाने लगे, तो तुम क्या करोगे?
मुल्ला नसरुद्दीन बोलाः मैं उस नासमझ से कहूंगा कि मूर्ख, भागता क्यों है? जो करना है, आराम से कर!
अलग-अलग लोगों के अलग-अलग ढंग होंगे, अलग-अलग जीवन होंगे, अलग-अलग सोचना होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मेरे साथ घूमने जाता था। कोई भी ट्रक, बस वगैरह दिखाई पड़ जाए, एकदम घबड़ा जाए। मैंने उससे पूछाः इतना चौड़ा रास्ता, इस पर बस और ट्रक देख कर ऐसा क्या घबड़ाना! तू तो एकदम कंपने लगता है। जैसे तेरे ऊपर ही चढ़ी आती है! कोई जीवन का ऐसा तेरे लिए दुखद अनुभव है कि कभी किसी ट्रक से टकरा गया हो, या बस से टकरा गया हो, कई फ्रैक्चर हो गए हों, बड़ी मुश्किल से ठीक हुआ हो, साल-छह महीने अस्पताल में पड़ा रहा हो? ससून अस्पताल का नर्क झेला हो? मामला क्या है?
उसने कहाः अब आप पूछते हैं तो कहता हूं। बीस साल हो गए, तब मेरी पत्नी
एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग गई। मुझे यही डर लगा रहता है कि कहीं वापस न आ रही हो। बस यही देख कर, जैसे ही ट्रक या बस दिखाई पड़ी, कि मेरी छाती धड़की, कि हे प्रभु, कहीं गुलजान लौट तो नहीं आई!
अपने-अपने अनुभव हैं।
एक दिन चंदूलाल चुपके से अपनी प्रेमिका के घर पहुंचा। घर पर उस समय कोई नहीं था। चंदूलाल ने अपनी प्रेमिका को आलिंगन में ले लिया और उसे चूमने लगा। इतने में प्रेमिका का दस वर्षीय भाई न जाने कहां से आ टपका और चंदूलाल को धमकाने लगा कि मैं अपने मम्मी-पापा को बोलूंगा कि यह अपने मुहल्ले का खूसट बुड्ढा हमारे घर दीदी से मिलने आया करता है। मिलता ही नहीं, चूमाचांटी भी करता है।
चंदूलाल तो एकदम घबड़ा गया और बच्चे से बोलाः बेटा, ऐसी गंदी बातें नहीं करते। ये लो पांच रुपये पिक्चर देखने के लिए।
बच्चा बोलाः सिर्फ पांच रुपये! अरे और दूसरे लोग तो कम से कम दस रुपये देते हैं।
अब रामदास, तुम कहते होः और लोग क्यों... ? और लोगों से पूछो। और लोगों
के अपने-अपने अनुभव होंगे।
ढब्बू जी नशे में थे और अपनी बीबी से प्रेम करने की कोशिश कर रहे थे।
बीबी गर्भवती थी और वह नहीं चाहती थी कि इस समय प्रेम किया जाए, बच्चे को नुकसान पहुंच सकता है। लेकिन जब ढब्बू जी नहीं माने तो उनकी पत्नी ने उन्हें दस रुपये का नोट देते हुए कहाः जाओ किसी नगरवधू से प्रेम कर आओ। भगवान के लिए इस समय मुझे माफ करो।
ढब्बू जी चले गए और पंद्रह मिनट में ही वापस आ गए। पत्नी तो बड़ी चकित हुई। पूछाः इतनी जल्दी कैसे आ गए?
जवाब मिलाः मैं घर के बाहर ज्यों ही निकला कि चंदूलाल की पत्नी ने मुझसे पूछा--कहां जा रहे हो? मैंने सारा किस्सा सुनाया। तो वह बोली--अरे इतनी दूर क्यों जाते हो? दस रुपये मुझे ही दे दो न!
ढब्बू जी की पत्नी तो एकदम गुस्से में आकर बोलीः क्या कहा! उसने तुझसे
दस रुपये ले लिए; और तुमने दे भी दिए, उल्लू कहीं के! जब वह गर्भवती थी तब तो मैं उसके पति से एक भी पैसा नहीं लेती थी।
अब किसके क्या अनुभव हैं! मैं तुम्हें कैसे कहूं! हजारों लोग हैं, हजारों अनुभव हैं। अगर तुमको अनुभव ही इकट्ठे करने हों, कोई शोधकार्य करना हो, तो लोगों से मिलो-जुलो, पूछो कि भाई तुम्हें अपनी पत्नी पर क्यों संदेह है, मुझे तो बिल्कुल संदेह नहीं है। पहले तो वे सभी यह कहेंगेः संदेह! कभी नहीं! मुझे और मेरी पत्नी पर संदेह! ऐसी बात करते शर्म नहीं आती? मेरी पत्नी सीता-सावित्री है। मगर अगर तुम पीछे पड़े ही रहोगे, फुसलाओगे, होटल में ले जाओगे, चाय-नाश्ता करवाओगे, पिक्चर दिखलाओगे, धीरे- धीरे पिघलाओगे, तो राज की बातें शायद तुम्हें पता चल जाएं।
इस देश में मुश्किल है। पश्चिम में आसानी से हो जाता है। इस देश में
तो कोई भी शोधकार्य मुश्किल है इस तरह का। जितने आंकड़े हैं, सब अमरीका में इकट्ठे करने होते हैं, क्योंकि अमरीका में एक तरह की प्रामाणिकता आनी शुरू हुई है। तुम किसी भी स्त्री से पूछ सकते हो कि तूने विवाह के पहले कितने लोगों से प्रेम किया। और अगर तुम कहो कि मैं शोधकार्य में संलग्न हूं, तो वह जरूर जवाब दे देगी, ईमानदारी से जवाब दे देगी कि चार या तीन या पांच या सात, या जितने लोगों से उसने प्रेम किया हो। भारत में तो बहुत मुश्किल है क्योंकि कौन स्त्री यह कह कर अपनी प्रतिष्ठा सदा के लिए

मिट्टी में मिलवा लेगी। यहां तो कुंआरे होने का मूल्य है। यहां प्रामाणिकता का कोई मूल्य नहीं है। यहां तो कुआंरेपन का ऐसा फितूर है कि हर स्त्री को कुंआरा होना ही चाहिए विवाह के पूर्व। यहां तक कि आधुनिक स्त्रियां भी, पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी हिम्मत करके यह नहीं कह सकतीं कि उनका किसी से प्रेम हुआ था। स्त्रियों की तो छोड़ दो, पुरुषों का भी बल नहीं है यह कि प्रामाणिक हो सकें। यहां सभी पुरुष कहेंगे कि नहीं, कभी नहीं। इसलिए भारत में आंकड़े नहीं मिलते। भारत के साधु-संतों को इससे बड़ा लाभ है; चूंकि आंकड़े ही नहीं है, जब आंकड़े ही नहीं हैं तो उसका मतलब है कि सब पाप पश्चिम में होते हैं, भारत में कोई पाप होता ही नहीं। आंकड़े हों तो पाप का पता चले। पश्चिम में आंकड़े उपलब्ध हैं, इसलिए पाप जाहिर है कि होता है। और सच्चाई यह है कि पाप यहां और भी ज्यादा होते हैं; लेकिन हम पाप समझते हैं उनको, इसलिए छिपाते हैं।
पश्चिम में जीवन को सहज स्वीकार कर लिया गया है। कोई पाप नहीं समझता
इन सारी बातों को। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जो लड़की चौबीस या पच्चीस साल में विवाह करेगी, चौदह साल की उम्र में प्रकृति ने उसे प्रेम के योग्य बना दिया, मां बनने के योग्य बना दिया, वह दस साल तक प्रतीक्षा करेगी विवाह की, तो दस साल में उसके जीवन में कुछ तो घटना घटेगी, कि घड़ी बिल्कुल रुकी रहेगी, कि कैलेंडर का पन्ना ही नहीं फटेगा? और खयाल रखना, यह चेष्टा की जाए कि दस साल तक सब रुका रहे तो रुका रह सकता है। लेकिन जिसने दस साल सब रोक लिया, वह पच्चीस साल में विवाह करने के बाद फिर कभी भी प्रेम करने में समर्थ नहीं रह जाएगी, क्योंकि दस साल में सब जड़ हो जाएगा, ठहर जाएगा। दस साल में जो उसने जकड़ बना ली, वह फिर छूटेगी नहीं।
इसलिए एक बड़े मजे की बात भारत में दिखाई पड़ती है। अपने पति से भी प्रेम करते वक्त स्त्रियां यही समझती हैं कि पाप कर रही हैं। पति को पापी समझती हैं कि ये दुष्ट पीछे पड़े हैं, मगर मजबूरी है क्योंकि विवाह कर लिया है, झेलना पड़ेगा। मुझसे न मालूम कितनी भारतीय स्त्रियों ने आकर कहा है कि हम तो छूटना चाहते हैं इस काम-विकार से, मगर वे पति देवता छूटें तब न! वे पति देवता तो पीछे ही पड़े हैं। पति देवता के कारण नहीं छूट पा रहे हैं!
और ये जो स्त्रियां हैं, ये क्या प्रेम में रस लेती होंगी! जब इसको पाप समझा जा रहा है, जब ये पति देवता को छुड़ाने की चेष्टा में लगी हैं, जब जबरदस्ती किसी तरह ढो रही हैं बोझ को, तो इसमें प्रेम तो नहीं रह सकता; इसमें आनंद तो नहीं हो सकता; इसमें संगीत तो खो जाएगा।
तुम जरा ऐसे संगीतज्ञ की कल्पना करो, जो वीणा को बजा रहा है, मजबूरी में, जैसे बजाना पड़ रहा है, जबरदस्ती; जैसे पीछे कोई तलवार लिए खड़ा है कि गर्दन काट देंगे अगर नहीं बजाई! तो बजा रहा है। मगर उसके तारों से स्वर नहीं निकलेंगे; तार टूटेंगे, स्वर नहीं निकलेंगे। और इसलिए इस देश में प्रेम के स्वर नहीं निकलते। और जब प्रेम के स्वर नहीं निकलते तो स्वभावतः साधु-महात्माओं की बातें बिल्कुल ठीक मालूम पड़ती हैं, कि साधु-महात्मा कहते हैं कि जीवन में कुछ है ही नहीं, सब बेकार है। ठीक ही कहते हैं, क्योंकि तुम्हें भी जीवन में किसी सुख का, किसी आनंद का अनुभव नहीं होता। मैं बिल्कुल दूसरी बात कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं कि जीवन को परमात्मा ने तुम्हें दिया है एक भेंट की तरह; इसमें बड़े राज हैं, इसमें बड़े रहस्य हैं, इसमें बड़े आनंद छिपे हैं। इन सारे आनंदों को तुम पहचानो। एक तो पुराना संन्यास था, जो जीवन को दुख समझ कर जीवन के त्याग से पैदा होता था। और एक मेरा संन्यास है, जो जीवन को आनंद समझ कर जीवन के अहोभाव से पैदा होता है। इस भेद को तुम खयाल में रखना। एक तो त्यागवादी संन्यास था; यह अहोवादी संन्यास है। एक तो भागने वाला संन्यास था, भगोड़ा; यह जीवन के प्रति प्रेम और आनंद और अनुग्रह का संन्यास है।
मैं चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में प्रेम गहरा हो, आनंद गहरा हो। इतना गहरा हो कि तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सको। वही धन्यवाद तुम्हारी प्रार्थना बनेगा। वही धन्यवाद तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी पूजा, तीर्थ! और उस तीर्थ की सुगंध ही और होगी। जीवन से हार कर जो भागता है, जीवन को छोड़ कर जो जाता है--विषाद की तरह, संताप की तरह--उसके मुंह में कड़वापन का स्वाद

होता है, मिठास नहीं होती। वह परमात्मा को क्या धन्यवाद दे; शिकायत होती है उसके मन में, शिकवा होता है धन्यवाद नहीं हो सकता। और शिकायतें कैसे प्रार्थना बनेंगी?
मेरे पाठ बिल्कुल और हैं। इसलिए अगर मेरे पाठों को समझने में अड़चन हो
तो आश्चर्य नहीं। इन्हें केवल वे ही समझ पाएंगे जिनके पास एक स्तर की बुद्धिमत्ता है।
एक सज्जन ने पूछा है कि "महर्षि संत मेंहीलाल एक ही तरह का ध्यान लोगों को बताते हैं और आप बहुत तरह के ध्यान बता रहे हैं। मगर उनके पास केवल गैर-पढ़े-लिखे लोग जाते हैं; आपके पास सिर्फ पढ़े-लिखे अभिजात्य सारी दुनिया से लोग आते हैं। इसका राज क्या है?
राज सीधा-साफ है। जिन महर्षि संत मेंहीलाल की तुम बात कर रहे हो, उनको मैं जानता हूं। न तो महर्षि हैं, न संत हैं, बस सिर्फ मेंहीलाल हैं। दकियानूसी किस्म के आदमी हैं, सो दकियानूसी लोग उनके पास इकट्ठे होते हैं। दकियानूसी होने के लिए प्रतिभा की जरूरत नहीं है। सो देहाती गंवार उनके पास इकट्ठे होंगे। उनके पास तृतीय कोटि के लोग इकट्ठे होंगे। स्वाभाविक है। उनको उनकी बातें जंचेंगी।
मेरे पास तृतीय कोटि के लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। मैं जो बातें
कर रहा हूं, वे कोई दकियानूसी बातें नहीं हैं। उनको समझ पाने के लिए प्रतिभा चाहिए; एक तरह का आभिजात्य चाहिए, एक तरह की अंतर्दृष्टि चाहिए; एक तरह की प्रखरता, तेजस्विता चाहिए। इसलिए सारी दुनिया से तेजस्वी लोग आएंगे और मेरा रस भी उनमें है, क्योंकि उनके द्वारा ही इस जगत में क्रांति हो सकती है। उनके द्वारा ही इस जगत को रूपांतरित किया जा सकता है। ये इस तरह के महर्षि और संत तो इस देश में गांव-गांव में फैले हुए हैं। क्या ध्यान है उनका? कोई मंत्र सिखा देता है, कान फूंक देता है। कोई एक ध्वनि पकड़ा देता है कि इसको रटते रहो, इसको रटते-रटते सब हो जाएगा। निश्चित ही, अगर तुम किसी शब्द को रटते रहोगे या किसी मंत्र को रटते रहोगे तो थोड़ी सी सांत्वना मिलेगी और थोड़ी शांति भी मिलेगी। मगर वह शांति वैसी है, जैसी निद्रा से मिलती है, तंद्रा से मिलती है। वह शांति वस्तुतः शांति नहीं है। मैं जिस ध्यान की बात कर रहा हूं, वह बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। और इतने तरह के लोग हैं दुनिया में कि मैं हर तरह के व्यक्ति के लिए ध्यान की व्यवस्था जुटा रहा हूं। यहां इस क्षेत्र में--इस बुद्ध क्षेत्र में--तो सारे धर्मों की जो-जो श्रेष्ठतम प्रक्रिया है, जो-जो नवनीत है, उस सबको इकट्ठा कर लिया गया है। यहां तो सारे फूल निचोड़ कर इत्र बना लिया गया है। यहां तो ऐसी कोई विधि नहीं छोड़ी जा रही है, जिससे कभी भी कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ हो। इसलिए तुम्हें सारे विकल्प दिए जा रहे हैं। अब जिन सज्जन ने पूछा है, उनको अड़चन यह हो रही है कि एक ही आप बता दें, ताकि हम उसी में लग जाएं। इतनी भी कोशिश करने की इच्छा नहीं है कि दस-पांच विधियां कर के लें कि हमें कौन सी जमती है! अपने ऊपर इतना भी उत्तरदायित्व लेने की आकांक्षा नहीं है। कोई बता दे, फिर जमे कि न जमे, फिर तुम्हारे काम की हो या न हो! थोप दे कोई। कोई दे दे पका-पकाया बिल्कुल। पका-पकाया ही नहीं, कोई चबा-चबाया दे दे तो और भी अच्छा, ताकि तुम्हें चबाना भी न पड़े, तुम सीधा गटक ही जाओ। फिर चाहे वह जहर ही क्यों न हो।
यह ध्यान रखना, जो एक के लिए अमृत है वह दूसरे के लिए जहर हो सकता है और
जो एक के लिए जहर है वह दूसरे के लिए अमृत हो सकता है। कुछ लोग हैं जो निष्क्रिय ध्यान से उपलब्ध होंगे; जैसे बुद्ध निष्क्रिय ध्यान से उपलब्ध हुए। यहां विपस्सना की प्रक्रिया चलती है, झाझेन की प्रक्रिया चलती है। वह उन लोगों के लिए है, जो शांत बैठ कर उपलब्ध हो सकते हैं।
लेकिन जलालुद्दीन रूमी सूफी फकीर नाचते-नाचते उपलब्ध हुआ। ऐसा नाचा
कि छत्तीस घंटे रुका ही नहीं। दिन आए और गए, रात आई और गई, हजारों लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई कि यह क्या हुआ है! लेकिन नाच कुछ ऐसा था कि लोग भी जाना चाहें तो जा न सकें। ऐसे बंधे रह गए, जैसे कोई सम्मोहित हो गए हों! हजारों की भीड़ खड़ी रही और छत्तीस घंटे तक जलालुद्दीन नाचता रहा, नाचता रहा; तब तक नाचता रहा जब तक कि पहुंच न गया। जैसे बुद्ध तब तक बैठे रहे जब तक कि पहुंच

नहीं गए। बैठे ही रहे सात दिन तक, हिले भी नहीं, डुले भी नहीं, कंपे भी नहीं--शांत रह कर पहुंचे। जलालुद्दीन नाच कर पहुंचा। दोनों एक ही जगह पहुंचे।
कुछ लोग होंगे जो जलालुद्दीन के रास्ते से पहुंचेंगे। और मेरे खयाल में इस सदी में जलालुद्दीन के रास्ते से पहुंचने वाले ज्यादा लोग होंगे, बुद्ध के रास्ते की बजाए, क्योंकि यह सदी सक्रिय सदी है। लोग ज्यादा सक्रिय हैं। आलस्य के दिन लद गए हैं। वह आलसी जमाना गया। वह वक्त गया, जब लोग सिर्फ बैठने में ही राजी थे।
तो यहां तो सूफी नृत्य भी होगा, दरवेश नृत्य भी होगा। यहां तो बुद्ध
की विपस्सना भी चलेगी। यहां तो सब तरह के प्रयोग होंगे। यहां तुम्हें सब मौके दिए जा रहे हैं। मैं यह कह रहा हूं कि तुम सारे मौकों से गुजर जाओ और देख लो, तुम्हें जो रुच जाए, तुम्हें जो पट जाए, तुम्हारे भीतर जिससे तालमेल बैठ जाए, उसको चुन लेना।
लेकिन तुम इतना भी नहीं करना चाहते। तुम मेहनत ही नहीं करना चाहते। तुम तो कहते होः आप ही बता दें न! तुम्हारी आदत खराब हो गई है। तो तुम वहीं चले जाओ--महर्षि संत मेंहीलाल के पास! ऐसे बहुत महर्षि गांव-गांव में हैं, वहीं तुमको वे बता देंगे एक मंत्र, कान फूंक देंगे। और कान में जो बता देंगे उसका कोई मूल्य नहीं है। और तुम उसको दोहराते रहना।
और मैं तुमसे कह देता हूंः कोई भी शब्द दोहराना शुरू कर दो, वही लाभ होगा। कोकाकोला-कोकाकोला कहते रहो, या राम-राम, राम-राम कहते रहो, कोई भेद नहीं। या नमोकार पढ़ो, कोई अंतर नहीं पड़ता। उन्हीं छब्बीस अक्षरों से मिल कर बनता है सब कुछ। वही वर्णाक्षरी है। वही क ख ग। उसी से कोकाकोला। तुम्हें जो रुचे, अपना मंत्र खुद ही बना लो। अपना ही नाम अगर तुम दोहराते रहो बैठ कर निरंतर तो भी तंद्रा छा जाएगी। जैसे मां छोटे बच्चे के पास बैठ कर लोरी गाती है न--राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा! अब राजा बेटा सोए न तो क्या करे! छाती पर उसके बैठी है, कह रही है--राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा! बेटे के बाप के पास भी बैठ जाए और कहे कि राजा बेटा सो जा, राजा... तो वे भी सो जाएंगे। सोना ही पड़ेगा। बेटा भाग सकता नहीं, कंबल उढ़ा दिया है, चारों तरफ से दबा दिया है, बेटा भागे भी कहां, जाए भी कहां--तो एक ही भागने का उपाय बच रहता है कि वह नींद में चला जाएगा। नींद भी भागने का एक उपाय है।
जो लोरी का राज है, वही इन मंत्रों का राज है। मगर इन मंत्रों को बताने वाले महर्षि हो जाते हैं।
मेरी इन सब बातों में कोई बड़ी निष्ठा नहीं है। मेरी निष्ठा वैज्ञानिक है। यहां तुम हो तो मेरे ढंग से, वैज्ञानिक ढंग से सोचो-विचारो, चलो। मैं तुम्हें पहुंचा सकता हूं वहां तक जहां तक कोई भी कभी गया है। अगर तुम सच में ही पहुंचना चाहते हो, तो श्रम करने की तैयारी करो। और अगर तुम्हें पहुंचना नहीं, सिर्फ सांत्वना जुटानी है, राहत जुटानी है, कोई लोरी सुननी है, तो कहीं और, यह स्थान तुम्हारे लिए नहीं।
आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
तीसरा प्रवचन

भविष्य है धार्मिकता का

पहला प्रश्नः ओशो, कल प्रातः यहां बुद्ध-कक्ष में ठीक प्रवचन के दरम्यान एक धर्मांध हिंदू युवक ने छुरा फेंक कर आपको मारने की चेष्टा की, जो हमारे सौभाग्य से, मनुष्यता के सौभाग्य से निष्फल गई। और यह जघन्य कृत्य धर्म के नाम पर किया गया।
ओशो, इस प्रसंग में हमें दिशा-बोध देने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! धर्म के नाम पर जितने जघन्य कृत्य हुए हैं, किसी और नाम
पर नहीं हुए, नहीं हो सकते हैं। बुरे काम के लिए अच्छे नाम की आड़ चाहिए, सुंदर परदा चाहिए, ताकि असुंदर को छिपाया जा सके। अधर्म के नाम पर कोई बुरा कृत्य नहीं हुआ है; कोई करना भी चाहेगा तो कैसे करेगा? अधर्म का नाम ही बनती बात बिगाड़ देगा। नकली घी बेचना हो तो "असली घी की दुकान है" ऐसा लिखना जरूरी होता है। नकली घी की दुकान लिखोगे तो नकली बेचना तो मुश्किल, असली भी बेचना मुश्किल हो जाएगा। असली भी कौन खरीदेगा?
धर्म सुंदर आड़ है। उस आड़ के पीछे क्या नहीं हुआ! जीसस को सूली लगी-- धर्म की आड़ थी। सुकरात को जहर पिलाया गया--धर्म की आड़ थी। जिन्होंने जहर पिलाया, उन न्यायाधीशों ने जो अपराध लगाया था सुकरात पर, वह था कि तुम लोगों को बिगाड़ते हो, उनको अधार्मिक बनाते हो। यह भी मजे की बात रही। इस पृथ्वी पर थोड़े से ही लोग हुए हैं जिन्होंने लोगों के जीवन में किरणें बांटीं, आनंद के फूल खिलाए। उन थोड़े से नामों में सुकरात का नाम एक है। पर उस पर जुर्म था कि तुम लोगों का धर्म बिगाड़ते हो, तुम लोगों को भ्रष्ट करते हो। और एक लिहाज से न्यायाधीश जो कह रहे थे ठीक ही कह रहे थे, क्योंकि जिसे वे धर्म समझते थे, सुकरात निश्चित ही लोगों को उस धर्म से हटा रहा था, क्योंकि वह धर्म नहीं था।
एक तो अंधों की धारणा है धर्म के संबंध में और एक आंख वालों की अंतर्दृष्टि है। अंधों की और आंख वालों की बात मेल नहीं खा सकती। सुकरात ने कहा कि मैं तो जो कर रहा हूं करना जारी रखूंगा, क्योंकि मैं जो कर रहा हूं वही धर्म है; मैं जो कर रहा हूं वही सत्य है। तो उन्होंने निर्णय लिया कि ऐसे आदमी को जीवित न रहने देंगे। वही कसूर जीसस का था, वही कसूर मंसूर का था। मंसूर ने इतना ही तो कहा था कि मैं परमात्मा हूं! अनलहक! मैं सत्य हूं! यह उदघोषणा प्रत्येक को करनी है। मंसूर वही कह रहा है जो तुम्हें भी कहना है; इसमें नाराज होने की क्या बात थी?
लेकिन लोग बेचैन हो उठे, लोग परेशान हो उठे। मंसूर के हाथ-पैर काट डाले। मगर मंसूर हंसता रहा। लोग चकित थे--हाथ-पैर कटते हों और कोई हंसता हो! फिर भी उन अंधों को यह न दिखाई पड़ा कि हाथ-पैर कटता हुआ आदमी हंसता है तो इसके पास कुछ राज है, कुछ कुंजी है, अभी भी इसे बचा लें! किसी ने भीड़ में से पूछा जरूर कि मंसूर, तुम्हारे हंसने का कारण? तो मंसूर ने कहाः "मैं इसलिए हंस रहा हूं कि तुम जिसे मार रहे हो वह मैं नहीं हूं। और जो मैं हूं उसे तुम मार न सकोगे। उसे कोई भी न मार सकेगा।"
यही तो कृष्ण ने कहा हैः नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि--मुझे शस्त्र नहीं छेद सकते। नाहं दहति पावकः--मुझे आग नहीं जला सकती।
मंसूर ने कहाः काटो, जी भर कर काटो! मैं हंस रहा हूं, क्योंकि कसूर कोई करे, सजा किसी को मिले! कसूर मैंने किया है--अगर उसे तुम कसूर समझते हो--और शरीर को काट रहे हो, पागल हो!
और फिर आखिरी क्षण में मंसूर आकाश की तरफ देख कर हंसा, तो और किसी ने पूछा कि अब तक भी बात ठीक थी कि तुम हमारी तरफ देख कर हंस रहे थे, आकाश की तरफ देख कर क्या हंस रहे हो, वहां कौन बैठा है? अगर होता कोई बचाने वाला तो बचा लेता।
मंसूर ने कहाः मैं ईश्वर की तरफ देख कर हंस रहा हूं कि तू किसी भी शक्ल में आ, मैं तुझे पहचान ही लूंगा। तू आज हत्यारों की शक्ल में बन कर आया है,

मंसूर को धोखा न दे सकेगा। और उसके हाथों से बचना क्यों चाहूं? उसके हाथों से मर जाना भी सौभाग्य है! उसके हाथों से जहर भी अमृत है!
फिर भी अंधे न चेते। अंधे चेतते ही नहीं। चेत जाएं तो अंधे नहीं। मूर्च्छित हैं।
तुम पूछते हो आनंद मैत्रेयः यह जघन्य कृत्य, और धर्म के नाम पर किया गया!
धर्म के नाम पर ही ऐसे कृत्य किये जा सकते हैं, क्योंकि धर्म बड़ा प्यारा नाम है। इससे सुमधुर और क्या शब्द होगा, इससे ज्यादा मीठा, माधुर्यपूर्ण और शब्द क्या होगा! "धर्म" शब्द कहते ही जैसे प्राणों में बांसुरी बज जाए! जैसे घूंघर बज उठें, जैसे कोई गीत गुनगुनाने लगे, जैसे कोई हृदय की तंत्री को छेड़ दे! इस आड़ में बहुत कुछ हो सकता है। सदियां-सदियां इसी आड़ में सब कुछ होता रहा है। पंडित पले, पुरोहित पले। हिंदू, मुसलमान, ईसाई एक-दूसरे की हत्या करते रहे, जलाते रहे मंदिरों को मस्जिदों को--और सब धर्म के नाम पर! और ये पुरोहित समझाते रहे लोगों को कि जिहाद में जो मरेगा वह सीधा स्वर्ग जाएगा। धर्मयुद्ध में जो मरेगा, इससे बड़ा कोई कृत्य नहीं। तो मरो और मारो!
धर्म--जो कि जीवन की कला है--उसे उन्होंने मरने-मारने का धंधा बना दिया। धर्म तो विज्ञान है जीने का--कैसे जियो? और धर्म न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न ईसाई होता है। प्रेम हिंदू होता है, प्रेम ईसाई होता है? अगर प्रेम हिंदू नहीं होता तो प्रार्थना कैसे हिंदू हो सकती है? क्योंकि प्रेम की ही आत्यंतिक अवस्था तो प्रार्थना है। और प्रार्थना का ही कमल जब खिल जाता है तो उस अनुभव का नाम ही तो परमात्मा है। परमात्मा हिंदू है या मुसलमान या ईसाई? लेकिन जब तक यह पृथ्वी इन खंडों में बंटी रहेगी, तब तक धर्म के नाम पर राजनीति चलती रहेगी।
तुम कहते होः एक धर्मांध हिंदू युवक ने छुरा फेंक कर आपको मारने की चेष्टा की।
कोई भी व्यक्ति वस्तुतः धर्मांध नहीं होता। धर्म तो आंख है। इसलिए "धर्मांध" शब्द उपयोग में तो आता है, मगर ठीक नहीं, सम्यक नहीं। अधर्मांध कहना चाहिए। धर्म के नाम पर होता है, लेकिन है तो अधर्म। धर्मांध तो कोई कैसे हो सकता है? धर्म तो चक्षु है। वह तो आंख है। उससे बड़ी तो कोई आंख नहीं। जिस आंख से परमात्मा दिखता हो, जिस आंख से जीवन के सत्य का अनुभव होता हो, साक्षात्कार होता हो जिस आंख से--स्वयं की निजता का, स्वयं के परम देदीप्यमान रूप का, स्वरूप का, सच्चिदानंद का!
लेकिन हम "धर्मांध" का रूढ़ उपयोग करते हैं। रूढ़ उपयोग यह है कि कोई हिंदू पागल है, कोई मुसलमान पागल है, कोई ईसाई पागल है--तो इनको हम धर्मांध कहते हैं। इनको धर्मांध कहना नहीं चाहिए; ये सिर्फ अंधे हैं, अंधे कहना काफी है। हां, धर्म का चोगा ओढ़े हैं। अब अंधा अगर राम-नाम की चदरिया ओढ़ लेगा तो धर्मांध हो जाएगा क्या? या अंधा अगर कुरान-शरीफ सिर पर लेकर चलने लगेगा तो धर्मांध हो जाएगा क्या? धर्म तो वही जो आंख खोले और जिनकी आंख खुली, उन्हें स्वभावतः दिखाई पड़ा कि धर्म तो एक ही हो सकता है।
बुद्ध बौद्ध नहीं थे, स्मरण रहे। और महावीर जैन नहीं थे, भूल मत जाना।
और जीसस ईसाई नहीं थे, कभी किसी को यह भ्रांति पालने के लिए जरा भी गुंजाइश नहीं है। मोहम्मद मुसलमान नहीं थे। लेकिन मोहम्मद को जो नहीं समझेंगे वे मुसलमान हो जाएंगे। यह चमत्कार रोज घटता है इस दुनिया में। जो बुद्ध को नहीं समझते वे बौद्ध हो गए हैं। बौद्ध होता ही वही है जो बुद्ध को नहीं समझता। जो बुद्ध को समझेगा वह बुद्ध होगा, बौद्ध क्यों होगा? भेद को खयाल में रखना। जो महावीर को समझेगा वह जिन होगा, जैन नहीं। जिन का अर्थ हैः जिसने अपने को जीता। और जैन का अर्थ हैः जीते हुओं की बातों को जो मान कर अंधे की तरह स्वीकार करके चल रहा है। विश्वासी है, अनुभवी नहीं।
मोहम्मद को जिन्होंने मान लिया वे मुसलमान। मान लिया, जाना नहीं। जान लेते तो स्वयं भी मोहम्मद होते। जान लेते तो उनके जीवन में भी कुरान वैसे ही उतरती जैसे मोहम्मद के जीवन में उतरी। परमात्मा किसी के साथ पक्षपात तो नहीं करता। अगर मोहम्मद के जीवन में कुरान उतारी तो तुम्हारे जीवन में

क्यों न उतारेगा! बस चाहिए वही अभीप्सा, वही प्यास, वही आकांक्षा, वही ज्वलित-प्रज्वलित भाव-दशा! वही दीवानापन, जो परवाने में होता है शमा की तरफ जाने का--जिस दिन किसी के भीतर पैदा होता है परमात्मा की तरफ जाने का उस दिन कुरान उसके जीवन में उतर आएगी; उसे बाहर की कुरानों को पकड़ने की जरूरत नहीं रह जाती। बाहर की किताबों को तो वही लोग पकड़ते हैं जो भीतर की किताब को पढ़ने में असमर्थ हैं। और भीतर की किताब न पढ़ी तो बाहर की तुम कोई भी किताब समझ न पाओगे। शब्द याद हो जाएंगे, अर्थ चूक जाओगे। अंधों को अर्थ दिखाई नहीं पड़ते--पड़ नहीं सकते।
एक अंधे आदमी को लोग बुद्ध के पास लाए। वह अंधा बड़ा तार्किक था, दार्शनिक था। उसने सारे गांव के लोगों को हरा रखा था। गांवों के लोग कहते थे तुम अंधे हो, वह हंसता था। वह कहता था, प्रमाण लाओ कि मैं अंधा हूं। और वे कहते थे कि प्रकाश है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। तो वह कहता कि मुझे दिखा दो, मैं देखने को राजी हूं। मेरी तरफ से कोई इनकार नहीं। दिखा दो तो मान लूं। चलो दिखा न सकते होओ, मेरे हाथ पर रख दो, जरा तौल लूं, वजन देख लूं, स्पर्श कर लूं। यह भी न बनता हो, जरा ठोंक-बजा कर आवाज करके दिखा दो। यही भी न बनता हो, लाओ स्वाद लेकर देख लूं। यह मेरा मुंह खुला है, रख दो एक डगली प्रकाश की मेरे मुंह में, चख लूं। यह भी न बनता हो, तो कम से कम गंध तो ले लेने दो मुझे तुम्हारे प्रकाश की!
ये चार इंद्रियां उसके पास थीं। वह कहता थाः मैं राजी हूं, जो भी मेरे पास है, सब तरफ से राजी हूं। तुम मुझे प्रकाश का अनुभव करा दो।
अब अंधे आदमी को कोई प्रकाश का कैसे अनुभव कराए? चखा सकते हो किसी को प्रकाश, कि स्वाद दिला सकते हो, कि गंध, कि ध्वनि पैदा कर सकते हो? प्रकाश में न कोई ध्वनि होती है, न कोई गंध होती है, न कोई स्वाद होता है, न कोई स्पर्श हो सकता है प्रकाश का। वह जीत जाता। अंधा जीत जाता आंख वाले हार जाते! फिर बुद्ध का गांव में आना हुआ, तो गांव के लोग उस अंधे को बुद्ध के पास ले गए। उन्होंने कहा कि आप आए हैं, हमारा सौभाग्य! आप शायद समझा सकें इसे तो समझा सकें, हम तो हार गए। यह अंधा बड़ा तार्किक है। यह इस-इस तरह की बातें करता है, हम क्या करें?
बुद्ध ने कहाः पागल हो तुम! तुम इसे समझाते हो, यही तुम्हारी भूल है।
इस बेचारे का क्या कसूर? इसको दिखाई नहीं पड़ता, यह तुम्हें भी मालूम है और प्रकाश सिर्फ देखा जा सकता है। तो मेरे पास लाए, ठीक नहीं। मेरा चिकित्सक है, मेरा निजी चिकित्सक है--जीवक। तुम उसके पास इसे ले जाओ। वह मेरे साथ ही है, खोज लो, संघ में कहीं ठहरा होगा--दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ चलते थे-- तुम जीवक को खोज लो। जीवक इसकी चिकित्सा कर देगा। इसकी आंखें ठीक हो जाएं, फिर किसी को प्रमाण देने की जरूरत न रहेगी।
जीवक ने छह महीने उसकी आंखों का इलाज किया। आंखों पर जाली थी, कट गई।
छह महीने बाद वह आदमी नाचता हुआ बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने कहाः क्या करते हो? उसने कहाः धन्यवाद देने आया हूं। अगर मैं अपने गांव वालों से ही विवाद करता रहता तो मैं जीवन भर अंधा ही बना रहता। वे विवाद में मुझे हरा न सकते थे और चूंकि हरा न सकते थे, इसलिए मुझे लगता था जो मैं कहता हूं, वह ठीक कहता हूं। स्वभावतः मेरे तर्क सही थे। वे तर्क में निष्णात न थे। गांव के सीधे-सादे लोग थे, वे क्या तर्क करते! मगर आपने अच्छा किया कि मुझे समझाने की कोशिश न की। आपने मुझे वैद्य के पास भेज दिया, यह शुभ किया। मेरी आंखों की जाली कट गई है। आज मैं देख सकता हूं रंग, रूप, प्रकाश, आकृतियां। मेरे जीवन का अहोभाग्य! मैं वंचित ही रह जाता हरियाली से। मैं वंचित ही रह जाता फूलों के रंगों से। मैं वंचित ही रह जाता सूरज से, चांद-तारों से। मैं वंचित ही रह जाता इस जीवन के परम अनुभव से। यह जो प्रकाश का साक्षात्कार है, इसकी जो अनुपम महिमा है, इससे मैं वंचित ही रह जाता। इसलिए धन्यवाद देने आया हूं। और एक बात और पूछने आया हूं, क्योंकि जीवक से मैंने पूछा कि मैंने यह भी सुना है कि भीतर की भी आंख होती है। अब बाहर की आंख मुझे मिल गई, अब मैंने बाहर का प्रकाश देख लिया। मैंने यह भी सुना है कि लोग ऐसे भी हुए जिन्होंने भीतर का प्रकाश देखा, तू उसकी भी चिकित्सा कर दे। तो जीवक ने कहा, अगर उसकी चिकित्सा करवानी है तो

बुद्ध के पास जाओ। उसके चिकित्सक वही हैं। उस संबंध में मैं कुछ भी न कर सकूंगा। तो अब मैं आपके पास आया हूं, अब मेरे भीतर की आंख भी खोल दें। बुद्ध ने कहाः प्रमाण नहीं मांगोगे?
उसने कहाः बहुत हो चुके प्रमाण। बहुत हो चुका विवाद। पहले विवाद ने
ही मेरी जिंदगी खराब कर डाली। अब नहीं विवाद। अब नहीं प्रमाण। अब कोई शास्त्र वचन नहीं चाहिए। जब बाहर का प्रकाश है तो भीतर का भी होगा। जब बाहर की आंख है तो भीतर की भी आंख होगी। जब बाहर एक जगत फैला है तो भीतर भी एक जगत फैला होगा। क्योंकि जब कोई चीज बाहर होती है तो भीतर भी होती है। बाहर अकेला नहीं हो सकता, बिना भीतर के बाहर कैसे हो सकता है? अब नहीं मुझे विवाद करना है। मेरी भीतरी की आंख भी खोल दो।
वह आदमी बुद्ध के चरणों में रहा वर्षों और परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ। उसने भीतर का प्रकाश भी जाना।
जिनको तुम धर्मांध कहते हो, वे वस्तुतः मतांध हैं, उनको धर्मांध न कहो। धर्म बड़ा प्यारा शब्द है। मतांध हैं, मतवादी हैं। और मतवादी धार्मिक नहीं होता। इसलिए मैं हिंदू को, मुसलमान को, ईसाई को, जैन को, बौद्ध को धार्मिक नहीं कहता। कृष्ण को धार्मिक कहता हूं, हिंदू को नहीं। ईसाई को नहीं, जीसस को धार्मिक कहता हूं। मोहम्मद को धार्मिक कहता हूं, मुसलमान को नहीं। और मेरा कारण? चूंकि ये सारे लोग अनुभव किए सत्य का, अनुभूति के अतिरिक्त सत्य का कोई प्रमाण नहीं है। और इस जगत में कितने थोड़े से लोगों को अनुभव हुआ है। कारण? कारण है तुम्हारी मतांधता; अपने-अपने मतों को पकड़ कर बैठे हो।
दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्मों के कम से कम तीन हजार संप्रदाय होंगे, और तीन हजार संप्रदायों के कम से कम तीस हजार उप-संप्रदाय होंगे। इनके बीच तलवारें खिंची रहती हैं।
अब जिस पागल युवक ने कल छुरा फेंक कर मुझे मारने की चेष्टा की, पहली तो बातः मुझे मारा नहीं जा सकता। जिस देह को मारा जा सकता है, वह यूं ही मर जाएगी। इसे मारने की कोई खास जरूरत ही नहीं है। बुद्ध नहीं रहे, महावीर नहीं रहे, कृष्ण नहीं रहे, तो यह देह भी नहीं रहेगी। देह तो किसी की रहती नहीं। जो अपने से ही जाने वाली है, उसके लिए नाहक इतनी चेष्टा की बेचारे ने! अपने को कष्ट में डाल लिया। अपने को उलझन में डाल लिया।
दूसरी बातः इस आशा में उसने यह प्रयास किया कि वह धर्म की रक्षा कर रहा है; जैसे कि उसे धर्म का पता हो! जैसे उसे धर्म का अनुभव हुआ हो! उसे खयाल है कि मैं जो कर रहा हूं वह उसके धर्म के विपरीत है; जैसे कि धर्म भी अलग-अलग हैं! मेरा अलग, तुम्हारा अलग, किसी और का अलग! धर्म तो एक है। जैसे विज्ञान एक है। जैसे प्रकाश एक है। जैसे चांद एक है। कितनी ही झीलों में उसका प्रतिबिंब बने और कितने ही पोखरों में, तालाबों में, सागरों में उसकी छाया पड़े। करोड़ों प्रतिबिंब बनते हैं रात को, लेकिन चांद तो एक है। बुद्ध एक प्रतिबिंब, महावीर दूसरे प्रतिबिंब, मोहम्मद तीसरे प्रतिबिंब, जीसस चौथे प्रतिबिंब, जरथुस्त्र पांचवें प्रतिबिंब। ये सब झीलें हैं। मैं भी एक झील हूं, चांद की एक छाया मुझ में भी बन रही है।
लेकिन यह युवक सोचता था कि इसके धर्म के खिलाफ बोल रहा हूं। धर्म किसी
का भी नहीं, किसी की बपौती नहीं। धर्म का अर्थ भी समझते हो? धर्म का अर्थ हैः जिसने हम सबको धारण किया है, जो हम सबका स्वभाव है। महावीर ने धर्म की ठीक-ठीक परिभाषा की हैः वथ्थु सहावो धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है।
इस जगत का जो अंतरतम स्वभाव है वह धर्म है। हमारा जो स्वभाव है वह हमारा धर्म है। अपने स्वभाव से परिचित हो जाना धर्म से परिचित हो जाना है। लेकिन वह बेचारा धारणाओं में ग्रस्त होगा। पागल तो निश्चित ही रहा होगा, निशाना भी लगाना आता नहीं! कम से कम निशाना लगाना तो ठीक से समझ लेना था, अनुभव कर लेना था, प्रयोग कर लेना था। छुरा भी मारा तो मुझे लगा नहीं।
यह भी कोई ढंग है? यह कोई शैली हुई? मुझसे भी पूछता तो मेरे पास यहां युवक हैं जो उसको प्रशिक्षित कर सकते थे कि कैसे छुरा फेंकना, कैसे मारना।
मारना ही हो तो प्रशिक्षण तो लेना चाहिए।

और छुरा भी कहां का मारा! वह लग भी जाता तो भी प्राण तो नहीं ले सकता था। उतना ही पुराना समझो जितना हिंदू धर्म। बाबा आदम के जमाने का समझो। और कंजूस भी पक्का था! साथ में अच्छे ढंग की तलवार भी रखे था, वह उसने अपने बेल्ट में छिपा रखी थी। वह काहे के लिए रखे रहा! सोचा होगा पहले सस्ते में काम चल जाए तो ठीक है। मराठा था कि मारवाड़ी था?
एक मारवाड़ी युवक पर आरोप था कि उसने अंधेरी गली में चंदूलाल को बंदूक द्वारा मार डालने की कोशिश की थी। अदालत में बचाव पक्ष के वकील ने कहाः अभियुक्त ने बंदूक से चंदूलाल की खोपड़ी का निशाना लगाया था, यह सच है। उनकी पुरानी खानदानी दुश्मनी है, यह भी सच है। किंतु अभियुक्त ने बंदूक का घोड़ा नहीं दबाया था।
न्यायाधीश ने पूछाः आश्चर्य की बात है! जब तुमने खोपड़ी का निशाना साध लिया था तो फिर गोली क्यों नहीं चलाई?
मारवाड़ी युवक ने गुस्से से भर कर कहाः क्या करूं श्रीमान, मैं घोड़ा दबाने ही वाला था कि इस बदमाश चंदूलाल ने पूछा कि इस बंदूक को कितने में बेचेगा? अब आप ही बताइए कि जब कोई धंधे की बात कर रहा हो तो उसको कैसे मारा जाए!
छुरे वह आदमी दो लाया था। पहले उसने सस्ता छुरा फेंका। निश्चित बुद्धू था! कोई भी काम थोड़ा अकल से तो और कुशलता से तो करना चाहिए! असली चीज निकाल ही न पाए और असली चीज उनके बेल्ट में ही रह गई।
मगर जब भी कोई आदमी गलत काम करने को जाता है तो ऐसा ही हो जाता है, कुछ
का कुछ हो जाता है। होश-हवास नहीं होते। चित्त तनावग्रस्त होता है, अशांत होता है। घबड़ाहट में, बेचैनी में जो हो गया हो गया। उसे ठीक-ठीक पता भी नहीं होगा, क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है। और किसने इसको ठेका दिया है हिंदू धर्म की रक्षा का? और यही एकमात्र ठेकेदार बचा बीस करोड़ हिंदुओं में!
पूना के लोगों में कुछ खूबी है। हिंदू धर्म की रक्षा का पूना के लोगों
को कुछ अजीब नशा है। महात्मा गांधी को गोली मारी--पूना के ही एक युवक ने। हिंदू धर्म की रक्षा करने गए थे वे! "पूना" शब्द बना है "पुण्य" से। पुण्य की नगरी है यह। धन्य है पुण्य की नगरी! खूब पुण्यात्मा लोग यहां पैदा होते हैं! पुण्य कर-करके दिखाते हैं!
लेकिन मतांध लोगों से यही आशा की जा सकती है। इसमें कुछ अनहोना नहीं हुआ, कुछ अनघट नहीं हुआ। मेरे जैसे व्यक्तियों को ये सब बातें अपेक्षित ही हैं, होंगी हीं, स्वाभाविक मान कर चलना चाहिए। मेरे जैसे व्यक्तियों के जीवन का ये अनिवार्य हिस्सा हैं।
तुम पूछते हो कि इस प्रसंग में हमें दिशा-बोध देने की अनुकंपा करें।
इतना ही खयाल रखना कि तुम भी मतांध मत हो जाना, बस। मैं तुम्हें धर्म देना चाहता हूं, मत नहीं। मैं तुम्हें प्रकाश देना चाहता हूं, प्रकाश के सिद्धांत नहीं। मैं तुम्हें अनुभव देना चाहता हूं, शास्त्र नहीं। मैं तुम्हें किसी धर्म के अंग नहीं बनाना चाहता, तुम्हें धार्मिक बनाना चाहता हूं।
भविष्य अब धर्मों का नहीं है; भविष्य है धार्मिकता का। अगर इस पृथ्वी
पर धर्म को बचना है तो उसे धर्मों से मुक्त हो जाना पड़ेगा। लद गए वे दिन-- ईसाइयों के, हिंदुओं के, मुसलमानों के! काफी मूढ़ता हो चुकी उन नामों पर। अब समय आ गया है, आदमी इतना प्रौढ़ हो चुका है कि अब धार्मिकता के दिन आ रहे हैं। यह सदी का अंत धार्मिकता का उदय देखेगा। लोग धार्मिक होंगे। जैसे कोई वैज्ञानिक होता है ऐसे लोग धार्मिक होंगे।
इसलिए मेरे जो संन्यासी हैं वे किसी धर्म के हिस्से नहीं हैं। वे धर्ममुक्त धार्मिक हैं। उनकी कोई धारणा नहीं। वे किसी धारणा में आबद्ध नहीं हैं।
तो इतना स्मरण रखना, क्योंकि यह भ्रांति अक्सर हो जाती है कि हम भूल जाते हैं असली बात को और नकली को पकड़ लेते हैं। मतांध मत हो जाना।
दूसरी बातः इस तरह की बात हुई है, और भी आगे हो सकती है। यह तो समझो एक सिलसिला है, एक शुरुआत है। कोई एकाध पागल ही होगा, ऐसा मत सोचना, और भी पागल

होंगे। लेकिन तुम्हारे मन में न तो क्रोध होना चाहिए, न तुम्हारे मन में किसी तरह की प्रतिहिंसा पैदा होनी चाहिए।
मैं इस बात से आनंदित हूं कि उस युवक को तुम में से किसी ने कोई चोट नहीं पहुंचाई। एक थप्पड़ भी नहीं मारा। उसने क्या किया वह तो दो कौड़ी की बात है, लेकिन तुमने जो किया उसका मूल्य बहुत ज्यादा है। तुमने मुझे बहुत आनंदित किया। तुमने उसे प्रेम से उठाया। तुम उसे प्रेम से उठा कर ले गए। पुलिस के अधिकारी भी चकित हुए, क्योंकि उनको लगता था कि तुम मारोगे, पीटोगे। लेकिन मारने-पीटने की तो बात अलग, तुमने एक थप्पड़ भी नहीं मारी। इतना ही ध्यान रखना। आगे भी ध्यान रखना। ऐसा फिर कभी हो तो इतना ही ध्यान रखना। और ऐसा ही नहीं कि वह असफल हो गया, इसलिए कोई अगर किसी दिन सफल भी हो जाए, मेरी देह भी छीन ले तो भी तुम्हारी तरफ से यही प्रेम, तुम्हारी तरफ से यही आनंद। तुम यह मत भूलना कि मैंने यह घोषणा की है कि सबके भीतर परमात्मा विराजमान है। उस व्यक्ति के भीतर भी विराजमान है--थोड़ा सा भ्रांत हो गया है, थोड़ा सा अंधेरे में पड़ा है, अंधेरे की स्थिति में है। लेकिन है तो परमात्मा ही। तुम्हारे सम्मान में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। तुम सम्मानपूर्वक ही उसके साथ व्यवहार करना। तुम्हारे भीतर क्रोध पैदा होगा, उससे मुझे ज्यादा कष्ट होगा। तुम्हारे भीतर प्रतिहिंसा पैदा होगी, तो मुझे ज्यादा पीड़ा होगी।
इसलिए मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं कि तुम दौड़े, तुमने उसे ऐसे उठाया जैसे कोई गिरे हुए आदमी को सड़क पर से उठा ले। तुमने उसे प्रेम से, सम्मान से, सत्कार से स्वागत दिया। यही संन्यासी का लक्षण होना चाहिए। यही धार्मिकता का लक्षण है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं पैंतीस वर्षीय बाल-ब्रह्मचारी हूं--अखंड! लेकिन कुछ समय से जब भी साधना के लिए बैठता हूं, चारों ओर एकदम स्त्रियां प्रकट हो जाती हैं! भगवान, क्या इंद्र मेरी तपश्चर्या को भंग करना चाहता है?

आत्मानंद ब्रह्मचारी! कलियुग में तुम सतयुगी ऋषि-मुनि मालूम होते हो। बेचारे इंद्र को क्यों कसूर दे रहे हो? कसूर तुम्हारा है। जबरदस्ती करोगे, अपने ऊपर कुछ अप्राकृतिक थोपोगे, तो आज नहीं कल देर-अबेर विस्फोट होगा। और तब गाली देने के लिए, दोषी ठहराने के लिए कोई चाहिए, तो बेचारे इंद्र को दोषी ठहराते हो। कहीं कोई इंद्र नहीं है, न कहीं कोई इंद्र का आसन है। वे तुम्हारे शास्त्रों में जो कहानियां हैं कि इंद्र का आसन डोलने लगता है; वह सिर्फ ऋषि-मुनियों की ईजाद है। ऋषि-मुनि डोल रहे हैं। और ऋषि- मुनि डोल रहे हैं अपने कारण--अपने दमन के कारण।
लेकिन मनुष्य के मन की यह बुनियादी लक्षणा है कि वह कभी भी दोष को स्वीकार नहीं करता है। दोष तो किसी और को देना चाहता है। बस किसी और को दोष दे दे तो उसे बड़ी राहत मिलती है। तुम बुरे से बुरा काम करो, तो भी तुम चाहते हो कि दोष किसी पर फेंक सको। फेंकते ही दोष किसी और के ऊपर, तुम निर्भार हो जाते हो। इसलिए दुनिया में कोई अपने को दोषी नहीं मानता; सब एक-दूसरे को दोषी ठहराते हैं। और जब कोई भी दोषी न ठहराया जा सके... अब जैसे यह अखंड ब्रह्मचर्य का मामला है, अब इसमें किसको दोषी ठहराओगे? तो पहला तो काम है कि स्त्रियों को दोषी ठहराओ। लेकिन स्त्रियों से भाग जाते थे ऋषि-मुनि दूर जंगल में, वहां कहां स्त्रियां, तो अब किसको दोषी ठहराओ? गांव में होते, बस्तियों में होते, तो स्त्रियां नरक का द्वार हैं!
स्त्रियों के संबंध में ऐसे अभद्र शब्द शास्त्रों में हैं कि सोच कर
भी हैरानी होती है। ये शास्त्र अब तक पूज्य बने हुए हैं! और अगर कहो कि इन शास्त्रों में क्या है तो कोई छुरा फेंकने को तैयार है, कि हमारे धर्म के विपरीत बात हो गई। और बातें ऐसी-ऐसी हैं कि इन छुरा फेंकने वालों ने कभी अपने शास्त्र देखे भी नहीं। काश! ये अपने शास्त्र खुद देख लें! मगर न इनको फुरसत है, न इच्छा है। ये तो पूजते हैं। कितने हिंदू हैं जिन्होंने वेद पढ़े हों? शायद ही तुम्हें मुश्किल से कोई हिंदू मिले जिसने वेद पढ़ा हो। जब

मैं वेद को पढ़ा... और मैं हिंदू नहीं हूं! मैं इस तरह के किसी पागलपन में सम्मिलित नहीं हूं।... तो मैं चौंका। मैं चौंका इस बात से कि सदियां हो गईं इन वेदों की पूजा करते-करते लोगों को, कोई इनको खोल कर देखता है या नहीं देखता है! और जब मैंने खोल कर देखा तो मैंने सोचा कि ठीक ही करते हैं लोग कि खोल कर नहीं देखते। तब मैं समझा राज न खोल कर देखने का, क्योंकि सौ में से निन्यानबे प्रतिशत कचरा। अब इसमें मैं क्या करूं या कोई भी क्या करे? तुम्हीं खोल कर देख लो। तुम खुद ही कचरा पाओगे। और इस कचरे को भी कहा जाता है कि यह अपौरुषेय है, यह परमात्मा ने स्वयं रचा है, आदमी का रचा हुआ नहीं है। परमात्मा अगर ऐसा कचरा रचता हो, जिसको कि कोई बिल्कुल तृतीय श्रेणी का अखबार भी छापने को राजी न होता, वह भी इसको रद्दी की टोकरी में फेंक देता, या अगर टिकट साथ में आए होते तो सधन्यवाद वापस लौटा देता, या कम से कम टिकट बचा लेता और इसको कचरे में फेंकता... यह परमात्मा का रचा हुआ है! परमात्मा को इस तरह की बातें लिखने की क्या जरूरत पड़ी होगी?
और किस-किस तरह की बातें, कि अगर तुम उठा कर देखो तो कोई स्त्री अपने
घर में वेदों को न टिकने दे, क्योंकि स्त्रियों के संबंध में ऐसे अभद्र वचन और कहीं मिलने असंभव हैं। वेदों में वर्णन है कि स्त्रियां इतनी ज्यादा पाशविक हैं, मनुष्यों में इनकी गिनती करना ही मत। ये पशुओं से गई-बीती हैं। और स्त्रियों के संबंध में इस-इस तरह के विवरण हैं कि तुम देखोगे तो तुम चकित होओगे कि जो ऋषि-मुनि ये विवरण लिख रहे हैं, ये क्या लिख रहे हैं! इस तरह के अभद्र विवरण, इस तरह की अश्लील बातें तो आज भी अश्लील से अश्लील साहित्य में उपलब्ध नहीं होतीं।
जैसे कल ही मैं देख रहा था। अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है कि घोड़े के पास यजमान की पत्नी को नग्न करके लिटा देते थे और फिर घोड़े से पत्नी प्रार्थना करती कि "हे अश्व, मैं अपनी दोनों जंघाएं फैलाती हूं। तुम भी अपने लिंग को बड़ा करो और मेरी योनि में प्रवेश करो। हम स्त्रियों को तुम्हारे संभोग से बड़ा आनंद मिलता है।"
ये ईश्वर कृत ग्रंथ हैं! और अगर यह बात किसी से कहो तो कोई छुरा मारने
को तैयार है! नहीं कि देखे जाकर कि बात कहां तक सच है... और यह कोई एकाध बार होता तो ठीक, जगह-जगह ये उल्लेख भरे पड़े हैं।
तो पहला तो काम, ऋषि-मुनि स्त्रियों को जितनी गालियां दे सकते हैं देंगे--कि स्त्रियां बेहूदी हैं, अभद्र हैं, नरक के द्वार हैं! ये पशुओं से भी व्यभिचार करने को आतुर रहती हैं, इनके व्यभिचार का क्या ठिकाना! आदमियों की तो बात क्या, ये पशुओं को भी आमंत्रित करती हैं कि आओ हमसे व्यभिचार करो। हमें बड़ा रस आता है! तो अगर ये ऋषि-मुनियों को बेचारों को, गरीब ऋषि-मुनियों को भ्रष्ट करती हों तो कुछ आश्चर्य नहीं।
मगर जंगल भाग गया आदमी यह भी नहीं कर सकता। वहां किसको गाली दे, वहां कोई स्त्री नहीं। वहां तो उसके भीतर ही कल्पना के जाल उठते हैं। जो दबा रखा है कामवासना का ज्वार उसने भीतर, वही धक्के मारता है, वही स्वप्न लेना शुरू करता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तीन सप्ताह तक तुम एकांत में रहो और कोई भी एक चीज का दमन करो, तो तीन सप्ताह के बाद तुम जागते हुए, खुली हुई आंख से सपना देखना शुरू कर दोगे। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, जिस पर प्रयोग किए गए हैं। जो तुम रात आंख बंद करके सपने में देखते हो, वह तुम दिन में खुली आंख से देखने लगोगे और बिल्कुल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा। विभ्रम पैदा हो जाएगा। और यह तीन दिन का सवाल नहीं है।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, तुम कहते होः "मैं पैंतीस वर्षीय बाल-ब्रह्मचारी हूं।"
पैंतीस साल से तुम अपने ऊपर ब्रह्मचर्य को थोप रहे हो, तो अगर स्त्रियां तुम्हें दिखाई पड़ने लगी हों तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। स्त्रियों से ही लड़ते रहे हो, उन्हीं से बचते रहे हो, उन्हीं से भागते रहे हो, उन्हीं की कल्पना तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ होती रही है। तो फिर अब किसको कसूर दें? तो जंगल में बैठे ऋषि-मुनि इंद्र को कसूर देते हैं; वहां स्वर्ग में कोई इंद्र, उसकी कल्पना करते हैं कि उसका आसन डोल रहा है। उसका आसन

क्यों डोलेगा? तो वह मेनका को भेजता है, उर्वशी को भेजता है--ऋषि-मुनियों को डिगाने के लिए।
न कहीं कोई मेनका है, न कहीं उर्वशी है, न कहीं कोई इंद्र है। यह ऋषि- मुनि की ही अपनी ही कल्पनाओं का जाल है--अपनी ही दमित वासनाओं का जाल है। सुंदर-सुंदर स्त्रियां खड़ी हो जाती हैं।
दोष तो किसी को देना ही होगा। तो दोष के लिए इंद्र को गढ़ लिया। इंद्र सच्चा होता तो बेचारा अपने पक्ष में कुछ बोलता भी, कहता भी कि भाई मेरा इसमें कोई हाथ नहीं। मगर इंद्र हो, तब कहे न! इंद्र तो कहीं है नहीं। वेदों में वर्णन है कि इंद्र जब कुपित हो जाता है तो बिजली चमकाता है, बादल गड़गड़ाता है, बिजली गिराता है, अपने दुश्मनों को मार डालता है। अब हम जानते हैं कि बिजली क्यों गड़गड़ाती है। और अब हम जानते हैं कि इंद्र देवता घर-घर में अपने-अपने मीटर में बंद हैं। जब चाहो, बटन दबाओ, पंखा चलाओ--इंद्र देवता पंखा चला रहे हैं! अब इंद्र देवता पंखा झल रहे हैं। पहले ये दुश्मनों को मारते थे, आदमियों को डराते थे। आटा पीस रहे हैं इंद्र देवता! अब पनचक्की तो रही नहीं, अब सब चक्कियां बिजली से चल रही हैं। क्या-क्या काम नहीं इंद्र देवता कर रहे हैं, जरा तुम हिसाब तो लगाओ। ऐसा कोई काम है जो इंद्र देवता न कर रहे हों। शूद्र भी जो काम न करने को राजी हों वह भी इंद्र देवता करने को राजी हैं। अब इंद्र देवता की कोई पूछताछ नहीं करता। तुमने यह खयाल किया, इंद्र देवता एकदम विदा हो गए हैं! ये आत्मानंद ब्रह्मचारी जैसे थोड़े से व्यक्तियों को छोड़ दो, जिनके लिए इंद्र देवता अभी भी जीवित हैं क्योंकि इनको जरूरत है, उनको जीवित रखना पड़ रहा है। बाकी किसके जीवन में इंद्र देवता का अब कोई मूल्य रहा? अब तुम प्रार्थना करते हो इंद्र देवता से? ऋग्वेद भरा हुआ है इंद्र से, वेद भरे हुए हैं इंद्र से। वेदों को पूजने वाले कितने हिंदू हैं जो आज इंद्र देवता की पूजा करते हों? इंद्र देवता से कोई लेना ही देना नहीं रहा, बात ही टूट गई। देख लिया, राज ही खुल गया सब। इंद्र देवता के हाथ से सब चला गया, बिजली भी चली गई, बादल भी चले गए। अभी हमारे मुल्क में बादल उन्हीं के हाथ में हैं, इसलिए अभी यज्ञ-हवन पंडित-पुरोहित और उनके पीछे चलने वाली मूढ़ों की जमात अभी भी करती है। लेकिन रूस जैसे देश में अब बादल भी इंद्र देवता के हाथ में नहीं हैं! अब रूस जहां चाहता है वहां बादलों से पानी गिरवा लेता है। हवाई जहाज को बादलों के ऊपर उड़ा कर, हवाई जहाज से बर्फ की पतली फुहार बरसा कर, ठंडक देकर, वर्षा करवा ली जाती है, किसी भी बादल से वर्षा करवा ली जाती है। इंद्र देवता बेचारे मुंह बाए देखते रहते होंगे कि मेरा बादल और ये रूसी दुष्ट क्या समझें हैं मुझको--अफगानिस्तान समझे हुए हैं या क्या समझे हुए हैं? और मुझसे वर्षा करवा रहे हैं और मुझे करनी पड़ रही है! और जहां बादलों को ले जाना चाहते हैं रूसी, वहां बादल ले जाते हैं।
रूस में जो आज से साठ साल पहले रेगिस्तान थे, वे अब हरे-भरे बगीचे बन
गए हैं। रेगिस्तान खत्म हो गए। जहां एक घास का अंकुर नहीं ऊगता था, आज वहां सुंदर फूल खिल रहे हैं। और हुआ क्या? छोटा सा राज है बादलों को ले आने काः जहां भी बादल लाने हों वहां इतना उत्ताप पैदा कर दो, इतनी गर्मी पैदा कर दो, गर्मी के कारण वायु विरल हो जाती है। वायु विरल हो जाती है, स्थान खाली हो जाता है। खाली स्थान को भरने को आस-पास से बादल एकदम दौड़ पड़ते हैं। तो जहां भी पानी गिराना हो, वहां विरल वायु पैदा कर दो, बादल दौड़ पड़ेंगे, वर्षा हो जाएगी। और जहां से बादल हटाने हों वहां से बादल हटाए जा सकते हैं। रूस में कोई यज्ञ करने की जरूरत नहीं पड़ती।
हम अभी भी यज्ञ किए चले जाते हैं। लेकिन वैसे इंद्र देवता मर गए हैं।
अब कोई इंद्र देवता की चिंता नहीं करता। उनके हाथ से बहुत ताकत जा चुकी। थोड़ी-बहुत बची-खुची है, वह भी चली जाएगी। मगर तथाकथित ऋषि-मुनि अभी भी गुफाओं में बैठ कर जब स्त्रियों से परेशान होते हैं तो इंद्र देवता की याद करते हैं।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, तुम निश्चित सतयुगी हो। धन्यभागी हो! कहां कलियुग में भटक आए लेकिन? यह कलियुग तुम्हारे लिए नहीं है। सतयुग में होते तो न मालूम वशिष्ठ होते कि विश्वामित्र होते। और अभी, मेरे जैसे लोगों के

कारण किसी मानसिक चिकित्सालय में भर्ती कराने योग्य हो, और कुछ भी नहीं। यहां आ गए, अच्छा हुआ। हमारे पास चिकित्सालय की व्यवस्था है, वहां तुम्हारी चिकित्सा हो सकेगी। इंद्र देवता की कोई जरूरत नहीं है। किसी का आसन नहीं डोल रहा है। मेरी कुर्सी तक नहीं डोल रही, इंद्र देवता का आसन क्यों डोलेगा! इंद्र देवता यह पंखा चला रहे हैं।
लेकिन दमन का यह परिणाम है।
झेन कथा है, बड़ी प्रसिद्ध कथा है, मुझे बहुत प्रीतिकर है, बहुत बार मैंने कही है। जितनी बार कहता हूं उतनी ही प्रीतिकर लगती है। दो बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांग कर अपने विहार को लौट रहे हैं। सांझ हो रही है, सूरज ढल रहा है। वे एक नदी-तट पर आते हैं। वृद्ध भिक्षु आगे है। नदी-तट पर एक युवती खड़ी है--बहुत सुंदर युवती! और ध्यान रखना, जरूरी नहीं है इतनी सुंदर रही हो जितनी सुंदर वृद्ध को मालूम पड़ी हो। भिक्षुओं को जितनी स्त्रियां सुंदर दिखाई पड़ती हैं उतनी औरों को नहीं दिखाई पड़तीं। भूखे आदमी को भोजन जितना स्वादिष्ट मालूम पड़ता है, भरे पेट आदमी को नहीं मालूम पड़ता, यह सीधा सा नियम है। दो-चार दिन उपवास करके देखो और तुम एकदम हैरान हो जाओगे--कहीं से भी निकलो और तुम्हारे नासापुट एकदम भोजन की गंध से भरने लगेंगे। पड़ोसी के मकान में भोजन बनेगा, पकौड़े पकेंगे और तुम्हें गंध आएगी। पहले कभी नहीं आई थी। तुम्हारे नासापुट एकदम सजीव हो उठे। रास्ते से निकलोगे, जूते की दुकान दिखाई ही नहीं पड़ेगी; बस कहीं रेस्त्रां, कहीं होटल, कहीं रसगुल्ले की दुकान, कहीं कुल्फी, बस इस तरह की चीजें दिखाई पड़ेंगी। और दुनिया खो जाएगी। हमारे भीतर की जो कमी होती है, वह हमें बाहर दिखाई पड़ने लगती है। उस वृद्ध ने देखा यह सुंदर युवती खड़ी है। वह अपनी आंख नीची कर लिया, तत्क्षण बुद्ध का स्मरण करने लगा--बुद्धं शरणं गच्छामि! ऐसे ही समय के लिए तो मंत्र हैं। मंत्र तो रक्षा करने के लिए हैं। वह बुद्ध की याद करने लगा। और बुद्ध ने कहाः चार फीट से ज्यादा मत देखना। अब समझा कि राज--क्यों कहा चार फीट से ज्यादा नहीं देखना! पहले ही अगर चार फीट तक नीचे देखा होता तो यह झंझट में क्यों पड़ता, यह सुंदर स्त्री अब दिखाई पड़ चुकी थी। अब वह लाख "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि" कर रहा है, मगर दिल तो उस स्त्री में अटका हुआ है। और वह स्त्री और सुंदर होती जा रही है। वह एकदम तेजी से कदम बढ़ाने लगा कि जल्दी नदी पार कर जाए। अरे कुछ से कुछ हो जाए! एकांत का मामला, कोई है नहीं, सन्नाटा है। और ऐसी घड़ी में भिक्षु अपने पर भरोसा नहीं कर सकता। रहा होगा आत्मानंद ब्रह्मचारी जैसा। जल्दी-जल्दी नदी पार कर गया। नदी कोई ज्यादा गहरी नहीं है, लेकिन फिर भी गले-गले तक पानी आ जाता है। निकल गया उस पार। उस पार जाकर उसे खयाल आया कि मेरे ही पीछे मेरा एक युवक संन्यासी भी आ रहा है। उसका ही गुरुभाई है। वह अभी नया-नया दीक्षित हुआ है। वह मूढ़ है, उसको क्या पता, कहीं फंस न जाए चक्कर में! वह भी देखेगा इस लड़की को।
अब बूढ़े को बड़ी बेचैनी होने लगी। जिन्होंने कामवासना को दबाया है उनके भीतर ईर्ष्या भी बहुत जलती है। हालांकि उसने ईर्ष्या को भी धर्म की आड़ दी। उसने यही अपने मन को समझाया कि मैं तो उस युवक की चिंता कर रहा हूं कि कहीं भ्रष्ट न हो जाए। अरे मैं तो बूढ़ा हूं, समझदार हूं, किसी तरह "बुद्धं शरणं गच्छामि" कह कर निकल आया, मगर वह कहीं उलझ न जाए। अब और सन्नाटा हो गया है और सूरज बिल्कुल डूबने के करीब है। अब अंधेरा ही होने के करीब है। अब वह पहुंचा होगा किनारे पर।
और तब वह युवक किनारे पर पहुंचा। उस युवती को खड़ा देख कर उसने पूछा कि क्या बात है, रात उतर रही है, इस अंधेरी जगह में अकेले रुकने का इरादा है? उस युवती ने कहाः मैं उतरने में डरती हूं। पानी गहरा है, कहीं बह न जाऊं। धार तेज है।
उस युवक ने कहाः मेरे कंधे पर बैठ जा, मैं तुझे उतार देता हूं। वह उस युवती को कंधे पर लेकर उतार रहा है। जब वह उस तरफ पहुंचा और बूढ़े ने यह दृश्य देखा, तो तुम सोच सकते हो उसकी छाती पर एकदम सांप लोट गया! इंद्र का आसन डिगा या नहीं, लेकिन उसका आसन बिल्कुल डिग गया। हालांकि अंतसचेतन में तो ईर्ष्या जगी, भीतर तो बहुत गहरे में यह हुआ कि काश मैंने इसे कंधे पर

बिठाया होता! ये सुंदर-सुंदर जांघें, यह प्यारी-प्यारी देह, यह कोमल त्वचा, यह युवा स्त्री! मगर ऊपर से यही भाव उठा कि यह मूढ़ युवक, अभी नया संन्यासी, नया दीक्षित, इसको पता नहीं है कि बुद्ध ने कहाः स्त्रियों को छूना मत, देखना मत। बात मत करना उनसे।
मैं नहीं सोचता यह बुद्ध ने कहा होगा। यह बुद्ध के पीछे आने वाले बुद्धुओं ने जोड़ा होगा। बुद्ध जैसे व्यक्ति इस तरह की बातें नहीं कहते-- नहीं कह सकते हैं! अगर कहें तो उनमें और बुद्धुओं में भेद न रह जाए।
उस युवक ने उस युवती को वहीं किनारे पर उतार दिया। युवती ने धन्यवाद दिया, युवक चल पड़ा। बूढ़ा भी चल पड़ा, लेकिन बूढ़ा आग से जला-भुना जा रहा है। इतना जला-भुना जा रहा है, कुछ बोल न सका क्रोध में। दो मील बाद जब वे विहार की सीढ़ियां चढ़ रहे थे, अपने आश्रम में पहुंचे, तो द्वार पर बूढ़ा ठिठका, उसकी आंखें जल रही हैं और उसने युवक से कहा कि सुन, तूने जो किया है वह महापाप है!
उस युवक ने कहाः कौन सा महापाप? अभी मैंने क्या किया? अभी दो मील से तो
हम एक-दूसरे से बोले भी नहीं, बिल्कुल चुप ही रहे हैं।
उस बूढ़े ने कहाः दो मील की बात नहीं, दो मील पहले की बात याद कर। तूने
जो किया, महापाप है। मैं गुरु को कहूंगा। मैं बिना कहे नहीं रह सकता। यह बरदाश्त के बाहर है।
उस युवक ने कहाः मुझे याद नहीं आता मैंने क्या किया दो मील पहले। आप साफ-साफ कहें।
उस बूढ़े ने कहाः साफ-साफ समझ में नहीं आता तुझे? तूने उस सुंदर युवती
को कंधे पर बिठाल कर नदी पार करवाई। यह बौद्ध भिक्षु को शोभा देता है? तेरा संयम खंडित हो चुका है।
वह युवक हंसने लगा। उसने कहा कि क्या भंते, मैं निवेदन करूं एक बात, कि मैं उस युवती को दो मील पहले नदी के तट पर उतार भी आया, मगर आप उसे अब भी कंधे पर लिए हुए हैं!
आत्मानंद ब्रह्मचारी, पैंतीस साल से तुम न मालूम कितनी युवतियों को कंधों पर लिए हुए हो। वे ही युवतियां तुम्हें परेशान कर रही हैं। इसमें कसूर इंद्र का नहीं है। इंद्र को क्षमा करो। दोष अपना खोजो।
और अक्सर यह होता है कि जब आदमी जवान होता है तो अपनी किसी भी वासना को दबा सकता है, क्योंकि उसके पास बल होता है।
तुम कहते होः "मैं पैंतीस वर्षीय बालब्रह्मचारी हूं--अखंड!"
किस गौरव से कह रहे हो! किस शान से यह बात तुम घोषणा कर रहे हो! लिखते वक्त प्रश्न दिल ही दिल में बहुत आनंदित हुए होओगे कि सबको पता चल जाएगा कि यहां एक अखंड ब्रह्मचारी आया हुआ है। पैंतीस साल तक ब्रह्मचर्य को साधना कठिन नहीं है, क्योंकि पैंतीस साल तक आदमी के पास बल होता है, पैंतीस साल में हम अपनी पराकाष्ठा छू लेते हैं। फिर पैंतीस साल के बाद उतार शुरू होता है। सत्तर साल में मरना है न, तो पैंतीस साल में चढ़ते हैं पहाड़ी, फिर पैंतीस साल में उतरते हैं पहाड़ी। अब तुम उतार पर हो। अब उतार शुरू हुआ। अब तुम्हारी ऊर्जा कम होने लगेगी। जिस ऊर्जा से तुमने वासना को दबाया था, वह कम होने लगेगी। और वासना तो दबी की दबी है, उतनी की उतनी, वैसी ही प्रज्वलित है। और उसको दबाने वाले हाथ कमजोर होने लगेंगे। अब तुम मुश्किल में पड़ोगे। अब रोज-रोज मुश्किल बढ़ेगी। अब तुम इंद्र को तलाशोगे। और इंद्र का इसमें कोई भी हाथ नहीं है।
और अगर स्त्रियां प्रकट हो जाती हैं तुम्हारे चारों तरफ जब तुम साधना करने बैठते हो, तो यह किस तरह का अखंड ब्रह्मचर्य हुआ? स्त्रियां तुम्हें घेर कर चल रही हैं, तो रासलीला चल रही है, इसमें कहां ब्रह्मचर्य है? "ब्रह्मचर्य" शब्द को समझो। ब्रह्मचर्य शब्द बड़ा प्यारा है, बड़ा अदभुत है! इस शब्द में बड़ा राज है, बड़ा रहस्य है। जिन्होंने इसको गढ़ा होगा, गजब के लोग रहे होंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः ब्रह्म जैसी चर्या। सीधा- सीधा अर्थ हैः ईश्वरीय आचरण, दिव्य आचरण। मगर ये दबाने से नहीं होता। यह तो ध्यान का अंतिम फल है। तुमने ध्यान किया है? तुमने शून्य को जाना है? तुमने अपने भीतर उस परम सन्नाटे की अनुभूति की है, जहां सब मिट जाता है?

विचार दूर, बहुत दूर छूट जाते हैं, सुनाई भी नहीं पड़ते। मन कहां खो गया, पता भी नहीं पड़ता। तुमने उस अ-मनी दशा को अनुभव किया है? अगर किया होता तो फिर तुम्हारे जीवन में ब्रह्मचर्य की सुगंध उठती। अभी तो तुम जिसको अखंड ब्रह्मचर्य कह रहे हो, थोथा दावा है।
तुम्हारे जैसे ही एक ब्रह्मचारी को मैं जानता हूं, नाम है उनका-- मटकानाथ ब्रह्मचारी। मटकानाथ ब्रह्मचारी सुबह जब मंदिर से लौट रहे थे तो उन्होंने देखा कि रास्ते के किनारे पर एक जगह बच्चों की बड़ी भीड़ जमा है। वे वहां पहुंचे। देखा कि भीड़ के बीच में एक छोटा सा पिल्ला खड़ा है। खूबसूरत कुत्ते का पिल्ला। मटकानाथ ने यह सोच कर कि बच्चे इस निर्दोष जानवर को सता रहे होंगे, जोर से चिल्ला कर कहाः चलो, भागो यहां से। रफा-दफा हो जाओ। नहीं तो मैं मारूंगा। क्यों उस छोटे से पिल्ले को तंग कर रहे हो?" हम लोग उसे तंग नहीं कर रहे--एक बच्चे ने उत्तर दिया। हम लोगों में एक प्रतियोगिता हो रही है कि जो भी सबसे बड़ा झूठ बोलेगा, उसी को यह पिल्ला ईनाम में दिया जाएगा।
ब्रह्मचारी जी ने कहाः हद हो गई! झूठ बोलना कोई प्रतियोगिता का विषय
है क्या? अरे कोई अच्छी बात पर प्रतियोगिता करो। मगर वह तुम करोगे कैसे! दोष तुम्हारा नहीं, कलियुग का दोष है। इतनी छोटी उम्र और झूठ बोलना सीख गए? अरे जब मैं तुम्हारी उम्र का था, तब तो मैं जानता तक नहीं था कि झूठ बोलना किस चिड़िया का नाम है।
लीजिए यह पिल्ला आपका हो गया। ऐसा कहते हुए एक बच्चे ने उस पिल्ले को उठा कर मटकानाथ के हाथों में दे दिया। सभी बच्चे तालियां पीटने लगे और बोलेः "गजब कर दिया आपने! एक भी मिनट न लगा आपको और आप ईनाम जीत गए!
अगर तुम होते आत्मानंद ब्रह्मचारी, तुम भी ईनाम जीत सकते थे। अखंड ब्रह्मचर्य! तुम्हारे स्वप्न में वासना चलेगी, सरकेगी--कहो या न कहो। तुम्हारे विचारों में, तुम्हारी कल्पनाओं में वासना का जहर होगा--कहो या न कहो। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ आश्चर्य जैसा नहीं है। लेकिन यह हो सकता है कि जब उम्र होती है, ऊर्जा होती है, तो आदमी डंड-बैठक मार-मार कर अपने को दबा रख सकता है। लेकिन कब तक ऊर्जा रहेगी? अब ऊर्जा के उतरने के दिन आ गए। इंद्र वगैरह का हाथ नहीं है। अब तुम्हारा उतार शुरू हुआ। अब तुम रोज-रोज मुश्किल में पड़ोगे। असली मुश्किल पैंतालीस साल के बाद आनी शुरू होगी।
इसलिए अक्सर तुम्हारे तथाकथित बाल-ब्रह्मचारी पैंतालीस और पचास साल
के बीच भ्रष्ट होते हैं। किसी की स्त्री ले भागेंगे या कुछ भी उपद्रव कर लेंगे। कुछ कहा नहीं जा सकता क्या करें।
कल मैं नई दिल्ली की खबर पढ़ रहा था। सत्तर साल के एक बूढ़े आदमी ने आठ साल की एक बच्ची को व्यभिचारित करने की कोशिश की। आठ साल की बच्ची को सत्तर साल का बूढ़ा भगा कर ले गया। गजब की बात है! बूढ़े को भी खूब सूझी! खूब दूर की सूझी! इसी को तो कहते हैं--अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी! इसको चाहो तो तुम अच्छा लक्षण भी मान सकते हो कि अब भारत में सत्तर साल के बूढ़े भी जवान होने लगे। मगर आठ साल की बच्ची को! वह तो लोगों ने पकड़ लिया उसको। लेकिन उस बच्ची के साथ छेड़खानी कर रहा था एकांत में ले जाकर। वह कुछ उपद्रव करता। अब यह पता नहीं बेचारा कितने दिन से दबा रहा था, उस कथा को तो कोई भी नहीं जानेगा। उस कथा को तो कोई भी नहीं पहचानेगा, अदालत भी नहीं सुनेगी। हो सकता है इसने जीवन में न मालूम कितना दबाया हो, तब तो यह दुर्दशा अब उत्पन्न हो रही है।
चरित्र के नाम पर तुम्हें दमन सिखाया जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन जब जवान हुआ और पास-पड़ोस की युवतियों के साथ छेड़खानी करने लगा, तो मोहल्ले के एक बुजुर्ग मौलवी ने उसे एक दिन अपने घर बुला कर प्रेमपूर्वक समझायाः सुनो बेटा, अब तुम बचपन की देहली पार कर चुके हो। यही समय है आदमी के बनने या बिगड़ने का। अतः सावधानी से मेरी बात सुनो और उस पर अमल करो। इस उम्र में अपना चरित्र बनाने के लिए यही सबसे जरूरी बात है कि तुम जिस किसी लड़की से भी मिलो उसे ही अपनी मां समझो।

नसरुद्दीन ने एक क्षण सोचा और जवाब दियाः मौलवी साहब, आपकी बात पर अमल करने से मेरा चरित्र तो निश्चित रूप से सुधर जाएगा। मगर यह तो सोचिए जरा कि मेरे अब्बाजान के चरित्र पर क्या गुजरेगी! और आप भी यदि अपनी पत्नी को मां मानने लगें तो इस कहावत का क्या होगा कि उल्लू मर गए और औलाद छोड़ गए? फिर उल्लू मर जाएंगे, औलाद नहीं छोड़ जाएंगे।
अब इस बूढ़े को पता नहीं किस-किस ने समझाया होगाः चरित्र बनाओ! हर स्त्री को अपनी मां, अपनी बहन समझो। यह समझता रहा होगा बेचारा। अब देखता है कि मौत द्वार पर खड़ी है, अब कब तक समझता रहे मां-बहन! और अब इतनी हिम्मत भी न रही होगी कि किसी युवती को छेड़े। युवती को छेड़ेगा तो पिटाई हो जाएगी, युवती ही पीट देगी। तो अब बूढ़ा किसी बच्ची को छेड़ रहा है। ये दुर्दिन किसने दिखलाए? यह तुम्हारे तथाकथित नैतिक, तथाकथित चरित्रवादियों की शिक्षाओं का परिणाम है। जीवन को स्वाभाविक होना चाहिए। जीवन को अस्वाभाविक बनाओगे तो अपने आप मुश्किल में पड़ोगे।
अगर आत्मानंद, तुम यहां तक आने की हिम्मत कर लिए... और यह हिम्मत का काम
है यहां आ जाना पुराने ढब के लोगों को। ब्रह्मचारी इत्यादि के लिए बड़ी हिम्मत का काम है। क्योंकि यहां मेनकाएं भी हैं, उर्वशियां भी हैं। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम जीवन में सरल बनो। ब्रह्मचर्य को थोपो मत। और मैं मानता हूं कि ब्रह्मचर्य बहुमूल्य है, मगर आना चाहिए, थोपा हुआ नहीं। खिलना चाहिए, जबरदस्ती नहीं।
मेरी अपनी समझ यह है कि अगर व्यक्ति जीवन को स्वाभाविक, सरलता से, होशपूर्वक जीए तो ब्रह्मचर्य अपने आप आएगा। जैसे फूलों में अपने आप गंध आती है, कोई ऊपर से लाकर रेवलान की बॉटल थोड़े ही छिड़कनी पड़ती है! अपने से गंध आती है। उसी मिट्टी में गंध छिपी है। जिस मिट्टी में गंध नहीं आती, उसी मिट्टी में से फूल तक गंध आ जाती है। उसी मिट्टी में से फूल गंध चुन लेता है।
तुम्हारी देह में ही राज छिपा है। तुम्हारी देह इस जगत का सबसे बड़ा रहस्य है। उसमें स्वर्ग छिपा है, उसमें निर्वाण छिपा है। उसमें परमात्मा निवास कर रहा है। तो जहां परमात्मा का निवास है, जहां ब्रह्म का निवास है, वहां ब्रह्मचर्य भी आ जाएगा। लेकिन तुम उसकी कीमिया को समझो। ब्रह्मचर्य ध्यान का परिणाम है। लेकिन तुम्हें समझाया गया है सदियों से ठीक उलटा कि ब्रह्मचर्य साधो तो ध्यान सधेगा। यह बात ही गलत है। ब्रह्मचर्य को साधने से ब्रह्मचर्य भी नहीं सधेगा। ध्यान भी नहीं सधेगा। और जब भी तुम ध्यान करने बैठोगे तब-तब तुम्हें वासना सताएगी।
मैं तुमसे कहता हूंः ध्यान साधो, ब्रह्मचर्य की फिक्र छोड़ो। कुछ ब्रह्मचर्य से लेना-देना नहीं है। कोई चिंता मत लो उसकी।
लेकिन अजीब-अजीब बातें बताई गई हैं!
किसी मित्र ने पूछा हैः काम-विकार से पीड़ित हूं, क्या करूं? विकार क्यों कहते हो? अगर तुम्हारे पिताजी भी काम-विकार से पीड़ित न होते तो तुम कहां होते? और बुद्ध के पिता अगर काम-विकार से पीड़ित न होते तो दुनिया बुद्ध से वंचित रह जाती। काम-विकार से बुद्ध पैदा हुए। काम-विकार से महावीर पैदा हुए। विकार से इस तरह के अदभुत चमत्कार पैदा हो सकते हैं? विकार नहीं है, मगर तुमने पहले से ही घोषणा कर दी--काम-विकार! इससे कैसे छुटकारा हो?
विकार नहीं है, काम ऊर्जा है। काम तुम्हारे भीतर की अंतर्निहित संभावना है। काम अभी ऐसे है, जैसे कच्चा हीरा, खदान से निकला। माना कि अभी हीरा, है, लेकिन अभी जौहरी ही परख सकेंगे। अभी हर कोई नहीं परख सकेगा। लेकिन अगर पड़ जाएगा जौहरी के हाथ में, निखारेगा इसको, साफ करेगा इसको, पहलू देगा इस पर, चमकाएगा इसे। और तब एक दिन कोई अंधा भी पहचान लेगा।
काम विकार नहीं है, काम तुम्हारे जीवन की ऊर्जा है। इसी काम से तुम्हारे बच्चे पैदा होते हैं और इसी काम से तुम्हारा पुनर्जन्म हो सकता है। यह काम तो शक्ति है; नीचे की तरफ बहे तो संतति बनती है, ऊपर की तरफ उठने लगे तो समाधि बन जाती है। इसको विकार मत कहो।

मगर तुम्हें निंदा सिखाई गई है। और ध्यान रखना, जिस चीज की भी निंदा की, फिर उस चीज को तुम समझने में असमर्थ हो जाओगे। निंदा समझने ही नहीं देगी।
निष्कर्ष मत लो। बिना निष्कर्ष लिए, ध्यानपूर्वक अपने जीवन की सारी ऊर्जाओं को समझने की चेष्टा में डूबो। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। यह मूर्खतापूर्ण बात, यह अखंड ब्रह्मचर्य जाने दो, विदा करो। सरल स्वाभाविक बनो। तो अभी देर नहीं हो गई है, पैंतीस साल कुछ बहुत देर नहीं हो गई है। अभी कम से कम पैंतीस साल तुम जिंदा रहोगे। और पैंतीस साल भी क्या, पांच साल भी जिंदा रह जाओ, पांच दिन भी जिंदा रह जाओ अगर ठीक ढंग से, तो निर्वाण पाया जा सकता है। लेकिन ठीक ढंग का सवाल है। और इस ढंग से अगर रहे तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। मरते वक्त भी तुम स्त्रियों के खयाल से ही भरे रहोगे। मरते क्षण भी स्त्रियों की ही सोचोगे।
मरते वक्त भी आदमी वही सोचता है जो उसने जीवन भर सोचा है। मरते वक्त
और जोर से वही सोचता है।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, ध्यान पर शक्ति को लगाओ। और सब तरफ से अपनी बातों को, अपने विचारों को मुक्त कर लो। जीवन को स्वाभाविक बनाओ। जैसे भोजन है वैसा ही काम है। कोई चिंता की बात नहीं है। नैसर्गिक है। निंदा करके अपने बीच और अपनी ऊर्जा के बीच व्यवधान खड़े न करो। दमन बहुत खतरनाक है।
मैंने सुना, एक होटल में एक आदमी मेहमान हुआ। मैनेजर जगह देने को राजी नहीं था। मैनेजर ने कहा कि हमारे पास स्थान खाली नहीं है। एक कमरा जरूर खाली है, लेकिन हम दे नहीं सकते। पूछा उस यात्री नेः क्यों? तो कहा कि उस कमरे के नीचे एक बड़े राजनेता ठहरे हुए है, वे बड़े गुस्सेबाज हैं। जब से पद पर पहुंचे हैं, उनका सिर बहक गया है। किसका नहीं बहक जाता! अगर ऊपर जरा भी आवाज हो जाती है तो वे इतना उपद्रव मचा देते हैं। तुम अगर ऊपर रहे, कोई बर्तन गिर गया, या कुछ बात हो गई, या तुम जोर से चल भी दिए ऊपर और उनके पास आवाज पहुंच गई, तो वे सारे होटल को सिर पर उठा लेंगे।
उस आदमी ने कहाः आप बिल्कुल निश्चिंत रहें। मुझे दिन भर बाजार में काम करना है, रात बारह बजे लौटूंगा। और चार घंटे सिर्फ मुझे सोना है। और चार बजे की गाड़ी मुझे पकड़नी है। इसलिए क्या मुझसे भूल-चूक होने वाली है? और मैं ध्यान रखूंगा, चार घंटे जो सोऊंगा कि नींद में कुछ गड़बड़ न हो। ऐसे भी नींद में क्या गड़बड़ हो सकती है?
मैनेजर ने भी देखा कि कोई गड़बड़ की बात नहीं है, जगह दे दी। रात को वह आदमी बारह बजे थका-मांदा लौटा। इतना थका था कि बिस्तर पर बैठ कर उसने एक जूता खोला और पटक दिया। जूते का गिरना था कि उसको खयाल आया कि कहीं वे राजनेता उपद्रव खड़ा न कर दें, कहीं नींद न खुल जाए उनकी! तो उसने दूसरा जूता बहुत आहिस्ते से रखा कि आवाज न हो। अब एक भूल हो गई हो गई, दूसरी न हो। सो गया। दो घंटे बाद कोई ने जोर से दरवाजा भड़भड़ाया। चौंका, दरवाजा खोला, राजनेता खड़े थे। एकदम भन्ना रहे थे, कि तुमने समझ क्या रखा है? दूसरे जूते का क्या हुआ?
उस आदमी ने कहाः दूसरे जूते का क्या हुआ! तब उसे याद आया। उसने कहाः अच्छा! पहला जूता मैंने भूल से पटक दिया था?
उन्होंने कहाः पहले का तो मुझको पता है, क्योंकि तुमने जब पटका तो उसकी आवाज हुई थी। उससे मुझे दिक्कत नहीं हुई। फिर मैं सोचने लगा कि दूसरा क्यों नहीं पटका! यह आदमी है कैसा, क्या एक जूता पहने ही सो गया! मैंने लाख अपने को समझाया कि मुझे क्या मतलब, उसकी मर्जी, अगर एक पहने उसको सोना है तो सोए। मगर मेरी नींद नहीं लग रही। मैं बेचैनी में पड़ा हुआ हूं। मुझे यह बात ही बहुत परेशान कर रही है कि एक आदमी एक जूता पहने सो रहा है। आखिर जब मैंने देखा कि सोने का कोई उपाय नहीं तो मैंने कहा मैं जाकर पूछ ही लूं। तो महाशय, यह जानने आया हूं कि दूसरे जूते का क्या हुआ?
अब दूसरा जूता इस आदमी के सिर पर लटक रहा है। व्यर्थ की बात दबा दी तो
दो घंटे सो नहीं सका, रात भर नहीं सो सकता था। और तुम तो जो दबा रहे हो, वह बड़ा नैसर्गिक मामला है। इससे छुटकारा नहीं हो सकेगा। मरते दम तक तुम

स्त्रियों से ही भरे रहोगे। मरते घड़ी भी तुम्हें स्त्रियां ही दिखाई पड़ेंगी। और तब तुम यही सोचोगे कि इंद्र परेशान हो रहा है और इंद्र मेनका को, उर्वशी को भेज रहा है। न कहीं कोई इंद्र है, न कहीं कोई उर्वशी है, न कोई मेनका है। ये सब दमित वासना के खेल हैं। अभी भी समय है, जाग जाओ, सचेत हो जाओ।
और तुम ठीक जगह आ गए हो, जहां इस तरह की व्यर्थ की बकवास से छुटकारा हो सकता है। मैं तुम्हारा दूसरे जूते से छुटकारा दिलवा सकता हूं। दूसरे से क्या, पहले से भी दिलवा देंगे। लेकिन तुम्हें यह भ्रांति और यह अकड़ छोड़नी होगी। यह अखंड ब्रह्मचर्य, यह बाल-ब्रह्मचर्य--यह सब व्यर्थ की बकवास है। स्वाभाविक मनुष्य होने की कोशिश करो। साधारण होने की अपने भीतर स्वीकृति दो।
इस जगत में सबसे असाधारण लोग वे ही हैं, जो अपने को साधारण मानते हैं। जिन्होंने अपने को बिल्कुल साधारण माना और जाना है, उनके भीतर भगवत्ता प्रकट होती है।
ब्रह्मचर्य के संबंध में यह जो सारी बकवास चलती है, यह लोगों को जंचती है। यह किनको जंचती है मालूम है? या तो ना समझ बच्चों को जम जाती है यह बात, क्योंकि उनकी अभी कोई समझ नहीं, अभी उन्हें कोई अनुभव नहीं। और या फिर विवाहित लोगों को जमती है यह बात, क्योंकि विवाहित लोगों को विवाह का जो कड़वा अनुभव होता है, उससे उनको ब्रह्मचर्य ठीक मालूम होने लगता है कि ठीक ही होगा, क्योंकि वे जो कष्ट भोग रहे हैं... । मगर इस दुनिया में राज कुछ ऐसा है कि विवाहित सोचते हैं अविवाहित मजे में हैं और अविवाहित सोचते हैं कि विवाहित मजे में हैं। हर आदमी सोचता है, दूसरा आदमी मजे में है। पड़ोसी के बगीचे की घास ज्यादा हरी मालूम होती है। पड़ोसी की पत्नी भी ज्यादा सुंदर मालूम होती है। क्योंकि बाहर जब लोग निकलते हैं तो मुखौटे ओढ़ लेते हैं, सुंदर-सुंदर चेहरे बना लेते हैं।
एक बार चंदूलाल और उनकी पत्नी के बीच लेखन को लेकर बड़ा झगड़ा चल पड़ा। चंदूलाल ने अपनी पत्नी को कहा कि कई बार तुम्हें पहले भी बोला है कि पति में हमेशा बड़ी ई की मात्रा लगाया करो। पति को शास्त्रों में परमात्मा कहा है। छोटी इ की मात्रा पति में नहीं जंचती। और पत्नी में छोटी इ की मात्रा लगाया करो। लेकिन तुम हो कि जब देखो तब पत्नी में बड़ी ई की मात्रा और पति में छोटी इ की मात्रा लगाती हो। यह बरदाश्त के बाहर हो गई है बात। यह मेरा अपमान सरासर किया जा रहा है। हर जगह मेरा अपमान किया जा रहा है।
चंदूलाल तो इतने भन्नाए कि बोलेः यह बात आज तय ही हो जाना चाहिए, नहीं
तो तलाक।
हर बात की एक सीमा होती है, और जैसे यह आखिरी तिनका ऊंट पर और ऊंट की कमर टूट जाए। चंदूलाल ने कहाः समझ में नहीं आता कि तुम्हारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती। इस पर पत्नी बड़बड़ाती हुई बोलीः चुप रहो जी, पहले डिक्शनरी तो देख लो, उसमें भी पति की मात्रा छोटी इ और पत्नी की बड़ी ई दी हुई है।
इस पर झल्ला कर चंदूलाल ने कहाः मैं डिक्शनरी-विक्शनरी कुछ नहीं मानता। डिक्शनरी बनाई होगी किसी जोरू के गुलाम ने। तुम्हें यहां रहना है तो पति को बड़ा और पत्नी को छोटा ही लिखना पड़ेगा।
पति-पत्नियों के झगड़े देखोगे... मगर वे भीतरी बातें हैं, वे पति-पत्नी
ही जानते हैं। बाहर तो जब वे निकलते हैं तो यूं मुस्कुराते निकलते हैं कि एकदम आनंद ही आनंद है, एकदम स्वर्ग से चले आ रहे हैं! घर में मेहमान आ जाता है तो पति-पत्नी एकदम झगड़ा बंद कर देते हैं, सुंदर-सुंदर बातें करने लगते हैं, मेहमान के जाते ही फिर कथा शुरू होती है; फिर सुंदर बातें खत्म, फिर असली रंग पर उतर आते हैं।
तो या तो पति-पत्नियों को जंचती है ब्रह्मचर्य की बात बहुत, कि राज तो ऋषियों ने ठीक बता दिया है। काश पहले ही समझ गए होते तो क्यों इस झंझट में पड़ते! मगर अब तो पड़ चुके। और या फिर छोटे बच्चों की खोपड़ी में भर दी जाती है। छोटे बच्चे तो असहाय हैं, कुछ भी उनकी खोपड़ी में भर दो। अभी तो उनका मस्तिष्क कोरी किताब है, जो भी चाहे लिख दो; वे बेचारे वही घोंट लेंगे, उसी को दोहराते रहेंगे।

लेकिन अब तुम पैंतीस साल के हो गए, अब तो थोड़ी अक्ल की बात करो! थोड़ा सोचो-समझो, थोड़ा विचारो। अगर यह विकार होता तो परमात्मा देता ही क्यों? यह ऊर्जा है। यह तुम्हारी महाशक्ति है। हां, यह सच है कि जैसी यह ऊर्जा है अभी, ऐसी ही छोड़ देने की नहीं है। इसको बड़ी ऊंचाइयों पर ले जाया जा सकता है। इसको इतना विशुद्ध किया जा सकता है कि इसमें से ही तुम्हारा सहस्र-दल-कमल खिले। यह कीचड़ है अभी, मगर इसी कीचड़ में कमल खिल सकता है। मगर कमल यूं ही नहीं खिलेगा; ध्यान के बीज बोओगे तो खिलेगा। नहीं तो तुम कीचड़ में ही पड़े रहोगे, कीचड़ से ही लड़ते रहोगे, कीचड़ से ही जूझते रहोगे। देते रहना इंद्र को गालियां, इंद्र को गालियां देने से कुछ भी नहीं होगा। समय रहते जाग जाना अच्छा है। अभी भी समय है।

आखिरी प्रश्नः
ओशो, कौन है वह?
जो तुम्हारी मधुर वीणा सुन मदिर-सा डोलता है,
जो तुम्हारे प्रेम-रस की झील में तिरता,
तुम्हारे शून्य के आकाश में पर खोलता है,
जो तुम्हारे रूप का काजल नयन में आंजता है आचमन करता तुम्हारे मधुर अमृत का
तुम्हारे संग भांवर डाल कर नित नाचता है-- कौन है वह?
तुम्हारा मौन स्मित-सौंदर्य--
शरद चांदनी में जिस तरह कोई कली चटके, तुम्हारे बोल का जादू--
कि जैसे बांसुरी की मदभरी धुन पर समर्पित राधिका के प्राण हों अटके,
जो तुम्हारी दृष्टि के संस्पर्श भर से
गंध बन कर खो गया है
जो तुम्हारे इस बसंती रंग में मिल कर
रंगीला हो गया है--
कौन है वह?

योग प्रीतम! वही है, बस केवल वही है। "तत्वमसि" उसे ही उपनिषद कहते हैं। वह तू ही है। उसे ही मंसूर अलहिल्लाज कहता हैः "अनलहक! वह मैं ही हूं!" उसे ही जिन्होंने देखा, जाना, कहते हैंः "अहं ब्रह्मास्मि! वह परमात्मा मैं ही हूं!" चाहे कहो मैं ही हूं, चाहे कहो तू ही है--बात एक ही है। मैं में भी वही है, तू में भी वही है। हर पत्ते में वही है, हर फूल में वही है।
मेरे पास बैठते हो तुम योग प्रीतम। मेरी बात तुम सुनते हो। यह बात मेरी नहीं है, उसकी ही है। और जो तुम्हारे भीतर सुनता है, वह भी तुम नहीं हो--वही है! यह बांसुरी भी उसकी है, ये बोल भी उसके हैं, यह सुनने वाला भी वही है। जिस घड़ी ऐसा मेरे और तुम्हारे बीच तादात्म्य हो जाता है, एकता बंध जाती है, एकरसता हो जाती है, जिस क्षण तुम्हारे और मेरे बीच प्रेम का यह सेतु बन जाता है, उस क्षण ही सत्संग फलित होता है।
सत्संग फलित हो सके, इसीलिए संन्यास है। संन्यास तो केवल उपाय है सत्संग को फलित करने का। इसलिए मेरे पास जो केवल तमाशबीन की तरह आते हैं, वे खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ चले जाते हैं। मेरे पास जो सत्संगी की तरह आते हैं, वे एक अर्थों में बिल्कुल शून्य हो जाते हैं--अहंकार से शून्य; और एक अर्थों में पूर्ण हो जाते हैं--परमात्मा से भर जाते हैं लबालब, ऐसे कि परमात्मा उनके ऊपर से बहने लगे!
अगर तुमने मुझे एकात्म होकर सुना, तो जरा भी भेद न पाओगे। तुम्हें यूं लगेगा कि मैं नहीं बोल रहा, तुम्हीं बोल रहे हो। तुम्हें यूं लगेगा तुम नहीं सुन रहे, मैं सुन रहा हूं। सुनने वाला और बोलने वाला, ये भेद बहुत जल्दी मिट जाते हैं। और जहां ये भेद मिटते हैं वहीं आनंद है, वहीं रसधार

बहती है। रसो वै सः! वही परमात्मा का स्वरूप है। रस परमात्मा का स्वरूप है।
यह तो मधुशाला है, योग प्रीतम। पीओ, पिलाओ। शराब बांटी जा रही है; पियक्कड़ों के लिए है, रिंदों के लिए है। लेकिन हृदय का पैमाना चाहिए। मैं तो भरने को राजी हूं, अगर तुम खाली हो तो। तुम अगर पहले से ही भरे हो तो मुश्किल हो जाती है।
धन्यभागी हैं वे जो खाली हैं। और तुम उन धन्यभागियों में से एक हो। तुम्हारा सौभाग्य है!

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
चौथा प्रवचन

संन्यास की आग

पहला प्रश्नः ओशो, परसों की घटना के बाद चारों ओर आश्रम में देखता हूं
तो ऐसा लगता है जैसे हमारी जड़ें कंप गई हैं।

सिद्धार्थ! आंधी और तूफान जड़ों को कंपाते भी हैं और जमाते भी। अगर सिर्फ जड़ों का कंपना ही देखोगे तो उदास हो जाओगे। अगर जड़ों का जमना भी देख सको तो आह्लादित हो जाओगे। दृष्टि-दृष्टि की बात है।
आंधी आती है, जड़ें अभी कंपती लगती हैं; जमेंगी तो कल, परसों, जमने में समय लगेगा। लेकिन जो वृक्ष आंधियों में से नहीं गुजरते उनकी रीढ़ सदा के लिए कमजोर रह जाती है। अच्छा ही है कि आंधियां आएं। अच्छा ही है तूफान उठें। क्योंकि आंधियों और तूफानों से पार हो सको तो प्रौढ़ता पैदा होगी, तो आत्मा का जन्म होता है।
बहुत प्राचीन यहूदी कथा है। एक किसान थक गया--वर्षों की असफलता से। कभी वर्षा ज्यादा हो जाए, कभी कम हो। कभी पाला पड़ जाए, कभी कीड़े लग जाएं। कभी सूखा, कभी बाढ़। जैसी आशाएं रखे वह, वैसी फसल हो ही न पाए। एक दिन भगवान से प्रार्थना की कि ऐसा लगता है देख कर कि तुझे खेतीबाड़ी की कोई अक्ल नहीं। और सब तू जानता होगा, होगा सर्वज्ञ, होगा सर्वव्यापी; मगर इतना मैं तुझसे कह सकता हूं--मैं किसान हूं, पुश्तैनी किसान हूं, पीढ़ी दर पीढ़ी का किसान हूं--कि तुझे किसानी नहीं आती। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, सीख सकता है। और अभी अनंत भविष्य पड़ा है; सीख लेगा तो काम आएगा।
बात उसने इतनी हृदय से कही थी, औपचारिक न थी। औपचारिक बातें ऐसी नहीं होतीं। औपचारिक बातें तो थोथी होती हैं--कि हम पतित हैं, तुम पतितपावन हो! औपचारिक बातें तो शास्त्रीय होती हैं। उसने तो सीधी-सीधी दो टूक बात की थी। कहते हैं भगवान प्रकट हुए और उन्होंने कहाः कि तू क्या चाहता है? उसने कहाः एक मौका मुझे दें। इस वर्ष जैसा मैं चाहूं वैसा हो। और फिर देखें। फिर तुम्हें पाठ पढ़ा दूंगा, ताकि आगे इस तरह की भूल-चूक न हो। हम किसानों को बहुत परेशान किए हुए है तुम्हारा मौसम। तुम्हारी गैर-जानकारी हमारे प्राणों पर बन आई है।
परमात्मा मुस्कुराया। उसने कहाः तो ठीक, इस वर्ष तू जैसा चाहेगा वैसा होगा। और किसान ने जैसा चाहा वैसा ही हुआ। बांछें खिल गईं किसान की। जितनी वर्षा चाहिए थी, जितने इंच, उतनी ही, न आधा इंच कम न आधा इंच ज्यादा। जितनी धूप चाहिए थी उतनी, न जरा कम न जरा ज्यादा। सब चीज नाप-तौल से ली। जितनी जरूरत थी पौधों की... कुछ भी अतिशय न हुआ। और किसान रोज-रोज प्रसन्न था। उसके गेहूं के पौधे ऐसे बढ़े, ऐसे बढ़े कि शायद पृथ्वी पर कभी गेहूं ऐसे न बढ़े होंगे। आदमी खो जाएं उनमें, इतने ऊंचे हो गए। सात-सात आठ-आठ फीट ऊंचे हो गए। दिल ही दिल खुश था। बड़ी बालें ऊगीं--ऐसी बालें कि कभी देखी नहीं गई थीं। सोचता था कि अब दिखा दूंगा परमात्मा को--ऐसे गेहूं आएंगे, जो अनूठे होंगे। उसकी प्रसन्नता का अंत नहीं था। नाचता था, गाता था, मस्त होता था। सो नहीं सकता था, इतना आह्लादित था। उठ आता था भोर, बड़े जल्दी, पहुंच जाता था खेत पर। खेत को देख-देख कर जीवन भर की निराशा बह गई थी। खेत क्या हरा हुआ था, उसके प्राण हरे हो गए थे।
फिर फसल कटने का समय आया, फसल कटी। और किसान सिर पीट कर रह गया। बालें
तो बहुत बड़ी थीं, मगर खाली थीं, उनमें गेहूं थे ही नहीं। उसकी आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे। परमात्मा प्रकट हुआ और उसने कहाः क्यों रोते हो? क्या हुआ तुम्हारी खुशी का?
किसान ने कहाः मैं समझ ही नहीं पाता कि यह क्या हुआ। गेहूं पैदा क्यों नहीं हुए? इतने बड़े पौधे, इतनी बड़ी बालें कि मैं तो सोचता था कि एक नया इतिहास अब लिखा जाएगा।
परमात्मा ने कहाः पागल है तू! तूने ओले गिरने न दिए, तूने आंधियां आने
न दीं। तूने वर्षा ऐसी होने न दी मूसलाधार कि झकझोर जाती पौधों को। पौधों

तो बड़े हो गए, मगर जरा उखाड़ कर देख, इनकी जड़ें बड़ी छोटी हैं। पौधों को चुनौती ही न दी तूने। चुनौती मिले तो जड़ें गहरी हों। पौधा जब झकझोरा जाता है तो उसके प्राणों में उस चुनौती का सामना करने के लिए जड़ें पैदा होती हैं।
परमात्मा ने पौधे उखाड़ कर बताए। पौधे तो आठ-आठ फीट ऊंचे थे और जड़ें आठ-
आठ इंच भी नहीं थीं। परमात्मा ने कहाः इतनी छोटी जड़ें, इतने बड़े पौधे! देखने के सुंदर, बस देखने के! दिखावा। गेहूं को पकने का अवसर ही न आया। गेहूं को पैदा होने का अवसर ही न आया। देह ही देह रह गई, आत्मा जन्मी ही नहीं।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि धनपतियों के घरों में मेधावी व्यक्ति मुश्किल से पैदा होते हैं। सारी सुविधा है। इसलिए न तूफान है, न आंधी है, न ओले पड़ते, न धूप, न वर्षा, कोई पीड़ा झेलने का मौका नहीं आता। थोथे रह जाते हैं। गोबर गणेश रह जाते हैं। उनमें प्राण नहीं होते।
उस किसान को बात समझ में आई। उसने कहाः मुझे क्षमा करो। मैं भूल में था। मैं सोचता था तुम्हें किसानी नहीं आती। लेकिन अब समझा मैं राज।
जीवन का विकास विरोधों के मध्य होता है। जीवन द्वंद्वात्मक है। सिद्धार्थ, इसे याद रखोः जीवन द्वंद्वात्मक है। अगर जीवन में द्वंद्वात्मकता न हो, डायलेक्टिक्स न हो, तो बस जीवन निर्वीर्य हो जाता है, सूख जाता है! दिखावा रह जाता है फिर। देह पड़ी रह जाएगी, प्राणों का पक्षी उड़ जाएगा। पिंजड़ा पड़ा रह जाएगा।
इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि जिन देशों में सहज सुविधा थी प्रकृति की-- जैसे हमारे देश में प्रकृति की जितनी सुविधा थी ऐसी सुविधा शायद ही किसी दुनिया के किसी और देश में रही हो। यही सुविधा हमें खा गई। इस सुविधा के कारण हम दो हजार साल गुलाम रहे। इस सुविधा के कारण ही हमारी आत्मा मरी, हम सड़ गए। जहां कोई सुविधा न थी... तुम जरा इतिहास उठा कर देखो, इतिहास के पन्ने पलटो। हूण आए, मुगल आए, तुर्क आए। ये सब असुविधापूर्ण जगहों से आए थे, रेगिस्तानों से आए थे--जहां घास भी न ऊगे; जहां पानी की बूंद पानी मुश्किल थी; जहां प्राण सदा संकट में थे। ये आए और इस देश को जीत लिया इन्होंने। इसको लूटा।
पश्चिम से लोग आए। इंग्लैंड ने इस देश को इतने दिन तक गुलाम रखा। इंग्लैंड छोटा सा देश है। इस देश के एक बड़े जिले के बराबर। इतने बड़े देश को गुलाम रख सका! और कारण? कारण यही था कि इंग्लैंड के पास कोई ऐसा न तो वातावरण है, न ऐसी भूमि है, न ऐसा मौसम है--जहां लोग सहजता से जी सकें, सरलता से जी सकें। संघर्ष है, द्वंद्वात्मकता है। लड़ना पड़ा। जीना हो तो लड़ना पड़ेगा। तो उन्होंने सात समुंदर पार किए। समुंदरों से कौन संघर्ष लेता! अगर घर में सब सुविधा हो तो कोई पागल है जो दूर की यात्राओं पर जाए, व्यर्थ के खतरे मोल ले! और उन संघर्षों ने ही उन्हें इस योग्य बनाया। जो सात समुंदरों से लड़ सके, उनसे तुम नहीं जीत सकते थे। तुमने सात नदियां भी पार नहीं की थीं, सात समुंदर तो दूर।
यहां हजारों-लाखों लोग ऐसे हैं जो कभी अपने गांव के बाहर नहीं गए। दूर
न जाओ, तुम यूं देखो कि देश के मध्य में जो लोग रहते हैं, उनसे कभी सैनिक पैदा नहीं होते। सैनिक पैदा होते हैं सीमांतों पर। जैसे कि मध्य-भारत में जो लोग रहते हैं, इनसे तुम आशा नहीं कर सकते कि ये लड़ सकें। लड़ने की अगर तुम आशा कर सकते हो तो पंजाबी से कर सकते हो। वह सीमांत पर रहा है। उसने न मालूम कितनी टक्करें ली हैं। उन टक्करों ने उसकी तलवार पर धार रख दी है। मध्य में जो रहता है, वह इतने दूर है दुश्मनों से, संघर्षों से, तूफानों से, आंधियों से, कि भूल ही गया तलवार कहां है उसकी। जंग खा गई उसकी तलवार। सीमांतों पर रहने वाले लोग बलशाली हो जाते हैं, शूरवीर हो जाते हैं।
होना ही पड़ेगा।
पंजाब से ही गुजरे सारे हमलावर। कोई भी आया तो पंजाब से ही टक्कर लेनी पड़ी। सिकंदर आया तो पंजाब से जूझा। जो भी आया, उसको पंजाब से आना पड़ेगा। तो पंजाबी में एक बल आ गया। वह बल देश के मध्य के लोगों में नहीं हो सकता।
इसलिए सरदार में जो बल होगा, वह देश के मध्य में नहीं हो सकता। वह संभव

नहीं है। आंधी ही यहां तक नहीं पहुंच पाती। यहां तक आती-आती है तो भी आते- आते उसके प्राण निकल जाते हैं।
इसलिए सिद्धार्थ, एक पहलू को ही मत देखो। यह सच है कि तुम चौंक गए। मगर अच्छा है कि तुम चौंके। चौंकोगे तो जागोगे। तुम्हारी जड़ें कंपी, यह भी अच्छा है। नहीं तो यह भ्रांति होने लगती है कि जैसे मैं सदा यहां रहूंगा; जैसे कि सदा तुम्हारे पास रहूंगा। आज नहीं कल पर तुम टाल सकते हो, कि कल करेंगे ध्यान, कि पा लेंगे कभी भी समाधि, जल्दी क्या है! मगर उस आदमी ने तुम पर कृपा की। छुरा फेंक कर वह तुमसे कह गयाः जल्दी करो। कल पर मत टालो! कुछ करना हो तो कर लो।
और भी एक बात ध्यान रखने योग्य है कि जब भी कभी ऐसी आंधी आती है तो तुम्हें एकजुट कर जाएगी, इकट्ठा कर जाएगी। यह घटना सारी दुनिया में फैले मेरे कोई डेढ़ लाख संन्यासियों को अचानक एक तार में बांध देगी, एक सूत्र में बांध देगी। जैसे कि कोई धागे में पिरो ले फूलों को और माला बन जाए। हमेशा जीवन को उसकी शुभ्र रेखाओं से देखो। अंधेरे से अंधेरे बादल में भी, काले से काले बादल में भी छिपी चांदी की चमक है। गहरी से गहरी अमावस की रात में भी सुबह छिपी पड़ी है। रात पर ही मत अटक जाना। रात तो गर्भ है; उससे सुबह का जन्म होगा। ऐसी तो और भी आंधियां आएंगी। यह तो शुरुआत है। और हर आंधी तुम्हें मजबूत कर जाएगी। और हर आंधी तुम्हें ज्यादा सजग कर जाएगी। और हर आंधी तुम्हारी जड़ों को ज्यादा जमा जाएगी। और हर आंधी तुम्हें मेरे ज्यादा निकट ले आएगी।
इसी तरह तो नासमझ अनजाने ही सत्य की सेवा करते हैं। जिन्होंने जीसस
को सूली दी थी, उन्होंने जैसी जीसस की सेवा की, वैसी किसी और ने नहीं की। न देते सूली जीसस को, न जीसस की जड़ें इतनी गहरी जम पातीं। महावीर की जड़ें इतनी गहरी नहीं जम पाईं। कारण? कोई नासमझ महावीर को सूली नहीं दिया। महावीर का पौधा ऐसा नहीं बढ़ पाया, वट-वृक्ष नहीं बन पाया। बात तो बड़ी कीमती थी महावीर की। बात तो बड़ी गहरी थी। हिमालय के शिखर छोटे पड़ें, इतनी ऊंची थी। और प्रशांत महासागर की गहराई छोटी पड़े, इतनी गहरी थी। मगर कोई चूक हो गई। चूक हो गई यह कि उतनी बड़ी आंधी न आई, जितनी बड़ी आंधी जीसस पर आई। जीसस और महावीर को आमने-सामने खड़ा करते तो महावीर की गरिमा और ही थी, महिमा और ही थी। मगर जीसस सबको मात कर गए। आज आधी दुनिया जीसस के साथ खड़ी है। और कारण? कारण है सूली।
दुनिया में बहुत विचारक हुए, बहुत दार्शनिक हुए; मगर सुकरात को फिर कोई पार न कर पाया। और कारण है केवल इतना कि एथेंस के पागलों ने सुकरात को जहर पिला कर मार डाला। सुकरात मस्ती से मरा, आनंद से मरा। सुकरात यह कहता हुआ मरा कि तुम खयाल रखो कि जो मुझे मार रहे हैं, मैं उनको मार कर भी जिंदा रहूंगा। और यह बात सच साबित हुई। आज सुकरात को मारने वालों का नाम भी तो कोई नहीं गिना सकता। जिन पुरोहितों ने जीसस को मार डालने की साजिश की थी, उनमें से कितनों का नाम तुम्हें पता है? एक का भी नाम पता नहीं है। सुकरात जहर पीकर अमर हो गया।
सत्य की एक खूबी हैः तुम उसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते। तुम लाख उपाय करो तो भी नुकसान नहीं पहुंचा सकते। तुम्हारा हर उपाय सत्य को लाभ ही पहुंचाता है। और इससे विपरीत अवस्था असत्य की हैः तुम लाख उपाय करो, असत्य को तुम लाभ नहीं पहुंचा सकते। तुम्हारा हर उपाय उसे हानि में ही डुबाता है। क्योंकि एक असत्य के लिए तुम्हें दस असत्य बोलने पड़ते हैं। दस असत्यों के लिए फिर हजार असत्य। और असत्यों की भीड़ खड़ी होती जाती है। और जितने असत्य होते हैं उतना ही असत्य कमजोर होता चला जाता है।
सत्य को मारा नहीं जा सकता। सत्य अमर है। लेकिन सत्य की अमरता सिद्ध
कब होती है? जब सत्य को मृत्यु के आमने-सामने खड़ा कर दिया जाता है तब उसकी अमरता सिद्ध होती है। किसी भी चीज को ठीक-ठीक देखने के लिए विपरीत पृष्ठभूमि चाहिए। जैसे स्कूल में काला ब्लैक-बोर्ड होता है, उस पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। सफेद दीवाल पर भी लिख सकते हैं, मगर पढ़ेगा कौन, पढ़ेगा कैसे? लिख भी दोगे तो पढ़ा न जा सकेगा। एक तो लिखना भी मुश्किल होगा; लिख भी

दिया किसी तरह तो पढ़ना मुश्किल होगा। जिसने लिखा है वह खुद भी न पढ़ सकेगा। लेकिन काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया उभर कर आती है।
देखते हो, दिन में आकाश में तारे दिखाई नहीं पड़ते। तारे तो दिन में भी आकाश में वहीं हैं, उतने ही हैं जितने रात होते हैं। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि तारे कहीं भाग जाते हैं और रात फिर लौट आते हैं, कि दिन में छिप जाते हैं, घूंघट ओढ़ लेते हैं और रात अपना घूंघट उठा देते हैं। तारे तो जहां के तहां हैं; लेकिन रात का अंधेरा पृष्ठभूमि बन जाता है, उसमें तारे चमक कर प्रकट हो जाते हैं।
सुकरात चमक कर प्रकट हो गया। वह मृत्यु की घटना ने उसकी अमरता सिद्ध
कर दी। जीसस सूली पर क्या चढ़े, सिंहासन पर चढ़ गए। सबको पीछे छोड़ दिया। जीसस सारे पैगंबरों को, सारे तीर्थंकरों को, सारे बुद्धों को पीछे छोड़ गए। कारण था--सूली। काश बुद्ध को भी किसी ने सूली लगा दी होती तो आज दुनिया बौद्ध होती! हानि कुछ भी न होती। बुद्ध का क्या बिगड़ता! आदमी को मरना तो होता ही है। आदमी मरेगा तो ही। लेकिन बुद्ध सामान्य ढंग से मरे, तो मृत्यु कोई छाप नहीं छोड़ गई।
जीसस की मौत ऐसी छाप छोड़ गई, इतिहास को दो खंडों में तोड़ गई। आज जो ईसाई नहीं हैं, वे भी इतिहास को जीसस से ही नापते हैं--ईसा-पूर्व, ईसा- पश्चात। एक लकीर खिंच गई जीसस के कारण। इतिहास विभाजित हो गया। उसके पहले जो इतिहास था, वह एक और उसके बाद जो इतिहास बना, वह और। यह सारा अदभुत खेल हुआ सूली के कारण। जिन्होंने सूली दी थी, काश उनको पता होता कि वे क्या कर रहे हैं, तो वे भूल कर भी सूली न देते। उनको अगर यह पता होता कि वे जीसस की सेवा कर रहे हैं, सेवक भी जितनी सेवा नहीं कर सकते उतनी सेवा कर रहे हैं, तो उन्होंने कभी सूली न दी होती।
इसलिए सिद्धार्थ, ऐसी छोटी-मोटी बातों की चिंता न लेना। ये तो बड़ी-बड़ी बातों के आगमन की केवल सूचनाएं है। ये तुम्हारी तैयारियों के क्षण हैं। जड़ें हिलीं, यह अच्छा है। इससे तुम चौंकोगे, जागोगे। तुम्हें यह बात साफ होगी कि मेरा उपयोग कर लो जितना करना है। जितना ज्यादा पीना है, इस मधुरस को पी लो। कल पर मत टालो। मुझे तुम इस तरह मत देखो कि ठीक है, आज भी हूं, कल भी तो रहूंगा। आज नहीं सुना, कल सुन लेंगे, जल्दी क्या है!
यह घटना तुम्हें जल्दी से भर जाएगी, त्वरा से भर जाएगी, तीव्रता से भर जाएगी। यह तुम्हें एक सघनता दे जाएगी। और तुम्हारी जड़ें मजबूत होंगी इससे, कमजोर नहीं होंगी।
मेरे देखे वह अनजान आदमी, अपरिचित आदमी, मेरा ही काम कर गया है। ऐसे और
भी लोग काम करेंगे। वे मेरा ही काम कर रहे हैं। सत्य की यही तो अलौकिकता है कि बहुत ढंगों से लोग उसकी सेवा करते हैं। जिनको पता भी नहीं होता वे भी सेवा करते हैं। जो सोचते हैं हम नुकसान पहुंचाने चले हैं, वे भी लाभ ही पहुंचा जाते हैं।
फिर जैसा मैंने तुमसे कहा, यह पूना है! नाम तो इसका बड़ा प्यारा है-- पुण्य की नगरी! मगर आदमी यहां बड़े अजीब पैदा होते हैं। मगर अक्सर ऐसा होता है। घर में कुरूप लड़की पैदा हो जाती है, उसका नाम लोग रख देते हैं-- सुदंरबाई!
मैं एक बस में सफर कर रहा था। कंडक्टर बड़ा परेशान था। उनतीस आदमियों
ने टिकट लिए थे और तीस आदमी थे। वह बार-बार कह रहा था कि भई किसी एक आदमी ने टिकट नहीं लिया है, वह पैसे दे दे और टिकट ले ले। मगर लोग एक-दूसरे की तरफ देखते थे। वह तीसवां आदमी कौन सा है, पकड़ में ही न आए। आखिर मजबूरी में सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा, उसने एक-एक आदमी का जाकर टिकट जांचा। वह तीसवां आदमी आखिर पकड़ा गया। उस आदमी से उसने पूछा कि क्या भैया, होश में हो कि शराब पीए हो? कितनी बार चिल्लाया, बोले क्यों नहीं? तुम्हारा नाम क्या है?
उस आदमी ने कहाः अच्छेलाल।
उस कंडक्टर ने कहाः गजब के अच्छेलाल हो! किस मूरख ने तुम्हें यह नाम दिया?

मैंने कहाः यह बात तू गलत कह रहा है। जिसने भी दिया, ठीक दिया। नाम सोच-समझ कर दिया। इस आदमी का अच्छेलाल ही नाम होना चाहिए। अच्छे नाम के पीछे ही बुराई छिपाने में आसानी होती है। हम अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं और अच्छे नाम के पीछे बुराई छिप जाती है।
जितने बड़े पाप के अड्डे हमारे धर्म-क्षेत्र होते हैं उतने बड़े पाप के अड्डे कहीं और नहीं होते। तीर्थ, जहां पुण्य होना चाहिए, पाप के अड्डे बन जाते हैं। आदमी अनूठा है। आदमी हद दर्जे का विक्षिप्त है, मूढ़ है। नाम तो इस नगर का है--पुण्य की नगरी--पूना। लेकिन आदमी यहां अजीब पैदा होते हैं। नाथूराम गोडसे को पैदा करने का सौभाग्य इस नगर को है! और अब ये सज्जन को धर्म की रक्षा की सूझी!
दो चोरों को पकड़ कर थाने में लाया गया। मुंशी उनका नाम दर्ज कर रहा था। नाम पूछने पर एक ने बतायाः विमल कुमार बनर्जी। दूसरे ने कहाः चंदूलाल चटर्जी। नये-नये पूना से कलकत्ता टरंसफर हुए एस.पी.श्री.एम.के. द्विवेदी पास ही में टहल रहे थे। जब उन्होंने चोरों के नाम सुने तो अपने काबू में न रह सके। गुस्से में बोलेः क्यों रे हरामजादों, एक तो चोरी करते हो, ऊपर से अपने नाम में जी-जी लगाते हो! शर्म नहीं आती? मुंशी जी, इनके नाम पर इस प्रकार लिखिए--विमल कुमार बनर और चंदूलाल चटर!
सारे देश में वैसा अनुभव हुआ है, सिद्धार्थ, जैसा तुम्हें अनुभव हुआ। हजारों तार, हजारों फोन पहुंचने शुरू हुए। लोग आने शुरू हो गए। सारी दुनिया में चर्चा पहुंच गई। अलग-अलग देशों में टेलीविजन और रेडियो और अखबारों में खबर फैल गई। मगर जैसे पूना के कानों पर जूं भी नहीं रेंगी। पूना से तो सिर्फ एक फोन आया और वह भी एक सज्जन का आया, जो छुरा फेंकने वाले के पक्ष में थे। और उन्होंने कहा कि अगर धर्म की रक्षा न की जाएगी तो धर्म नष्ट हो ही जाएगा। तो उस आदमी ने कुछ बुरा नहीं किया, जो धर्म की रक्षा की। मैं जानना चाहता हूं कि हमारे धर्म को विनष्ट करने के उपाय क्यों किए जा रहे हैं?
उनसे पूछा गयाः आपका शुभ नाम?
कहाः नाम मैं नहीं बताना चाहता।
तो उनसे कहा गयाः अगर इतनी भी हिम्मत नहीं है कि अपना नाम बता सको, तो क्या तुम खाक धर्म की रक्षा करोगे! मर्द हो तो यहां आ जाओ, तो यहां तुम्हें समझा लें और तुमसे समझ लें कि धर्म क्या है। और इतनी भी हिम्मत न हो, अगर बिल्कुल ही नामर्द हो, तो कम से कम अपने घर का पता दे दो कि हम वहां आ जाएं। उन्होंने घबड़ा कर फोन रख दियाः बस पूना में इतनी चहल-पहल हुई।
मैंने बहुत सी मरी हुई बस्तियां देखीं, मगर पूना बेजोड़ है। इसकी याद रहेगी। सारी दुनिया से यहां लोग हैं, मगर पूना से कितने हैं? थोड़े से, बहुत थोड़े से। अंगुलियों पर गिने जा सकें। मगर उतने ही लोग समझो यहां जिंदा हैं, बाकी मुर्दों का टीला है।
पूना ने अपना ढंग जाहिर किया।
इसलिए सिद्धार्थ, कुछ चिंता लेना मत, कुछ विषाद में पड़ना मत। ये छुरे आने दो। ये उपाय चलने दो। अगर सत्य है तो बचेगा; अगर सत्य नहीं है तो बचना ही नहीं चाहिए।
योग प्रीतम ने एक गीत भेजा है--

मिल गए ओशो जब से, मिल गई मंजिल मुझे
अब तो इस मझधार में भी मिल गया साहिल मुझे
हो छिटकती प्यार की यह चांदनी--क्या चाहिए
रागिनी दिल से छिड़ी जो--मिल गई महफिल मुझे
अब नहीं वीरानियों का यह तिमिर तड़पाएगा आंख से पर्दा हटा तो, दिख गई झिलमिल मुझे जो मिटा कर बीज मिट्टी में खिला दे फूल को नव सृजन का देवता वह, मिल गया कातिल मुझे कर सकूं आराधना के फूल न्योछावर उन्हें दिल के मंदिर में संजोने के लगे काबिल मुझे

यहां मित्र होंगे, शत्रु होंगे। किन्हीं को मैं प्यारा लगूंगा, किन्हीं को खतरनाक लगूंगा। इन्हीं द्वंद्वों के बीच तो मेरे संन्यास की क्रांति, मेरे संन्यास की आग फैलेगी। कोई मेरे लिए मंदिर बनाएगा, कोई मेरे जीवन को अंत करने की कोशिश करेगा। इसी द्वंद्वात्मकता में यह हवा दूर-दूर तक फैल जाएगी। यह सब शुभ है।
मेरे देखे अशुभ घटता ही नहीं। इसलिए जब तुम्हें कुछ लगे कि अशुभ घट गया, तब भी समझना कि तुम्हें अभी देखना नहीं आया। अशुभ घटता ही नहीं, शुभ ही घटता है। अगर परमात्मा से व्याप्त है यह अस्तित्व, तो जो भी घटता है उसके इशारे से घटता है। अशुभ कैसे घट सकता है? इसलिए कुछ भी घटे, उसको धन्यवाद देना और हृदय में आभार और आराधना को जगाना। हृदय में दीये जलाना प्रीति के और प्रार्थना के।

दूसरा प्रश्नः ओशो, एक ओर तो मनुष्य का जीवन महादुख से भरा है तथा वह
इन दुखों से छुटकारा पाने के लिए युगों-युगों तक किसी अवतार की प्रतीक्षा करता रहता है--इस आशा में कि कोई उसका उद्धार करेगा। किंतु जब वह सौभाग्य की घड़ी आती है, तब वह उससे बचने का हर संभव प्रयास करता है और अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार लेता है।
ओशो, क्या सच ही मनुष्य संतापों से मुक्त नहीं होना चाहता?

अमृत प्रिया! मनुष्य संतापों से तो मुक्त होना चाहता है, मगर उसकी शर्तें हैं। उन शर्तों के आधार पर मुक्त होना चाहता है, बेशर्त मुक्त नहीं होना चाहता। और कठिनाई यह है कि उसकी शर्तें ऐसी हैं कि उन्हीं के कारण संताप है। इसलिए दुष्ट-चक्र पैदा हो जाता है।
तुम मुक्त होना चाहते हो संताप से और उसी संताप की जड़ों को पानी डालते रहते हो। तुम फल से तो मुक्त होना चाहते हो कि कोई कड़वा फल न लगे और नीम को तुम पानी सींचते रहते हो। तुम्हें यह नहीं दिखाई पड़ता कि इस पानी सींचने में और नीम के कड़वे फल के लगने में एक अनिवार्य संबंध है, कार्य-कारण का संबंध है। इस कार्य-कारण के संबंध को न देख पाने के कारण यह उपद्रव हो जाता है। और कार्य-कारण का संबंध देखने के लिए प्रतिभा चाहिए।
संताप से तो सभी छुटकारा चाहते हैं, मगर संताप के मूल कारणों को काटने में अड़चन है। जैसे समझो, तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा अपमान हो। कौन चाहता है किसी का अपमान हो लेकिन क्या तुम राजी हो कि तुम सम्मान पाने की आकांक्षा छोड़ दो। बस वहां अड़चन आ जाएगी। अपमान से बचना चाहते हो तो बचने का एक ही उपाय हैः सम्मान की आकांक्षा छोड़ दो, क्योंकि सम्मान की आकांक्षा में ही अपमान पैदा होने का अवसर है। और जितनी सम्मान पाने की आकांक्षा हो उतने ही बड़े अपमान की संभावना है। तुम चाहते हो असंभव। तुम चाहते होः अपमान तो कोई न करे, सम्मान ही सम्मान मिले। यह असंभव है, क्योंकि अपमान और सम्मान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू बचाना चाहते हो, दूसरे पहलू का क्या होगा? वह उसके साथ ही है, वह अविभाज्य है। तुम उनको अलग-अलग नहीं कर सकते।
तुम दिन तो चाहते हो, रात नहीं चाहते। तुम विश्राम तो चाहते हो, श्रम नहीं चाहते। लेकिन क्या तुमने खयाल किया, अगर श्रम न करोगे तो विश्राम कर ही न पाओगे! इसलिए तो धनपतियों को नींद नहीं होती। धनपतियों के बड़े से बड़े दुखों में एक हैः अनिद्रा की बीमारी। सिर्फ धनपतियों को सताती है अनिद्रा की बीमारी, कोई मजदूर को नहीं सताती। ऐसा कभी देखा नहीं गया कि कोई मजदूर, कोई किसान, कोई दिन भर मेहनत करने वाला आदमी अनिद्रा की बीमारी से पीड़ित होता हो, कि रात उसको नींद न आती हो। वह तो घोड़े बेच कर सोता है। श्रम जिसने किया है उसने विश्राम कमा लिया। जिस अनुपात में श्रम किया है उसी अनुपात में विश्राम कमा लिया। धनपति की मुसीबत यह है कि वह दिन भर भी विश्राम कर रहा है और चाहता है कि रात भी विश्राम करे। उसने श्रम तो किया नहीं, विश्राम कमाया नहीं, तो रात जागना पड़ेगा। दिन में जो जागा है वह रात में सो सकता है। लेकिन दिन में ही जो सोया-सोया सा रहा है, वह रात में कैसे सोएगा?

तुम चाहते नहीं कि तुम्हारा कोई अपमान करे, मगर सम्मान करे। सम्मान में ही खतरा है। अगर तुम सम्मान चाहोगे तो फिर तुम छुईमुई हो गए। फिर जरा सा अपमान भी तुम्हें चोट करेगा। जितनी सम्मान की आकांक्षा होगी उतना ही अपमान चोट करेगा।
जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। क्यों? क्योंकि उनको अब और अंतिम नहीं किया जा सकता, उनका कोई अपमान नहीं कर सकता। मगर अंतिम खड़े होने में समर्थ होना मुश्किल मामला है। तुम चाहते हो प्रथम खड़े हो जाओ और तुम्हें कोई धक्के न मारे। मगर दूसरों को भी प्रथम खड़े होना है, वे धक्के कैसे न मारेंगे? तुम कोई अकेले ही तो नहीं हो, करोड़ों की भीड़ है, सभी प्रथम होना चाहते हैं। तो जो जितने प्रथम होने की चेष्टा में लगा है, उतने ही धक्के खाएगा, उतने ही जूते खाएगा, उतनी ही गालियां पड़ेंगी, उतनी ही कुश्तमकुश्ती होगी।
तुम्हारी संसद में जो जूते फेंके जाते हैं, कुर्सियां फेंकी जाती हैं, मार-पीट हो जाती है, तुम चकित न होना, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह होगा ही। क्योंकि यहां वे सारे लोग इकट्ठे हैं जो प्रथम होने की दौड़ के लिए दीवाने हैं। ये सभी प्रधानमंत्री होना चाहते हैं। वह एक कुर्सी है, उस पर सबको बैठना है। अब ऐसा भी नहीं करते कि एक बड़ी बेंच बना दें कि सबको बिठा दें। मगर तब बैठने का मजा चला जाता है। उसमें भी झगड़ा हो जाएगा कि बेंच पर पहले कौन बैठा है--नंबर एक कौन, नंबर दो कौन? बेंचें भी बनाई हैं कुछ जगह, जैसे रूस में प्रेसीडियम होता है। प्रेसीडेंट नहीं, राष्ट्रपति कीशृंखला होती है-- प्रथम राष्ट्रपति, द्वितीय राष्ट्रपति, तृतीय राष्ट्रपति। मगर उससे क्या फर्क पड़ता है? वह जो प्रथम है, वह झगड़े का कारण है।
राजनेता जो इतना एक-दूसरे के पीछे पड़े रहते हैं, इतने दल-बदल करते हैं, इतनी चालबाजियां-जालसाजियां करते हैं, वह अकारण नहीं है। उसके पीछे कारण है। कारण हैः पद की आकांक्षा।

चलते हैं लातें-घूंसे
चप्पल-जूते
टूट जाती हैं कुर्सियां
इसी को तो कहते हैं
नेताओं की फ्रीस्टाइल कुश्तियां।
अगर संसद के इन आयोजनों पर
लगा दी जाए टिकट
तो एक ही झपट में
पूरा हो जाए
घाटे का बजट।

इस पर टिकट लगा ही देनी चाहिए। और संसद का भवन बड़ा बनाना चाहिए, स्टेडियम जैसा बनाना चाहिए, कि जनता देख रही है, ताली बजा रही है और नेतागण कुश्ती लड़ रहे हैं। जनता वैसे ही देखती है, मगर अखबार पढ़-पढ़ कर देखना पड़ता है। प्रत्यक्ष आंखों से देखने में जो मजा आएगा, कि किसने किसको चित्त किया, किसने किसको चारों खानों कर दिया, कौन किसकी छाती पर चढ़ बैठा, कोई किसी की टांग ले भागा, कोई किसी का हाथ ले भागा, किसी के किसी की गर्दन हाथ में आ गई है, कोई किसी के बाल पकड़े हुए है--और यह सब वार्ता चल रही है! यह सब राजनैतिक वार्ता है। ये सब नये गठबंधन चल रहे हैं। लोग दो-दो तीन-तीन नावों पर सवार हैं एक साथ। एक को पकड़े हुए हैं, एक में टांग रखे हुए हैं, तीसरे में भी पैर फैलाए हुए हैं--पता नहीं कहां सहारा मिले, कहां टिकना पड़े!
अगर सम्मान की इच्छा है तो अपमान तो झेलने के लिए राजी होना होगा। अगर तुम लोभी हो तो खतरा है फिर। फिर तुम्हें किसी दिन घाटा लगे तो उसको स्वीकार करना। अगर जुआ खेलोगे तो जीतते ही थोड़े ही रहोगे, कभी तो हारोगे।

असल में हारोगे ज्यादा, जीतोगे कम। जीतोगे शायद ही कभी, हारोगे ही। लेकिन आदमी चाहता है जीत ही होती रहे, हार न हो जाए।
लाओत्सु ने कहा हैः मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं जीतना ही नहीं चाहता। लाओत्सु को नहीं हरा सकते। जो जीतना ही नहीं चाहता, उसको कैसे हराओगे? यह है जड़ को काटने का ढंग। लेकिन जड़ को काटने के लिए इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि तुम पहले जड़ को पहचानो।
तुम्हारे सारे संताप की जड़ में अहंकार है। मैं विशिष्ट हूं, खास हूं, बेजोड़ हूं! और सब मुझसे नीचे हैं, मैं ऊपर हूं! और सब कुछ भी नहीं हैं, ना कुछ हैं, मैं सब कुछ हूं! मैं सर्वोच्च हूं! यह भ्रांति तुम्हारी तुम्हें दिक्कत में डालेगी। दिक्कत में तो तुम नहीं पड़ना चाहते।
एक राजनेता मेरे पास आते थे। वे कहते थे कि मुझे कुछ ध्यान समझा दें
कि चित्त को शांति रहे। मैंने उनसे कहाः तुम अशांति को पैदा करो और मैं तुम्हें शांति के लिए कुछ ध्यान समझाऊं! तुम अशांति के कारण ही क्यों नहीं तोड़ डालते?
उन्होंने कहाः क्या मतलब आपका?
मैंने कहा कि अशांति किसलिए है? अशांति इसलिए है कि तुमको प्रधानमंत्री बनना है। इसलिए तुम रात सोते नहीं, भाग-दौड़ में लगे हुए हो, दिन-रात दांव-पेंच में लगे हुए हो। अब तुम मुझसे ध्यान पूछने आए हो! तुम चाहते यह हो कि तुम शांत भी रहो और यह सब भाग-दौड़ भी जारी रहे, ये सब उपद्रव भी तुम करो। यह नहीं होगा। तुम्हें जड़ से काट डालनी पड़ेगी यह बात। ध्यान तो फल जाएगा। ध्यान तो सरल बात है। मगर तुम जटिल हो।
उन्होंने कहाः यह मैं नहीं कर सकता अभी। एक बार तो प्रधानमंत्री बनूंगा। तो फिर बाद में आऊंगा आपके पास। अभी तो चाहे कुछ भी हो जाए, सब दांव पर लगा देना है।
तो फिर अशांति तो स्वाभाविक है।
तू पूछती है अमृत प्रिया, कि एक ओर तो मनुष्य का जीवन महादुख से भरा है तथा वह इन दुखों से छुटकारा पाने के लिए युगों-युगों तक किसी अवतार की प्रतीक्षा करता है।
अवतार की प्रतीक्षा आदमी कर सकता है। जब जीसस को लोगों ने सूली दी, तब यहूदी कोई तीन हजार सालों से प्रतीक्षा कर रहे थे अवतार की। और जब जीसस ने घोषणा की कि मैं आ गया हूं, तुम जिसकी प्रतीक्षा करते थे वह आ गया है, तुम्हारे पैगंबरों ने जिसकी घोषणा की थी वह मौजूद है, अब तुम मेरी सुनो--तो उन्होंने सूली लगा दी। प्रतीक्षा करना आसान मामला है, क्योंकि प्रतीक्षा भविष्य की होती है। अवतार सामने खड़ा हो जाए तो झंझट की बात है। दो कारणों से झंझट। एक तो वह प्रतीक्षा नहीं करने देता और तुम्हारी प्रतीक्षा की आदत हो गई, तीन हजार साल से प्रतीक्षा की आदत। तुम कहते होः हम तो प्रतीक्षा करेंगे। हमारे बापदादे भी प्रतीक्षा करते रहे, उनके बापदादे भी प्रतीक्षा करते रहे। हम तो प्रतीक्षा करेंगे।
फिर प्रतीक्षा में तीन हजार साल में तुम इस-इस तरह की बातें तय कर लेते हो, कल्पित कर लेते हो, जो कोई पूरी नहीं कर सकता। तुम्हारी कल्पनाएं पूरी करने का किसी ने ठेका लिया है? तो उन्होंने इस तरह की कल्पनाएं बना रखी थीं कि जो अवतार होगा वह ऐसा होगा... । अब जीसस में अगर वैसे ही सारे लक्षण हों तो वे स्वीकार करेंगे। वे लक्षण तीन हजार सालों में लाखों लोगों ने तय किए हैं, वे किसी एक आदमी ने भी तय नहीं किए हैं। उसमें न मालूम कितने कवियों ने रंग भरे हैं, कितने चित्रकारों ने तूलिका चलाई है, कितने स्वप्न-द्रष्टाओं ने स्वप्न देखे हैं। अब उन सपनों के आधार से कौन जीसस चल सकते हैं? वह कुछ भी जीसस सिद्ध करने को राजी नहीं हैं। हो भी नहीं सकता। असंभव है।
तुम्हीं यहां इस देश में कृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हो। मुझसे बार-बार लोग पूछते हैं कि कृष्ण ने कहा था कि जब धर्म की हानि हो जाएगी और जब साधुओं पर अत्याचार होने लगेगा, तो मैं आऊंगा। तो वे आते क्यों नहीं? वे तुम्हारे डर से ही नहीं आते, क्योंकि तुमने कृष्ण के नाम से जो-जो कल्पनाएं कर रखी हैं, उनको कौन पूरी करेगा? वे तो कृष्णलीला में जो

अभिनेता बनता है, वही पूरी कर सकता है। मगर वे नाटक के मंच पर पूरी हो सकती हैं, वे जीवन की असलियत में पूरी नहीं हो सकतीं। उनको कौन पूरा करेगा? कैसे वे पूरी की जा सकती हैं? तुमने असंभव धारणाएं बना रखी हैं। तुमने ऐसी बेहूदी कल्पनाएं कर रखी हैं कि अगर कोई पूरा करने की कोशिश करेगा तो मुश्किल में पड़ेगा; पूरी नहीं करेगा तो मुश्किल में पड़ेगा।
अब कहते हो तुम कि कृष्ण की सोलह हजार रानियां थीं। अब अगर कोई आदमी पूरी करने की कोशिश करे सोलह हजार रानियां, तो पहली तो बात जेल जाएगा। इस जमाने में कोई सोलह हजार रानियां रख सकता है? सोलह नहीं रख सकता, सोलह हजार की बात छोड़ो तुम। और अगर पूरी न करे और कृष्ण महाराज अकेले ही खड़े हो जाएं आ कर, तो तुम पूछोगे कि सोलह हजार रानियां कहां हैं? अगर सोलह हजार रानियां नहीं हैं तो तुम कैसे कृष्ण? रासलीला कैसे होगी अब? रासलीला करे तो मुश्किल में पड़े, रासलीला न करे तो मुश्किल में पड़े। तुम पूछोगेः मोरमुकुट क्यों नहीं बांधा? अब बीसवीं सदी में कोई मोरमुकुट बांधे तो पागल समझा जाए और न बांधे तो कृष्ण नहीं है यह आदमी। अब आधुनिक कृष्ण होंगे तो मोरमुकुट बांध कर खड़े होंगे? और जंचेगा मोरमुकुट? भला लगेगा? लेकिन तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी होनी चाहिए।
और तुमने क्या-क्या कल्पनाएं कर रखी हैं! तुम पूछोगेः कृष्ण महाराज, अगर आप असली हैं तो फिर हमको दिव्य दृष्टि दीजिए, विश्व का दर्शन कराइए। तुम्हारे पास अपने को देखने वाली आंख नहीं है और तुम विश्व को, ब्रह्मांड को देखने वाली आंख चाहते हो! अभी तुमने स्वयं को देखा नहीं मगर कृष्ण को यह काम करना चाहिए। तुम कृष्ण से न मालूम कैसी-कैसी अपेक्षाएं करोगे!
वही जीसस के साथ हुआ। तीन हजार साल से यहूदी मान कर चल रहे थे ये-ये अपेक्षाएं पूरी करना। वे-वे अपेक्षाएं पूरी जीसस नहीं कर सके। कोई भी नहीं कर सकता है। क्यों कोई पूरी करे? किन्हीं कवियों की कल्पनाएं कोई क्यों पूरी करे? तो अड़चन खड़ी हो जाती है। फिर प्रतीक्षा की आदत बन गई है, आशा बन गई है। उस आशा को तोड़ने को यह आदमी सामने खड़ा हो गया। तीन हजार साल पुरानी आदत छोड़े नहीं छोड़ी जाती। आदमी कहता हैः हम तो प्रतीक्षा करेंगे। हम तो अपनी आशा में जीएंगे। लोग आशाओं में जीते हैं, लोग यथार्थ में नहीं जीते। लोग सपनों में जीते हैं। और यह आदमी सपना तोड़ने को खड़ा हो गया।
अगर महावीर सामने खड़े हो जाएं आ कर तो सबसे बड़े दुश्मन जैन सिद्ध होंगे उनके। और अगर बुद्ध सामने खड़े हो जाएं आकर तो बुद्ध को मानने वाले लोग ही उनको सबसे पहले इनकार करेंगे, क्योंकि उनकी कोई की गई अपेक्षाएं वे पूरी करने में असमर्थ हो जाएंगे। अब महावीर के संबंध में क्या-क्या कल्पनाएं बना रखी हैं तुमने! बारह साल में उन्होंने केवल एक साल भोजन किया। अनुपात ऐसा पड़ता है कि बारह दिन में एक दिन भोजन। बारह दिन में जो आदमी एक दिन भोजन करेगा, महावीर की प्रतिमा तुम देखते हो उसकी ऐसी बलिष्ठ देह होगी? वह ऐसा पुष्ट होगा? वह तो बिल्कुल हड्डी का पिंजर होगा। हड्डी का पिंजर हो जाओगे तो लोग कहेंगेः अरे आप कैसे महावीर! और अगर ठीक से खाओगे-पीओगे, तो देह बलिष्ठ हो सकती है। मगर तब लोग कहेंगे कि उपवास का क्या हुआ? महावीर की बलिष्ठ देह देख कर लगता है कि या तो यह बारह दिन में एक दिन भोजन करने की बात झूठ है और या फिर यह बलिष्ठ देह की बात कल्पना है, यह सच नहीं हो सकती।
जरा मूर्ति तो देखो महावीर की, कैसी बलिष्ठ है! किसी बड़े पहलवान की भी नहीं होगी। क्या उनकी बाहुएं हैं, क्या उनकी भुजाएं हैं! कैसी उनकी देह है--सर्वांग सुंदर, जिसमें कोई कमी नहीं है! यह इतने उपवास करने वाला आदमी है? तो एकाध जैन मुनि फिर ऐसा क्यों नहीं दिखाई पड़ता? कहीं कुछ भूल-चूक हो रही है। या तो प्रतिमा झूठी है। बहुत संभावना है प्रतिमा के झूठे होने की, क्योंकि प्रतिमाएं बहुत बाद में बनीं और प्रतिमाएं कल्पना से बनीं। तुम जाकर जैन मंदिर में देखो, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं सब एक जैसी लगती हैं। जैन भी फर्क नहीं कर सकते। इसलिए हर प्रतिमा के नीचे उनको चिह्न बनाने पड़ते हैं। जैसे कि चुनाव में पेटी में चिह्न होते हैं न--छाता किसी का और हाथ किसी का और हल-बक्खर किसी का--तो वैसे ही हर प्रतिमा के नीचे चिह्न बना हुआ है किस तीर्थंकर का कौन सा चिह्न है। अगर चिह्नों को ढांक

दो तो जैन भी नहीं बता सकता कि यह महावीर की प्रतिमा है कि नेमिनाथ की प्रतिमा है कि आदिनाथ की प्रतिमा है। सब एक सी हैं।
इस दुनिया में दो आदमी एक जैसे होते ही नहीं, चौबीस आदमी एक जैसे-- असंभव, बिल्कुल असंभव! और ये चौबीस आदमी अलग-अलग समयों में हुए, हजारों साल का फासला है। कोई पांच हजार साल का फासला है इन चौबीस आदमियों के बीच। ये बिल्कुल एक जैसे हुए! कार्बनकापी मालूम होते हैं। और इनमें सबके फिर लक्षण हैं! सबके कान तुम देखोगे कंधों को छू रहे हैं। क्योंकि जैनों की धारणा है कि तीर्थंकर का कान जो है वह कंधे को छूना चाहिए। हो सकता है एकाध तीर्थंकर का, प्रथम तीर्थंकर का कान छूता रहा हो, उससे यह धारणा पकड़ गई हो। मगर कोई आवश्यक नहीं है, कान से कोई बुद्धि का संबंध नहीं है। कान से कोई भी संबंध बुद्धि का नहीं है। और कान को तुम भी खूब खींचतान करो, मसाज करते रहो, तो धीरे-धीरे तुम्हारा भी छूने लगेगा। मगर इससे तुम तीर्थंकर नहीं हो जाओगे, सिर्फ गधे हो जाओगे। सभी गधों के कान तीर्थंकरों जैसे होते है, लेकिन इससे कोई गधे तीर्थंकर नहीं हो जाएंगे। लेकिन अगर तुम्हारा कान न छुआ कंधे को तो जैन कहेंगेः कैसे तीर्थंकर! कान तो कंधे को छूते ही नहीं। कान कंधे को छूना ही चाहिए।
ये प्रतिमाएं बाद में बनीं, ये सब कल्पनाएं हैं। ये कवि की कल्पनाएं हैं। ये मूर्तिकारों की कल्पनाएं हैं।
बुद्ध की प्रतिमा तो निश्चित ही यूनानी आधार पर बनी। बुद्ध की प्रतिमा भारतीय भी नहीं है, यूनानी है। बुद्ध के मर जाने के तीन सौ साल बाद सिकंदर भारत आया और जब सिकंदर भारत आया और सिकंदर का सौंदर्य और सिकंदर के सेनापतियों का सौंदर्य और यूनानी सैनिकों का सौंदर्य भारत ने देखा तो फिर उसी आधार पर बुद्ध की प्रतिमा बनी। तुम बुद्ध की प्रतिमा को गौर से देखो, वह भारतीय नहीं है। वह चेहरा भारतीय नहीं है। वह नाक-नक्श भारतीय नहीं है। वह यूनानी है। उसका ढंग यूनानी मूर्तिकारों से लिया गया है। तब तक बुद्ध की प्रतिमाएं ही नहीं बनी थीं। बुद्ध की बहुत संभावना है कि वे नेपाली जैसे लगते रहे होंगे, क्योंकि बुद्ध पैदा हुए भारत और नेपाल की सीमा पर। कपिलवस्तु ज्यादा नेपाल का हिस्सा थी बजाय भारत के। बुद्ध लगते रहे होंगे नेपाली जैसे अब कहां नेपाली और कहां बुद्ध की प्रतिमा! हो सकता है बुद्ध की नाक चपटी रही हो, चेहरा नेपाली ढंग का रहा हो, थोड़ा मंगोल असर रहा हो। कहां यूनान, उससे कुछ लेना-देना नहीं। लेकिन एक दफा बुद्ध की प्रतिमा निर्मित हो गई... ।
बुद्ध ने भी घोषणा की है--ऐसा बौद्ध कहते हैं--कि आऊंगा। सभी को घोषणा करनी पड़ी, क्योंकि वह कृष्ण जो घोषणा कर गए। तो प्रतियोगिता चलती है। अब अगर कोई आदमी अपने को बुद्ध कहे तो पहले लोग कहेंगे कि चेहरा तो होना चाहिए बुद्ध जैसा, प्रतिमा होनी चाहिए बुद्ध जैसी, सौंदर्य होना चाहिए बुद्ध जैसा। बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर इन सबके साथ इस-इस तरह की कल्पनाएं जुड़ गईं, इस तरह की पुराण-कथाएं जुड़ गईं। बुद्ध के पैदा होते ही उनकी मां मर गई तो यह बात लिख दी गई शास्त्रों में कि जब भी बुद्धपुरुष पैदा होता है उसकी मां तत्क्षण मर जाती है। अब अगर किसी की मां जिंदा हो तो आप बुद्धपुरुष नहीं हो सकते। मतलब मां को मारो पहले, तब बुद्धपुरुष हो सकते हो। यह भी कोई बात हुई? अब मां के मरने का और बुद्धपुरुष होने का कोई भी तो संबंध नहीं है।
महावीर की मां तो नहीं मरी, मगर वह अलग परंपरा है जैनियों की, उनको इससे लेना-देना नहीं है। इसलिए बौद्ध महावीर को बुद्ध नहीं मान सकते, क्योंकि मां तो जिंदा रही। महावीर को बौद्ध महात्मा मानते हैं--अच्छे, संतपुरुष। मगर अभी पहुंचे नहीं परम सिद्धि को।
और यही स्थिति जैनियों की है। वे बुद्ध को भी महात्मा मानते हैं, लेकिन जिन नहीं, अभी परम अवस्था को नहीं पहुंचे। लक्षणा क्या है उनकी? तीर्थंकर सर्वज्ञ होता है, उसे तीनों काल ज्ञात होते हैं। उसे तीनों काल का ज्ञान होना चाहिए। और जैन शास्त्र कहते हैं कि बुद्ध लोगों से पूछते हैंः तुम्हारा नाम? इन्हें नाम तक पता नहीं मालूम, ये कैसे त्रिकालज्ञ? किसी से पूछना तुम्हारा नाम, जाहिर हो गया। और बुद्ध की आदत थी, जब भी कोई

आता तो पूछतेः आयुष्मान, तुम्हारा नाम? यह बिल्कुल शिष्टाचार की बात थी। मगर जैन कहते हैंः नाम तक पता नहीं, अरे इतना भी अंतर्दृष्टि नहीं हुई तुम्हें, तुम क्या तीन काल जनोगे? महावीर त्रिकालज्ञ हैं!
बौद्ध ग्रंथों में महावीर का खूब मजाक उड़ाया गया है, कि महावीर को जैन कहते हैं कि ये तीन काल के जानने वाले हैं और सुबह अंधेरे में कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौंकता है तब महावीर को पता चलता है कि अरे, कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ गया! ये तीन काल के ज्ञाता हैं! ऐसे घर के सामने भीख मांगते हैं जिस घर में कोई है ही नहीं--ये तीन काल के ज्ञाता हैं! इतना तो पता होना चाहिए कि घर में कोई भी नहीं है, क्या भीख मांग रहे हो, आगे बढ़ो! आगे बढ़ो, यह कहने वाला भी कोई नहीं है। ये कैसे त्रिकालज्ञ? अगर तुम एक-दूसरों के शास्त्रों को देखो तो बड़े हैरान हो जाओगे, तुम बड़े चकित हो जाओगे। और उसका कुल कारण इतना है कि सबने अपनी-अपनी लक्षणा दी है और वह लक्षणा दूसरे की लक्षणा से मेल नहीं खाती। खा सकती नहीं। खाने की कोई जरूरत भी नहीं है।
मैं तो महावीर को भी मानता हूं कि वे परम ज्ञान को उपलब्ध हुए, बुद्ध
को भी, कृष्ण को भी, जीसस को भी, मोहम्मद को भी, मो.जे.ज को भी। हालांकि वे सब अलग-अलग तरह के लोग हैं, उनमें कहीं कोई तालमेल नहीं है। जितना भेद हो सकता है उतना भेद है। जीसस को शराब पीने में कोई एतराज नहीं है। जब उनकी बैठक जमती है मित्रों की, रात देर तक भोजन चलता है। रात भी भोजन करने में उनको कोई एतराज नहीं है। असल में दिन भर चलने के बाद रात को ही वे भोजन करते हैं। और रात को जब भोजन हो चुकता है तो थोड़ा पीना-पिलाना भी चलता है सोने के पहले। मुझे इसमें कुछ एतराज नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि किसी ने जीसस को कभी बेहोश पड़ा हुआ सड़क पर गालियां बकते नहीं देखा है। तो इस थोड़ा सा पी लेने से... सिर्फ उस समय का शिष्टाचार था। जीसस के समय का शिष्टाचार था। लेकिन जैन यह कैसे मानेंगे कि कोई शराब पीए और तीर्थंकर की हैसियत का हो? असंभव!
रामकृष्ण मछली खाते थे, जैन कैसे मानेंगे कि रामकृष्ण परमहंस हैं? मछली खाते हैं। इनको अभी यही पता नहीं कि मछली नहीं खानी चाहिए, और क्या पता होगा? रात को भी भोजन करते थे, रात्रि-भोजन भी करते हैं--ये कैसे परमहंस?
इस बात को खयाल में रखना कि तुम्हारी कल्पनाएं तुम्हारी कल्पनाएं हैं, कोई व्यक्ति तुम्हारी कल्पनाएं पूरी करने को नहीं आता। इसलिए जब कोई अवतार... अवतार का अर्थ होता हैः जब भी कोई व्यक्ति परमज्ञान को उपलब्ध होता है... तो वह अद्वितीय होता है। तुम्हारी किसी कल्पना से तालमेल नहीं खाएगा। तुम्हारे सब कल्पनाओं के जाल तोड़ देगा। इसलिए तुम्हें स्वीकार करना मुश्किल हो जाता है। तुम स्वीकार कर सकते थे, अगर वह ठीक तुम्हारी लकीर का फकीर होता। लेकिन लकीर के फकीर तो रामलीलाओं में हो सकते हैं, असलियत में नहीं हो सकते।
इसलिए युगों-युगों तक लोग अवतार की प्रतीक्षा करते हैं--इस आशा में कि कोई उनका उद्धार करेगा। यह आशा भी गलत है, क्योंकि कोई दूसरा तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता। उपद्रव तुम करो, उद्धार कोई और करे! बीमार तुम हो तो इलाज भी तुमको करना होगा, चिकित्सा भी तुमको झेलनी होगी, आपरेशन भी तुम्हें करवाना होगा और दवा भी तुम्हें पीनी होगी। बीमार तुम और दवा मैं पीऊं! बीमार तुम, उपचार मेरा हो! यह नहीं चलेगा।
लेकिन लोग बड़े अजीब हैं। लोग हमेशा यही आशा करते हैं, कोई और कर दे। जो काम उन्हें नहीं करना है वह दूसरे पर टालते हैं। जो काम उन्हें करना है वह दूसरे पर नहीं टालते। वे यह नहीं कहते कि जीसस आएंगे और हमारी दुकान चलाएंगे। दुकान वे खुद चलाते हैं। वे यह नहीं कहते कि कृष्ण आएंगे और हमारे लिए धन कमाएंगे। धन वे खुद कमाते हैं। वे यह नहीं कहते कि महावीर आएंगे और हमारे लिए चुनाव लड़ेंगे। चुनाव वे खुद ही लड़ते हैं। मगर महावीर, जीसस, बुद्ध आएंगे--और हमारा मोक्ष करवाएंगे। मोक्ष तुम्हें चाहिए नहीं, कोई दे-दे यूं मुफ्त राह चलते तो तुम सोच लोगे कि लेना कि नहीं। वह भी तुम सोचोगे। वह भी तुम विचार करोगे।

अगर मैं तुमसे कहूं कि अभी, है तैयारी मोक्ष जाने की? अगर मैं तुमसे पूछूं, अभी, इसी क्षण! तो तुम कहोगे कि थोड़ा सोचने का तो मौका दो, कम से कम मेरी पत्नी को तो पूछ लूं। घर में बच्चे हैं, उनको तो पूछ लूं। नहीं तो वह नाहक नाराज होगी कि तुमने बिना ही पूछे मोक्ष ले लिया, तुमने अपना उद्धार कैसे करवाया मुझसे बिना पूछे? वह सारा उद्धार बिगाड़ कर धर देगी, उपद्रव खड़ा हो जाएगा।
एक बौद्ध भिक्षु मर रहा था। उसके हजारों अनुयायी थे। मरते वक्त उसने पूछा... कोई दस हजार लोग इकट्ठे हो गए थे, क्योंकि उसने घोषणा कर दी थी कि आज मेरा अंतिम दिन है।... उसने पूछा कि मैं जीवन भर समझाता रहा निर्वाण के लिए, तुममें से कोई है जो मेरे साथ निर्वाण पाने को तैयार हो, तो खड़ा हो जाए, तो आज मैं साथ ले जाने को तैयार हूं।
कोई खड़ा नहीं हुआ दस हजार आदमियों में से। हां, लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि भई तुम खड़े हो जाओ। तुम क्या बैठे हो! अब तुम्हारा क्या है? पत्नी भी मर गई, दुकान का भी दिवाला निकली हालत में है, तुम काहे के लिए बैठे हो? किसी ने और की तरफ देखा कि तुम क्या कर रहे हो, तीन चुनाव हार चुके, हो जाओ खड़े! यह मौका क्यों चूक रहे हो? लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। कोई खड़ा नहीं हुआ, सिर्फ एक आदमी ने हाथ ऊपर उठाया। उस भिक्षु ने कहा कि चलो कम से कम एक आदमी ने हाथ तो उठाया। उसने कहाः क्षमा करिए, मैं खड़ा इसीलिए नहीं हो रहा हूं, सिर्फ हाथ उठा रहा हूं। मैं जानना चाहता हूं कि निर्वाण पाने का उपाय क्या है? वह बता दीजिए। कभी जाना होगा तो चले जाएंगे। अभी मुझे जाना नहीं है, अभी मेरी घर-गृहस्थी कच्ची है। और भी काम पड़े हैं हजार। निर्वाण के अलावा और भी तो काम हैं। आप जाइए, खुशी से जाइए। हम भी आएंगे कभी अपने समय पर, मगर रास्ता बता जाइए।
वह बूढ़ा भिक्षु हंसने लगा। उसने कहाः रास्ता तो मैं पचास साल से बता रहा हूं।
लोग सिर्फ रास्ता ही पूछते हैं, चलते वगैरह नहीं। कोई देने वाला भी आ जाए तो तुम लोगे नहीं। सच पूछो तो तुम्हें लेना नहीं है, क्योंकि तुम्हारे सारे न्यस्त स्वार्थों के विपरीत पड़ेगा। तुम चाहोगे मोक्ष भी मिल जाए और तुम जैसे हो वैसे के वैसे बने रहो, उसमें रत्ती भर भेद न करना पड़े। हिंदू हो तो हिंदू, मुसलमान तो मुसलमान, जैन तो जैन, चोर तो चोर, बेईमान तो बेईमान--तुम जैसे हो वैसे रहो, और साथ में मोक्ष भी मिलता हो तो क्या हर्जा है! लगे हाथों ले लो। अब गंगा बह रही है तो धो लो हाथ! मगर तुममें कोई फर्क न करना पड़े। तुम्हारी अपनी जिंदगी में कोई रद्दोबदल न करनी पड़े। और यह नहीं हो सकता।
उद्धार का अर्थ होता हैः क्रांति। और क्रांति में से तुम्हें गुजरना होगा। उद्धार का अर्थ होता हैः आग से गुजरना। जैसे सोना गुजर कर शुद्ध होता है, वैसे तुम्हें आग से गुजरना होगा। तुम्हें अपने सारे पुराने तौर-तरीके बदलने होंगे, जीवन-शैली बदलनी होगी। तुम्हें अपने जीवन का पूरा का पूरा रूपांतरण करना होगा। जहां क्रोध था वहां करुणा को जन्म देना होगा। जहां कामवासना थी वहां प्रेम को उपजाना होगा। जहां लोभ था वहां दान की कला सीखनी होगी। जहां वैमनस्य था वहां मैत्री के फूल खिलाने होंगे।
इस सबकी तैयारी नहीं है। लोग चाहते हैंः कोई आएगा, जादू का डंडा घुमाएगा, कहेगा, अब्राकदेब्रा और सब ठीक हो जाएगा! ऐसे नहीं हो सकता। तुम्हारी इच्छा इतनी ही है कि अवतार कुछ मदारी की तरह काम करेगा--कि जमूरे स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है? और तुम कहोगे कि हां। कि जमूरे अभी जाना है? तुम कहोगे, हां। तो वह फेंकेगा एक रस्सी आकाश की तरफ और कहेगाः जमूरे, चढ़ जा! और जमूरा चढ़ जाएगा। और जमूरा अपने साथ अपना सब उपद्रव भी साथ ले जाएगा--अपनी पत्नी, अपना बच्चा, अपने सब जाल-जंजाल; कुछ पीछे छोड़ भी नहीं जाएगा कि यह भी रख लो, यह भी रख लो, सभी कुछ रख लो। बर्तन-भांडे, कूड़ा-करकट! अरे कब किस चीज की जरूरत पड़ जाए, वहां भी आखिर घर-गृहस्थी तो बसाओगे कि नहीं? मोक्ष में भी करोगे क्या? कोई बैठे ही रहोगे वहां? तुमसे तो बैठा ही नहीं रहा जा सकेगा। तुम तो कुछ न कुछ उपद्रव खड़ा करोगे, कोई न कोई झंडा उठाओगे, कोई न कोई डंडा गड़ाओगे। तुमसे ऐसे बैठे नहीं रहा जाएगा। जरा सोचो

कि अगर तुम्हें मोक्ष मिल जाए, कोई उद्धार कर ही दे समझो, पहुंच गए तुम मोक्ष, अब क्या करोगे? बैठे सिद्ध-शिला पर, कितनी देर बैठे रहोगे? थोड़ी देर में ही सोचोगे कि अब क्या करना चाहिए, यहां कोई अखबार वगैरह मिलता है कि नहीं? चाय की दुकान कहां है? इस समय अगर भजिए वगैरह मिल जाते... नाश्ता भी तो करना ही होगा कि नहीं? तुम फौरन उपद्रव में लग जाओगे। तुम वही करोगे जो तुम यहां कर रहे थे।
चंदूलाल मरा, स्वर्ग पहुंच गया। कैसे पहुंच गया, यही एक आश्चर्य की बात है। चमत्कार ही समझो। मगर चंदूलाल चमत्कारी पुरुष हैं। निकाल ली होगी कोई तरकीब, दे दिया होगा फरिश्तों को कुछ रिश्वत, कर दी होगी किसी की खुशामद। चंदूलाल पुराना चमचा है--पहुंचा हुआ! जिंदगी भर अभ्यास करता रहा मक्खन लगाने का। यमदूत जो लेने आए होंगे, उनकी खूब कर दी होगी मालिश, खूब पैर दबा दिए होंगे, दिल खोल कर उनकी प्रशंसा कर दी होगी। कंजूसी नहीं करता प्रशंसा करने में, कि ले चले उनको स्वर्ग की तरफ, पहुंच गया स्वर्ग के द्वार पर। दरवाजा खटखटा दिया। द्वारपाल ने दरवाजा खोला और पूछाः आप कौन हैं?
कहाः चंदूलाल।
क्या काम करते थे?
कहा कि लोहे की... पुराना लोहा बेचने की दुकान थी। खरीदता भी था बेचता
भी था। इसलिए मेरा पूरा नाम--चंदूलाल लोहावाला।
इस तरह के आदमी यहां आते नहीं, कबाड़ियों का यहां काम नहीं है। ये बंबई
के चोर बाजार में रहते होंगे--चंदूलाल लोहावाला। इस तरह के आदमी बंबई में रहते हैं। लोहावाला, दारूवाला! एक से एक पहुंचे हुए लोग--बाटलीवाला! जैसे नामों की कमी पड़ गई है!
तो उन्होंने कहाः तू ठहर, तू बंबईवाला मालूम होता है।
हां, बंबई में रहता हूं।
चोरबाजार में काम करता है?
कहाः हां।
पता लगाना पड़ेगा, रुको। वह भीतर गया। बही-खाते खोल कर बड़ी देर में खोज बीन की उसने। कोई नाम इसका मिले नहीं। उसकी जगह तो थी नर्क में। जब तक वह आया देखा तो चंदूलाल नदारद। चंदूलाल ही नदारद नहीं, लोहे का फाटक भी नदारद! तब से स्वर्ग के दरवाजे पर कोई दरवाजा नहीं है। चंदूलाल लोहावाला ले गया। वह पुरानी आदत, वही काम वे यहां करते थे--लोहा खरीदना, लोहा बेचना। जब तक वह अंदर गया, उसने सोचाः ऐसी की तैसी स्वर्ग की! इतना बड़ा लोहे का फाटक, मजा आ जाएगा! ले चलो बंबई के चोर बाजार।
तुम क्या करोगे मोक्ष में!
अमृत प्रिया, लोग बातें करते हैं उद्धार वगैरह की। बातें करने में अच्छी बातें हैं। अच्छी-अच्छी बातें करने में क्या बिगड़ता है? लच्छेदार बातें हैं। मगर कोई उद्धार वगैरह चाहता नहीं, क्योंकि उद्धार में तो फिर जीवन को दांव पर लगाना होगा। लोग सब मुफ्त में चाहते हैं। कुछ न करना पड़े और सब हो जाए। और हम जैसे हैं वैसे के वैसे रहें।
तू पूछती हैः "किंतु जब वह सौभाग्य की घड़ी आती है, तब वह उससे बचने का
हर संभव प्रयास करता है और अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार लेता है।"
क्यों न करे, क्योंकि उसने कभी सोचा नहीं था कि यह घड़ी आ ही जाएगी। यह घड़ी तो बिल्कुल अकस्मात आ जाती है। कभी-कभी आती है। जब आ जाती है तब वह घबड़ाता है।
रवींद्रनाथ की कविता है कि मैं परमात्मा को खोजता था, सदियों से खोजता था, जन्मों-जन्मों से खोजता था और बड़ी लगन से खोजता था, दीवाना था! आंसू बहाता, रोता, इकतारा बजाता। और मेरी बड़ी ख्याति थी भक्त की तरह। मेरी गिनती होने लगी थी मीरा और चैतन्य के नामों के साथ। और फिर एक दिन मैं पहुंच गया उसके द्वार पर। आनंदित हुआ पहले तो। तख्ती लगी थी कि यही रहा भगवान का घर। सीढ़ियां चढ़ गया तेजी से, मगर तब ठिठका। एक क्षण सोचा कि पहले समझ तो ले पागल, क्या कर रहा है! फिर तेरी भक्ति का क्या होगा? भगवान मिल जाएंगे, फिर भक्ति का क्या होगा? यह सवाल तो है। फिर इकतारे का क्या होगा?

और तेरी प्रतिष्ठा और मीरा और चैतन्य में तेरा जो नाम गिना जाता है, उसका क्या होगा? भगवान मिल गए कि सब खेल खत्म, फिर उसके आगे तो कुछ है नहीं। फिर तो इति आ गई। वह तो यूं जैसे बूंद सागर में समा गई। तब जरा चौंका कि यह मैं क्या कर रहा हूं, अपने हाथ से अपनी आत्महत्या कर रहा हूं! हाथ में ले ली थी कुंडी बजाने को, धीरे से छोड़ दी। जूते पैर में से निकाल लिए कि कहीं आवाज न हो सीढ़ियां उतरने में, कहीं ऐसा न हो कि आवाज ही सुन कर और भगवान एकदम दरवाजा खोल दें और कहेंः बेटा आओ, अब कहां जा रहे हो? अब आ ही जाओ। आ ही गए तो अब कहां जाते हो? और जो भागा जूता हाथ में ले कर मैं... !
तो कविता में रवींद्रनाथ कहते हैं, फिर मैंने पीछे लौट कर नहीं देखा। अभी भी मैं इकतारा बजाता हूं, भगवान के गीत गाता हूं, भक्तों में मेरी गिनती है। और बड़े आंसू बहाता हूं, जार-जार रोता हूं। और जानता हूं उसका घर कहां है, इसलिए उसका घर बच कर और सब जगह जाता हूं, उसके घर को छोड़ कर। उस रास्ते भर पर नहीं जाता, क्योंकि मैं देख लिया एक दफा जाकर कि वह झंझट का काम है। एक दफा वहां पहुंच गए तो बात सब खत्म हो गई। स्वयं भी समाप्त हो जाएंगे। अहंकार मिट जाएगा। और अहंकार को कौन मिटाना चाहता है!
तुम अहंकार को बचा कर मुक्त होना चाहते हो। तुम चाहते होः मैं मुक्त
हो जाऊं! मैं मुक्त नहीं होता कोई। मैं से मुक्ति होती है। मैं की कोई मुक्ति नहीं है, मैं से मुक्ति है। और उतना साहस न होने से जब कोई समाने खड़ा हो जाता है कि लो यह द्वार खुला परमात्मा का, तब तुम मुश्किल में पड़ जाते हो। इसलिए तुम ऐसे लोगों से, जो द्वार खोल देते हैं परमात्मा का, बदला लेते हो।
संताप से तो तुम मुक्त होना चाहते हो, मगर संताप की जड़ें नहीं काटना चाहते। जड़ तो तुम स्वयं हो। तुम्हारा अहंकार ही जड़ है। जो अपने अहंकार को मिटाने को राजी है, उसका संताप अभी मिट जाएगा। अहंकार बंधन है और अहंकार से छूट जाना मोक्ष है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! दुर्घटना, दुर्भाग्य और दुर्दिन में क्या अंतर है?

अटलबिहारी! आप वही तो नहीं हैं अटलबिहारी दांतनिपोर? अर्थात अटलबिहारी वाजपेयी, अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी। हो तो नहीं सकते, क्योंकि ऐसे दांतनिपोर यहां किसलिए आएंगे! तुम कोई और ही अटलबिहारी होओगे। भैया, अपना नाम बदल लो। ऐसे गलत नामों के साथ अपने को जोड़ रखना ठीक नहीं!
मगर तुम्हारा प्रश्न ठीक हैः तुम पूछते होः "दुर्घटना, दुर्भाग्य और दुर्दिन में क्या अंतर है?"
उदाहरण से समझो तो जल्दी समझ में आएगा। जैसे कि तीन मंत्रीगण कार से किसी पहाड़ की सैर को जा रहे थे। कार एक मोड़ पर से फिसल गई और चकनाचूर हो गई। कार के इस फिसल जाने को दुर्घटना कहा जाएगा। दुर्घटना में ड्राइवर तो मर गया, लेकिन तीनों मंत्री जिंदा बच गए। इसे देश का दुर्भाग्य समझिए। फिर दूसरे दिन अखबार के मुख्य पृष्ठों पर तीनों मंत्रियों की फोटो छपेगी और लोगों को सुबह-सुबह उन्हें देखना पड़ेगा। यही दुर्दिन है।

चौथा प्रश्नः ओशो! क्या मारवाड़ी सच में ही इतने गजब के लोग होते हैं?

सत्यप्रिया! तू तो खुद भी मारवाड़ी है। कहना चाहिए--थी। अब तो नहीं है। सत्यप्रिया तो छोटी सी लड़की है। अब संन्यासी है। संन्यास में तो सब
खो जाता है--मारवाड़ी होना, भारतीय होना, हिंदू होना, मुसलमान होना, पाकिस्तानी होना।
मगर तेरा प्रश्न ठीक हैः मारवाड़ी होते तो गजब के ही लोग हैं। तेरी समझ में आ सके, इसलिए दो कहानियां खयाल में रखना। एक--
एक मारवाड़ी अपने लड़के लिए दुल्हन तलाश करने के लिए पास के गांव गया और अपने एक परिचित के पास ठहरा। मारवाड़ी, जैसा कि उनका स्वभाव होता है, पैसे

का लालची था। उसने परिचित व्यक्ति के गांव के कुछ लखपति आदमियों के नाम बताने को कहा। परिचित व्यक्ति खुद भी लखपति था, उसकी भी एक लड़की शादी के योग्य थी, परंतु अपने मुंह से खुद को लखपति बताना शोभा नहीं देता--यही सोच कर पांच-सात नाम गिनाने के बाद वह बोलाः कि थोड़ा-थोड़ा शक लोग मेरा भी लखपतियों में करते हैं। थोड़ा-थोड़ा शक!
एक आदमी ने एक मारवाड़ी बनिए को एक थप्पड़ मार दी। मामला अदालत में गया।
हो सकता है अदालत, सत्यप्रिया, यह तेरे पिताजी की रही हो। सत्यप्रिया के पिता संन्यासी होने के पहले न्यायाधीश थे। हाकिम ने उस आदमी को एक अठन्नी दंड स्वरूप मारवाड़ी को देने की सजा दी। उस आदमी ने एक रुपया निकाला और मारवाड़ी की ओर बढ़ाते हुए कहाः सेठ जी, आप आठ आने वापस कर दें।
सेठ ने रुपया ललचाई आंखों से देखा और हाथ में लेते हुए कहाः भाई, फुटकर पैसे मेरे पास नहीं हैं। ऐसा करो, तुम एक थप्पड़ और मार लो।

आखिरी प्रश्नः ओशो! चुनाव सिर पर हैं। इस संबंध में कुछ कहें।

प्रीति! ऐसे संबंधों में न पूछो तो अच्छा।
एक आदमी का चेहरा बड़ा अजीब था। किसी को भी उसके चेहरे की ओर देखना पसंद नहीं था। मोहल्ले के आठ-दस आदमी एक बार मुझसे मिलने आए। वे सभी यह कहने के लिए आए थे कि कोई उपाय ऐसा ढूंढ निकालिए कि जिससे उस आदमी का चेहरा देखना न पड़े। हम सब उपाय के बारे में सोचने लगे। काफी सोचने के बाद हमने एक उपाय ढूंढ लिया। हम सबने जी-जान से मेहनत करके उस आदमी को चुनाव में विजयी करा दिया। कम से कम पांच साल के लिए राहत हो गई।
चुनाव का अर्थ है, जिनसे छुटकारा पाना हो पांच साल के लिए, फिर उनके तुम्हें दर्शन नहीं करने होंगे। जिन-जिन को देख कर दिन बिगड़ जाता हो उन-उन को चुनाव में खड़ा करवा दिया करो और मेहनत करके उनको जितवा दिया। एक दफा वे जीत गए तो जैसे गधे के सिर से सींग नदारद होते हैं ऐसे वे नदारद पांच साल के लिए! और एक दफा उनको नशा लग गया नदारद होने का तो वे बार-बार नदारद होना चाहेंगे। हर बार चुनाव में एक दफा उनके दर्शन तुम्हें करने पड़ेंगे, मगर फिर अगर जिता दिया... । इसलिए तो जो एक दफा जीत जाता है, जनता उसको बार-बार जिताए चली जाती है कि भैया किसी तरह तू जा, पिंड छोड़ हमारा!
चुनाव का समय था, गांव के नेताजी चुनाव का टिकट प्राप्त करने के लिए घोड़े पर सवार हो कर गए हुए थे। टिकट के लिए लंबी लाइन लगी थी। बहुत देर हो गई, मगर नेताजी का नंबर न आया। तभी एक चमचे किस्म के व्यक्ति ने आकर कहाः नेताजी, ढाई सौ रुपये लगेंगे, आइए अभी एक मिनट में टिकट दिलवा देता हूं। जिस पार्टी की चाहिए हो उस पार्टी की।
नेताजी ने आश्चर्य से कहाः क्या कहते हो, सिर्फ ढाई सौ रुपये!
उस व्यक्ति ने कहाः हां, सिर्फ ढाई सौ रुपये। नेताजी ने जल्दी से अपनी खादी की बंडी से ढाई सौ रुपये निकाले और उस चमचे को थमा दिए। लेकिन वह चमचा गया सो लौटा ही नहीं। आखिर खिसकते-खिसकते नेताजी का नंबर आया, तो नेताजी ने टिकट बांटने वाले अफसर को कहा कि अच्छी अंधेरगर्दी है! फलां-फलां व्यक्ति ने मुझसे टिकट दिलवाने के बहाने ढाई सौ रुपये ले लिए।
उस अफसर ने कहाः अच्छा तो आप रिश्वत देते और लेते हैं?
नेताजी ने बात बिगड़ती देख कर कहाः नहीं, वह तो यूं ही। अच्छा टिकट के लिए क्या करना होगा?
उस अफसर ने कहाः आपको दो हजार रुपया डिपाजिट करना होगा।
नेताजी ने कहाः ठीक, किए देते हैं दो हजार जमा। दो हजार जमा कर उन्होंने जनता पार्टी का टिकट प्राप्त कर लिया। फिर बोलेः श्रीमान, अच्छा होता यदि आप एक टिकट मेरे घोड़े को भी दिला देते। यह बड़ा श्रेष्ठ घोड़ा है।
उस आफिसर ने कहाः नहीं-नहीं, यह असंभव है। ऐसा नहीं होगा।
नेताजी बोलेः अरे, क्या असंभव है! अरे दो हजार की जगह तीन हजार ले लो।
अफसर बोलाः नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा। टिकट हम सिर्फ गधों को देते हैं, घोड़ों को नहीं।

सब गधे मैदान में हैं इस समय। चुनाव सिर पर नहीं हैं, सब गधे सिर पर हैं। अब देखें कौन गधा बाजी मार ले जाए!
एक प्रसिद्ध नेताजी का बेटा कह रहा था कि पिताजी चुनाव लड़ना मेरे वश
के बाहर की बात है। अरे, लोग बड़ा अपमान करते हैं, टुच्चे-टुच्चे लोग अपमान करते हैं!
नेताजी बोलेः अरे, कैसे बहकी-बहकी बातें करता है! मेरी तो जिंदगी गुजर
गई चुनाव लड़ते-लड़ते, मेरे साथ तो ऐसी नौबत कभी नहीं आई कि किसी ने कभी मेरा अपमान किया हो। हां, यह सच है कि लोगों ने गालियां दीं, चप्पलें फेंक-फेंक कर मारीं, सड़े टमाटर फेंके, केले के छिलके मारे, अनेक बार लोगों ने धक्के दे-दे कर घर के बाहर निकाल दिया, लेकिन अपमान तो किसी ने नहीं किया। यह तू बिल्कुल नई ही बात कह रहा है!
नेता बनना हो तो गीता पढ़ो, सुख-दुख को समान भाव से लेना, समदृष्टि रखना। अपमान-सम्मान सब बराबर समझना। कोई धक्का मारे, जूता मारे, तुम खीसे निपोरे हंसते ही चले जाना। तुम धन्यवाद ही देते रहना। अभी सब दांतनिपोर तुम्हारे दरवाजों पर आएंगे। एक सिर्फ दरवाजा है इस आश्रम का, जिस पर कोई दांतनिपोर कभी नहीं आता। आ नहीं सकता। अगर तुम्हें चुनाव के उपद्रव से बचना हो, तो आश्रम के भीतर। फिर पता ही नहीं चलता कि दुनिया में चुनाव हो रहा है कि नहीं हो रहा है। यहां कोई आता ही नहीं, आ सकता नहीं। क्योंकि यहां आने का मतलब झंझट है।
प्रसिद्ध नेता, श्री मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र से कह रहे थे कि मैं अपनी जवानी के कारण चुनाव हार गया। दोस्त बोलाः अरे, जवानी के कारण! लेकिन तुम्हारी उम्र तो अब तिहत्तर साल है। जवानी तो तुम्हारी कब की गुजर चुकी!
नसरुद्दीन बोलाः दरअसल लोगों को यह पता चल गया है कि मेरी जवानी कैसे गुजरी थी।
चुनाव में वही जीतता है जिसका लोगों को कम से कम पता होता है।
दो आदमी चुनाव लड़े, एक हार गया, एक जीत गया। दोनों बाद में मिले। जो हार गया था उसने जीतने वाले से पूछाः तुम्हारे जीतने का राज क्या है? तुम तो इस इलाके में बिल्कुल नये-नये हो? मैं इस इलाके की सेवा करते-करते थक गया और तुम जीत गए, मैं हार गया!
वह आदमी हंसने लगा। उसने कहाः इसीलिए। तुम्हें लोग जानते हैं, मुझे लोग नहीं जानते। जब मुझे जानने लगेंगे, मैं भी हारूंगा।
चुनाव में वही जीतता है जिसको लोग जानते नहीं, पहचानते नहीं। और जब तक पहचानते हैं तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।
प्रीति, तू ठीक पूछती हैः चुनाव सिर पर हैं, इस संबंध में कुछ कहें।
इतना ही कहना चाहूंगा कि राजनीति तो चलेगी, एकदम आज समाप्त हो नहीं सकती। होनी चाहिए, मगर यह अनिवार्य बुराइयों में से एक है। उन रोगों में से एक है जिसको अभी मिटने में बहुत समय लगेगा, जिसके लिए अभी तक उपचार ठीक-ठीक खोजा नहीं जा सका है। मिटाने योग्य है, क्योंकि सदियों से आदमी इससे परेशान है। लेकिन अभी तक ठीक उपचार खोजा नहीं जा सका है। उसी उपचार की खोज है संन्यास। अगर संन्यासियों की आग फैलती जाती है दुनिया में तो हम राजनीति को जला कर राख कर देंगे। दुनिया में शासन होना चाहिए, लेकिन राजनीति की कोई खास जरूरत नहीं है। शासन--जैसे पोस्ट आफिस है, जैसे रेलवे, वैसे ही और भी इंतजाम होने चाहिए। इंतजाम की जरूरत पड़ेगी। मगर न तो राष्ट्रों की जरूरत है, न राज्यों की जरूरत है, न राजनीति की जरूरत है, न राजनेताओं की जरूरत है। दुनिया में एक शासन काफी है, तो युद्धों से बचना हो जाए। अभी तो मनुष्य की सत्तर प्रतिशत ऊर्जा युद्धों में नष्ट हो जाती है। जो ऊर्जा इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकती है, वही ऊर्जा इस पृथ्वी को नरक बना रही है।
इसलिए मैं तो विशुद्ध रूप से राजनीति-विरोधी हूं। लेकिन अभी तो राजनीति चलेगी, आज समाप्त होने वाली नहीं है। समय लगेगा। तब तक इतना ही खयाल रखना कि तुम जिसे भी चुनो, कम से कम राजनीतिज्ञ को चुनना। जिसके जीवन में कम से कम राजनीति हो, उसे चुनना। इतना ही काफी है। राजनीति के कारण मत

चुनना, उसकी मनुष्यता के कारण चुनना। उसकी चालबाजियों और बेईमानियों के कारण मत चुनना, उसकी बुद्धिमत्ता के कारण चुनना। उसके किसी दिशा में विशेष के ेकारण चुनना। उसकी कुशलता के कारण चुनना। कोई वैज्ञानिक हो, उसे चुनना। कोई कवि हो, उसे चुनना। कोई कलाकार हो, उसे चुनना। कोई संगीतज्ञ हो, उसे चुनना। नहीं तो तुम्हारी संसद में गधों की जमात इकट्ठी हो जाती है और फिर ये गधे पूरे मुल्क को रेंक-रेंक कर हैरान कर देते हैं। थोड़े-बहुत संगीतज्ञ भेजो, कम से कम इनकी रेंक कम सुननी पड़े। कोई बांसुरी बजाए, कोई शहनाई बजाए। थोड़े कवि भेजो कि कुछ गीत भी बने, ये सिर्फ जूता-चप्पल ही न चलें। अगर जूता-चप्पल का ही बहुत आग्रह हो तो कुछ चमार भेजो, जूता-चप्पल बनाएं, चलाएं नहीं। विशेषज्ञों को भेजो, वैज्ञानिकों को भेजो। सूझ-बूझ के लोगों को भेजो। बुद्धुओं को मत भेजो।
लेकिन अभी तो ढंग ही कुछ और है। ठाकुर ठाकुरों को चुनेंगे। ब्राह्मण बाह्मणों को चुनेंगे। हिंदू हिंदू को चुनेंगे, मुसलमान मुसलमानों को चुनेंगे। आदमी की तो कोई कीमत ही नहीं है। आदमी को चुनो! और जिसमें जितनी आदमियत हो, जितनी ज्यादा आदमियत हो उसको चुनो। और ध्यान रखना, आदमियत जितनी ज्यादा होगी, राजनीति उतनी कम होगी। और जितनी राजनीति कम होगी उतनी प्रतिभा ज्यादा होती है।
राजनीतिज्ञ अक्सर प्रतिभाहीन होता है। राजनीतिज्ञ होता ही कोई इसलिए
है कि हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होता है। वह एक मानसिक रोग है। पृथ्वी को उससे छुड़ाने में तो समय लगेगा, लेकिन तुम से जो भी बन सके अपने-अपने छोटे- छोटे दायरे में वह जरूर करो। तू पूछती है प्रीति, इसलिए इतना कहता हूं।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
पांचवां प्रवचन

मैं स्वयं साक्षी हूं

पहला प्रश्नः ओशो, आप किस प्रकार के भारतीय गुरु हैं, हमने सुना है कि आपको संस्कृत भी नहीं आती!

आत्मानंद ब्रह्मचारी! मैं न तो भारतीय हूं और न ही गुरु हूं। भारतीय होना, पाकिस्तानी होना, चीनी होना--राजनैतिक दांव-पेंच हैं, उनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। वे सब राजनीति के खेल हैं। धर्म कैसे भारतीय हो सकता है? धर्म की कोई सीमा नहीं है। धर्म तो असीम है, असीम की खोज है। असीम के साथ एक हो जाने की अभीप्सा है।
बूंद सागर हो जाना चाहती है, यह धर्म का सार-सूत्र है। और जो बूंद सोचती हो कि बूंद रह कर सागर हो जाएगी, वह भ्रांति में है। जो भारतीय होकर धार्मिक होना चाहता हो, वह धार्मिक नहीं हो सकता। हिंदू धार्मिक नहीं हो सकता, जैन धार्मिक नहीं हो सकता, मुसलमान धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक होने के लिए ये सारी सीमाएं, ये सारे संस्कार छोड़ देने पड़ते हैं। इनके पार उठना पड़ता है--विराट में, आकाश में... ! ये क्षुद्र बातें हैं।
फिर भारत क्या है? कल तक कराची भारत था, अब? अब भारत नहीं है। अब जो कराची में है वह भारतीय नहीं है। कल तक ढाका भारत था, अब? अब ढाका भारतीय नहीं है। राजनीति बदलती है, देश बनते-बिगड़ते रहते हैं। ये तो पानी पर खींची गई लकीरें हैं। धर्म शाश्वत है। कल तक कोई पाकिस्तान न था, अब है। कल तक कोई इजरायल न था, अब है। देश थे, जो अब नहीं हैं। देश नहीं थे, जो अब हैं। धर्म न तो कभी मिटता है, न कभी बनता है। न उसका कोई जन्म है, न उसकी कोई मृत्यु है। न धर्म का कोई आकार है, न रूप है, न रंग है, न उसकी कोई परिभाषा हो सकती है। लेकिन बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य है कि धार्मिक व्यक्ति को भी ये भ्रांतियां पकड़े रहती हैं। और साधारण धार्मिक व्यक्तियों को ही नहीं, श्रावकों को ही नहीं; जिनको तुम साधु कहो, महात्मा कहो, वे भी इन्हीं मूढ़ताओं में बंधे होते हैं। उनके सिरों पर भी यही पागलपन सवार होता है। तुम भी साधु हो। ऋषिकेश निवासी हैं आत्मानंद ब्रह्मचारी। क्या कर रहे
थे ऋषिकेश में? अब तक मक्खियां ही मारते रहे! कैसा ब्रह्मचर्य है यह? अभी तक ब्रह्म का कोई अनुभव न हुआ--और ब्रह्मचारी हो गए! अभी तक ब्रह्म की चर्या का पहला कदम भी न उठा। कोई ब्रह्मचर्य का अर्थ कामवासना को दबा लेना थोड़े ही है। ब्रह्मचर्य बड़ा शब्द है, विराट शब्द है। हमारे पास जो सुंदरतम शब्द हैं, उनमें एक है। लेकिन लोग ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ करते हैं? मेरे एक मित्र थे, उनके घर मैं मेहमान होता था दिल्ली में--लाला सुंदरलाल। एक महात्मा के बड़े भक्त थे। फिर मेरे प्रेम में पड़ गए। मेरे प्रेम में पड़ना झंझट की बात है, क्योंकि मेरे प्रेम में पड़े तो दुविधा खड़ी हुई कि अब वे पुराने महात्मा का क्या करें! छोड़ते भी न बने, पकड़ते भी न बने। बात ऐसी बिगड़ने लगी। छोड़ने में डर लगे। तीस-चालीस साल पुराना संबंध था। वृद्ध आदमी थे सुंदरलाल। अब तो चल भी बसे। तीस-चालीस साल तक उनको गुरु माना था। मैंने उनसे पूछाः ऐसी क्या अड़चन है? पहले तो मैं तुमसे यह पूछूं लाला, कि ऐसा क्या देखा था जिसकी वजह से तीस-चालीस साल इस आदमी के साथ खराब किए?
उन्होंने कहाः एक बात गजब की है इस आदमी में--लंगोट का पक्का है!
मैंने कहाः यह मामला क्या, लंगोट का पक्का क्या? कस कर लंगोट बांधता है?
वे कहने लगेः आप समझे नहीं। लंगोट का पक्का है, अर्थात ब्रह्मचारी है।
देखा ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होकर रह गया--लंगोट का पक्का! कस कर बांध लिया लंगोट तो ब्रह्मचर्य हो गया! मध्ययुग में ऐसा पागलपन था यूरोप में, जैसा इस देश में अभी भी है। पतियों को बड़ी फिकर रहती भी कि कहीं उनकी पत्नियां किन्हीं और के प्रेम में न पड़ जाएं। इसलिए पति अगर युद्ध पर जाते

थे तो पत्नियां अपना दहन कर लेती थीं अग्नि में। यह तरकीब थी, यह होशियारी थी, यह चालबाजी थी, ताकि पति आश्वस्त जा सके कि अब कोई फिक्र नहीं। पत्नी तो जल मरी, अब क्या प्रेम करेगी? यूरोप में बात इतनी न बढ़ी थी, मगर उन्होंने और तरकीब खोजी थी। उनकी जरा वैज्ञानिक प्रतिभा है। उन्होंने स्त्रियों के बचाव के लिए ताले बना रखे थे, चेस्टिटी बेल्ट कहलाते थे वे। वे स्त्रियों को एक कमर में पट्टा पहना देते थे और उसमें एक ताला होता था। उस ताले को लगा देने के बाद वह स्त्री किसी व्यक्ति से संभोग नहीं कर सकती थी। चाबी वे अपने साथ ले जाते थे।
एक सेनापति युद्ध पर जा रहा था। उसकी स्त्री बहुत सुंदर थी, इसलिए उतना ही डर था, उतना ही भय था। भरोसा न आता था। सो उसने मजबूत से मजबूत ताला खरीद कर स्त्री को पहना दिया। लंगोट बना दिया... ब्रह्मचारिणी... इसको कहते हैं लंगोट का पक्कापन! लोहे का होता था। और उसमें ताला भी। लेकिन उसे यह फिक्र थी कि कहीं चाबी युद्ध में गिर जाए, खो जाए, तो किसी मित्र को दे दूं। एक उसका मित्र था--बचपन का मित्र। हजारों अनुभवों से दोनों गुजर थे, उस पर भरोसा किया जा सकता था। सो उस मित्र को चाबी दी। और कहा कि तुम पर मुझे भरोसा है। महीना लगे, दो महीने लगें, तीन महीने लगें, सम्हाल कर चाबी रखना। किसी और का मुझे भरोसा नहीं है, लेकिन तुम्हारा मुझे उतना ही भरोसा है जितना अपना। मित्र ने कहाः तुम बेफिक्र रहो, तुम्हारी स्त्री सुरक्षित है। चाबी मेरे हाथ में है।
सेनापति निश्चिंत युद्ध के मैदान की तरफ चला। अभी गांव के बाहर ही नहीं निकला था, कि उसका मित्र घोड़े पर सवार भागता हुआ आया और कहाः रुको- रुको, यह तुमने गलत चाबी मुझे दे दी।
वे अभी गांव के बाहर ही नहीं निकले और वे ताला खोलने पहुंच गए! पक्के लंगोटों का भी क्या भरोसा? लोहे के लंगोटों का भी कोई भरोसा नहीं है। और फिर खुद ही तो बांधा हुआ है, कब खोल लोगे, क्या पता! और यह कुछ ब्रह्मचर्य की बात हुई?
मैंने कहाः लाला, तुम भी लाला ही रहे! छोटे-छोटे बच्चों को लाला कहते हैं। उम्र हो गई, कब समझोगे, कब प्रौढ़ बनोगे? लंगोट का पक्का है, इस बात से तुम प्रभावित हो। इससे सिर्फ एक बात पता चलती है कि तुम लंगोट के कच्चे हो, और कुछ पता नहीं चलता।
वे कहने लगेः गजब, आपने भी एकदम से बात पकड़ ली! चालीस साल में न मालूम कितने लोगों से मैंने यह कहा, मगर किसी ने मुझसे यह नहीं कहा कि तुम लंगोट के कच्चे हो। आपको कैसे पता चला?
इसमें बात ही क्या है पता चलने की? लोग अपने से विपरीत को आदर देते हैं। व्यभिचारी तथाकथित लंगोट के पक्कों को आदर देते हैं। ब्रह्मचर्य को जिसने अनुभव किया है, वह लंगोट के पक्कों को तो पागल समझेगा, विक्षिप्त समझेगा।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, कैसे ब्रह्मचारी हो? ब्रह्म का अनुभव हुआ, थोड़ा
भी चखा स्वाद? तो यह बात ही न उठती--भारतीय! वहां कहां रुकेंगी ये बातें! कैसे भारतीय? कैसे अभारतीय? कौन पूर्वीय, कौन पश्चिमी? जिसने ब्रह्म को जरा सा अनुभव किया, यह सारा अस्तित्व उसका अपना हुआ। उसकी सब सीमाएं गिर गईं।
लेकिन नहीं, लोग संसार छोड़ देते हैं, धन छोड़ देते हैं, पद छोड़ देते हैं, प्रतिष्ठा छोड़ देते हैं, सब छोड़ देते हैं, मगर ये सूक्ष्म सीमाएं जकड़े ही रहती हैं। जैन मुनि अभी भी जैन, हिंदू संन्यासी अभी भी हिंदू, मुसलमान फकीर अभी भी मुसलमान, ईसाई साधु अभी भी ईसाई! यह क्या मजा चल रहा है! कम से कम साधु तो ईसाई न हो, हिंदू न हो, ईसाई न हो। मगर ये ही ज्यादा हिंदू, ये ही ज्यादा ईसाई, ये ही सारे उपद्रव की जड़। इन्होंने सारे मनुष्य-जाति के इतिहास को गंदा कर दिया है।
तुम भी इसी तरह के जड़, पुरातनपंथी साधु मालूम पड़ते हो। तुम कहां आ गए यहां? कहां भटक गए?
मैं भारतीय नहीं हूं; हो नहीं सकता, चाहूं तो भी। कोई उपाय नहीं मेरे भारतीय होने का। और मैं गुरु भी नहीं हूं। क्योंकि जिस दिन से स्वयं को

जाना है, उस दिन से यह भी जाना कि तुम भी वही हो, जो मैं हूं। तुम्हें भला यह प्रतीति होती हो कि मैं तुम्हारा गुरु हूं, लेकिन मेरी तरफ से ऐसी कोई प्रतीति नहीं है कि मैं तुम्हारा गुरु हूं।
बुद्ध ने कहा है अपनी संबोधि के क्षण में, प्रथम क्षण में, जब समाधि उतरी, तो जो पहली बात उनको अनुभव में आई, वह यह कि अरे, आश्चर्यों का आश्चर्य! मेरे साथ ही सारा अस्तित्व बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है! आदमी ही नहीं, पशु-पक्षी भी! पशु-पक्षी ही नहीं, पौधे, पत्थर, चांद-तारे भी! मैं क्या बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, सारा अस्तित्व बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है!
अब बुद्ध चाहें भी तो किसके गुरु बनेंगे? मैं किसी का गुरु नहीं हूं-- मेरी तरफ से। तुम्हारी तरफ से तुम शिष्य हो सकते हो, क्योंकि तुम सीखने आए हो। जो सीख रहा है वह शिष्य है। लेकिन जो सिखा रहा है वह अनिवार्यरूपेण गुरु नहीं है। जरा समझना, बारीक बात है। और अक्सर साधुओं की बुद्धि बारीक नहीं होती, बहुत मोटी होती है। उसमें से बारीक बातें सरक जाती हैं, मोटी बातें पकड़ जाती हैं। स्थूल होती है। तो जरा ठीक से, सावधानी से सुनना मैं क्या कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि शिष्य की तरफ से तो शिष्य होता है, क्योंकि वह सीखने आया है; उसे अभी पता नहीं वह कौन है। यही उसे सीखना है, यही उसे जानना है। लेकिन अगर सिखाने वाला अपने को गुरु समझता हो तो अभी सिखाने के योग्य ही नहीं होता। अभी उसे खुद भी पता नहीं है, वह क्या खाक सिखाएगा।
इसलिए जिनको यह खयाल है कि हम गुरु हैं, वे तो गुरु हैं ही नहीं। उनसे
तो सावधान रहना, उनसे बचना। असली सिखाने वाले को यह पता होता है--मैं और गुरु कैसे? असली सिखाने वाले का तो मैं ही नहीं बचता, अब गुरु कौन होगा? यहां मेरे भीतर कोई भी नहीं है--एक सन्नाटा है, एक शून्य है। यह वाणी शून्य की है, ये स्वर शून्य के हैं। यह वीणा अपने से बज रही है, इसे बजाने वाला नहीं है कोई। मैं यहां मौजूद नहीं हूं--मैं की तरह। मैं तो गया। मैं तो उस दिन गया जिस दिन जागा। मैं तो नींद का हिस्सा था। नींद ही गई तो मैं भी गया। तुम अभी हो, तो तुम शिष्य हो सकते हो। जब मैं तुम्हें संन्यास देता हूं, तुम्हें स्वीकृति देता हूं कि तुम शिष्य हो। लेकिन यह मत समझना कि मैं यह कह रहा हूं कि मैं गुरु हूं। मैं तो गुरु हो नहीं सकता। मैं तो कुछ भी नहीं हो सकता। मैं तो अब एक शून्य हूं, जिसमें से परमात्मा को बहना हो तो बहे, न बहना हो तो न बहे। उसकी मर्जी! मैं तो अब बांस की पोंगरी हूं, चाहे तो बांसुरी बना ले और चाहे तो बांस ही रहने दे। कुछ भेद नहीं पड़ता बांसुरी बन जाऊं तो, बांस ही रहा आऊं तो।
तो न मैं भारतीय हूं, न मैं गुरु हूं।
और तुम कहते होः हमने सुना है, आपको संस्कृत भी नहीं आती।
संस्कृत से क्या लेना-देना है? तुम सोचते हो महावीर को संस्कृत आती थी? महावीर को संस्कृत नहीं आती थी। लेकिन हुआ वैसा कोई ज्ञानी? हुआ वैसा कोई अनुभव को उपलब्ध? महावीर बोले हैं प्राकृत में।
बुद्ध को संस्कृत नहीं आती थी। लेकिन हुआ वैसा कोई जलता हुआ सूर्य पृथ्वी पर दूसरा? वैसी अग्नि किसी से प्रकट हुई? वैसी ज्योति! बेजोड़, अद्वितीय... ! बुद्ध तो पाली में बोले।
कबीर को संस्कृत नहीं आती थी, न गोरख को, न नानक को, न रैदास को, न मलूक को, न रामकृष्ण को, न रामतीर्थ को। संस्कृत से क्या लेना-देना है? मैं कोई पंडित नहीं हूं। हां, पंडित हो तो उसे संस्कृत आनी चाहिए। तब उसे वेद, उपनिषद, गीता कंठस्थ होने चाहिए।
मैंने तो स्वयं को जाना है। स्वयं को जानने में कोई भाषा आवश्यक नहीं होती। स्वयं को जाना जाता है मौन में, भाषा से नहीं। मैंने परमात्मा को जाना है। परमात्मा को जानने के लिए कोई संवाद थोड़े ही करना पड़ता है, कोई भेंटवार्ता थोड़े ही होती है! उससे कुछ बोलना थोड़े ही पड़ता है! न वह कुछ बोलता है। वह चुप, तुम चुप। चुप्पी ऐसी गहरी कि दुई खो जाती है, द्वैत खो जाता है, द्वंद्व खो जाता है। दो चुप्पियां मिल कर एक हो जाती हैं। दो मौन दो नहीं रह सकते।

और परमात्मा को तुम सोचते हो संस्कृत आती है? लेकिन यह धारणा अलग-अलग धर्मों की है। अगर मुसलमान से पूछोगे तो वह कहेगाः परमात्मा अरबी में बोलता है, क्योंकि कुरान तो अरबी में उतरी। वह इलहाम तो अरबी में हुआ। वह परमात्मा की भाषा नहीं है, वह मोहम्मद की भाषा है। मोहम्मद पर संस्कृत में उतरता तो देखते! तो मानना पड़ता कि परमात्मा की भाषा संस्कृत है। मोहम्मद अरबी जानते थे तो अरबी में परमात्मा उतरा। परमात्मा तो उतरता है मौन में, लेकिन मौन में जो जाना है उसको मोहम्मद कैसे कहें? उसी भाषा में कहेंगे जिसमें वे बोल सकते हैं। परमात्मा और उनके बीच तो कोई भाषा की जरूरत नहीं है, लेकिन तुम्हारे और उनके बीच भाषा की जरूरत है। उनके भीतर जो गुनगुन पैदा हुई, वह तो उस भाषा में पैदा होगी जो वे जानते हैं। इसलिए अरबी।
और जीसस तो अरेमैक में बोले। अब तो अरेमैक भाषा ही खो गई। अब तो दुनिया में कोई अरेमैक भाषा बोलने वाला ही नहीं है। क्या हुआ? जीसस से परमात्मा अरेमैक में बोला? दुनिया में तीन हजार भाषाएं हैं, इस पृथ्वी पर तीन हजार भाषाएं हैं--मूल भाषाएं, बड़ी भाषाएं। इनकी छोटी-छोटी भाषाएं तो फिर बहुत हैं। अगर डायलेक्ट्स को भी, बोलियों को भी गिनें हम, तो तो तीस हजार हो जाएंगी। और वैज्ञानिक कहते हैं, इस तरह की पृथ्वियां कम से कम पचास हजार हैं, जहां जीवन है। पचास हजार पृथ्वियों का तुम गुणा कर दो तीस हजार बोलियों में। परमात्मा की कौन सी भाषा होगी? यहूदी मानते है कि परमात्मा की भाषा हिबू्र है।
दूसरे महायुद्ध के बाद एक जर्मन सेनापति, एक अंग्रेज सेनापति से बात
कर रहा था। वह कह रहा था कि मैं बड़ा हैरान हूं कि हम हारे कैसे! हारना हमें चाहिए नहीं था। कोई तर्क नहीं है हमारी हार के पक्ष में। तुम्हारा जीतना असंभव था। होना ही नहीं चाहिए था। हमारे पास ज्यादा वैज्ञानिक साधन थे, हमारे पास ज्यादा विकसित बम थे, हमारे पास ज्यादा तकनीकी रूप से विशेषज्ञ थे। हमारे सैनिक ज्यादा प्रशिक्षित थे। तुम्हारे जीतने का कोई कारण न था। हम हारे कैसे?
अंग्रेज मुस्कुराया और उसने कहा कि कारण यह है कि हम हर रोज युद्ध में जाने के पहले प्रार्थना करते हैं। परमात्मा हमारे साथ है। तुम्हारा सब तकनीकी ज्ञान, तुम्हारी सारी युद्ध की कुशलता, तुम्हारा प्रशिक्षण क्या काम आएगा? अरे परमात्मा हमारे साथ है, हम प्रार्थना करके युद्ध में जाते थे, इसलिए जीते।
जर्मन बोलाः यह बात नहीं चलेगी। प्रार्थना तो हम भी करके जाते थे, रोज करके जाते थे।
अंग्रेज तो खिलखिलाने लगा और उसने कहा कि बस, तुम समझे ही नहीं बात।
तुम किस भाषा में प्रार्थना करते थे?
तो जर्मन ने कहाः स्वभावतः हम जर्मन भाषा में प्रार्थना करते थे।
अंग्रेज ने कहाः बस वहीं भूल हो गई। जर्मन भाषा परमात्मा समझता है? अंग्रेजी के सिवा उसे दूसरी भाषा आती ही नहीं।
अंग्रेज की वही धारणा है कि अंग्रेजी भाषा परमात्मा की भाषा है। संस्कृत को मानने वालों की धारणा है कि संस्कृत देववाणी है, वही उसकी भाषा है।
मुझे संस्कृत नहीं आती। करना क्या है संस्कृत का मुझे? मुझे उपनिषद नहीं दोहराने हैं। मुझे परमात्मा को अपने भीतर से बहने देना है, उपनिषद बन जाएंगे। मुझे श्रीमद्भगवतगीता से क्या लेना-देना है? मैं गा सकूं उसका गीत, वही श्रीमद्भगवतगीता होगी। वही होगा कुरान। वही होगी बाइबिल। मेरे प्राण उससे जुड़े हैं। मेरे तार उसके साथ संयुक्त हैं। मेरी उसकी धुन एक हो गई है। और तुम्हें फिक्र पड़ी है कि संस्कृत आपको आती है या नहीं!
संस्कृत अब मुर्दा भाषा है। मर चुकी, कब की मर चुकी। सच तो यह है कि इस बात की संभावना है कि संस्कृत कभी भी लोकभाषा नहीं थी। वह हमेशा पंडितों की ही भाषा रही। वह पंडितों की जालसाजी है। पंडित हमेशा चाहता है कि वह एक ऐसी भाषा का उपयोग करे जो जनता की समझ में न आए। क्योंकि जनता की समझ में आ जाए तो पंडित जो सड़ी-गली बातें कह रहा है, वे उसकी पकड़ में आ जाएंगी। जब जनता को भाषा समझ में नहीं आती तो तुम कुछ भी बको। जनता समझती है? --जितना

कम समझती हो उतना ही ज्यादा समझती है कि कुछ अदभुत अलौकिक बातें हो रही हैं! कुछ रहस्यमयी बातें हो रही हैं। कुछ बड़ी पहुंची हुई, सिद्धावस्था की बातें हो रही हैं!
तुम यह मजा देख सकते हो, संस्कृत ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद करो और कूड़ा-कर्कट हो जाता है। तुम भी चौंकोगे कि यही वेद हैं, जिनको हम सोचते थे कि सारे जगत का ज्ञान इनमें भरा हुआ पड़ा है! सारे जगत का अज्ञान इनमें भरा हुआ पड़ा है। मगर संस्कृत में अगर हैं तो तुम करोगे क्या? दो फूल चढ़ाओगे, चंदन लगा दोगे, सिर पटक लोगे, और क्या करोगे? और पंडित से पूछने जाओगे तो पंडित की कला ही यही है कि जहां कोई उलझन न हो वहां उलझन खड़ी कर दे। जहां बात सीधी-साफ हो, वहां इतने गोल चक्कर लगाए कि तुम चकरा जाओ, कि तुम भ्रमित हो जाओ। इतनी व्याख्याएं करे कि तुम्हारी समझ-बूझ चौंधिया जाए।
तुमने देखा, डाक्टर भी यही करते हैं। डाक्टर जब तुम्हें दवाई का नुस्खा लिखता है तो हिंदी में नहीं लिखता, तुम्हारी भाषा में नहीं लिखता जो तुम समझते हो। क्योंकि तुम्हारी भाषा में लिख दे कि अजवाइन का सत्त, तो तुम जाकर दवाई की दुकान पर बीस रुपये में अजवाइन का सत्त नहीं खरीद सकोगे। तुम कहोगेः मूरख समझा है मुझको? बीस रुपये में तो पूरी एक बोरा अजवाइन घर ले आऊंगा। सत्त ही सत्त निकाल लूंगा। सात पीढ़ियों के काम आएगा। तुम समझे क्या हो? लेकिन वह लिखता है लैटिन भाषा में। वह तुम्हारी समझ में आती नहीं। वह वह समझता है और दवाई का दुकानदार समझता है। फिर बीस रुपये मांगे कि पचास रुपये मांगे, जितने ज्यादा मांगे उतनी कीमती दवा है; उतना असरकारी होती है, यह भी खयाल रखना। सस्ती दवा का असर नहीं होता। मुफ्त दवा मिल जाए तो बिल्कुल असर होता ही नहीं। जितनी जेब कटे उतना असर होता है। क्योंकि उतना बड़ा डाक्टर, उतनी महंगी दवा। भारत में ही बनी हो तो उतना असर नहीं होता; जर्मनी से बनी हो, अमरीका से बनी हो, तो फिर कहना क्या! इसलिए भारत में भी लोग दवाइयां बनाते हैं, लेकिन लिख देते हैं--मेड इन यू.एस.ए.। मेड इन यू.एस.ए. का मतलब होता हैः मेड इन उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन। वे सब उल्हासनगर में बनती हैं। उल्हासनगर गजब की जगह है। और सिंधियों का तो कहना ही क्या! उनसे तो परमात्मा भी हारा है। वे तो जो न बना लें सो थोड़ा है। डाक्टर नहीं लिख सकते हैं ठीक उसी भाषा में, जिस भाषा में तुम बोलते हो। पंडित भी नहीं कर सकते यह काम। पंडित और पुरोहित को तो मरी हुई भाषाएं चाहिए--जो कभी की मर चुकी हैं या कभी बोली ही नहीं गईं।
संस्कृत, संभावना इस बात की है कि कभी भी लोकभाषा नहीं थी। शब्द से ही पता चलता है कि संस्कृत शब्द का अर्थ होता हैः परिष्कृत। महावीर बोले हैं प्राकृत में। प्राकृत का अर्थ होता हैः स्वाभाविक, जो लोग बोलते हैं। और संस्कृत का अर्थ होता हैः परिष्कृत, जो लोग बोलते नहीं; जो पंडितों ने शुद्ध कर-कर के, निचोड़-निचोड़ कर, धार रख-रख कर, व्याकरण को बिठा-बिठा कर, ऐसा कर दिया है कि वह इतनी दूर हो गई है कि आदमी की पहुंच के पार हो गई है। नहीं तो महावीर कुछ पागल न थे। अगर लोग संस्कृत समझते होते तो महावीर संस्कृत में बोलते। वे बोले प्राकृत में--उस बोली में जो लोग समझते थे। प्राकृत का व्याकरण उतना शुद्ध नहीं है, जितना संस्कृत का। संस्कृत का तो व्याकरण ही व्याकरण है, शुद्ध ही शुद्ध है।
पंडित जब कोई भाषा बनाता है, बनाई हुई भाषाएं तो बिल्कुल शुद्ध होती है, घिसती-पिसती नहीं। जो भाषा आदमी बोलते हैं, वह तो घिस-पिस जाती है। स्वाभाविक। और घिसी-पिसी हुई भाषाएं ही बताती हैं कि लोगों की हैं। बुद्ध ने पाली भाषा का उपयोग किया, वह आम जनता की भाषा थी। उसे कोई भी समझ ले सकता था, क्योंकि बुद्ध को उलझाना नहीं था, सुलझाना था। बुद्ध से भी लोगों ने आकर कहा है, जैसे आत्मानंद ब्रह्मचारी यहां आकर पूछ रहे हैं। ऐसे आत्मानंद ब्रह्मचारी तब भी रहे होंगे। उन्होंने भी पूछा है कि आप संस्कृत में क्यों नहीं बोलते? बुद्ध ने कहाः मैं कोई पागल हूं? संस्कृत में बोलना किससे है? कोई इक्के-दुक्के पंडित समझते होंगे। मुझे बोलना है उनसे जो चारों तरफ फैले हुए हैं। वह जो आम आदमी है, वह जो साधारण आदमी है, उससे संबंध बनाना है।

पाली का व्याकरण वैसा शुद्ध नहीं है, हो नहीं सकता। जनता की कोई भाषा शुद्ध नहीं हो सकती। जनता की भाषा तो चलेगी, चलने से घिसेगी-पिसेगी। और तब उसमें एक सौंदर्य आ जाता है।
अब यहां तुमने देखा, डाक्टर रघुवीर ने एक भाषा बनाने की कोशिश की; वह बनाई हुई भाषा है, इसलिए चली नहीं, जनता की बनी नहीं। कोई उसे गले नहीं उतार सका। रघुवीर ने मेहनत बहुत की। डाक्टर रघुवीर से मेरा मिलना हुआ था। मैंने उनसे कहाः तुम व्यर्थ ही मेहनत कर रहे हो। तुम्हारा जीवन अकारथ जा रहा है। क्योंकि कोई पंद्र्रह साल सतत मेहनत की उन्होंने; अकेले भी नहीं, और सौ-पचास शोधकर्ताओं को लगा कर श्रम किया। श्रम उनका भारी है। मगर जो भाषा उन्होंने बनाई, वह कभी चलने वाली नहीं है। क्योंकि बनाई हुई भाषाएं दुनिया में कभी नहीं चलीं। वे चल नहीं सकतीं। वे दुरूह होती हैं, कठिन होती हैं। शुद्ध तो होती हैं, मगर इतनी शुद्ध होती हैं कि आदमी के काम की नहीं होतीं। अब रेलगाड़ी सबको समझ में आती है, मगर पता नहीं रघुवीर को अड़चन है रेलगाड़ी से! रेलगाड़ी में क्या अड़चन है? वह शब्द अंग्रेजी का है, यह उनको अड़चन है। सबकी समझ में आता है, फिर अंग्रेजी का हो कि किसी का भी हो, इससे क्या लेना-देना? जिंदा भाषा का अर्थ ही यह होता है कि उसकी पाचन शक्ति होती है, वह दुनिया भर की भाषाओं से पचा लेती है।
अंग्रेजी इसीलिए सबसे ज्यादा जिंदा भाषा है आज पृथ्वी पर, प्रतिवर्ष
आठ हजार नये शब्द पचाती है। दुनिया की किसी भाषा की इतनी पाचन-क्षमता नहीं है। सब पचा जाती है। तुम जान कर हैरान होओगे संस्कृत का "पंडित" शब्द अंग्रेजी पचा गई। अंग्रेजी में पंडित शब्द का उपयोग होता है। मतलब वही होता है जो हिंदी में होता है--पोंगा पंडित, थोथे, गोबर भरे। मगर पाचन-शक्ति जीवित व्यक्ति का लक्षण है।
"रेलगाड़ी" को भी पचा नहीं सकते, जब कि चल पड़ा शब्द! लाखों लोग, करोड़ों लोग उपयोग कर रहे हैं। पूरा देश रेलगाड़ी शब्द समझता है। न तमिल को दिक्कत है, न मराठी को दिक्कत है, न गुजराती को दिक्कत है, न पंजाबी को दिक्कत है, न हिंदी को दिक्कत है। मगर उन्होंने एक गढ़ लिया शब्द, वह चला नहीं। बहुत चलाने की कोशिश की--लोहपथगामिनी! बात ही कुछ जंचती नहीं, बुद्धूपन सी लगती है। जैसे तुम जा रहे हो स्टेशन, कोई तुमसे कहे कहां जा रहे हो तुम कहो लोहपथगामिनी को पकड़ने जा रहे हैं! तो वह समझेगा कि तुम्हारी पत्नी भाग गई या क्या बात है? लोहपथगामिनी! तुम्हारी पत्नी का नाम है? यह क्या बला है-- लोहपथगामिनी? पहले इसका अर्थ तो समझाओ! अर्थ समझाने में तुमको बताना पड़ेगा--लोहपथगामिनी यानी रेलगाड़ी। नहीं तो तुम समझा ही न सकोगे। हालांकि शुद्ध है, क्योंकि रेल का अर्थ होता है लोहपथ और गाड़ी का अर्थ होता है जो गमन करे। सो लोहपथगामिनी!
मैंने उनसे कहा कि गांव के लोग ज्यादा बुद्धिमत्ता जाहिर करते हैं। शब्द उनके पास घिस-पिस जाते हैं। देहात में जाकर पूछो आदमी से। कोई कहीं जा रहा, कहां जा रहे हो, तो वह कहता हैः रपट लिखाने जा रहा हूं। रिपोर्ट का रपट हो गया। यह बात समझ में आती है। यह घिस गया शब्द, इसमें गोलाई आ गई। यह रिपोर्ट से ज्यादा प्रीतिकर हो गया। इस शब्द को किसी ने बनाया नहीं, यह अपने से बन गया, चलते-चलते बना--रपट! स्टेशन की जगह टेसन। वह गांव का हर आदमी जानता है, टेसन जा रहे हैं! स्टेशन में थोड़ी सी अड़चन है, उसको टेसन कर लिया, साफ अपने आप हो गया; किसी को करना नहीं पड़ा, करते-करते हो गया। लोक-व्यवहार से भाषाएं बनती हैं। दुनिया में बहुत बार कोशिश की गई है। पश्चिम में एस्परेन्टो भाषा बनाई गई, कि वह जागतिक भाषा बन जाए। मगर चली नहीं। बहुत श्रम किया गया कि चल जाए। मगर चले कैसे? सुंदर थी, व्याकरण शुद्ध थी, जागतिक भाषा बन सके इसका सारा आयोजन था। लेकिन सब आयोजन व्यर्थ होते हैं। जबरदस्ती कोई चीजें नहीं चलाई जातीं। भाषाएं ऐसी थोपी नहीं जातीं। सदियों में विकसित होती हैं। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हजारों-करोड़ों लोग उनका उपयोग करते हैं, तब उनमें प्राण आते हैं।
मैं वही बोल रहा हूं जो लोग समझ सकते हैं। और अनुभव मेरा अपना है, कोई शास्त्रीय नहीं है।

और आत्मानंद, नाम तो तुम्हें बड़ा प्यारा... पता नहीं किसने दे दिया, किस नासमझ ने दे दिया! लेकिन तुमको आत्मानंद का अभी कोई अनुभव नहीं है। नहीं तो यह बात पूछते? तुम थोथे पंडित मालूम पड़ते हो। मुर्दा भाषाओं को ढो रहे हो। जीवंत में खोजो।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान उससे पूछ रही थीः नसरुद्दीन, तुम मुझे कितना प्यार करते हो! बुढ़ापा भी आ गया, दांत भी सब गिर गए, बाल भी सब सफेद हो गए, हड्डी-पसलियां निकल आईं, अस्थिपंजर मात्र रह गई हूं। लेकिन तुम, तुम्हारा प्रेम अमर है! तुम मुझे वैसा ही प्रेम करते हो जैसा पहले प्रेम करते थे। क्या मैं तुम्हें अब भी जवान लगती हूं? क्या मैं तुम्हें अभी भी सुंदर मालूम होती हूं?
नसरुद्दीन ने कहाः गुलजान, मेरी जान! सुनो तुम्हारी सदाबहार जवानी को देख कर मुझे एक शायरी कविता याद आ रही है--
बुझ चुका है तुम्हारे हुस्न का हुक्का
वो तो हम हैं कि गुड़गुड़ाए जाते हैं।
अब यह संस्कृत का हुक्का कब का बुझ चुका! कभी जला हो, यह भी संदिग्ध है। मगर कुछ मूढ़ हैं कि गुड़गुड़ाए जाते हैं। मैं इस तरह के हुक्के नहीं गुड़गुड़ाता। मुझे कोई रस नहीं है।
मैं कोई पंडित नहीं हूं, मैं कोई शास्त्रज्ञ नहीं हूं। मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैं पंडित नहीं हूं, शास्त्रज्ञ नहीं हूं। नहीं तो वही दुर्गति मेरी होती आत्मानंद, जो तुम्हारी हो रही है। मैंने अपने भीतर डुबकी मारी है, शास्त्रों में नहीं। अपने भीतर डुबकी मार कर जो पाया है, फिर उससे मैं गवाह हो गया हूं शास्त्रों का। लेकिन पाया मैंने अपने भीतर है।
आज जब मैं बुद्ध पर कुछ कहता हूं तो इसलिए नहीं कि बुद्ध का मुझे समर्थन करना है, बल्कि इसलिए कि मैं पाता हूं बुद्ध मेरे समर्थन में हैं। अगर आज मैं महावीर पर कुछ बोलता हूं तो इसलिए नहीं कि महावीर की मुझे व्याख्या करनी है। मुझे क्या लेना-देना महावीर से? बल्कि इसलिए कि जो मैंने पाया है उसी को महावीर ने भी कहा है। मेरा अपना अनुभव प्राथमिक है, शेष सारी बातें गौण हैं। मैं गवाह हूं। मैं स्वयं साक्षी हूं।

दूसरा प्रश्नः ओशो! अब तक मैं सुनता आया था कि मजहब क्या है, लेकिन उस दिन आपके ऊपर जो हमला हुआ, सो आपको देख कर जाना कि धर्म क्या है।

आनंद मोहम्मद! धर्म को सुन कर जाना नहीं जा सकता--देख कर ही जाना जा सकता है। धर्म एक साक्षात्कार है। तुम सौभाग्यशाली थे कि यहां मौजूद थे। और वह आदमी भी बड़ा प्यारा था, जिसने वह परिस्थिति पैदा कर दी। नहीं तो शायद तुमने जो देखा वह तुम न देख पाते। इसलिए उसका धन्यवाद करो। उसका छुरा फेंकना, उसकी चेष्टा, हत्या करने की... यहां जो सोए भी थे, वे भी उस घड़ी में जाग गए। एक क्षण को तुम्हारा मन थम गया होगा--थम ही जाएगा। ऐसे क्षणों में मन चलता नहीं, विचार रुक जाते हैं।
और विचार रुक जाएं, तो तुम मुझे देख लो। विचार रुक जाएं, तो तुम मुझे पहचान लो। विचार रुक जाएं, तो तत्क्षण मेरा और तुम्हारा मेल हो जाए, मिलाप हो जाए, मिलन हो जाए।
उस आदमी ने यह अवसर उपस्थित कर दिया आनंद मोहम्मद, कि तुम देख सके। उसने तुम्हें चौंका दिया, जगा दिया, अवाक तुम रह गए। तुम्हारी आंख से एक परदा उठ गया। बहुत बातें हो गई उस छोटे से क्षण में। उस छोटे से क्षण में शाश्वत की एक झलक तुम्हें मिल गयी।
और धर्म तो एक अनुभूति है। सत्संग में बैठते-बैठते कब मौका आ जाएगा, कहा नहीं जा सकता। कब किस घड़ी में सत्संग हो जाएगा, कहा नहीं जा सकता। इसलिए सत्संग में शिष्य बैठते रहते, आते रहते, बैठते रहते, आते रहते, बैठते रहते... पता नहीं कब, किस अपूर्व क्षण में कौन सी परिस्थिति में, कौन सी चुनौती में, तुम थम जाओ, ठहर जाओ।

उसका चिल्लाना, उसका छुरे को फेंकना, स्वभावतः सन्नाटे को गहरा कर गया। यूं ही यहां सन्नाटा है, लेकिन उस क्षण में सन्नाटा अपूर्व गहराई को उपलब्ध हो गया। तुम मुझे अपलक देख सके। तुम्हारी पलक भी न झुकी होगी फिर। मेरे जीवन को खतरा हो तो उस समय तुम कल पर नहीं टाल सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि कल देख लेंगे; कि रोज देखते हैं, रोज सुनते हैं, कल सुन लेंगे, आज जल्दी क्या है, आज थोड़ी झपकी ही ले लें!
नहीं, उसने एक नया मौका दे दिया। तुम झकझोर गए--भीतर से झकझोर गए। उसने तुम्हारी धूल झाड़ दी। इसलिए तो मैं कहता हूं कि परमात्मा किस रूप में काम करता है, कहना कठिन है। इसलिए हर तरह से, हमेशा उसके प्रति धन्यवाद देना। वह जो करे, जैसा करे, उसमें जरूर हित होगा, कल्याण होगा, मंगल होगा।
सत्य वेदांत ने उस दिन की अपनी अनुभूति को इन शब्दों में बांधा है।... आनंद मोहम्मद, वे शब्द तुम्हारे काम के होंगे। सत्य वेदांत ने लिखा है-- ओशो,

सहम गया होगा सागर,
धड़कनें कण-कण की
थम गई होंगी क्षण भर,
फूल-पत्तों पर
नदी-पर्वतों पर
पत्ती-पत्ती पर घास की
उभर आई होगी सिहरन।
ओ अविनश्वर! वह हिंसक वार!
अकुलाह होंगे
नक्षत्र, तारा-गण,
ओस-कण कंप गए होंगे,
फीके पड़ गए होंगे पल भर
रवि-कर,
--देख, इतिहास कर रहा प्रत्यावर्तन।

ओ महाकाश!
पर बना रहा तू शांत--
झील-सा,
हिला न तनिक
प्रतिबिंबित चंद्र का तुझ में फैला और अधिक प्रकाश तेरा शीतल चंदन सा।
ओ करुणामय!
उतरी अमावस थी
तुझे घेरने,
उद्यत कोई था मूढ़-मति
तुझे भेदने,
तूने फिर भी ली सुध हमारी पहले-- "फिकर न करें, बैठे रहें" गूंजी तेरी स्निग्ध, मधुवर्षिनी ध्वनि।

ओ विश्वमित्र!
यह अहोभाग्य निश्चय ही--
तू करता चलता चोट
खोजें हम ओट कितनी ही
मृत परंपरा की,
सधे रहते धर्म की प्रत्यंचा पर तेरे शब्द बाण,
ओ महावीर, तू करुणा में भी

बींधता चलता
निशान पर निशान,
झकझोरता हमें मुक्त करने, तोड़ता, सदियों से बैठी
छाती पर चट्टान।

धन्यवाद, ओ जाग्रत अस्तित्व! तुझे शत-शत प्रणाम!
हुई है पुनः पृथ्वी आश्वस्त उसका अखंड रहा है सौभाग्य। बनी है गंध घनी और
किरणों ने चीरे हैं गहन अंधकार; हुआ है रोम-रोम पुलकित
वसुधा का,
गहराई है और अधिक
लाली प्रभात की
थिरक उठा है
जड़-चेतन का गात-गात।

धन्यवाद, ओ जगत्प्राण!
धन्यवाद, फिर-फिर प्रणाम!

धर्म न समझने की बात है न समझाने की--देखने की बात है और दिखाने की। धर्म, शास्त्रों में तो नहीं है, शब्दों में तो नहीं है, लेकिन किन्हीं- किन्हीं क्षणों में खुल जाते हैं द्वार--उस अनंत रहस्य के। एक क्षण को तुम्हारा सारा ज्ञान गिर जाता है, तुम फिर ऐसे हो जाते हो जैसे छोटे-छोटे बच्चे, निर्दोष बालक जैसे--आश्चर्यविमुग्ध, अवाक! बस, तभी तुम्हें पंख लग जाते हैं; तभी सारा आकाश तुम्हारा हो जाता है।
वह घड़ी शुभ थी। सब घड़ियां शुभ हैं। तुम धन्यभागी थे कि उस घड़ी में मौजूद थे।
इस दुनिया में प्रकाश है, अंधेरा है। अंधेरा लाख-लाख वर्ष पुराना हो
तो भी नये से नया दीपक भी उस अंधेरे को तोड़ देता है, यह स्मरण रखना। अंधेरा कितना ही पुराना हो और कितनी ही परतों पर परतें उसकी जमी हों, छोटा सा प्रकाश का दीया भी मिट्टी का छोटा सा दीया भी उसे तोड़ने में समर्थ है। ज्योति अपूर्व क्षमता से भरी है। ज्योति बुझ-बुझ कर भी बुझ नहीं पाती है। हजारों बार बुझाई गई है, मगर बुझ सकती नहीं। सत्य हार-हार कर भी नहीं हारता है और असत्य जीत-जीत कर भी हार जाता है।
छोटी-मोटी विजयों पर चिंता मत लेना और छोटी-मोटी हारों पर विषाद मत करना। अंतिम विजय हमेशा सत्य की है और प्रकाश की है क्योंकि अंतिम विजय हमेशा परमात्मा की है। अमावस लाख कोशिश करे, अंतिम विजय पूर्णिमा की है। मगर कोशिशें तो जारी रहेंगी। कोशिशें इसलिए जारी रहेंगी कि मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कर रहा हूं, उससे न्यस्त-स्वार्थों पर चोट पड़नी स्वाभाविक है। वे तिलमिलाएंगे। उनकी तिलमिलाहट और कैसे प्रकट होगी? उनके पास और क्या है? जवाब तो नहीं। उनके पास कोई उत्तर तो नहीं। मैं जो चुनौती दे रहा हूं, उस चुनौती को झेलने की उनकी सामर्थ्य तो नहीं। मैं जो कह रहा हूं, छुरा फेंकना उसका कोई उत्तर है? उससे तो सिर्फ मेरी बात ही सही सिद्ध होती है। छुरा तो सिर्फ कमजोरी का लक्षण है। वह तो सिर्फ इतना ही बताता है कि अब तुम्हारे पास कोई तर्क न रहा, कोई विचार न रहा; अब तुम्हारे पास कोई उपाय न रहा। वह तो नामर्दी का लक्षण है। वह कोई बहादुरी का लक्षण नहीं है।
और ऐसे मौके आएंगे, और भी आएंगे। इस घटना के बाद पूना से अनेक पत्र मिले हैं, जो निश्चित ही पूना से लिखे गए हैं, हालांकि जिन्होंने लिखे हैं, बिल्कुल नपुंसक हैं, नामर्द हैं। कुछ ने तो अपने नाम नहीं लिखे; कुछ ने नाम लिखे हैं, वे झूठे हैं। और पते दिए हैं, किसी ने हरियाणा का और किसी ने

हिमाचल प्रदेश का और किसी ने कश्मीर का। और उन सब पर सील सिर्फ पूना की है-- एक ही सील है। वे सब पूना में ही लिखे गए हैं, पूना में ही पोस्ट किए गए हैं। और सारे पत्रों का एक ही स्वर है कि हम आपको जीवित नहीं छोड़ेंगे। आपका वही अंत होगा जो जीसस का हुआ, मंसूर का हुआ। आपको हम सावधान करते हैं। या तो आप अपने कार्य को बंद कर दें, आप जो कहते हैं वह कहना बंद कर दें, और या फिर हम आपकी जबान बंद कर देंगे।
जैसे कि कोई कभी परमात्मा की जबान बंद कर पाया है! मेरी जबान बंद होगी
तो परमात्मा मेरे लाखों संन्यासियों की जबान से बोलेगा। लाभ ही होगा, हानि नहीं होगी। एक जबान बंद होगी तो हजार जबानें बोलेंगी। मैं जब तक हूं, तब तक किसी और को बोलने की जरूरत नहीं है। मैं नहीं हूं, तो लाखों को बोलना पड़ेगा। आग की तरह फैल जाएगी बात फिर। मेरे न होने से कुछ नुकसान नहीं होगा। मैं न होकर और भी ज्यादा प्रगाढ़ हो जाऊंगा।
और कौन न मरना चाहेगा जीसस जैसी मौत, मंसूर जैसी मौत? खाट पर मरने का मुझे भी कोई बहुत लोभ नहीं है। यूं भी निन्यानबे प्रतिशत लोग खाट पर मरते हैं। खाट पर मरने में ऐसा क्या रस हो सकता है, क्या अर्थ हो सकता है? अच्छा ही होगा कि मेरी गिनती कोई जीसस, सुकरात और मंसूर में करा दे। मैं उसका धन्यवाद ही करूंगा, उसका आभार ही मानूंगा।
मगर यह नामर्दों की भाषा है। जो मैं कह रहा हूं, अगर वह गलत है, तो उसे जवाब दो। तुम्हारे पास भी वाणी है। और तुम्हारे पास तो इतने पंडित हैं, शंकराचार्य हैं, साधु-संन्यासी हैं, महात्मा हैं, मुनि हैं--इन सबका उपयोग करो। इस एक अकेले आदमी से हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध--इतने सारे लोगों की पीड़ित और परेशान होने कि क्या जरूरत है? उत्तर दो।
लेकिन उत्तर नहीं हैं उनके पास। वे निरुत्तर खड़े हैं। एक-एक बात उनकी जड़ों को हिला रही है। घबड़ाहट उनमें फैलती जा रही है। और कमजोरों के पास फिर एक ही उपाय बच रहता है कि वे अपनी निम्नता पर उतर आएं, अपनी पशुता पर उतर आएं, वे घोषणा कर दें अपने पशु होने की।
मगर उनकी पशुता से कोई नुकसान कभी हुआ नहीं। जैसे सिर्फ उसका छुरा फेंकना, आनंद मोहम्मद, तुम्हें धर्म की एक झलक दे गया। अगर इस तरह के लोगों ने मिल कर मुझे सूली पर लटका दिया या मंसूर की तरह मार डाला, तो मैं तुम्हारे प्राणों में एक ऐसी अमिट छाप छोड़ जाऊंगा कि वही छाप तुम्हारा निर्वाण हो जाएगी, तुम्हारा मोक्ष हो जाएगी, तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी। और फिर मैं तुम सबसे बोलूंगा। अभी इस एक देह में आबद्ध हूं, फिर तुम्हारी सब देहों में व्याप्त होकर बोलूंगा। फिर हजारों कंठ मेरे होंगे। ऐसे मुझे कुछ हानि नहीं दिखाई पड़ती, लाभ ही लाभ है। यह मामला ही कुछ ऐसा है कि इसमें हानि होती ही नहीं, लाभ ही लाभ है।
बोकोजू नाम का झेन फकीर अपने एक शिष्य के साथ बीस साल से मेहनत कर रहा
था, लेकिन उस शिष्य को नहीं ज्ञान उपलब्ध हुआ सो नहीं उपलब्ध हुआ। और शिष्य ने कुछ कमी नहीं की। ऐसा कुछ अलाल नहीं था वह। दिन-दिन भर ध्यान में बैठा रहता। दिन-दिन भर सतत चेष्टा में संलग्न रहा। सुस्ती नहीं की। अपने को बचाया नहीं। धोखाधड़ी नहीं की। बड़ा आतुर था। मगर कुछ अड़चन थी, कुछ बात थी कि रुकावट बनी थी। होते-होते चूक जाता था। और एक दिन बाजार गया हुआ था किसी काम से और लौटा तो नाचता हुआ लौटा। बाजार में यूं हुआ कि गुजरता था एक बाजार से, जहां से उसे गुजरना भी नहीं था। उसे पता नहीं था कि वह गलत रास्ते पर पड़ गया है। वह रास्ता था जहां मांस बेचने वालों की दुकानें थीं। इस बौद्ध भिक्षु को मांस बेचने वालों की दुकानों वाले रास्ते से गुजरना उचित भी न था। भूल से गुजरा, तो तेजी से चला जा रहा था कि किसी तरह निकल जाऊं इस रास्ते के बाहर। मांस की दुर्गंध ही दुर्गंध थी। मछलियां, मांस, और न मालूम क्या-क्या बिक रहा था! तभी उसने एक दुकानदार और उसके ग्राहक की बात सुन ली। बस चलते-चलते सुन ली राह पर। ठिठक गया। वह ग्राहक पूछ रहा था कि यह मांस, तुम्हारी दुकान का श्रेष्ठतम मांस है न? मैं श्रेष्ठतम चाहता हूं, क्योंकि आज सम्राट को मैंने भोज पर आमंत्रित किया है।

उस दुकानदार ने कहाः यह बात कभी दुबारा मत कहना। मेरी दुकान पर सिर्फ श्रेष्ठ चीजें ही बिकती हैं। श्रेष्ठ के अलावा मैं कुछ बेचता ही नहीं। श्रेष्ठ नहीं तो मेरी दुकान पर नहीं। जो है, श्रेष्ठ है।
अब इस बात से निर्वाण का क्या संबंध? मगर कोई बात हो गई और यह आदमी जो बीस साल से मेहनत कर रहा था और कोई पर्दा नहीं उठता था, वह उठ गया। यह नाचता हुआ आया। इसे दूर से ही देख कर गुरु ने कहा कि आ, आ गले तुझे लगा लूं। बीस साल से इस दिन की प्रतीक्षा थी। यह कैसे हुआ?
उसने कहाः कैसे कहूं कैसे हुआ! बड़े अजीब ढंग से हुआ। मैं गुजर रहा था, गलती से मांस वालों को रास्ते से गुजर गया। पता होता तो मैं वहां से गुजरा भी नहीं होता। और आज एक अदभुत अवसर से चूक जाता। ऐसी वार्ता हो रही थी। ग्राहक से दुकानदार ने कहा--इस दुकान पर जो भी है श्रेष्ठ है। और तब मुझे तत्क्षण आपकी याद आई और बीस साल में जो भी आपने दिया है वह सब श्रेष्ठ है, यह याद आई। एक-एक बात याद आई। जैसे बीस साल आंखों के सामने से गुजर गए और कोई पर्दा उठ गया। चरण छूने आया हूं।
बोकोजू ने कहाः पागल, यही मैं तुमसे बीस साल से कह रहा था कि हम धंधा
ही ऐसा करते हैं कि यहां जो है सभी श्रेष्ठ है। मगर तू सुनता ही नहीं था। मगर ठीक है, हर चीज का पकने का समय होता है। कोई फिक्र नहीं। अच्छा ही हुआ। तू भूल से ही सही, उस रास्ते से गुजर गया। कब कहां बात घट जाएगी, कोई कुछ कह नहीं सकता।
आनंद मोहम्मद, उसका छुरा फेंकना और तुम्हें मेरा ठीक-ठीक दर्शन हो जाना, तुम्हें मेरे प्राणों के साथ एकरसता का अनुभव हो जाना। कब तुमने सोचा होगा कि कोई छुरा फेंकेगा तब यह होगा? कभी नहीं सोचा होगा। कभी कल्पना भी नहीं की होगी। सोचते भी कभी ऐसा तो मन में अपराध-भाव पैदा होता कि मैं भी कैसी बातें सोच रहा हूं, कि कोई छुरा फेंके! मगर कब, किस घड़ी में घटना घट जाएगी, कहना मुश्किल है।
मगर इस जगत में जो भी घटता है, सब शुभ है। यह परमात्मा की दुकान पर सभी कुछ श्रेष्ठ है। जो शायद मेरे जीवन से न हो सके, वह मेरी मौत से हो जाए। घबड़ाना मत, चिंता मत लेना। जीवन की श्रद्धा मत खोना। जीवन पर श्रद्धा मत खोना। और तुम पाओगे कि अगर तुमने जीवन पर श्रद्धा रखी तो जीवन तुम्हें जरूर लाख-लाख द्वारों से अमृत से भर देगा। तुम्हारी झोली हजार-हजार हीरों से भर जाएगी। तुम्हारा जीवन आलोकित होगा ही, होना ही चाहिए।
मेरे देखे, जिस तरह के प्रतिभाशाली लोग मेरे पास इकट्ठे हुए हैं, मैं
यह घोषणा कर सकता हूं कि हजारों लोग परमज्ञान को उपलब्ध होंगे। यह घोषणा आसान बात नहीं है। लेकिन यह घोषणा मैं कर सकता हूं, क्योंकि मेरे पास कोई तृतीय श्रेणी के लोग इकट्ठे नहीं हो रहे हैं। तृतीय श्रेणी के लोग तो यह काम करेंगे, वे बेचारे वे इस काम में लाए जाएंगे, उनका उपयोग यह होगा। कोई छुरा फेंकेगा, कोई मारने की धमकी देगा, कोई जहर पिलाने की कोशिश करेगा। वे बेचारे यह काम करेंगे। उनका भी उपयोग कर लेंगे। बेकार पत्थर होंगे तो उनको नींव में डाल देंगे, मगर कहीं न कहीं उनका उपयोग हो जाएगा। मगर मेरे पास इस पृथ्वी के सुंदरतम लोग इकट्ठे हुए हैं।
आज सुबह ही सुबह "विवेक" ने मुझे कहा कि कल कोई इटालवी फोटोग्राफर चित्र लेने आया था--इटली की किसी बड़ी पत्रिका के लिए। और उसने कहा कि जिस तरह के चेहरों के मैं चित्र लेना चाहता हूं, वे हजारों में खोजने पर कभी एकाध मिलता है। मगर यह आश्रम मेरे जीवन का पहला अनुभव है कि जिस चेहरे को देखता हूं वही लगता है कि अरे, यह चेहरा भी उतार लेने जैसा है! इतने आनंदित लोग मैंने जीवन में कहीं देखे नहीं। और मुझे सिर्फ आनंदित चेहरों के चित्र उतारने में ही रस है। मैं दुखी चेहरे नहीं चाहता, मैं लंबे और उदास चेहरे नहीं चाहता।
वह कह रहा था कि मैं वर्षों में थोड़े से ही चित्र उतारता हूं। हजारों आदमी में कभी एकाध आदमी का चित्र उतारता हूं। क्योंकि मुझे आदमी ही मुश्किल से मिलते हैं! मगर यहां मैं दीवाना हुआ जा रहा हूं कि किसको पकडूं, किसको छोडूं, किसको उतारूं किसको न उतारूं! मैं तो फिल्में सीमित लेकर आया

हूं अपनी पुरानी आदत के हिसाब से और यहां हर चेहरा उतारने योग्य है। हर चेहरे पर एक आनंद है। हर चेहरे पर एकप्रतिभा है, एक तेज है, एक रस है।
प्रत्येक संन्यासी धीरे-धीरे परमात्मा की तरफ सरक रहा है। और जैसे- जैसे सरक रहा है, वैसे-वैसे उसके भीतर आनंद बढ़ेगा, रस बढ़ेगा, अनुभूति बढ़ेगी। और कब किसका वसंत आ जाएगा, कहना कठिन है। मगर सबका वसंत आएगा। तैयारी रखो। अपनी तरफ से तत्पर रहना आवश्यक है, बस।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं एक स्त्री के प्रेम में हूं, जो मुझसे उम्र में ग्यारह वर्ष बड़ी है। आपका मंतव्य?

योगेश्वर! प्रेम तो अंधा होता है। कौन हिसाब रखता है उम्र का! उम्र वगैरह के हिसाब तो विवाह में रखे जाते हैं। लेकिन तुम थोड़ा हिसाब लगा रहे हो। सच में ही प्रेम में हो, कि यूं ही खयाल पैदा हो गया है फिल्में देख-देख कर?
पुरुष अहंकार के कारण यह भ्रांति पालता रहा है सदियों से कि पुरुष उम्र में बड़ा होना चाहिए और स्त्री छोटी होनी चाहिए। अगर पुरुष पच्चीस का हो तो स्त्री बीस की हो। क्यों? यह बात अवैज्ञानिक है। क्योंकि स्त्रियां पांच साल पुरुषों से ज्यादा जीती हैं। अगर तुम पचहत्तर साल जीओगे योगेश्वर, तो तुम्हारी ही उम्र की स्त्री अस्सी साल जीएगी। तो अगर तुम अपनी समान उम्र की स्त्री से विवाह करो तो उस गरीब को पांच साल के लिए विधवा कर जाओगे। और जवानी में इतनी जरूरत नहीं होती दूसरे की, जितनी बुढ़ापे में जरूरत होती है। जवानी में तो बहुत मिल जाते हैं। बुढ़ापे में तो अपना ही पति काम आए तो आए, दूसरे तो फिर देखते भी नहीं। अपने भी पराए हो जाते हैं बुढ़ापे में तो।
और यह बड़ी अवैज्ञानिक प्रक्रिया है--सारी दुनिया में प्रचलित है--कि अपने से पांच साल कम उम्र स्त्री से विवाह करो। तो दस साल का फर्क हो तो जाने वाला है। तुम जब मरोगे तो दस साल के लिए विधवा स्त्री छोड़ जाओगे। इसलिए दुनिया में इतनी विधवाएं दिखाई पड़ती हैं, इतने विधुर दिखाई नहीं पड़ते। उसका कुल कारण यह अवैज्ञानिक बात है। सच तो यह है कि हरेक व्यक्ति को अपने से पांच साल उम्र बड़ी स्त्री से विवाह करना चाहिए, ताकि दोनों करीब-करीब साथ-साथ मरें; ताकि किसी को सती वगैरह होने की आवश्यकता भी न पड़े। अपने आप ही करीब-करीब, साथ-साथ मरना हो जाए।
मगर पुरुष का अहंकार बड़ा अजीब है। उसे हर चीज में बड़ा होना चाहिए। अगर स्त्री लंबी हो तो ठिगना आदमी उससे बचता है कि नहीं, हमें शादी नहीं करनी। उस लंबी स्त्री से कौन शादी करे! बांस जैसी लंबी है, कि बिजली का खंबा मालूम होती है! और स्त्रियां बड़ी प्रसन्न होती हैं, अगर उनको दूल्हा मिल जाए बिजली के खंभे जैसा लंबा, तो वे कहती हैंः देखो हमारा दूल्हा, बिजली का खंबा है! क्या गजब लंबा है! उनको सिखाया है पुरुषों ने कि पुरुष को बड़ा होना चाहिए, स्त्री को छोटा होना चाहिए--लंबाई में भी, उम्र में भी, पढ़ाई-लिखाई में भी। अगर पुरुष बी.ए. है तो वह एम.ए लड़की से शादी नहीं करना चाहता। यह पुरुष का अहंकार मात्र है। क्यों? एम.ए. लड़की में क्या कसूर है? क्योंकि वह जगह-जगह भद्द करवाएगी, जगह-जगह कोई भी पूछेगा--शिक्षा? तो तुम्हारा सिर नीचा हो जाएगा कि हम सिर्फ बी.ए.पास, जहां तक तो बी.ए. फेल! और पत्नी एम.ए. पास। तो जगह-जगह बार-बार अपनी बेइज्जती कौन करवाए! तो पुरुष हर हालत में स्त्री को छोटा चाहता है।
योगेश्वर, क्या चिंता की बात है कि स्त्री ग्यारह वर्ष उम्र में बड़ी है?
मोहम्मद ने शादी की थी तो वे छब्बीस ही वर्ष के थे और पत्नी उनकी चालीस वर्ष की थी। चल पड़ो, पैगंबर होने का कम से कम एकाध काम तो करो! हालांकि चौदह साल का फासला नहीं है, मगर ये ग्यारह साल पता नहीं... स्त्रियों की बात का कोई भरोसा नहीं है उम्र के बाबत!
नसरुद्दीन फजलू से एक दिन पूछ रहा था कि अच्छा, यह तो बताओ कि सन उन्नीस सौ पचास में जो पैदा हुआ है, उसकी उम्र इस समय कितनी होगी?

फजलू बोलाः पापा, पहले यह तो बताइए कि पैदा होने वाला स्त्री है या पुरुष?
सन का सवाल इतना नहीं है; सवाल स्त्री का है या पुरुष का है। पुरुष तो आमतौर से सन के हिसाब से चलते हैं। उनका कैलेंडर में बड़ा भरोसा है। स्त्रियां कैलेंडर वगैरह को मानती ही नहीं। दो-दो, तीन-तीन साल में एक-एक साल बढ़ती हैं। ऐसी रुकती हैं कई जगह तो कि रुकी ही रहती हैं। जब तक धक्का ही नहीं खातीं बिल्कुल, तब तक बढ़ती ही नहीं हैं। उनको कोई जल्दी ही नहीं बढ़ने की। सब उपाय करती हैं इस बात का चमत्कार कायम रखने का, कि उनकी उम्र कम है। अगर यह तुम्हारी स्त्री ने... जिससे तुम्हें प्रेम हो गया है, उसने ही तुम्हें बताया है वह ग्यारह साल बड़ी है, तो तुम जरा खोज-बीन करना। हो सकता है चौदह साल बड़ी हो। तब तो समझो, कम से कम एक गुण तो पैगंबर का तुममें होगा।
फिर यह भी खयाल रखना कि मोहम्मद ने नौ विवाह किए। वह नंबर दो का कदम योगेश्वर। और मोहम्मद घोड़े पर सवार रहते थे। वह नंबर तीन। एक घोड़ा खरीद लेना। और यह तुमको पता है कि कहानी क्या कहती है, कि मोहम्मद घोड़े पर बैठे- बैठे सीधे स्वर्ग गए। कोई इसका राज नहीं बता सकता, सिवाय मेरे। राज साफ है। नौ पत्नियां थीं, सो नौ दिशाएं घेरे खड़ी हैं। वहां तो भागने का उपाय था नहीं--तो दसवीं दिशा! दस ही दिशाएं होती हैं। और उन नौ ने इतना भी मौका न दिया कि घोड़े से उतर जाते, सो घोड़े को भी ले गए--सदेह, सघोड़ा। बीच में कहीं रुके ही नहीं, बैकुंठ ही पहुंच कर रुके। यह राज किसी ने कभी बताया ही नहीं। मैं तुम्हें बताता हूं। कारण क्या था इनका। एकदम सीधा घोड़े पर बैठे-बैठे स्वर्ग जाने का।
तो अब अगर बढ़ ही रहे हो इस दिशा में--पैगंबर होने की--तो करो हिम्मत। ऐसे क्या घबड़ाते हो? मुसीबतें तो आएंगी, मगर मुसीबतों से मर्द कभी घबड़ाते हैं?

दुल्हन की हो रही थी विदाई
बार-बार रोने के लिए
वह कर रही थी ट्राई
जब बनावटी हिचकी ली पहली
तो दुल्हन की मां बोली--"अरी, पगली
यहीं रोने लगी तो यह मेकअप धुल जाएगा तेरी सुंदरता का सारा राज खुल जाएगा।"

"तब मैं क्या करूं मां" लड़की ने सवाल किया
मां ने यूं समाधान किया--
"अरी, तेरी अकल अभी तक मोटी है,
मेरी लाड़ली
रोएगा तेरा दूल्हा, तू क्यों रोती है?"

हिम्मत रखो। डंड-बैठक लगाना शुरू कर दो। मुसीबतें आएंगी। मुसीबतों
के लिए पहले से तैयार हो जाना जरूरी है।

एक स्वर्गवासी ने
स्वर्गलोक की खिड़की में से बाहर झांका
देखा एक नजरिया बांका
सामने नरक लोक की तीसरी मंजिल पर
टिक गई उसकी नजर
मेनका और उर्वशी से भी सुंदर
एक नग्न युवती खड़ी थी उधर
वह अपने लंबे बालों को छिटका कर
लहरा रही थी
यानी कि अपनी ब्यूटी का झुनझुना बजा रही थी।

देखते ही स्वर्गवासी का दिल धक से रह गया झट से यमराज के सामने गया
और बोला--
पकड़ो यह अपना डंडा झोला
स्वर्ग में रहते-रहते ऊब गया मन
अब मुझे नरक में भिजवा दीजै श्रीमान! यमराज ने उसे बहुतेरा समझाया स्वर्ग का अलौकिक आनंद दिखाया लेकिन उस मूरख पर तनिक भी
चली नहीं शिक्षा
यमराज बोले--जैसी तेरी इच्छा
पलक झपकते ही वह पहुंच गया नरक जो पहले देखा था, और जो अब देखा उसमें था जमीन-आसमान का फर्क दिखी गरम तेल की खौलती हुई कढ़ाई कहीं वह नवयौवना नजर न आई
वह रोने लगा--हाय सरासर धोखा!

तभी एक यमदूत ने
कढ़ाई की आरे धकाते हुए टोका--
"ऐ मिस्टर,
आपका ध्यान है किधर?
हमारी तीसरी मंजिल पर है विज्ञापन सेंटर
क्या बुरा है जो हम विज्ञापन करते हैं,
तभी तो तुम्हारे जैसे स्वर्गवासी
यहां पर आकर कुत्ते की मौत मरते हैं।"

तो जरा सावधानी से चलना। मगर प्रेम तो पागल होता है। डरना मत। एक बात तुमने अपने प्रश्न में नहीं बताई कि स्त्री विवाहिता है या अविवाहिता। वह भी जरा सोच लेना। नहीं तो कोई झंझट में पड़ो, और झंझट आ जाए।
चंदूलाल की पत्नी ने शिकायत करते हुए कहाः अब तुम मुझे बिल्कुल प्यार नहीं करते। पड़ोस में तुम्हारे दोस्त ढब्बू जी रहते हैं, उन्हें देखो। वे भी आखिर एक मर्द हैं, तुम्हारे ही जैसे। उनकी शादी हुए भी पच्चीस साल बीत गए, मगर कैसी मोहब्बत है, रोज अपनी पत्नी की कमर में हाथ डाल कर समुद्र्र-तट पर घूमने जाते हैं!
चंदूलाल ने मूंछों पर ताव देकर कहाः मैं भी मर्द का बच्चा हूं! तुमने समझ क्या रखा है? और साफ बता दूं कि जितना प्यार ढब्बू जी करते हैं उससे कई गुना ज्यादा प्यार मैं करता हूं। और यह भी कह दूं कि मैं भी रोज कमर में हाथ डाल कर समुद्र्र तट पर घूमना चाहता हूं। लेकिन तुम्हारे और ढब्बू जी के भय से ही ऐसा नहीं करता, वरना तुम दोनों मिल कर मेरे प्राण ले लोगे।
तो जरा देख लेना कि स्त्री विवाहिता तो नहीं है। ग्यारह वर्ष उम्र में बड़ी हो कि चौदह वर्ष उम्र में बड़ी हो, चलेगा। लेकिन किसी की पत्नी तो नहीं है? नहीं तो मुसीबत में पड़ो। वह तुमने जाहिर नहीं किया।
और यह भी खयाल रखना कि मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। सिद्ध पुरुष कह गए हैं कि मुसीबत कभी अकेली नहीं आती।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र से कह रहाः यार, जिस दिन मेरी पत्नी मायके से वापस घर आई, उसी रात मेरे घर में चोरी हो गई।
दूसरे मित्र ने कहाः दोस्त, मुझे तो किसी सिद्ध पुरुष की कहावत याद आ रही है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः कौन सी?
मित्र ने कहाः यही कि मुसीबत कभी अकेली नहीं आती।

अब यह पत्नी जो तुम सोच रहे हो, अकेली आएगी कि और मुसीबतें लाएगी? अपनी मां वगैरह को तो साथ नहीं लाएगी? और इसके बच्चे-कच्चे कितने हैं? जब प्रश्न लिखा करो तो पूरा ही लिखा करो, ताकि मुझे भी तो पता हो, नहीं तो मैं कुछ जवाब दे दूं और तुम फंस जाओ, फिर मुझे जिम्मेवार ठहराओ, कि आपने ही तो कहा था। सार-संक्षेप में सारी बातें लिख दिया करो। इतने शर्म खाने की जरूरत नहीं है। अरे जब कह ही दी बात तो अब क्या छिपाना?
मुल्ला नसरुद्दीन बहुत शर्मीला था। एक बार उसने अपनी प्रेमिका को फूलों का एक सुंदर गुलदस्ता भेंट में दिया। प्रेमिका ने उल्लास से भर कर उसे आलिंगन में लेकर उसका चुंबन ले लिया। नसरुद्दीन तो एकदम अपने को छुड़ा कर बड़ी जोर से भागा। प्रेमिका घबड़ा गई और बोली कि क्या हुआ, नसरुद्दीन, क्या मेरे चुंबन का बुरा मान गए? ऐसे भाग कर कहां जा रहे हो?
नसरुद्दीन बोलाः चुंबन का बुरा! अरे-अरे, नहीं-नहीं, मैं तो और फूल लेने जा रहा हूं।
शर्मीले आदमी मालूम पड़ते हो योगेश्वर। पूरा ब्योरा तो लिख देते। थोड़ा वर्णन तो दे देते कि देखने-दिखाने में कैसी लगती है। तुमने यह भी नहीं लिखा कि तुम्हारी उम्र कितनी है। वह ग्यारह वर्ष बड़ी है, यह भी समझ में आ गया; मगर तुम साठ के हो कि सत्तर के? मुझे क्यों उलझन में डालते हो? नसरुद्दीन अस्सी साल का था, तब किसी के प्रेम में पड़ गया। सबने समझाया
कि नसरुद्दीन, यह ठीक नहीं। बेटों ने समझाया, पोतों ने समझाया, नातियों ने समझाया, नहीं माना। मेरे पास ले आए उसको। मैंने कहाः बड़े मियां, इस उम्र में अठारह साल की लड़की से शादी करना मंहगा सौदा हो सकता है। स्वास्थ्य के लिए खतरा भी हो सकता है।
नसरुद्दीन ने कहाः आप बिल्कुल फिक्र न करें, अगर मर गई तो दूसरी शादी
कर लेंगे।
अपनी तो कोई सोचता ही नहीं। अब तुम यह भी तो बता देते कि तुम्हारी उम्र कितनी है। नहीं माना, उसने शादी कर ली। सबको डर था कि न कुछ होगा। मैं भी चिंतित था। सुहागरात जब पूरी हुई और नसरुद्दीन मुझे मिला तो मैंने पूछाः कहो, कैसी गुजरी?
उसने कहाः सब ठीक रहा, सिर्फ एक जरा झंझट हुई कि जो दहेज में पलंग मिला है, बड़ा ऊंचा है। सो मेरे लड़के को मुझे उठा कर पलंग पर रखना पड़ा। और अस्सी साल के हो गए हैं। चलते-फिरते भी बनता नहीं ठीक से। चलो मैंने कहा, कोई बात नहीं पलंग पर तो चढ़ गए!
कहाः पलंग पर चढ़ गया।
फिर मैंने कहाः फिर क्या हुआ?
उन्होंने कहाः फिर क्या हुआ! फिर सुबह चारों लड़कों को मुझे पलंग से नीचे उतारना पड़ा।
मैंने सुनाः यह बड़ी हैरानी की बात है! चढ़ाया एक ने, उतारा चार ने!
उसने कहाः मैं उतरना ही नहीं चाहता था। और बेईमान लगे एकदम खींचने! अब चार-चार पीछे पड़ गए... बहुत चिल्लाया, बहुत शोरगुल मचाया, नहीं माने, उतार ही दिया। और अब मुझे डर है कि पता नहीं वे फिर मुझे चढ़ाएं कि न चढ़ाएं। तो यही पूछने आपसे आया हूं कि क्या करूं?
तो मैंने कहा कि अब तुम एक नसेनी बनवा लो, या एक कुर्सी रख लो, एक स्टूल
रख लो। या छोड़ो पलंग। या किसी बढ़ई को ले आओ, उसके, पलंग के पैर ही कटवा दो। नसरुद्दीन ने कहाः यह बात जंचती है कि पैर ही काट डालना ठीक रहेगा, कि अपने दिल से जब चढ़ना हो चढ़ गए, अपने दिल से जब उतरना हो उतर गए।
अब मर रहे हैं... चढ़ाने को भी कोई और चाहिए। मगर मूढ़ता जाती नहीं, मूर्च्छा जाती नहीं।
तुम्हारी उम्र कितनी है? कब मूर्च्छा छोड़ोगे? एक उम्र में ये बातें ठीक लगती हैं। और प्रेम पागल होता है, यह सच है।
मैं एक शिविर लेने उदयपुर गया हुआ था। सोहन और माणिक मेरे साथ थे।
शिविर के संयोजक थे... तब--हीरालाल कोठारी; अब--स्वामी जिनराज दास।
उन्होंने पूछाः आप लोग कौन हैं?

तो मैंने कहाः यह सोहन है, मेरी बहन। और ये हैं माणिक बाफना, ये सोहन
के पति हैं।
वे बड़े हैरान हुए। बाफना यानी मारवाड़ी। और मैं तो मारवाड़ी हूं नहीं।
और मैंने कहा कि सोहन मेरी बहन है। अब वे सबके सामने तो कुछ कह न सके, रात को जब मुझे एकांत में मिले, कहा कि दिन भर से एक बात की चिंता मेरे मन में चढ़ी हुई है, कि आपने कहा कि सोहन आपकी बहन और शादी आपने बताई कि हुई माणिक बाफना से। बाफना यानी मारवाड़ी।
मैंने कहाः प्रेम तो अंधा होता ही है। यह क्या मारवाड़ी देखे?
उन्होंने कहाः हां, यह बात बिल्कुल ठीक है। प्रेम तो अंधा होता ही है।
तो मैंने कहाः बस तुम इतनी बात नहीं समझे और इतनी देर तक नाहक परेशान रहे! न प्रेम मारवाड़ी देखे, न हिंदुस्तानी देखे। यह तो जिंदा-मुर्दा देख ले, यही बहुत। प्रेम तो अंधा होता है।
और फिर मैंने कहा कि माणिक बाफना बस नाम पात्र के मारवाड़ी हैं, ऐसे मारवाड़ी नहीं हैं, जरा भी मारवाड़ी नहीं हैं।
तुम प्रेम के अंधेपन में पड़ रहे हो। जरा अपनी उम्र सोच लेना। तीस साल
के इस तरफ होओ तो मैं कहता हूं कि ठीक है, थोड़ा-बहुत पागलपन करना ही चाहिए। पैंतीस साल तक भी होओ तो थोड़ा सा मार्जिन, चलो। बहुत ठीक तो नहीं, मगर ठीक। मगर अगर बयालीस की उम्र पार कर गए हो तो थोड़ा सोच-समझ कर। क्योंकि समझदार आदमी को बयालीस की उम्र तक कामवासना से मुक्त होना चाहिए। अगर कोई आदमी समझपूर्वक जीए तो बयालीस की उम्र सीमा-रेखा है। जैसे चौदह वर्ष की उम्र में व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ होता है, थोड़ी-बहुत हेर-फेर कर लो, कोई तेरह साल में हो जाता है, कोई बारह में भी हो जाता है, कोई जरा चौदह की जगह पंद्र्रह में होता है, बस ऐसे हेर-फेर थोड़े। वैसे कोई बयालीस, कोई त्रितालीस, कोई चवालीस, पैंतालीस तक समझ लो कि थोड़ा फासला मान लो। मगर बयालीस और पैंतालीस के बीच आदमी को कामवासना से मुक्त होना चाहिए। उसके पहले जितनी भूल-चूकें करना हो कर लो, फिर हिसाब-किताब भी मत रखो उम्र वगैरह का। अब भूल-चूक ही करनी है तो किसके साथ की, उम्र कितनी थी, इसका क्या लेना- देना? अरे गड्ढे में ही गिरना है, तो गड्ढा लाल मिट्टी का था कि पीली मिट्टी का था, कि पूरब में था कि पश्चिम था, क्या लेना-देना है? गड्ढा ही है, हाथ-पैर ही तोड़ने हैं, तोड़ो! अस्पताल में ही भर्ती होना पड़ेगा... किसी गड्ढे में गिरो।
यहां जो लोग गड्ढों में गिर कर आए हैं, उनको मैं अनुभव करता हूं कि चिकित्सा आसान पड़ती है। जो लोग गड्ढों में गिरे नहीं हैं, जैसे ये आत्मानंद ब्रह्मचारी यहां आ गए हैं, जो लंगोट के पक्के मालूम होते हैं, अब ये लंगोट इतना कस कर बांधे होंगे कि इनकी जान मुसीबत में होगी। ये लंगोट थोड़ा ढीला करें तो ही इनको ब्रह्म-ज्ञान हो सकता है। थोड़ी राहत मिले। एक तो गरमी के दिन... और लंगोट कस कर बांधे हुए हैं! अब पता नहीं इनकी क्या गति हो रही है!
मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने एक दिन देखा, चला जा रहा था--घसिटता और गालियां देता हुआ। क्या-क्या वजनी गालियां, कि अब तुम्हें क्या बताऊं! क्या-क्या जायकेदार गालियां, वे तो मुल्ला के मुंह से ही सुनने जैसी होती हैं। उसकी शैली भी है। हर चीज का ढंग और शैली होती है। उसकी गालियों से परेशान होकर एक दिन पत्नी उसकी... बहुत समझा चुकी, जिंदगी हो गई समझाते- समझाते, मानता ही नहीं, तो एक दिन सुबह-सुबह वह भी गालियां बकने लगीं कि अब देखें। मुल्ला चौंका एक क्षण को। थोड़ी देर सुना और कहा कि हां ठीक है, गालियां तो ठीक दे रही है तू। मगर वह जायका नहीं! ढंग नहीं आता तुझे। अरे पहले ढंग सीख, लहजा सीख, लज्जत ला। अब हर कोई गाना गाने लगे तो थोड़े ही गाना काम में आता है। ऐसे तो कौए भी कोशिश करते हैं कि कोयल बन जाएं, मगर कोयल की लज्जत और है!
मुल्ला चला जा रहा था सुबह-सुबह... जायकेदार बड़ी वजनी गालियां देता। मैंने कहाः नसरुद्दीन, क्या हो गया? सुबह-सुबह क्या बात बिगड़ गई?
उसने कहा कि कुछ नहीं, यह जूतों का मामला है। ये मेरे जूते बुरी तरह काटते हैं।

मैंने जूते देखे तो वे कम से कम दो नंबर छोटे। मैंने कहाः ये काटेंगे नहीं तो क्या होगा? इनको बदलते क्यों नहीं?
उसने कहाः इनको मैं कभी नहीं बदल सकता। दृढ़ संकल्प किया हुआ हूं, इनको मैं बदल ही नहीं सकता।
तुम्हारी मर्जी! फिर गाली क्यों बकते हो?
गाली भी बकूंगा, क्योंकि इनकी तकलीफ मुझे झेलनी पड़ रही है। कोई और दूसरा बकेगा क्या? अरे जिसके पैर में काटेगा जूता, वही तो जानेगा?
मैंने कहाः यह भी खूब रही! जूता बदलने को राजी नहीं हो और गालियां भी देते हो! तो आखिर बात क्या है? क्यों इन जूतों से इतना मोह है? इतनी आसक्ति क्या है?
तो उसने कहाः इसका राज है। दिन भर के बाद जब थका-मांदा सारे काम और उपद्रव और दुनिया और परेशानियों-चिंताओं से घर लौटता हूं और पत्नी का मुकाबला करना पड़ता है, उसकी सुनता हूं, सब सुन-सुना कर, थका-मांदा जब जूतों को फेंकता हूं और बिस्तर पर गिरता हूं तो वह राहत अनुभव होती है... कि अहा! जैसे स्वर्ग मिल गया! बस एक ही तो आनंद है मेरे जीवन में, जब ये जूते उतारता हूं तब मुझे मिलता है। अब आप कहते हैं इनको भी बदल लो, तो वह आनंद भी गया। अब ये आत्मानंद ब्रह्मचारी हैं, इनका कसा हुआ लंगोट समझो दो नंबर कम
का जूता है। अब जान निकली जा रही होगी, प्राण संकट में पड़े होंगे। तो आदमी स्वभावतः राम-राम, राम-राम जपेगा ही, प्रभु-स्मरण करेगा ही, कि हे प्रभु, बचाओ! रक्षा करो! अरे दौड़ो! पहले तो बड़े आते रहे भक्तों के बचाव के लिए, अब क्यों नहीं आते? सतयुग में तो दौड़े आते थे, अब कलियुग में यह भक्त कैसी लंगोट की मुसीबत में पड़ा है!
मगर यह मुसीबत तुमने खुद खड़ी कर ली है।
पैंतालीस वर्ष अगर योगेश्वर पार हो गए हो, तो चाहे ग्यारह साल बड़ी हो
और चाहे ग्यारह साल छोटी हो, अब कुछ और करने का समय आ गया। अब जिंदगी में कुछ और करो। और अगर अभी मूर्खता करने की सुविधा हो, अभी कुछ गड्ढों में गिरने का समय हो, अभी इधर-उधर भटकने का थोड़ा समय हो, तो फिर फिक्र न करो, इतना हिसाब-किताब न लगाओ। मुझसे भी क्या पूछने आए हो? प्रेम में पड़े, उसके पहले तो पूछा नहीं, अब कहते होः प्रेम में पड़ गया और ग्यारह साल उम्र ज्यादा है, अब क्या करूं? फांसी तो तुम लगा लो गले में और कहो कि फांसी मैंने लगा ली और अब लटक गया, अब क्या करूं?
अब मरो भैया! अब कोई भी क्या करेगा? अब अगले जन्म में देखेंगे। मैं तो नहीं रहूंगा, कोई और बुद्ध पुरुष का पीछा करना। किसी और बुद्ध पुरुष को सताना। उससे पूछना यही आध्यात्मिक बातें।

आखिरी प्रश्नः ओशो, क्या समस्याओं के समाधान के लिए प्रत्येक समस्या
की जड़ों तक जाना आवश्यक है?

गुरुदत्त! समस्या की जड़ तक अगर जा सको तो समाधान अपने आप हो जाता है। उतनी निरीक्षण की क्षमता ही समाधान ले आती है। लोग समस्या की जड़ों तक जाना नहीं चाहते। लोग तो ऊपर-ऊपर लीपापोती करते हैं। लोग तो ऊपर-ऊपर से मलहम-पट्टी करते हैं। लोग तो लक्षणों की चिकित्सा करते हैं। लोग फिक्र नहीं करते इस बात की कि किसी समस्या की जड़ में जाएं। अगर जड़ में जाएं तो जड़ में पहुंचते-पहुंचते ही समस्या तिरोहित हो जाएगी।
मगर यह भी खयाल रखना कि कई दफा ऐसा होता है कि समस्या में जड़ होती ही नहीं। और तुम अगर जड़ों की खोज में लग गए तो मुश्किल में पड़ जाओगे। तो पहले तो यह समझ लेना कि समस्या जड़वाली है भी? क्योंकि कई समस्याएं अमरबेल जैसी होती हैं। उनकी जड़ें वगैरह नहीं होतीं, वे झाड़ों पर ही फैली होती हैं। जैसे एक आदमी डाक्टरों के पास जाता रहा; सब डाक्टर थक गए, परेशान हो गए। समझ में न आए उसकी बीमारी क्या है? वह बड़ी बेचैनी में था। वह बैठ भी न सके एक क्षण चैन से। वह कहे कि मेरा दम घुटा जा रहा है। कार्डियोग्राम लिया, ब्लड-प्रेशर लिया, खून की जांच, पेशाब की जांच, पाखाने की जांच... हजार जांचें हो गईं, कुछ रास्ता नहीं। सब डाक्टर थक गए उस आदमी से। बहुत पैसे

वाला था। पैसे देने की कमी न थी। आखिर बड़े से बड़े डाक्टर ने कहा कि भई, यह मैं तुमसे कहे देता हूं कि तुम्हें जिस तरह की बीमारी हुई है, अभी तक इस बीमारी को पहचाना नहीं जा सका। इसका इलाज तो होना असंभव है। मैं इतना ही तुमसे कह सकता हूं कि तुम छह महीने से ज्यादा जिंदा नहीं रहोगे। इसलिए तुम्हें जो करना हो कर लो। छह महीने तुम्हारे हाथ में हैं।
उस आदमी ने कहाः सिर्फ छह महीने? वह भागा घर। उसने तत्क्षण बड़ी से बड़ी कारें खरीदीं। एक हवाई जहाज खरीदा कि दुनिया का चक्कर लगा आऊं। वह जिंदगी भर की उसकी इच्छा थी कि दुनिया का चक्कर लगा लूं। अब छह ही महीने बचे तो मामला खत्म कर लेना चाहिए। पैसे की तो कोई कमी थी नहीं। दर्जी के पास पहुंचा और उसने कहा कि सौ ड्रेस श्रेष्ठतम कपड़ों की बना डालो। जब सारा माप लिया गया, तो गले का माप... । उसने कहाः आप गला कितना पसंद करते हो?
उसने कहाः जितना यह गला है, इतना ही।
तो उसने कहाः इतना अगर गला रहा तो आप हमेशा अनुभव करोगे कि जैसे दम घुट रहा है, बेचैनी अनुभव होगी, हमेशा परेशानी रहेगी। ठीक से बैठ न सकोगे। वही कसा लंगोट! मैं तुमसे कहता हूं कि यह कालर ठीक नहीं है तुम्हारा।
तुम्हें कम से कम दो इंच बड़ा कालर चाहिए। तुम्हारी गर्दन मोटी है और यह कालर तो फांसी की तरह लगा है।
उस आदमी ने कहाः कहते क्या हो!
कहाः हां, यही।
क्योंकि ये ही सारे उसके लक्षण थे, बीमारी के। और जब उस आदमी ने, उस दर्जी ने नये कपड़े बना कर दिए और उसने जब नया कमीज पहना, बीमारी नदारद हो गई। उसने कहाः हद हो गई! आज वर्षों से चक्कर काटता रहा डाक्टरों के। जाना चाहिए था मुझे दर्जी के पास। इस समस्या में कोई जड़ ही न थी। और वह जड़ की तलाश कर रहा था। जड़ न हो तो फिर कोई समाधान नहीं होगा। तब तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे।
इसलिए पहली बात तो यह देखना कि समस्या में कोई जड़ भी है? क्योंकि मेरे देखे सौ में से नब्बे समस्याओं में कोई जड़ ही नहीं होती। ऊपरी होती हैं। दो कौड़ी की होती हैं। उनमें समय मत गंवाना। लेकिन कुछ समस्याएं होती हैं, जिनमें जड़ें होती हैं।
तो पहले तो यही साफ-साफ व्यक्ति को कर लेना चाहिए कि किस समस्या की जड़
है और किस समस्या की जड़ नहीं है। और नहीं तो अंट-संट जड़ खोज लोगे, उससे कुछ हल नहीं होगा।
मैंने सुना, पनघट पर पानी भरने आई चौधराइन ने ताना देते हुए रावले की
छत पर खड़े ठाकुर को, जो उसकी ओर टुकुर-टुकुर घूरते हुए अपनी मूंछों पर ताव दे रहे थे, कहा कि ठाकुर, अरे अब बस करो, वरना ये मूंछें हाथ में आ जाएंगी। ठाकुर था कि ताव दिए ही जा रहा था, दिए ही जा रहा था। चौधराइन ने भी ठीक कहा, आखिर ऐसे उखड़ ही जाएंगी मूंछें! अब बस करो--उसने कहा--बहुत हो गया ताव देना। मगर ठाकुर भी ठाकुर था। ठाकुर ने उसी अंदाज से अपनी धोती को झटके से खोलते हुए नहले पर दहला मारा और कहाः घबड़ा मत चौधराइन, मूंछें हाथ में नहीं आएंगी, क्योंकि इनकी जड़ें ठेठ नीचे तक फैली हैं। देख ले।
इस तरह की जड़ों की खोज में मत लग जाना। नहीं तो कहां मूंछें और कहां जड़ें!
निश्चित ही गुरुदत्त, अगर समस्या में कोई जड़ हो तो जड़ तक जाना चाहिए। मगर होनी चाहिए जड़। और लोग अक्सर जड़ों में नहीं जाते। लोग अक्सर समाधान की तलाश करते हैं। लोग यह नहीं पूछते कि मेरी समस्या को कैसे समझूं? लोग पूछते हैं, समाधान दे दें। लोग समाधान चाहते हैं, जल्दी से, सस्ता, कोई दे दे। खुद इतना भी श्रम नहीं करना चाहते? काश तुम इतना भी श्रम करो, कि ध्यानपूर्वक बैठ कर अपनी किसी समस्या के पर्त-पर्त उतरो, देखो कि इसकी जड़ कहां है! अगर जड़ होगी तो बराबर जड़ मिलेगी। और जड़ पाई कि समस्या तिरोहित हो जाएगी। जैसे सुबह सूरज के उगते ही ओस-कण वाष्पीभूत हो जाते हैं--ऐसे। और अगर जड़ न होगी तो भी समस्या हो गई हल, क्योंकि तुम्हें दिखाई पड़ गया कि जड़ है ही नहीं, यह बात बिल्कुल ऊपरी है, थोथी है। इसकी कोई गहराई नहीं है। इसमें कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं है।

लेकिन अक्सर लोग व्यर्थ की बातों में उलझे रहते हैं। अब कोई मुझसे पूछता है कि अगर ब्रह्ममुहूर्त में न उठे तो ब्रह्मज्ञान होगा कि नहीं? क्या पागलपन की बातें कर रहे हो! ब्रह्मज्ञान कभी भी हो जाएगा, कभी भी उठो। उठने से ब्रह्मज्ञान का क्या संबंध है? चौबीस घंटे ब्रह्म के हैं। कोई ब्रह्ममुहूर्त होता है? क्योंकि वह आदमी बेचारा परेशान है इस बात से कि वह सुबह चार बजे नहीं उठ पाता, उठता है तो दिन भर उसे नींद आती है--अब यही उसकी समस्या बन गई। अब वह परेशान हो रहा है। और अब वह परेशान हो रहा है कि कैसे इसको हल करूं। और मूढ़ों से अगर पूछेगा, जिनको तुम महात्मागण समझे बैठे हो, तो वे कहेंगे कि तू तामसी वृति का है। आहार शुद्ध कर! तेरा भोजन तामसी होगा। शुद्ध दूध पी। दुग्धाहारी हो जा। सफेद गाय का दूध पीना, तो यह तामस मिट जाएगा। और तामस मिटेगा, जब सात्विकता पैदा होगी, तब ब्रह्ममुहूर्त में अपने आप नींद खुल जाएगी।
अब यह मुसीबत में पड़ेगा। अब इसको मिल गए उपद्रवी। जब कि सच्चाई यह है
कि स्वभावतः जब तुम्हारी नींद टूटती है, वही ठीक समय है तुम्हारे लिए। इस तरह की व्यर्थ की समस्याएं खड़ी मत करो। इनका कोई मूल्य नहीं है।
कोई फिक्र में लगा है--क्या खाऊं, क्या न खाऊं? आलू खाना चाहिए कि नहीं खाना चाहिए? अब आलू जैसे सीधे-साधे लोग... इनकी चिंता में पड़े हैं कि आलू खाना कि नहीं खाना। आलू खाने से कहीं गड़बड़ तो नहीं हो जाएगा? ब्रह्मज्ञान, आत्म-ज्ञान में कहीं कोई बाधा तो नहीं पड़ जाएगी?
ऐसा दो कौड़ी का आत्म-ज्ञान, जो आलू बटाटा में ही खत्म हो जाए, तो ऐसे आत्म-ज्ञान को करोगे भी क्या? मिल भी गया तो क्या कीमत? उतनी ही कीमत होगी जितनी आलू की। आलू ले लो कि आत्म-ज्ञान ले लो। उससे तो आलू बटाटा ही बेहतर। ऐसे आत्म-ज्ञान का क्या मूल्य?
मगर लोग चिंताओं में पड़े हैं। मैं बीस साल तक इस देश के गांव-गांव में घूमा हूं। लोग ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि चकित हो जाना पड़ता है। और ये उनकी समस्याएं हैं, वे समझते हैं। ये समस्याएं ही नहीं है। ये सिर्फ मूढ़ताएं है। ये व्यर्थ की बकवासें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। समस्याएं कहीं और हैं। समस्याएं गहरे में हैं।
लोग यह नहीं पूछते कि कामवासना का क्या करूं? हां, लोग यह पूछते हैं कि ब्रह्मचर्य कैसे साधूं? तुम फर्क समझना, दोनों का फर्क। कामवासना क्या है, इसको समझोगे तो तुम जड़ में उतरोगे। क्योंकि ध्यान के सिवाय कामवासना की जड़ में उतरने का और कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम समाधान पूछते हो। तुम पूछते होः ब्रह्मचर्य कैसे साधूं? तो कोई बताता हैः लंगोट कस कर बांधो! कोई कहता हैः शुद्ध दूध पियो। कोई कहता हैः डंड-बैठक लगाओ। कोई कहता हैः सिर के बल खड़े हो जाओ। इससे वीर्य जो है, ऊपर की तरफ चढ़ेगा, सिर की तरफ जाएगा। बिल्कुल निपट गंवारी की बात है! कोई ऐसा यंत्र नहीं है तुम्हारे भीतर, जिससे वीर्य सिर की तरफ चला जाए। और चला जाए तो तुम्हारी खोपड़ी सड़ जाएगी। बचाना! अगर जाने लगे तो एकदम उचक कर पैर के बल खड़ा हो जाना, नहीं तो खोपड़ी खराब हो जाएगी बिल्कुल। क्योंकि यह तुम्हें पता होना चाहिए कि जो वीर्यकण हैं, वे दो घंटे में मर जाते हैं। जैसे ही उन्होंने वीर्य की थैली छोड़ी कि दो घंटे से ज्यादा उनका जीवन नहीं है। और अगर तुम्हारी खोपड़ी में चढ़ गए तो मरघट हो जाएगी खोपड़ी। वहां मुर्दा ही मुर्दा इकट्ठे हो जाएंगे। फिर ऐसी दुर्गंध उठेगी तुम्हारी खोपड़ी से... और फिर वहां बुद्धि वगैरह कहां बचेगी? बुद्धि के लिए स्थान ही नहीं बचेगा।
मगर इस तरह की बातें बताने वाले लोग तुम्हें मिल जाएंगे, कि आसन करो, प्राणायाम करो! और तुम्हें ये बातें जंचेंगी, क्योंकि ये सदियों से दोहराई गई हैं। एक मजे की बात है, सदियों तक कोई भी झूठ दोहराओ, वह सच जैसा मालूम होने लगता है। लेकिन झूठ झूठ है, कितना ही दोहराओ।
मैं जरूर चाहता हूं गुरुदत्त कि समस्याओं के समाधान तक जाने की तुम्हें कला आनी चाहिए। उस कला को ही मैं ध्यान कहता हूं। यहां आ गए हो तो विपस्सना सीखो। विपस्सना कला है। विपस्सना का अर्थ होता हैः देखने की कला। साक्षीभाव की कला। विपस्सना शब्द का भी अर्थ यही होता हैः देखना।
दर्शन। तुम अपने भीतर बैठ कर अपनी समस्या को देखो। देखते जाओ, देखते जाओ।

पहले-पहले ऊपर-ऊपर का कचरा आएगा, फिर और गहराई, और गहराई। आखिर में तुम्हें जड़ें मिल जाएंगी।
और एक चमत्कार घटित होता हैः जिस क्षण तुम्हारे हाथ में जड़ें लग जाएंगी, उसी क्षण समस्या तिरोहित हो जाती है। इसलिए मैं तुम्हारे जीवन में दमन के पक्ष में नहीं हूं, रूपांतरण के पक्ष में हूं। रूपांतरण की कीमिया है--ध्यान। और ध्यान जब तुम्हें रूपांतरित कर देता है, तो जो अवस्था बनती है वही समाधि है। और समाधि ही समाधान है।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
छठवां प्रवचन

जीवन भी खेल, मृत्यु भी खेल

पहला प्रश्नः ओशो! बाईस तारीख को प्रवचन में एक मूर्ख ने आप पर चाकू फेंक कर आपकी हत्या का असफल प्रयास किया था। अनिष्ट न हो सका। वह व्यक्ति डाक्टर मुंशी सिंह की तरह अस्थायी संन्यास लेकर आपके अधिक निकट से कुछ अनिष्ट कर सकता था। आपसे प्रेमपूर्वक आग्रह है कि अब संन्यास देना बंद करें, अथवा अधिक मुश्किल बनावें, ताकि सत्य पर कोई भी प्रहार विफल रहे।

रामदयाल भारती! पहली बात तो यह खयाल में लेनी जरूरी है कि उस व्यक्ति
को मूर्ख मत कहो। वह व्यक्ति मूर्च्छित है, मूर्ख नहीं। और मूर्च्छित कौन नहीं है! जब तक तुम समाधि को उपलब्ध नहीं हुए हो, तब तक मूर्च्छित ही हो। फिर मूर्च्छा में तुम जो भी करोगे, तुम चाहे सोचो कि शुभ कर रहे हो, शुभ तुम कर न सकोगे। मूर्च्छा में शुभ होना असंभव है, वैसे ही जैसे अमूर्च्छा में अशुभ होना असंभव है। मूर्च्छा में अशुभ के कांटे लगते हैं; अमूर्च्छा में शुभ के फूल।
मूर्ख हम उन्हें कहते हैं जिन्हें जानकारी कम है। लेकिन मजा यह है कि जिन्हें जानकारी बहुत है, वे तो महामूढ़ होते हैं। जिनको तुम पंडित कहोगे, उनके पांडित्य में अज्ञानियों से भी ज्यादा खतरा है। अज्ञानी तो कम से कम सीधा-साफ होता है। उसकी किताब कोरी है। उस पर कुछ लिखावट नहीं है। लेकिन तथाकथित ज्ञानी, जिनकी किताबों में उधार बातें भरी हैं, जिन्होंने सदियों का कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है, जिन्होंने अपनी स्मृति को एक कचरा-घर बना रखा है, उनकी भ्रांति और भी गहन है। उनको सबसे बड़ी भ्रांति तो यह है कि वे सोचते हैं कि वे जानते हैं।
सुकरात ने कहा है कि मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। यह पहला कदम है परम ज्ञान की ओर। पंडित तो जानता है कि मैं सब कुछ जानता हूं। जिस व्यक्ति ने छुरा फेंका, वह अपने को मूर्ख नहीं मानता, वह तो अपने को पंडित मानता होगा। वह तो हिंदू धर्म की रक्षा कर रहा था। मूर्ख क्या धर्म की रक्षा करेंगे! बेचारे मूर्खों को क्या धर्म का पता! उसे भ्रांति है कि उसे धर्म का पता है। इतना ही नहीं, उसे यह भी भ्रांति है कि वह धर्म की रक्षा न करेगा तो और कौन करेगा! उसे यह भी पता है कि धर्म की रक्षा के लिए कुछ भी किया जाए, तो शुभ है। अशुभ साधन भी शुभ साध्य के लिए शुभ हो जाते हैं--ऐसी उसकी धारणा होगी। हो सकता है गीता का पाठी हो। हो सकता है रामायण पढ़ता होः तुकाराम और ज्ञानेश्वर और एकनाथ के वचनों को कंठस्थ कर रखा हो, उनके अभंग स्मृति में संजो लिए हों। वह आदमी अपने को मूर्ख नहीं मानता। वह आदमी अपने को पंडित मानता होगा। यह पांडित्य की ही घोषणा है। और पंडित जितने खतरनाक साबित हुए हैं, उतने अज्ञानी कभी खतरनाक साबित नहीं हुए।
तो पहली तो बात, रामदयाल, उसे मूर्ख न कहो। वह मूर्ख तो नहीं था। जानकारी से भरा होगा। और मैं जो कह रहा था वह उसकी जानकारी के विपरीत पड़ रहा होगा। न सह सका। पंडित की सहनशीलता बहुत कम होती है, क्योंकि पांडित्य छिछली बात है, उथली बात है; उसमें कोई गहराई नहीं होती। पांडित्य असहिष्णु होता है। इसलिए दुनिया को पंडितों ने, मुल्लाओं ने, मौलवियों ने, अयातुल्लाओं ने लड़वाया है, खून की नदियां बहाई हैं। ये अज्ञानियों के काम नहीं हैं। अज्ञानी तो बेचारे क्या लड़ें, कैसे लड़ें, किस बात के लिए लड़ें-- इसका भी उन्हें पता नहीं है। अज्ञानी कैसे धर्म की रक्षा का अहंकार करेगा? अज्ञानी तो जानता ही नहीं कि धर्म क्या है। यह तो तथाकथित ज्ञानियों की बात है।
तो अगर उसे कोई नाम ही देना हो, तो पंडित का देना, महापंडित का देना; मूर्ख का मत देना। क्योंकि वस्तुतः पंडित ही मूर्ख होते हैं। पंडित जितने दूर पड़ जाता है परमात्मा से, उतना कोई और दूर नहीं होता। ज्ञान की दीवाल उसे तोड़ देती है परमात्मा से। वह निर्दोष नहीं रह जाता। उसके मन में इतना

अहंकार छा जाता है जानने का, ऐसी भ्रांतियां उसे घेर लेती हैं, ऐसे विभ्रम उसे पकड़ लेते हैं, सिद्धांतों का ऐसा जाल उसके चारों तरफ खड़ा हो जाता है कि वह परमात्मा को जान सके, यह करीब-करीब असंभव है। पापी पहुंच जाते होंगे परमात्मा तक, लेकिन पंडित कभी पहुंचा है ऐसा सुना नहीं, ऐसा हुआ ही नहीं! तो उस बेचारे को पंडित भला कहना, मूर्ख न कहो।
दूसरी बात, तुम कहते हो कि आप संन्यास देना बंद कर दें, ताकि कोई आपके करीब न आ सके और सत्य को कोई अनिष्ट न हो। सत्य को अनिष्ट होता ही नहीं। और जिस सत्य को अनिष्ट हो जाए, वह सत्य नहीं है। सत्य तो हर अनिष्ट से गुजर कर और निखरता है। मेरे शरीर को नुकसान पहुंचाया जा सकता है, लेकिन उससे कोई सत्य को नुकसान नहीं पहुंचेगा। क्योंकि मेरा शरीर सत्य नहीं है। शरीर तो पिंजड़ा है। वह तो आज नहीं कल गिरेगा ही। उसे तो किसी को गिराने की जरूरत नहीं, अपने से ही गिर जाएगा। लेकिन उसमें जो अज्ञात पक्षी आवास कर रहा है, उसे कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। उसका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। वह तो जितना आग से गुजरेगा उतना निखरेगा, उतना ही स्वर्ण शुद्ध होगा। इसलिए यह चिंता न लो।
तुम्हारे प्रेम को मैं समझा। और प्रेम अक्सर आसक्ति से भर जाता है। मेरे प्रति तुम्हारी आसक्ति है। मेरी देह के प्रति भी तुम्हारी आसक्ति है। लेकिन तुम बचाना भी चाहो तो भी देह बचेगी नहीं। और कोई मिटाना भी चाहे तो व्यर्थ की मेहनत कर रहा है, देह तो अपने से ही मिट जाएगी।
जीसस को सूली न देते तो कोई जीसस अभी जिंदा थोड़े ही होते। दस-पांच साल ज्यादा जीते, और कौन जाने दस-पांच साल भी ज्यादा जीते या न जीते! शंकराचार्य बिना सूली के ही तेतीस वर्ष में मर गए। जीसस सूली पर चढ़े और तेतीस वर्ष में मरे। और जो बात उन्हें कहनी थी, तीन वर्षों में ही उन्होंने कह दी। तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने काम शुरू किया, तेतीस वर्ष में उनको सूली लग गई, जो कहना था वह तीन वर्षों में कह दिया। कहने की बात तो थोड़ी है। और सूली ने उस बात को ऐसा निखार दिया, सूली ने उस बात को ऐसा उछाला कि सदियां बीत गईं, उस बात की छाप आदमी की आत्मा पर अमिट छूट गई है। सूली कुछ नुकसान न कर सकी। सूली सिंहासन बन गई। सत्य के मार्ग पर सूली सिंहासन हो जाती है और असत्य के मार्ग पर सिंहासन भी सूली ही सिद्ध होता है। इन रहस्यों को समझो।
सिकंदर सारी दुनिया को जीत लिया, लेकिन मरते वक्त रोता मरा, उसकी आंखें आंसुओं से गीली थीं। और जब वह मर रहा था तो उसने अपने वजीरों से कहा कि मेरी अरथी जब निकले तो मेरे हाथों को अरथी के बाहर लटके रहने देना। वजीरों ने पूछाः यह कैसी बात! यह कोई परंपरा नहीं, ऐसा कोई रिवाज नहीं। ऐसा कभी हुआ नहीं। हाथ तो अरथी के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं लटकाए जाते। सिकंदर ने कहाः हुआ हो या न हुआ हो, मैं जो कहता हूं वह करना। यह मेरा आखिरी आदेश है। मेरी इच्छा पूरी की जाए।
वजीरों ने कहाः आपकी मर्जी, आप आदेश देंगे तो जरूर पूरा होगा। लेकिन क्या हम पूछ सकते हैं कि इस अनूठे आदेश का प्रयोजन क्या है?
तो सिकंदर ने कहाः मैं दुनिया को यह दिखाना चाहता हूं, हजारों लोग मेरी अरथी को देखने आएंगे--आए थे, लाखों लोग आए थे। मैं चाहता हूं कि वे सब देख लें कि सिकंदर महान भी खाली हाथ जा रहा है। सारी दौड़-धूप व्यर्थ गई, हाथ खाली के खाली हैं। सिकंदर भी भिखारी की तरह मर रहा है, कुत्ते की मौत मर रहा है। यह मैं उनको दिखाना चाहता हूं कि मत दौड़ो, बेकार है दौड़। मैं सिंहासन पाकर भी क्या पा सका! सारी दुनिया जीत कर भी क्या जीता! सब हार गया हूं।
और जीसस की मौत सूली पर हुई और अंतिम क्षण में जीसस की आंखें गीली नहीं थीं, आंसुओं से नहीं भरी थीं। ओंठों पर प्रार्थना के स्वर थे। अंतिम क्षण में उन्होंने प्रार्थना की परमात्मा से कि हे प्रभु, इन सबको माफ कर देना। देख भूल न जाना, इनको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। ये सब मूर्च्छित लोग हैं। ये सब बेहोश हैं। ये होश में नहीं हैं। ये होश में होते तो कभी ऐसा न करते। इसलिए ये क्षमा के पात्र हैं।

इसमें कौन जीता, कौन हारा? खयाल करो। सिकंदर हार गया, जीसस जीत गए।
सिकंदर सिंहासन पाकर भी सूली ही पाया और जीसस सूली पाकर भी सिंहासन पा गए।
और ऐसा सिंहासन, जो फिर छीना नहीं जा सकता है!
तुम्हारी प्रीति ठीक। तुम्हारी प्रीति के लिए धन्यवाद करता हूं।
लेकिन तुम्हारी प्रीति आसक्ति न बने, क्योंकि आसक्ति खतरनाक हो जाती है। एक दूसरे मित्र ने पूछा है--दिवाकर ने--कि "क्या भगवान, हम भी तलवार उठाएं?"
आसक्ति खतरनाक हो जाती है। तलवार तो दूर, कंकड़ भी नहीं उठाना। कोई तलवार उठाए तो गर्दन उसके सामने कर देना। तलवार उठाने की बात ही पागलपन की बात है। वे भी पागलपन करेंगे और तुम भी पागलपन करोगे, तो फिर पागलपन का अंत कैसे होगा?
जीसस ने कहा हैः जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा भी उसके सामने कर देना। जीसस यही कह रहे हैं कि सिलसिले को तोड़ दो। सिलसिले को बढ़ाने से क्या सार है? और एक चांटा मार लिया, हो सकता है संकोच में दूसरा न मारा हो, तो दूसरा गाल भी सामने कर दो। उस आदमी का संकोच भी मिटा दो। उसका मन ही तृप्त हो जाए। तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा। उसको तृप्ति मिल जाएगी, तुम्हारा कुछ खोएगा नहीं। उसका मन संतुष्ट हो जाएगा। चलो इतने ही काम आ गई तुम्हारी देह, यह भी क्या बुरा!
आसक्ति तलवार उठा सकती है। लेकिन ध्यान रखना, प्रीति आसक्ति नहीं है। प्रीति तो अलौकिक है; पृथ्वी की नहीं है, पृथ्वी के पार की है। प्रीति तो तुम्हें इस योग्य बनाती है कि तुम समझ सको। यह प्रीति है जीसस की कि वे कह सकेः क्षमा कर देना इन्हें, क्योंकि ये नासमझ हैं। अगर जरा भी अपनी देह से आसक्ति होती, अपने जीवन से आसक्ति होती, तो यह मौका था जब वे जरूर परमात्मा से कहते कि एक-एक को जला भूनना, एक-एक को भून डालना, एक-एक को सड़ा देना, एक-एक को नरक में डाल देना। ये देखो तुम्हारे बेटे के साथ क्या व्यवहार कर रहे हैं। ये तुम्हारे पैगंबर के साथ क्या व्यवहार कर रहे हैं!
दिवाकर पूछते हैंः "क्या हम तलवार उठाएं?"
तलवारें ही तो उठती रहीं सदियों-सदियों से, हल कहां होता है तलवारों से? तलवारों में कोई समाधान नहीं है। समाधान तो प्रेम में है। और आदमी इतना अज्ञानी है कि प्रेम की रक्षा के लिए भी तलवार उठा सकता है, शांति की रक्षा के लिए भी युद्ध में जा सकता है। ये विरोधाभासी बातें हैं। शांति की रक्षा के लिए सिर्फ शांत होना जरूरी है। और प्रीति की रक्षा के लिए प्रीति से आपूर होना जरूरी है।
अनिष्ट तो हो नहीं सकता। कभी हुआ नहीं सत्य का कोई अनिष्ट, अब कैसे होगा? वह नियम नहीं है। वह धर्म नहीं है। एस धम्मो सनंतनो! यही शाश्वत नियम है कि सत्य का कोई अनिष्ट नहीं होता। हालांकि सत्य का अनिष्ट करने की हर चेष्टा की जाती है, की जाएगी। ये चुनौतियां निखारती हैं सत्य को, संवारती हैं, सजावट देती हैं,शृंगार देती हैं; उसे और सुंदर बनाती हैं; उसे और माधुर्य देती हैं; उसमें अमृत घोल देती हैं।
तो न तो मैं संन्यास देना बंद करूंगा... । क्योंकि संन्यास देना बंद कर दूं, तब तो वे सफल हो गए। यही तो वे चाहते हैं कि संन्यास बंद कर दूं... ।
एक मित्र ने सलाह दी है कि मैं बोलना ही छोड़ दूं, क्योंकि मैं बोलूंगा
तो ये उपद्रव होंगे। मैं चुप हो जाऊं। मैं मौन ही रहूं। मौन ही आकर बैठूं। तुम्हें तैयार तो कर लूं मौन के लिए! मेरे अभी मौन बैठ जाने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। तुम मेरे मौन को अभी समझ न सकोगे। जब तुम तैयार हो जाओगे तो जरूर मौन मुझे होना है। लेकिन इसलिए मौन नहीं होऊंगा, क्योंकि कोई मेरे शब्दों से बेचैन हो जाता है। होने दो उनकी बेचैनी। उनकी बेचैनी अच्छा लक्षण है। अगर कोई बेचैन हो रहा है, तो किसी को चैन भी मिल रहा होगा। अगर कोई परेशान हो रहा है, तो किसी के जीवन में अमृत भी बरस रहा होगा। मेरे जैसे व्यक्तियों का यह भाग्य है कि या तो उनके मित्र होंगे या उनके शत्रु होंगे; दोनों के बीच में कोई खड़ा नहीं रह सकता। कोई मेरे प्रति तटस्थ नहीं रह सकता। सारी दुनिया को विभाजित ही होना पड़ेगाः या तो कोई मेरे साथ होगा या मेरे विपरीत होगा। स्वभावतः विपरीत ज्यादा लोग होंगे,

क्योंकि कितने कम लोगों का साहस है सत्य को पचाने का! और असत्य में लोगों ने इतना अपना जीवन डुबाया है, असत्य में उन्होंने इतने ज्यादा अपने स्वार्थ लगा रखे हैं कि उनको एकदम छोड़ नहीं सकते।
मगर ये अच्छे लक्षण हैं कि उन्हें बेचैनी हो रही है। बेचैनी यही बताती है कि उनके भीतर भी तहलका मच गया है। अब कोई आदमी अगर छुरा फेंकने को आ जाए तो तुम सोचो उसकी दशा। वह यह खतरा ले रहा है कि अगर पकड़ा गया तो सात साल या दस साल की सजा कम से कम। अपने जीवन का दस साल कोई कारागृह में डालने को राजी हो रहा है तो मेरे शब्दों ने जरूर कहीं गहरे में उसे झकझोर दिया है। वह उपेक्षा नहीं कर सकता है मेरी। जरूर उसके स्वार्थों पर मेरे शब्द कुल्हाड़ियों की तरह पड़ रहे हैं।
और यही तो लोग हैं, जो आज नहीं कल मित्र भी बन सकते हैं। जो शत्रु बन सकता है वह मित्र बन सकता है। जो मित्र बन सकता है वह शत्रु बन सकता है। मित्रों में और शत्रुओं में कोई फर्क नहीं होता। वे एक-दूसरे में रूपांतरित हो सकते हैं।
संन्यास देना तो जारी रहेगा। और भी तीव्रता से जारी करना होगा। रामदयाल, तुम्हें मुझसे कहना चाहिए कि और जल्दी करें, और ज्यादा से ज्यादा लोगों को संन्यास दें, कहीं ऐसा न हो कि कोई आपका शरीर जल्दी छीन ले, उसके पहले करोड़ों लोगों को रंग डालें! ऐसा मुझसे कहो। यह तो मुझसे कहो ही मत कि संन्यास देना बंद करें। यह तो भय की बात हुई। तुम्हें भय लगता है कि कोई संन्यास लेकर ज्यादा करीब आ सकता है। तो क्या करेगा? गर्दन ही काट सकता है। तो गर्दन काटेगा। गर्दन बिना काटे भी कट जाती है। देर-अबेर आदमी को इस जमीन से विदा हो ही जाना है। और यूं भी कोई मरने का शानदार ढंग खोजना चाहिए।
झेन फकीर मरते हैं तो अपने शिष्यों से पूछते हैं कि बोलो, क्या इरादे हैं, किस ढंग से मरें? जब बोकोजू मरा तो उसके हजारों शिष्य इकट्ठे हो गए थे। बोकोजू मुझे प्रीतिकर है। बहुत प्यारा आदमी था। उसने पूछा। बैठ गया उठ कर अपने बिस्तर पर और पूछा अपने शिष्यों से कि बोलो, किस ढंग से मरूं? शिष्य तो बहुत चौंके, यह भी कोई बात हुई! मगर वे बोकोजू को जानते थे कि वह आदमी उलटबांसियां बोलता है। झिझके कि क्या उत्तर दें! किस ढंग से मरूं, यह भी कोई सवाल है! बोकोजू ने कहाः सुना नहीं? अरे मैं यह पूछता हूं कि कुछ लोग लेटे-लेटे मरते हैं, कुछ लोग बैठे-बैठे मरते हैं, क्या खयाल है तुम्हारा? खड़े होकर मरूं? तुमने सुना है कभी किसी को खड़े होकर मरते?
एक आदमी ने कहा कि खड़े होकर मरते एक दफा... हमने सुना है कि एक फकीर खड़े होकर मरा था। बोकोजू ने कहाः तो फिर जाने दो। कुछ नया ढंग खोजो। कुछ ऐसा ढंग कि वैसा कोई मरा न हो।
क्या ढंग हो सकता है, जिस ढंग से कोई मरा न हो! फिर बोकोजू ने खुद ही कहा कि अच्छा तो फिर ऐसा करो, तुम्हारी कुछ सूझ-बूझ में नहीं आता, तो मैं शीर्षासन लगा कर मर जाऊं? सिर के बल खड़ा होकर? सुना तो नहीं है कभी कि कोई सिर के बल मरा हो, नहीं तो फिर कोई और तरकीब खोजें।
लोगों ने कहाः सिर के बल! कभी सुना नहीं। सुना क्या, कभी सोचा भी नहीं।
सपने में भी कल्पना नहीं आई।
तो बोकोजू ने कहाः यह ठीक रहा। अरे मरना भी तो कुछ अपने ढंग से मरना।
वह सिर के बल खड़ा हो गया शीर्षासन लगा कर। शिष्य देखते रहे। लगा कि वह
तो मर गया। अब करना क्या? क्योंकि आदमी मर जाए तो उसकी अरथी बनानी पड़े। मगर यह शीर्षासन लगाए हुए खड़ा है आदमी, इसको शीर्षासन से उतारना कि नहीं उतारना, इसका कोई नियम नहीं, कोई पूर्व-उल्लेख नहीं, किस विधि का उपयोग करें? तभी किसी ने कहाः ऐसा करो कि इसकी बहन भी... पास के ही आश्रम में इसकी बड़ी बहन भिक्षुणी है, उसको बुला लो, उससे पूछा लो। उसकी बड़ी बहन को बुलाया गया। उसकी बड़ा बहन आई और उसने कहाः बोकोजू, शर्म नहीं आती? तुम मरते वक्त भी अपनी शरारतों से बाज न आओगे! जिंदगी भर तुम कुछ न कुछ शरारत करते रहे। अब बाज आओ! ढंग से मरो!

और बोकोजू हंसा और शीर्षासन छोड़ कर बैठ गया। उसने कहा कि मेरी बहन को कौन बुला कर लाया? यह मुझे अपने ढंग से न मरने देगी। अब यह बड़ी बहन है तो इसकी माननी पड़ेगी। कहाः तेरा क्या इरादा है?
उन्होंने कहाः जिस ढंग से आमतौर से लोग मरते हैं, ऐसे मरो। लेटो बिस्तर पर! वह लेट कर मर गया। बिल्कुल आज्ञाकारी बच्चे की तरह!
यह आदमी प्यारा रहा होगा, इसकी बहन भी अदभुत रही होगी। जब वह मर गया तो उसकी बहन ने कहाः अब मैं जाऊं, अब तुम निपटो। अब जो तुम्हें करना हो अंतिम संस्कार, वह तुम कर लो।
जिन्होंने स्वयं को जाना है, उनके लिए तो मृत्यु भी खेल है, इससे ज्यादा नहीं। जीवन भी एक खेल है, मृत्यु भी एक खेल है। एक नाटक--एक प्यारा नाटक! मगर अभिनय से ज्यादा नहीं। उनके लिए तो सब मजाक है। सूली लगे कि सिंहासन, कोई भेद नहीं पड़ता।
जीवन को तुम अभिनय से देख सको, इसको ही तो मैं संन्यास कहता हूं।
तुम्हें मैं सब पाठ दे जाना चाहता हूं। तुम्हें जिंदगी भी सिखाऊंगा, तुम्हें मौत भी सिखाऊंगा। तुम्हें जी कर भी बताऊंगा, तुम्हें मर कर भी बताऊंगा--कि यूं! तभी तो शिक्षा पूरी होगी।
नाटक देखने जाते हो न! एक तो नाटक होता है परदे के बाहर और एक नाटक चलता रहता है परदे के पीछे। वह ज्यादा असली होता है जो परदे के पीछे चलता है। जो परदे के बाहर होता है वह तो केवल अभिनय होता है। कोई राम बना है, कोई रावण बना है, कोई सीता, कोई हनुमान।
एक गांव में एक नाटक-कंपनी रामलीला कर रही थी। सीता-स्वयंवर में गलती
से आसानी से टूट जाने वाले धनुष के बदले लक्ष्मण जी का धनुष आ गया। जब राम उसे तोड़ने लगे तो टूटे ही न। अहम अहम... पसीना कर-कर के थक गए, मगर धनुष टूटे ही न। ऐसी की तैसी इस धनुष की, उनके मुंह से निकल गया। जनता तो बहुत हंसने लगी कि ऐसा तो रामलीला में कभी देखा नहीं कि रामचंद्र जी और ऐसी बात बोलें! कहीं उल्लेख नहीं। बूढ़े जनक मामला भांप गए। उन्होंने राम को हिम्मत देते हुए कहाः रामचंद्र जी, थोड़ी और ताकत लगाओ, और लक्ष्मण, आप भी राम का सहयोग दो। देखा, यह एक आदमी से टूटने वाला नहीं है। राम जी थोड़ा प्रयत्न करें, परदे की तरफ देख कर मैनेजर को गाली दें कि हरामजादे ने खूब फंसाया, कि मिल जाए उल्लू का पट्ठा तो मजा चखा दूं! जनता बड़ी हैरान कि यह कैसी रामलीला हो रही है! ऐसी तो कभी हुई नहीं। जो सो गए थे वे भी जग आए।
रामलीला में अक्सर लोग सोते हैं, और करेंगे भी क्या? सब उनको पता ही है
जो होना है। मगर इस बार तो कुछ नया हो रहा था। बच्चे किलकारियां मार रहे, लोग खड़े होकर देखने लगे। स्त्रियों ने तो मुंह में अपने-अपने आंचल दबा लिए कि अब करना क्या! यह हो क्या रहा है! न बाबा तुलसीदास ने ऐसा लिखा, न बाल्मीकि जी लिख गए। यह तो कोई नये ढंग की ही रामलीला हो रही है। आखिर अपनी सब ताकत रामजी ने धनुष पर लगा दी। धनुष तो टूटा, मगर वे खुद भी जा गिरे जहां रावण बैठा था, उसके चरणों में। मुकुट-वुकुट टूट गया, धोती निकल गई और खोपड़ी से खून बहने लगा, आंखों में आंसू आ गए। और ऐसी ही अवस्था में सीता ने उन्हें वरमाला पहना दी।
रामलीला आगे चली। कुछ लोगों ने बंदर का परिधान पहना था, उसमें एक असली बंदर भी जा मिला। लंका जीतने के लिए जो युद्ध होने वाला था, उसके लिए एक परदे पर लंका का चित्र तैयार किया गया था। असली बंदर ने उस परदे की रस्सी खींच दी और परदा ऊपर उठ गया। अब असली बंदर को क्या पता कि क्या करना है और क्या नहीं करना है! नकली बंदर होता तो नियम से चलता। असली बंदर को क्या मालूम कि यहां क्या हो रहा है! वह तो बंदरों की भीड़ देख कर समझा कि बंदर हैं, सो वह भी वहां पहुंच गया। परदा ऊपर उठा, क्या तालियां पिटीं! तालियां पिटती ही रहीं, सारी जनता खड़ी हो गई। क्योंकि परदे के पीछे नाटक कंपनी का चौका था, वह दिखने लगा। वहां जो आदमी मंदोदरी बना था, वह बीड़ी पी रहा था। सीता और लक्ष्मण एक-दूसरे के गले मिल रहे थे। रावण और जनक एक ही थाली में भोजन कर रहे थे। और हनुमान जो कि गांव के पहलवान और रसोइया थे; कंधे पर अंगोछा डाले चूल्हे पर चढ़ी दाल हिला रहे थे। और उनके हाथ में बियर की बोतल थी। इन सबके बीच भरत जी, जो कि प्रांपटर का काम कर रहे थे, वे रामायण की

किताब लिए खड़े थे। जैसे ही परदा खुल गया, सब जनता के सामने आ गए। अपनी-अपनी थाली लेकर भागे और जनता ताली पीट रही। मगर हनुमान जी की पूंछ कहीं अटक गई, सो वे भाग नहीं पाए। उनकी दशा बड़ी बुरी हो गई। रामचंद्र जी, जो कि हक्के- बक्के रह गए थे, वे समझ नहीं पा रहे थे कि अब क्या करें। उनकी कमान से जो तीर चढ़ा हुआ था वह छूट गया और छज्जे पर लगी थालियों को जा लगा। सभी थालियां धड़ाम से नीचे! कुछ हनुमान के ऊपर, कुछ दाल में। बस हनुमान, जो कि गांव के पहलवान तो थे ही, बात उनके बरदाश्त के बाहर हो गई। एक तो पूंछ फंसी थी और ऊपर से थालियां गिर गईं। उन्होंने निकाली अपनी पूंछ और दे मारी राम के मुंह पर। राम भी भनभना गए। उन्होंने भी आव देखा न ताव, जोश में आकर हनुमान जी को एक तमाचा जड़ दिया। अब तो हनुमान ने अपना होश ही खो दिया और राम पर टूट पड़े। राम-रावण के युद्ध के बदले राम-हनुमान युद्ध छिड़ गया। मिनटों में राम चारों खाने चित्त। रसोइए को लाल-पीला देख कर सभी वानर सेना वाले भाग गए। राम और हनुमान के युद्ध में राम पिटते रहे और सीता खड़ी हंसती रहीं। और बेचारी करतीं भी क्या!
यह तब तक चला जब तक रावण ने बचाव नहीं किया राम का और किसी तरह हनुमान
को अलग नहीं किया। हनुमान जी जाते-जाते कहते गए कि हरामजादे, अभी जाता हूं, लेकिन दिखाऊंगा मजा! और जाते-जाते सीता मैया को चोटी से घसीटते हुए अपने घर की तरफ ले गए। ऐसे रामलीला की पूर्णाहुति हुई।
एक तो परदे के बाहर खेल चलता है, एक परदे के पीछे। परदे के बाहर का ही तुमने खेल देखा तो जिंदगी का असली खेल नहीं देखा। तुम्हारे भीतर भी एक जगत है और तुम्हारे बाहर भी एक जगत है। बाहर के जगत में जन्म होता है, मौत होती है, बीमारियां आती हैं, बुढ़ापा आता है, हजारों घटनाएं घटती हैं। भीतर के जगत में कुछ भी नहीं--सन्नाटा है, शून्य है। भीतर के जगत में सिर्फ साक्षीभाव है।
संन्यासी भीतर के साक्षी-भाव में जीता है। बाहर जो भी होता है, देखता रहता है; जैसा भी होता है, देखता रहता है।
रामदयाल, जो भी हो बाहर उसे साक्षीभाव से देखना सीखो। ऐसी तो बहुत घटनाएं घटेंगी। इन सबको तुम्हें साक्षीभाव से देखना चाहिए। इनसे चिंतित, बेचैन, परेशान नहीं होना है।
तुम कहते होः "या फिर संन्यास को अधिक मुश्किल बनावें।"
संन्यास को जितना मुश्किल बनाया जा सकता है मैंने उतना मुश्किल बनाया है। आमतौर से लोगों की धारणा यह है कि मैंने संन्यास को सरल बना दिया है। वह धारणा बिल्कुल गलत है। संन्यास सरल था। भगोड़ापन हमेशा सरल होता है। युद्ध से भाग जाने में कौन सी कठिनाई है, कौन-सी बुद्धिमत्ता है! युद्ध से जो भाग जाता है, यह तो सबसे सरल काम है। वह डरपोक है, इसीलिए तो भाग जाता है, कायर है, इसीलिए तो भाग जाता है। रण-युद्ध से भागे हुए आदमी को हम कायर कहते हैं और जीवन के इस युद्ध से भागे हुए आदमी को अब तक हम संन्यासी कहते रहे! वह भी भगोड़ा है, संन्यासी नहीं।
इन भगोड़ों की लंबी जमात ने तुम्हें एक संन्यास की गलत धारणा दे दी। और तुम सोचते हो कि वह कोई कठिन काम कर रहा है, तुम बिल्कुल गलती में हो! कोई अपनी पत्नी को छोड़ कर भाग जाता है, तुम सोचते हो वह कठिन काम कर रहा है! कौन अपनी पत्नी को नहीं छोड़ कर भागना चाहता? बहादुर जमे रहते हैं, नहीं भागते; कमजोर भाग खड़े होते हैं। पत्नियों से तो कोई भी परेशान हो जाता है। स्त्रियों में भी हिम्मत हो तो वे भी भागें। वे भी परेशान हैं, मगर उनमें उतनी भी हिम्मत नहीं है। भागने लायक भी हिम्मत नहीं है। भागने के लिए भी थोड़ी सी तो हिम्मत चाहिए। पीठ दिखाने के लिए भी थोड़ी सी हिम्मत चाहिए ही। आखिर चलना तो पड़ेगा, दौड़ना तो पड़ेगा।
स्त्रियों ने बहुत संन्यास नहीं लिया। प्राचीन ढंग का संन्यास स्त्रियों में नहीं फैला। इसलिए लोग मुझसे पूछते हैं कि स्त्रियों में बुद्ध और महावीर और कृष्ण और मोहम्मद और जीसस जैसी महिलाएं क्यों नहीं हुईं? पुराने ढंग का संन्यास स्त्रियों में नहीं फैला। उसका कारण था। वे टिकी रहीं, वे जमी रहीं। लेकिन पुरुष तो भाग गए। टिकने की तो हिम्मत नहीं थी उनमें, लेकिन भागने योग्य हिम्मत उन्होंने जुटा ली।

यह भगोड़ों की जो कतार है, इसको तुमने अब तक समझा है कठिन बात। कोई दिन में एक बार भोजन करता है तो तुम सोचते हो बड़ा कठिन कार्य कर रहा है। आत्महत्या कोई बहुत कठिन बात नहीं है, फिर वह शीघ्रता से की जाए कि आहिस्ता-आहिस्ता की जाए। सच तो यह है, जैसे दूसरे को सताने में रस आता है ऐसा ही अपने को सताने में भी रस आता है।
सिगमंड फ्रायड की बड़ी से बड़ी खोजों में एक खोज यह भी है कि आदमी में दो तरह की वासनाएं हैं--मूल वासनाएं। एक को वह कहता हैः जीवेषणा, इरोस। और दूसरी को वह कहता हैः थानाटोस, मृत्यु की आकांक्षा। वह कहता हैः पैंतीस साल की उम्र तक पहली आकांक्षा प्रबल होती है और पैंतीस साल के बाद पहली आकांक्षा निर्बल होने लगती है, जीवेषणा निर्बल होने लगती है और दूसरी आकांक्षा प्रबल होने लगती है। इसलिए ठीक ही शायद हिंदुओं ने हिसाब बांध रखा था कि पचास साल की उम्र में वानप्रस्थ हो जाना और पचहत्तर साल की उम्र में संन्यस्त हो जाना। क्योंकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है, अगर आदमी सौ साल जीए तो पचहत्तर साल की उम्र में अपने आप ही इतना ऊब चुका होगा संसार से, इस बुरी तरह ऊब चुका होगा कि छूट ही जाना चाहेगा। इसमें कुछ बहुत बुद्धिमत्ता की या बहुत साधना की जरूरत नहीं पड़ेगी।
रंजन ने पूछा है कि मैं अपने पति से ऊब गई हूं। कौन नहीं ऊब जाता! और उसने पूछा है कि पति से ऊब तो गई हूं, लेकिन अब एक सरदारजी के प्रेम में पड़ गई हूं!
रंजन, यह गजब का काम है, यह तू कर ही गुजर। इससे तेरा आवागमन से छुटकारा हो जाएगा। क्योंकि रंजन है गुजराती--गुजराती बहन। और सरदारजी मिल जाएं प्रेमी, तो सरदारजी का जो होगा सो होगा, मगर गुजराती बहन का आवागमन से छुटकारा पक्का है। सरदारजी ऐसा सताएंगे तुझे कि जीवन से तेरा जो कुछ भी लाग-लगाव होगा, अपने आप छूट जाएगा। सरदारजी ऐसे तुझ पर टूटेंगे--वाहे गुरु जी की फतह, वाहे गुरु जी का खालसा!--कि फिर तू भूल कर भी कभी नहीं सोचेगी प्रेम इत्यादि की बात। तूने ठीक ही चुना। आवागमन से छूटने का इससे ज्यादा और कोई सुंदर उपाय नहीं है। तू भी देर मत कर, कूद ही जा। बोल सत सिरी अकाल! और कूद पड़। फिर अब जो होगा, देखा जाएगा। झंझट तो होगी बहुत। काम तो कठिन है। मगर भगोड़ेपन से बेहतर है। भगोड़ापन कोई कठिन काम नहीं है।
तुम कहते हो कि आप संन्यास को अधिक मुश्किल बनावें। मतलब? योगासन करवाऊं लोगों को, शीर्षासन करवाऊं कि तीन घंटे शीर्षासन करो, एक दफा भोजन करो, नमक न खाना, यह न पीना, तीन ही घंटे सोना, तीन बजे रात उठ आना, इस तरह उनको अपने आपको सताने की विधियां दूं? तो तुम पक्का समझो कि अभी मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं वे बुद्धिमान हैं; फिर जो इकट्ठे होंगे जिन मूर्खों से तुम मुझे बचाना चाहते हो, वे ही वे इकट्ठे हो जाएंगे। फिर उनके सिवाय दूसरा इकट्ठा ही नहीं होगा। बुद्धिमान तो फिर नमस्कार कर लेंगे, वे कहेंगे, फिर हम चले। क्योंकि कोई बुद्धिमान आदमी क्यों अपने को तीन बजे रात उठाए, किस कारण? कोई दिमाग खराब हुआ है? पशु-पक्षी भी तीन बजे रात नहीं उठते। वे भी जब सूरज उगने लगता है तब उठते हैं। हां, सूरज उगता है तब जीवन जगता है पृथ्वी पर, तब उठना चाहिए। वह सहज स्वाभाविक है। लेकिन कोई पशु- पक्षी रात देर तक जगता भी नहीं। इसमें कोई बड़ी खूबी नहीं है। पशु-पक्षी करें भी क्या जाग कर! न तो बिजली है उनके पास, न लालटेन हैं उनके पास, न घासलेट का तेल है उनके पास। आदमियों के पास नहीं है, उनके पास कहां से होगा! और अच्छा ही है कि घोड़े, गधे और भैंसे घासलेट का तेल नहीं मांगते, नहीं तो कतार में वे भी खड़े रहें। आदमी को तो फिर मिलना ही मुश्किल हो जाए। क्योंकि वे सींग भी मारें और आगे हो जाएं, कि हमें पहले लालटेन हमारी भरनी है। न रात को वे शास्त्र पढ़ें, न फिल्म देखें, न संगीत सुनें, न विवाह-उत्सव में सम्मिलित हों। शाम हुई कि बेचारे सोएं न तो करें क्या! अब शाम से ही जो सो जाएगा, तुम भी अगर शाम से ही सो जाओ, तो तीन बजे उठ ही आओगे। सोने की एक सीमा है।
आदमी अकेला है, जो सांझ को जागने की क्षमता रखता है; जो रात देर तक रात्रि के सन्नाटे का, मौन का उपयोग करता है। दिन में तो बहुत उपद्रव है, शोरगुल है। जिन्हें अध्ययन करना हो, मनन करना हो, ध्यान करना हो, चिंतन

करना हो, उनके लिए रात्रि ही मौका है। तो अगर तुम देर तक जगोगे तो कभी यह भी हो सकता है कि थोड़ी देर तक सोए रहो। कुछ हर्ज नहीं है।
बुद्धिमान आदमी अपने जीवन को अपने ढंग से जमाता है, किसी की बंधी हुई लकीरों पर नहीं चलता।
अभी मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं, वे नवनीत है। मूर्खों को मैं चाहता नहीं यहां। मूढ़ों को मैं यहां इकट्ठा करना नहीं चाहता। सिर के बल खड़े होने में तुम समझते हो कोई प्रतिभा की जरूरत है? कोई बुद्धि-अंक बहुत ऊंचा चाहिए सिर के बल खड़े होने के लिए? सिर के बल खड़े होने के लिए किसी बुद्धि-अंक होने की जरूरत नहीं है। गधे से गधा व्यक्ति भी सिर के बल खड़ा हो सकता है। असल में गधे से गधा ही खड़ा होगा। और इस तरह के लोग क्या नहीं कर सकते! वे क्या-क्या नहीं करते हैं! पंचामृत पीते हैं। पंचामृत में क्या- क्या चीजें होती है पता है? गऊ-माता का गोबर, गऊ-मूत्र, इस तरह की चीजों को अमृत कहते हैं। अगर मैं पंचामृत पिलाने लगूं तो तुम समझते हो बुद्धिमान आदमी मेरे पास इकट्ठे होंगे? गोबर-गणेश इकट्ठे होंगे।
कठिन तो बना दूं, लेकिन कठिन बनाने से सिर्फ बुद्धिमान हट जाएंगे। क्योंकि कठिनाई का मतलब क्या है, अपने को सताना किसी तरह से, अपने को परेशान करना। अपने को परेशान करने में प्रतिभा नहीं चाहिए।
मैंने किसी और गहराई में संन्यास को कठिन बनाया है। वह गहराई यह है कि मैं चाहता हूं तुम जीवन की चुनौती में साक्षीपूर्वक जीओ, अभिनय सीखो। मुझसे एक अभिनेता ने पूछा कि अभिनय की कला के संबंध में आपका क्या कहना है? तो मैंने उससे कहा कि अभिनय की कला का सार-सूत्र हैः इस तरह अभिनय करो कि जैसे यह सच्चा जीवन है और सच्चे जीवन का यह सार-सूत्र है कि इस तरह जीओ, जैसे यह अभिनय है।
जो अभिनेता अभिनय कर सके इतनी कुशलता से कि लगे कि सच्चा जीवन है, वह कुशल अभिनेता है। और जो व्यक्ति इस तरह जी सके जीवन को कि जैसे अभिनय है, पानी पर खींची गई लकीर, वही संन्यासी है।
मैं तुम्हें सिर्फ अभिनय की कला सिखाना चाहता हूं और यह सबसे ज्यादा कठिन है। कठिन है, क्योंकि यह सबसे ज्यादा बुद्धिमत्ता की मांग करेगा। तो तुम्हारे हिसाब से मैं कठिन नहीं बना सकता कि उपवास सिखाऊं, अनशन सिखाऊं, तुम्हें अपने को सताना सिखाऊं। वह सब तो चल रहा है सारी दुनिया में। मैं एक नये संन्यास का सूत्रपात कर रहा हूं। इसीलिए तो बेचैनी है। इसलिए हिंदू नाराज हैं, जैन नाराज हैं, मुसलमान नाराज हैं। जिनकी बंधी हुई धारणाएं हैं वे सभी नाराज हैं। मुझसे राजी केवल वे ही हो सकते हैं, जो इतने विचारशील हैं कि बंधी हुई धारणाओं के पार उठ सकें; जो बंधी हुई धारणाओं का अतिक्रमण कर सकें।
और तुम कहते होः ये सारे सुझाव इसलिए, ताकि सत्य पर कोई भी प्रहार विफल रहे।
सत्य पर सभी प्रहार हमेशा विफल रहे हैं। उस संबंध में निश्चिंत रहो। सत्य को सभी प्रहार और भी ज्यादा निखार जाते हैं, और भी उसको जड़ें जमा जाते हैं। तुम अपनी आंखों से यह होते देखोगे। अभी तक तुमने कहानियां सुनी थीं। सुकरात तुम्हारे लिए कहानी है और जीसस भी तुम्हारे लिए कहानी है और अलहिल्लाज मंसूर भी तुम्हारे लिए कहानी है। अब तुम अपनी आंखों के सामने मेरे साथ जीकर इन कहानियों का अर्थ समझोगे। तुम अलहिल्लाज को फिर अपने बीच पाओगे। फिर जीसस को अपने बीच उठते-बैठते हुआ पाओगे। फिर तुम सुकरात के सत्य सुनोगे। और तुम देखोगे कि सत्य पर कैसी धार आती है, सत्य कैसे निखरता है, सत्य का सूर्य कैसे उदय होता है! कोई चीज कभी सत्य को विफल नहीं कर पाई है। अब तक जो नहीं हुआ, वह आज भी नहीं हो सकता है और आगे भी नहीं हो सकता है! एस धम्मो सनंतनो!

दूसरा प्रश्नः ओशो, बाईस तारीख को हुई घटना से गत स्मृतियां तीव्रता
से याद आ रही हैं। पूना से कल्याण आपको रेल पर छोड़ने जा रहे थे, अचानक खपोली गांव के चौराहे पर हमारी कार पर ट्रक जोर से आकर टकरा गया। कार के

शीशे पूरी तरह से टुकड़े-टुकड़े होकर आप पर गिर गए। कुछ क्षण लगा आप बुरी तरह से घायल हुए हैं, परंतु आपको और साथ में हम लोगों को कुछ भी लगा नहीं। नासिक से पुंगलिया जी की कार में उनके साथ आप प्रवचन के लिए पूना आ रहे थे। रास्ते में कार तीन-चार पलटी खाकर गड्ढे में गिर गई थी। ऐसी हालत में सबको काफी लग सकता था, फिर भी आपको और साथ वालों को कोई भी चोट नहीं लगी।
बंबई, वुडलैंड में आपके ऊपर हमला करने का असफल प्रयास हुआ था।
लाओत्से हाल की छत बुरी तरह से गिर गई थी, कुछ घंटे बाद ही वहां आपका प्रवचन होने वाला था। क्या होता, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर भी किसी तरह का शारीरिक नुकसान किसी को भी नहीं हुआ।
दो दिन पूर्व आपके ऊपर छुरी फेंकी गई। सभा में बैठे हुए कितने श्रोताओं के ऊपर से छुरी चली थी, फिर भी किसी को कुछ नुकसान नहीं हुआ।
यह बड़ा चमत्कार है। आप तो बचते ही हैं और साथ वालों को भी आप बचाते हैं। चमत्कार के प्रचलित अर्थ में हम यह चमत्कार मानते नहीं। लेकिन इन घटनाओं से कुछ राज जरूर प्रतीत होता है। आप इस पर कुछ प्रकाश डालें, ऐसी इच्छा है।

योग माणिक! अस्तित्व पर श्रद्धा हो, तो अस्तित्व सुरक्षा है। फिर जो
भी होता है, शुभ है।
सूफी फकीर जुन्नैद एक रास्ते से गुजर रहा था। उसके पैर में एक पत्थर
की चोट लग गई। जुन्नैद की आदत थी, वह हमेशा आकाश की तरफ देख कर चलता था। जैसे सदा-सदा वह जो दूर अज्ञात है, उसकी पुकार उसे सुनाई पड़ती रहती थी। जुन्नैद अदभुत सूफी फकीरों में एक है। अलहिल्लाज मंसूर का गुरु था। उसके पैर में चोट लग गई पत्थर की। नुकीली धार वाला पत्थर सड़क पर पड़ा था। पैर लहूलुहान हो गया। जुन्नैद झुका--घुटने के बल बैठ कर। उसकी आंखों से आनंद के आंसू बहने लगे। वह परमात्मा को धन्यवाद देने लगा कि हे प्रभु, तेरा कितना धन्यवाद करूं! जितना धन्यवाद करूं वही थोड़ा है!
उसके शिष्य तो बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि हमें इसमें धन्यवाद करने जैसी कोई बात दिखाई पड़ती नहीं है। हां, अगर परमात्मा तुम्हें बचा लेता और पैर में चोट न लगी होती, तो भी हम सोचते कि धन्यवाद देने की कोई बात है! मगर पैर लहूलुहान हो गया है, फिर भी तुम धन्यवाद दे रहे हो! इसमें धन्यवाद देने का क्या कारण है?
जुन्नैद ने कहाः पागलो, तुम्हें पता नहीं। लगनी तो चाहिए थी मुझे सूली, लेकिन उसकी अनुकंपा के कारण केवल पैर में चोट लगी और सूली टल गई।
और यह बात सच थी, क्योंकि जुन्नैद जिस राजधानी को छोड़ कर आया था, उसके छोड़ने के घड़ी भर बाद ही जिस सराय में वह ठहरा हुआ था उसे पुलिस ने घेर लिया था। उस राजधानी का जो बादशाह था, वह जरा सी देर से पहुंचा था। वह जुन्नैद को पकड़ कर मार डालना चाहता था। कारण यह था कि जुन्नैद ऐसी बातें कहता था, जो नासमझों को लगती थीं कि कुरान के खिलाफ हैं। नासमझों को हमेशा यह लगता है। नासमझों को यह भ्रांति होती है कि वे समझते हैं कि कुरान में क्या है। जुन्नैद जैसा आदमी उन्हें गलत लग सकता है, क्योंकि जुन्नैद कुरान को जीता है। उसकी व्याख्या जीवंत है। उसकी व्याख्या शाब्दिक नहीं है।
यह तो पीछे पता चला शिष्यों को कि जुन्नैद ठीक कह रहा था। लग तो गई होती फांसी, लेकिन सिर्फ पैर में चोट लगने से बच गया।
लेकिन यह भी कुछ बात नहीं। एक बार जुन्नैद काबा की यात्रा को निकला। उसकी आदत ही थी कि रोज धन्यवाद देता; पांच बार नमाज पढ़ता तो पांच बार परमात्मा को धन्यवाद देता कि हे प्रभु, तेरी बड़ी कृपा है, तू हमारी कितनी फिक्र करता है! हर बात की फिक्र! इतनी बड़ी दुनिया चलाता है और मुझ गरीब की भी चिंता रखता है! कैसा तेरा प्रेम है, कि मुझे भूलता नहीं क्षण भर को! मैं भला तुझे भूल जाऊं, मगर तू नहीं भूलता!
उस यात्रा में ऐसा मौका आया कि तीन दिन तक किसी गांव में शरण न मिली।
जिस गांव में भी गया उस गांव के लोगों ने कहा कि भाग जाओ, इस गांव में जगह नहीं मिलेगी। चुस्त दकियानूसी लोगों के गांव थे। सूफियों को तो वे

बगावती समझते थे, भ्रष्ट समझते थे। जैसे मेरे संन्यासी, इस तरह सूफियों को वे समझते थे। रोटी नहीं मिली, पानी पीने को नहीं मिला, तीन दिन तक प्यासे- भूखे, थके-मांदे, सोने को जगह नहीं, रेगिस्तान में पड़े थे। मगर तीसरे दिन भी सांझ जब वह प्रार्थना कर रहा था तो तारों से भरे आकाश की तरह उसके हाथ उठे थे और वह कह रहा थाः हे प्रभु! आनंद के आंसू बह रहे थे। तेरा धन्यवाद, तू हमारी कितनी फिक्र करता है!
शिष्यों से नहीं रहा गया। एक ने उसे बीच में हिला कर कहा कि बस, अब बंद करो। किसको धन्यवाद दे रहे हो? तीन दिन से भूखे, न रोटी न पानी, ठहरने की जगह नहीं। अभी भी तुम यह कह रहे हो, यही कहे चले जा रहे हो, कि हे परमात्मा, तेरा धन्यवाद, तू हमारी कितनी फिक्र करता है!
जुन्नैद ने कहाः नासमझो, तुम्हें पता नहीं, हमारी जो जरूरत होती है वही हमें देता है। यही हमारी जरूरत थी अभी कि तीन दिन तक हम भूखे रहें और तीन दिन तक हमें पानी न मिले और तीन दिन तक हमें अपमान सहना पड़ा। यही हमारी जरूरत थी। जो हमारी जरूरत है वह पूरी करता है। यूं समझो कि वह जो करता है वही हमारी जरूरत है। इन दोनों में कोई भेद नहीं है।
योग माणिक, चमत्कार कुछ भी नहीं। सीधा-सीधा राज है, खुला हुआ राज है। छिपा हुआ इसमें कुछ भी नहीं। जो उसकी मर्जी! जो इस परिपूर्ण अस्तित्व की मर्जी, वही होगा। जब तक वह जिलाना चाहता है, जब तक उसे जरूरत है कि इस बांसुरी से गीत गाए, यह बांसुरी बनी रहेगी। जिस दिन जरूरत नहीं है, उस दिन यह बांसुरी टूट जाएगी। उस दिन लाख बचाने के उपाय कारगर न होंगे। और तब तक, जब तक कि वह चाहता है कि ये गीत चलें, यह नृत्य उठे, ये स्वर गूंजें, यह वीणा बजती रहे--तब तक लाख तोड़ने के उपाय हों तो भी कुछ टूटेगा नहीं।
मुझे याद है भलीभांति, जिन घटनाओं का तुमने स्मरण दिलाया है। ट्रक आकर कार से टकरा गया था और सारा कांच चकनाचूर होकर मेरे ऊपर गिरा था। मुझे भी क्षण भर को लगा था... इस तरह कांच को चकनाचूर होते भी मैंने कभी नहीं देखा था। बिल्कुल जैसे धूल हो गया कांच! मेरे बालों में भर गया था, मेरी आंखों में भर गया था, सारे शरीर पर कांच ही कांच हो गया था। मैंने भी सोचा था कि आंख में कम से कम चोट पहुंच ही सकती है। मगर मैं भी चकित हुआ था, कहीं कोई खरोंच भी नहीं आई थी। आंख में एक जरा सा धूल का कण भी चला जाता है तो भी आंख लाल हो जाती है। मगर कांच के टुकड़े भी गए थे तो भी आंख लाल नहीं हुई थी। उसकी मर्जी थी। कुछ काम उसे लेना था।
और नासिक से पूना आते समय तो घटना बहुत ही खतरनाक थी। कार एक सूखी हुई नदी में गिर पड़ी थी। तीन-चार बार तो उसने करवट लीं बीच में। और जब गिरी तो उलटी गिरी। चाक ऊपर। हम भी सब कार के भीतर दो-तीन दफे चक्कर खा गए। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात थीं और बड़े आनंद की भी, कि जब हम गिरे तो कार उलटी थी, मगर हम सब सीधे बैठे हुए थे। सीटें हमारे सिर पर पहुंच गई थी। और उन सीटों के कारण सिर की भी रक्षा हो गई थी। नहीं तो सिर तो फूट ही जाते कम से कम। एक क्षण को तो ऐसा लगा था कि सबको खत्म हो जाना चाहिए, किसी के बचने की कोई उम्मीद नहीं होनी चाहिए। कार तो बिल्कुल पिचक गई थी। कार को तो वहीं छोड़ देना पड़ा। कार तो बिल्कुल चकनाचूर हो गई थी। कार में तो कुछ बचा नहीं था। थोड़ी देर तो सब चुप ही बैठे रहे, क्योंकि समझा कि मामला खत्म ही है, अब बोलना-बालना क्या है! फिर मुझे ही पुंगलिया जी से कहना पड़ा कि पुंगलिया जी, अब हम बाहर निकलें। लगता है जिंदा हैं! बाहर निकले तो सोचते थे कि चोट आई होगी, मगर खरोंच भी नहीं लगी थी। पुंगलिया जी तो बेचारे दौड़-धूप में लग गए कि अब दूसरी कार का इंतजाम करना। माणिक बाबू को फोन किया कि तुम दूसरी गाड़ी लेकर आओ। और मैं आराम से एक घर में जाकर सो गया। अब और करने को क्या बचा था! जब तक उन्होंने भाग-दौड़ की, दूसरी गाड़ी आई, तब तक मैं आराम से सो लिया। दोपहर मुझे सोने की आदत है, वह मैं छोड़ता नहीं। मैं अपनी आदतों से बाज नहीं आता। मैंने कहा, जब बच ही गए तो अब सो लेना चाहिए। या तो सो ही गए होते, तो फिर जरूरत ही नहीं थी अलग से सोने की; और अब बच ही गए तो अब सोना छोड़ना ठीक नहीं।
कोई भी देखेगा तो उसको चमत्कार लगेगा, मगर कुछ चमत्कार की बात नहीं। एकबारगी हम अपने अहंकार को छोड़ कर अस्तित्व के साथ अपनी एकता स्वीकार कर

लें, फिर अस्तित्व जाने। मैं इसी को आस्तिकता कहता हूं। बच गए तो ठीक, न बचे तो ठीक। कुछ ऐसा नहीं कि बच गए, इसलिए ही ठीक।

योग माणिक, यह खयाल रखना। यह मत सोचना कि बच गए, इसलिए ठीक। न बचते तो
भी इतना ही ठीक।
अब यह जो छुरा फेंका गया, वह अनेकों के सिर पर से गुजरा। वह मेरे सामने
से गुजरता हुआ गया। यहां चैतन्य और गायन के बिल्कुल दोनों के पैर के बीच में गिरा। गजब कर दी छुरे ने भी! बड़ा होशियार छुरा रहा; फेंकने वाले से तो ज्यादा ही होशियार रहा! नहीं तो यहां इतने लोग सघन होकर बैठे हुए हैं कि खाली जगह में गिरना, बड़ी बुद्धिमत्ता रही होगी छुरे की। मगर जमीन पर गिरा, खाली जगह पर गिरा। किसी को खरोंच भी नहीं आई।
मगर फिर भी इससे यह मत सोचना--इसलिए चमत्कार। अगर कोई मर भी जाता तो भी चमत्कार था। अगर मैं भी चल बसता तो भी चमत्कार था। चमत्कार में कुछ भेद नहीं पड़ता।
जिस दिन हम जीवन में भी और मृत्यु में भी, सुख में भी और दुख में भी समान भाव से परमात्मा का अनुग्रह स्वीकार करते हैं, उस दिन ही हम में आस्तिकता का जन्म होता है।
और यह तो आस्तिकों का जमाव है। यह तो महफिल है आस्तिकों की। तो यहां
इस तरह की घटनाएं घटती रहेंगी, होती रहेंगी। छुरा जैसे फूल की तरह आया और गिर गया।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि आदमी से कहीं ज्यादा समझदार छुरे होते हैं, क्योंकि छुरे न हिंदू होते, न मुसलमान होते, न ईसाई होते। छुरों को क्या फिक्र कि किसका धर्म बचाना है और किसका नहीं बचाना है! छुरे तो बस छुरे हैं--निष्पक्ष, तटस्थ। छुरे को क्या लेना-देना!
बुद्ध के ऊपर किसी ने शिला सरका कर गिरा दी थी--पूरी चट्टान! वे नीचे ध्यान कर रहे हैं, पहाड़ी पर से किसी ने चट्टान सरका दी। कहते हैं वह चट्टान इस ढंग से सरकाई गई थी, नाप-जोख से सरकाई गई थी कि वह बुद्ध को अपनी चपेट में लेकर उनको पीस कर चली जाती। लेकिन पता नहीं क्या हुआ, चट्टान को क्या हुआ, कि वह ठीक बुद्ध के पास तक तो ठीक वैसी आई जैसी भेजने वालों ने कल्पना की थी और बुद्ध के पास से उसने एक मोड़ ले लिया। जरा सा मोड़! और बुद्ध को छोड़ कर फिर उसी पथ पर अग्रसर हो गई, जिस पर उसे जाना चाहिए था। जैसे चट्टान, चट्टान गिराने वालों से ज्यादा समझदार थी।
किसी ने बुद्ध के ऊपर पागल हाथी छोड़ दिया। वह पागल हाथी न मालूम कितने लोगों की हत्या कर चुका था। वह पागल हाथी आया और बुद्ध के चरणों में सिर झुका कर बैठा गया। जिन्होंने छोड़ा था, वे भी चकित हुए कि बात क्या हो गई! यह पागल हाथी को क्या हुआ! बुद्ध के शिष्यों ने बुद्ध से पूछाः इस पागल हाथी को क्या हुआ? यह तो पागल है।
उन्होंने कहाः यह भले पागल है, मगर आदमी थोड़े ही है। मतांध तो नहीं है। हाथी है, इसको कोई धर्म-शास्त्र, वेद इत्यादि से कोई मोह नहीं है। जिन्होंने छोड़ा है उनको वेद से मोह है। उनको है कि मैं वेद के विपरीत बोल रहा हूं, इसलिए मार डाला जाऊं। इस हाथी को क्या लेना वेद इत्यादि से! यह होगा पागल, मगर इतना पागल नहीं है जितना कि आदमी पागल हो सकता है।
खयाल रहे, आदमी जितना नीचे गिर सकता है उतना दुनिया में कोई नीचे नहीं गिर सकता, क्योंकि आदमी जितना ऊंचा उठ सकता है उतना कोई आदमी ऊंचा नहीं उठ सकता। आदमी पशुओं से बहुत नीचे जा सकता है और देवताओं से बहुत ऊपर। आदमी एक सीढ़ी है, जिसका एक छोर नरक में लगा है और दूसरा छोर स्वर्ग में लगा है। आदमी ही सिर्फ सीढ़ी है, बाकी सारे पशु जैसे हैं वैसे हैं। लेकिन आदमी एक सीढ़ी है।
आदमी विकासमान है, गतिमान है। वह नीचे गिर सकता है, ऊपर चढ़ सकता है।
सीढ़ी एक ही है; उसी सीढ़ी से ऊपर जाया जाता है, उसी से नीचे जाया जाता है-- सिर्फ दिशा का भेद होता है।
राज कोई छिपा हुआ राज नहीं है। राज खुला हुआ है। छोटा सा है। जैसे बूंद सागर में गिर जाए, तो फिर बूंद को अपनी चिंता क्या! फिर सागर ही हो गई।

फिर सागर जाने; बचाना हो बचाए, न बचाना हो न बचाए। बचाए तो भी ठीक, न बचाए तो भी ठीक।
ऐसे ही, मैं नहीं हूं, सागर है। उस सागर को तुम परमात्मा कहो, मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, बुद्धत्व कहो, जिनत्व कहो, जो भी तुम्हारी मर्जी हो, जो नाम देना हो। लेकिन इतना ही है कि बूंद अब नहीं है, सागर है। और जो मेरे साथ जुड़ रहे हैं, वे मेरे साथ नहीं जुड़ रहे हैं, क्योंकि मैं तो हूं ही नहीं। मैं तो सिर्फ बहाना हूं। वे मेरे बहाने सागर से ही जुड़ रहे हैं।
इसलिए बहुत चमत्कार होते रहेंगे। यही असली चमत्कार हैं। कोई हाथ से राख निकाल देना चमत्कार नहीं है, कि हाथ से घड़ियां प्रकट कर देना चमत्कार नहीं हैं। ये सब मदारीगीरियां हैं। ये सब मदारी हैं। ये सड़क-छाप मदारी हैं। ये सड़क के कोने-कोने पर जो मदारी खेल दिखाते हैं, उससे भिन्न इन खेलों में कुछ भी नहीं है। मगर ये जो चमत्कार अपने आप होते हैं... जो श्रद्धा के कारण होते हैं, जो आस्था के कारण होते हैं, यही असली चमत्कार हैं।
और इन चमत्कारों को अनुभव करने का जो भी तुम्हें मौका दे, उसका धन्यवाद करना। अब यह जो आदमी छुरा फेंक गया, यह तुम्हें एक मौका दे गया। इस पर नाराज मत होना। इससे मन में कोई दुर्भावना न लाना इसके प्रति। यह एक शुभ अवसर उपस्थित कर गया। यह नाहक अपने को झंझट में डाल गया और तुम्हारे लिए एक मौका दे गया। तुम्हारे लिए एक दर्शन का क्षण, एक झरोखा खोल गया। योग माणिक, ऐसे बहुत झरोखे खुलेंगे। यही सत्संग है।
सत्संग इतना ही नहीं है, कि मैं कुछ कहूं वह तुम सुनो। सत्संग के बहुत पहलू हैं, बहुत आयाम हैं। मैं जो नहीं कहूंगा, वह भी तुम सुन सकोगे। जो कभी नहीं कहा जा सकता, वह भी तुम सुन सकोगे। और जो घटेगा, वह भी तुम देख सकोगे। यहां रहस्य खुलेंगे। और रहस्यों के पीछे रहस्य छिपे हुए हैं। उनकी अनंतशृंखला है। इस सारीशृंखला की खोज ही तो संन्यास है। इसशृंखला की खोज का नाम ही तो धर्म है। एक सूत्र तुम्हारे हाथ में पकड़ आ जाए तो तुम इस अनंत यात्रा पर निकल जाओगे। किसी भी बहाने सूत्र को पकड़ लो और चल पड़ो।

तीसरा प्रश्नः ओशो, क्या भारत देश ब्रह्म-ज्ञानी नहीं है?

आत्मानंद ब्रह्मचारी! हो तो तुम भी हिम्मत के आदमी। मार मैं कितनी हो मारूं, मगर तुम भी टस से मस नहीं होते। तुम जमे हो अपनी जगह पर--बिल्कुल थिर!
देश कहीं ब्रह्म-ज्ञानी होते हैं? और अगर ब्रह्म-ज्ञानी होते हों तो ब्रह्म-देश होगा। देश कैसे ब्रह्मज्ञानी हो सकते हैं? समाज ब्रह्मज्ञानी नहीं होते, समूह ब्रह्म-ज्ञानी नहीं होते। ब्रह्म-ज्ञान की घटना तो व्यक्ति के अंतस्तल में घटती है। हां, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई गोरख, कबीर, नानक, दादू, मलूक, फरीद--व्यक्ति! लेकिन देश नहीं होते ब्रह्म-ज्ञानी। देश की कोई आत्मा होती है? देश है ही क्या? एक कोरा नाममात्र है, एक संज्ञा मात्र है! किस चीज को भारत देश कहते हो? हिमालय? गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, सतपुड़ा, विंध्याचल? जमीन? आकाश? किसको देश कहते हो?
आत्मा अगर अपने को अनुभव करे तो ब्रह्म-ज्ञान जल उठता है--दीये की लौ
की तरह। मगर आत्मा तो व्यक्ति की संपदा है, समूह की नहीं। समूह से ज्यादा मूढ़तापूर्ण कृत्य और कोई नहीं करता। व्यक्ति कभी नहीं करता। भीड़ ने जितने पाप किए हैं दुनिया में, उतने किसी और ने नहीं किए। पाप करवाने हों तो भीड़ चाहिए--हिंदुओं की, मुसलमानों की, ईसाइयों की भीड़ चाहिए। भीड़ हो तो पाप करवाए जा सकते हैं, क्योंकि भीड़ का एक राज हैः व्यक्ति को अपना उत्तरदायित्व अनुभव नहीं होता। अगर एक भीड़ मस्जिद को जला रही हो तो तुम भी जोश में आ जाते हो। तुम भी लग जाते हो मस्जिद को गिराने में, जलाने में। अगर तुमसे अकेला पूछा जाए कि क्या तुम अकेले यह काम कर सकते थे? तो शायद तुम्हारी छाती भी धड़केगी। शायद तुम्हारा अंतःकरण भी कचोटेगा। तुम कहोगे कि नहीं, अकेले तो मैं नहीं कर सकता था। क्यों? क्योंकि अकेले करते तो तुमको लगता कि मैं यह क्या कर रहा हूं! क्या यह उचित है? आखिर यह भी तो घर

परमात्मा का है! आखिर यहां भी तो लोग प्रार्थना करने ही इकट्ठे होते हैं! यूं न करते होंगे प्रार्थना, यूं करते होंगे; मगर करते तो प्रार्थना ही हैं! याद तो उसी की है! नाम उसका नहीं होगा राम, तो अल्लाह होगा। लेकिन नाम तो सिर्फ इशारा है; वह तो अनाम है। किसी भी इशारे से पुकारो। मैं यह क्या कर रहा हूं!
व्यक्ति को अगर आग लगानी पड़े मंदिर में या मस्जिद में या किसी की छाती में छुरा भोंकना पड़े, सिर्फ इस कारण क्योंकि यह हिंदू है या मुसलमान है, तो चौंकेगा, सहमेगा, ठिठकेगा, हजार बार सोचेगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं! यह उत्तरदायित्व मेरे ऊपर होगा! लेकिन जब भीड़ कोई पाप करती है तो भीड़ में तुम्हारा उत्तरदायित्व खो जाता है। तुम कहते होः कोई मैं थोड़े ही कर रहा हूं! लोग तो आग लगा ही रहे थे, मैं साथ हो लिया, संग-साथ हो लिया। मैं न होता तो भी मस्जिद तो जलती, मंदिर तो गिरता, मूर्ति तो टूटती। मैं न भी होता तो भी आदमी तो मारे ही जाते। मेरे होने से मारे गए, यह तो कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए मैं कहीं आता नहीं।
तुम निश्चिंत हो जाओगे। तुम्हारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। इसलिए अच्छे-अच्छे नाम चाहिए पाप के लिए--देश, जाति, धर्म। ऊंचे-ऊंचे नारे चाहिए। जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराया, एक लाख बीस हजार आदमी जल कर राख हो गए--एक आदमी के कृत्य से! तुम जरा सोचो कि तुमसे अगर कोई कहे कि एक लाख बीस हजार आदमी तुम्हारे कृत्य से जल कर राख हो जाएंगे, तुम कर सकोगे? करने के लिए बड़ा नाम चाहिए पड़ेगा--देश, मनुष्यता, शांति की रक्षा! उस आदमी से जब दूसरे दिन सुबह पूछा पत्रकारों ने कि तुम्हें रात नींद आई? उसने कहाः मैं बिल्कुल आनंद से सोया। अपना कर्तव्य निभाया। आज्ञा का पालन किया। अपने देश की रक्षा के लिए जो करना चाहिए वह किया। और यह देश की ही रक्षा नहीं है, यह दुनिया को युद्ध से बचाने का उपाय है। यह मनुष्य की रक्षा है, यह मनुष्यता मात्र की रक्षा है। ये दरिंदे हैं, ये राक्षस हैं। इसलिए हर एक व्यक्ति अपने दुश्मन को राक्षस कहता है। कोई रावण राक्षस नहीं था। लेकिन राम के पक्ष में जिन्होंने किताबें लिखी हैं, वे रावण को राक्षस कहेंगे। दक्षिण में किताबें लिखी गई हैं, जिनमें रावण को महापुरुष कहा गया है। वे उसको राक्षस नहीं कहेंगे।
जब हिंदुस्तान और चीन में दोस्ती थी तो हिंदी-चीनी भाई-भाई! और जब चीन
ने हमला किया तो चीनी राक्षस हो गए। हिंदुस्तान में कविताएं लिखी जाने लगीं कि चीनी जो हैं, राक्षस हैं। दुश्मन राक्षस हो जाता है। राक्षस क्यों? क्योंकि राक्षस कह कर उसको मारना आसान हो जाता है। आदमी कहोगे तो मारना मुश्किल होगा। राक्षस को मारने में क्या हर्जा है! अरे यह तो महापापी है, इसको मिटा दो! तो उतना ही पृथ्वी का भार कम हुआ!
अपने को अच्छे-अच्छे शब्दों की आड़ में खड़ा कर लो और दूसरे को बुरे- बुरे शब्दों से लाद दो, तो सुविधा हो जाती है, आसानी हो जाती है, बहुत आसानी हो जाती है।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, देश इत्यादि की बातें, जाति और समूह की बातें, संप्रदाय की बातें--ब्रह्मज्ञानियों की बातें नहीं हैं। ब्रह्मज्ञान तो निजी घटना है।
एक स्कूल में एक ब्राह्मण पंडित विद्यार्थियों से पूछ रहा थाः बताओ, भारत में कौन-कौन से मत प्रचलित हैं?
एक छात्र ने कहाः पंडित जी, कांग्रेस मत, जनता मत इत्यादि-इत्यादि।
पंडित जी गुस्से में आ गए। वे कहां धर्म की बात कर रहे हैं और यह कहां राजनीति की बात छेड़ रहा है! पंडित जी ने गुस्से में कहाः बको मत!
छात्र ने कहा कि पंडित जी, मैं भूल गया था, बको मत भी बहुत प्रचलित है।
भीड़ में तो बको मत रहता है, कहां ब्रह्मवाद! ... बकवास! व्यर्थ की बकवास! लोग ईश्वर की चर्चा कर रहे हैं, आत्मा की चर्चा कर रहे हैं; जैसे कि उन्हें पता हो। पता उन्हें कुछ भी नहीं है, मगर शब्द सीख लिए हैं, तोतों की तरह दोहराए चले जा रहे है। किसी काम के वे शब्द नहीं हैं। उनके जीवन में उन शब्दों से कोई क्रांति नहीं होती। अगर तुम इन्हीं शब्दों को ब्रह्मज्ञान मानते हो, तब तो ठीक है, भारत ब्रह्मज्ञानी देश है; क्योंकि यहां जितनी

ब्रह्मज्ञान की चर्चा होती है कहीं नहीं होती। और कुछ हमारे पास चर्चा को बचा भी नहीं है।
हर देश की अपनी-अपनी आदतें होती हैं, रिवाज होते हैं। जैसे इंग्लैंड में लोग हमेशा मौसम की चर्चा करते हैं। और कारण है उसका, क्योंकि मौसम एक ऐसा विषय है जिसमें कोई ज्यादा वाद-विवाद की जरूरत नहीं है। अंग्रेज वाद-विवाद पसंद नहीं करते, अशिष्ट मानते हैं वाद-विवाद को, ऐसी कोई बात छेड़ना, जिसमें वाद-विवाद हो जाए। ये बिल्कुल ही निर्विवाद सत्य हैं, जिनमें कोई विवाद का सवाल ही नहीं है। जैसे बादल घिरे हैं तो अंग्रेज कहेंगेः आज बहुत बादल घिरे हैं। स्वभावतः दूसरा भी कहेगा कि हां, आज बहुत बादल घिरे हैं, बड़ी उमस है, बड़ी बेचैनी अनुभव हो रही है। अब इसमें क्या विवाद करना है! मुल्ला नसरुद्दीन अपने नाई से बाल बनवाने जाता है। बार-बार मैंने उसको देखा कि जब भी वह नाई से बाल बनवाता है, तो बस वह मौसम की ही बात करे-- कि आज सूरज निकला हुआ है, बड़ा सुंदर सूरज! और कभी कहे कि आज वर्षा हो गई, खूब बूंदा-बांदी पड़ रही है, बड़ा आनंद आ रहा है! मैंने उससे पूछाः नसरुद्दीन, और तो तू कभी भी मौसम की चर्चा नहीं करता, मगर जब नाई से तू अपने बाल बनवाता है तो हमेशा मौसम की चर्चा करता है!
तो उसने कहा कि आप क्या समझते हैं, कि मैं पागल हूं, जिस आदमी के हाथ में उस्तरा हो और मेरी गर्दन पर उस्तरा लगाए हो, उससे क्या राजनीति या धर्म की बात छेडूं? आ जाए गुस्से में, नउए का बच्चा, क्या पता! छत्तीस गुणों का पूरा, मार दे जोर से! तो मौसम की चर्चा करता हूं, जिसमें कि कोई झगड़े-झांसे का सवाल ही नहीं।
अंग्रेज मौसम की चर्चा करते हैं, जिसमें कोई वाद-विवाद नहीं है। एक तो
वे चर्चा ही नहीं करते, जहां तक बने चर्चा ही नहीं करते। अगर दो अंग्रेज एक रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठे हों तो घंटों बैठे रहेंगे बिना एक-दूसरे से बोले हुए, क्योंकि जब तक कोई तीसरा उनका परिचय न कराए तब तक वे बोलें कैसे! बोलना असंभव। परिचय ही नहीं करवाया गया... तो चुपचाप बैठे रहेंगे, अपना- अपना अखबार पढ़ते रहेंगे।
दो भारतीय मिलेंगे तो ब्रह्मज्ञान छेड़ेंगे। यह भारतीय आदत, रिवाज। यह हमारी पुरानी लीक। इसका कोई मूल्य नहीं है--उतना ही मूल्य है जितना मौसम की चर्चा का इंग्लैंड में, उतना ही ब्रह्मज्ञान की चर्चा का भारत में। दो भारतीय मिलेंगे तो फौरन वेदांत छिड़ जाएगा। और एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर बात करेंगे, क्योंकि जब वेदांत ही छिड़ा हो तो फिर किससे क्या पीछे रहना। लंबी मारेंगे। गपशप ही चल रही है, तो फिर क्या किसी से हारना! और ब्रह्मज्ञान का मामला ऐसा है, इसमें कुछ भी कहो सभी ठीक है, क्योंकि न पक्ष में कोई प्रमाण है, न विपक्ष में कोई प्रमाण है, प्रमाण का तो कोई सवाल ही नहीं है।
एक राधास्वामी संप्रदाय को मानने वाले सज्जन मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि आप अस्तित्व के कितने खंड मानते हैं? क्योंकि हमारे गुरु तो चौदह खंड मानते हैं और चौदहवां खंड का नाम है--सच्च खंड!
वे नक्शा भी लाए थे--चौदह खंड। और उन खंडों में जो उन्होंने दिखाया था,
वह झगड़े-झांसे की बात है। क्योंकि उसमें मोहम्मद, मूसा, इत्यादि तो पांचवें खंड में हैं, अभी वहीं अटके हैं। जीसस, जरथुस्त्र जरा आगे गए हैं-- छठवें खंड में। महावीर और बुद्ध और थोड़े आगे बढ़े हैं। बड़ी कृपा की उन्होंने--सातवें खंड में! फिर कबीर, नानक इत्यादि और थोड़े आगे बढ़ा दिए-- आठवें खंड में। मगर चौदहवें खंड तक उनके ही गुरु पहुंचे! सच्च खंड! वे मुझसे पूछने लगेः आप कितने खंड मानते हैं? हमारे गुरु के संबंध में आपका क्या खयाल है? क्या ये खंड सच हैं?
मैंने कहाः ये बिल्कुल सच हैं, क्योंकि मैंने तुम्हारे गुरु को चौदहवें खंड में अटके देखा है।
तो उन्होंने कहाः आपका मतलब?
मैं पंद्रहवें खंड में हूं! महासच्च खंड!
आप कहते क्या हैं! यह तो कभी सुना नहीं।
मैंने कहाः तुम सुनोगे कैसे? तुम्हारे गुरु को ही पता नहीं था, तो तुम सुनोगे कैसे!

कहने लगेः नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है कि हमारे गुरु को पता न हो!
उनको पता कैसे होगा, जब चौदहवें में ही अटके हैं! जब तुम दूसरों को अटका रहे हो--किसी को सातवें में, किसी को आठवें में; जब तुमको यह अधिकार है अटकाने का--तो अब मैं भी क्या करूं, मैं पंद्रहवें में हूं!
तब से वे आए नहीं। ऐसे नाराज होकर गए हैं कि फिर नहीं लौटे। मैंने उनसे कहा भी कि कभी-कभी सत्संग को आ जाया करो। ऐसे तुम्हारे गुरु भी बहुत प्रार्थना करते हैं कि निकाल लो मुझे चौदहवें खंड से। कोशिश कर रहा हूं उनको भी निकालने की।
वे तो नाराज ही हो गए एकदम कि बात ही हमारे गुरु के खिलाफ हो गई! और दूसरे गुरुओं के खिलाफ जो कह रहे हैं वह बिल्कुल ठीक है। महावीर और बुद्ध को भी सातवें में अटकाए हुए हैं, चौदहवें तक भी नहीं पहुंचने देते। बड़ी कृपा की उन्होंने कबीर, नानक इत्यादि पर, कि उनको आठवें में चढ़ा दिया! तो मैंने कहाः तुम मेरा तो दयाभाव देखो कि तुम्हारे गुरु को चौदहवें तक चढ़ाया स्वीकार करता हूं। और मैं देख ही रहा हूं उनको कि चौदहवें में हैं। बिल्कुल सच कहते हैं वे। अब उनको कोई चाहिए जो निकाले। मैं कोशिश करूंगा जितना बन सकेगा निकालने की, निकल आए तो ठीक। जोर से पकड़े हुए हैं चौदहवें खंड को, क्योंकि वे समझते हैं सच्च खंड आखिरी खंड है। सच्च खंड आखिरी कैसे हो सकता है, फिर महासच्च खंड का क्या होगा?
ब्रह्म-ज्ञान की ही बात करनी हो तो फिर जो दिल में आए बात करो--चौदहवां खंड बनाओ, सोलहवां बनाओ, अठारहवां बनाओ। मंदिरों में नक्शे लटके हुए हैं नरक के, स्वर्ग के। महावीर कहते थे एक नरक। उनका ही एक शिष्य, गोशाल, बगावती हो गया। बगावती यूं हो गया कि उसने देखा कि महावीर जो कहते हैं ब्रह्म-ज्ञान, यह तो मैं ही कह सकता हूं। कई दिन उनके साथ रहा, सब समझ लिया। उसने कहा कि ठीक है, ये बातें तो मैं ही कह सकता हूं। तो वह भी कहने लगा। उसमें उसने और जोड़ लीं बातें। वह कहने लगाः तीन नरक होते हैं और तीन स्वर्ग होते हैं। अब करोगे क्या? इसमें कुछ झगड़ा तो नहीं है। लोग उससे पूछते कि महावीर तो कहते हैं एक ही है, तो उसने कहाः उनको एक का ही पता है, एक का बताते हैं। आगे का उनको पता नहीं है।
संजय वेलट्ठीपुत्त को पता चला--वह भी एक ज्ञानी था--कि यह गोशाल कहता
है तीन नरक हैं। उसने कहाः पागल है, अरे तीन से कहीं काम चला है! सात के बिना हो ही नहीं सकता। सात नरक हैं, सात स्वर्ग हैं।
और पूर्णकाश्यप एक और गुरु था उन दिनों का--कहना चाहिए गुरु घंटाल! आदमी प्यारा है, मुझे पसंद है वह। उसने कहाः क्या लगा रखी है बकवास छोटी- मोटी! अरे सात सौ नरक होते हैं और सात सौ स्वर्ग!
अब इसको अगर ब्रह्म-ज्ञान कहते हो तो तुम्हारी मौज, फिर तुम्हें जो दिल में आए छेड़ो। अपनी-अपनी मौज है। अपनी-अपनी उड़ान है। जितनी जिसकी कल्पना हो उतने उड़े चले जाओ।
मगर कोई देश न तो ब्रह्मज्ञानी है, न रहा है, न कभी हो सकता है। यह अहंकार छोड़ो। देश वगैरह से ब्रह्म-ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। ये सब अपने अहंकार को भरने के परोक्ष रास्ते हैं। अपनी आंखें ठीक करो। देश के पास आंखें होती ही नहीं, ठीक भी क्या करोगे! अब कोई कहने लगे कि देश की आंखों पर चश्मे चढ़ा दें, तो सबको ठीक दिखाई पड़ने लगेगा; मगर देश की आंखें ही नहीं हैं तो चश्मा कहां चढ़ाओगे! देश की अंतर्दृष्टि खोल दें! मगर अंतर्दृष्टि देश की है कहां? देश कोई व्यक्ति तो नहीं, आत्मा तो नहीं--संज्ञा मात्र है, थोथा शब्द मात्र है।
शब्दों से जरा सावधान रहो। शब्दों में मत उलझ जाओ।
बुढ़ापे में मुल्ला नसरुद्दीन की आंखें कमजोर हो गईं। जब उसे हाथी तक चूहे के बराबर दिखाई देने लगे तो वह अपने नेत्र-विशेषज्ञ से सलाह लेने पहुंचा। डाक्टर ने आंखों की जांच की और एक काफी मोटे लेंसों वाला चश्मा नसरुद्दीन को पहना दिया। मुल्ला खुशी-खुशी बाहर आया। घर लौटते समय रास्ते में बाजार पड़ा, तो नसरुद्दीन ने सोचाः आज मुझे नई ज्योति मिली है, चलो इसी खुशी में बच्चों के लिए कुछ खिलौने ले चलूं? वह एक अंगूर की दुकान पर पहुंचा और पूछने लगाः क्यों भाईजान, ये फुग्गे किस भाव दिए?

लोग कभी-कभी अपनी आंख भी ठीक करते हैं तो जरूरत से ज्यादा ठीक कर लेते हैं। तो या तो उनको हाथी चूहा दिखाई पड़ता है, नहीं तो फिर चूहा हाथी दिखाई पड़ने लगता है। सम्यक दृष्टि--इसलिए बुद्ध ने कहा--सम-दृष्टि होनी चाहिए, ढंग की दृष्टि होनी चाहिए।
आदमी चाहता क्या है? एक बात चाहता है कि किसी तरह अपने अहंकार को नये- नयेशृंगार दे दे, नये-नये आभूषण दे दे। तो मेरा देश महान! क्यों? क्योंकि आप, आत्मानंद ब्रह्मचारी, इस देश में पैदा हुए! महान न होता तो आप यहां पैदा ही क्यों होते? होना ही चाहिए महान! जब आप तक ने पैदा होने के लिए इसको चुना, तो यह महान होना ही चाहिए! यह अपने को ही महान कहने का परोक्ष ढंग है।
पेरिस विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र का एक प्रधान अध्यापक था। उसने एक दिन घोषणा की अपने विद्यार्थियों के सामने, कि मैं इस पृथ्वी का सबसे महान व्यक्ति हूं। विद्यार्थी भी चौंके। एक तो दर्शनशास्त्र के प्रधान अध्यापक... । दर्शनशास्त्र की कौन कीमत करता है! विश्वविद्यालय में आखिरी दर्जे में दर्शनशास्त्र होता है। कौन पढ़ने जाता है! जिनको किन्हीं और विषयों में जगह नहीं मिलती, वे दर्शनशास्त्र पढ़ते हैं। भारत में तो आमतौर से लड़कियां पढ़ती हैं, क्योंकि विवाह ही करना है, एम.ए. होकर और तो कुछ करना नहीं है, तो नाहक क्यों उपद्रव में पड़ना! दर्शनशास्त्र ठीक। और फिर ब्रह्मज्ञान तो भारत के खून में ही है। कोई दर्शनशास्त्र में पढ़ने जाता नहीं है। सैकड़ों विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र के विभाग खाली पड़े हुए हैं। मगर इज्जत के लिए विश्वविद्यालय दर्शन-शास्त्र का विभाग कायम रखते हैं, क्योंकि उसको हटाने में भी बेइज्जती होती है कि इसमें एक विभाग कम है।
और यह गरीब अध्यापक दर्शन-शास्त्र का! हां, कोई गणित का अध्यापक कहता, कोई फिजिक्स का अध्यापक कहता। किसी ने एटम बम बनाया होता और वह कहता। यह इसने तो कुछ न बनाया, न कभी कुछ मिटाया। बस ऊंची-ऊंची बातें करता रहा हवाई। यह कह रहा है--मुझसे महान व्यक्ति कोई दुनिया में नहीं है! एक विद्यार्थी ने कहा कि आप तो दर्शन के अध्यापक हैं, क्या आप सिद्ध कर सकते हैं?
उसने कहा कि बिना सिद्ध करे मैं कोई बात कहता ही नहीं। तो सुनो! उसने फौरन नक्शा निकाला दुनिया का, बोर्ड पर टांगा और पूछा कि मैं तुमसे यह पूछता हूंः दुनिया में सबसे महान देश कौन है? स्वभावतः विद्यार्थियों ने कहा कि फ्रांस। और उसने पूछाः मैं तुमसे यह पूछता हूं, फ्रांस में सबसे बड़ा महान नगर कौन सा है?
उन्होंने कहाः पेरिस।
और तब उसने पूछा कि मैं तुमसे पूछता हूं पेरिस में सबसे महान और पवित्रतम स्थल कौन सा है? उन्होंने कहाः स्वभावतः, जो सरस्वती का मंदिर है, विश्वविद्यालय।
तब वे घबड़ाए कि यह आदमी तो लिए जा रहा है धीरे-धीरे। तब उनको कुछ थोड़ी
सी शंका होनी शुरू हुई। और तब उसने कहा कि ठीक, और इस विश्वविद्यालय में सबसे श्रेष्ठ विषय कौन सा है?
अब फांसी लगी लड़कों की! उन्होंने कहा कि अब लग गई फांसी, क्योंकि हम सब दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी हैं, तो हमको तो कहना ही पड़ेगा कि दर्शनशास्त्र। तो उन्होंने कहाः दर्शनशास्त्र।
तो उसने कहाः अब कुछ सिद्ध करने को बचा है? और मैं दर्शनशास्त्र का प्रधान अध्यापक, मैं इस दुनिया का सबसे महान व्यक्ति हूं! यह सिद्ध हो गया। और क्या सिद्ध करने लिए चाहिए?
भारत ब्रह्म-ज्ञानी है! यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! शक्कर मिलती नहीं, देवता पैदा होने को तरसते हैं! तो उनसे कह देना देवताओं से कि शक्कर साथ लेते आएं। घासलेट का तेल मिलता नहीं, तो कह देना उनसे कि घासलेट के तेल के पीपे साथ लेते आएं। तरसते हो, वह तो ठीक है। तरसते हो तो आओ भैया, वैसे ही भीड़-भाड़ है, और थोड़ी भीड़-भाड़ हो जाएगी। मजे से आओ, स्वागत है। अरे अतिथि तक को देवता कहते हैं, जब देवता ही अतिथि होना चाहे तो अब क्या करें!

मगर कुछ चीजें लेते आना। रहने के लिए थोड़ी जगह ले आना, मकान ले आना, सामान ले आना, कुछ फर्नीचर ले आना।
देवता तरसते हैं यहां पैदा होने को! किस कारण तरसते होंगे--या तो पागल
हो गए हैं या सोमरस ज्यादा पी गए हैं, बात क्या है! भांग चढ़ा गए हैं। भारत में पैदा होने को तरसते, कोई और जगह नहीं मिलती पैदा होने को!
मगर भारतीय मन को, भारतीय अहंकार को तृप्ति मिलती है--यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! यह पुण्य-भूमि है! यह ब्रह्मज्ञानियों का देश है!
यह पागलपन छोड़ो। तुम्हीं ब्रह्मज्ञानी हो जाओ, यही पर्याप्त है। इन व्यर्थ की बातों में समय न गंवाओ।
मुल्ला नसरुद्दीन को चार महीने से कान में भयानक दर्द था। वह कान के विशेषज्ञ के पास पहुंचा। विशेषज्ञ ने एकबारगी कान के भीतर झांका और आधे मिनट के अंदर ही चिमटी से पकड़ कर एक रुपये का सिक्का बाहर निकाल कर मुल्ला की हथेली पर रख कर कहाः देखो, यह है सारी समस्या की जड़।
नसरुद्दीन ने राहत की सांसें लेते हुए कहाः मेरे तो इसने प्राण ही ले लिए थे। डाक्टर साहब। आज पूरे चार महीने हो गए हैं, न ठीक से सोया हूं, न कुछ ठीक से खा-पी सका हूं। दिन-रात कान तड़कता था और मैं मछली की तरह तड़फता था। आपने बड़ी कृपा की! मैं आपका एहसान जिंदगी भर नहीं भूलूंगा।
डाक्टर बोलाः लेकिन मुझे समझ नहीं आया कि तुमने पहले आने की कोशिश क्यों नहीं की! चर महीनों से इस नरक की पीड़ा को बेवजह क्यों झेल रहे थे? कभी भी आ जाते। अरे आधा मिनट का ही तो का था, बस इस सिक्के को बाहर निकालना था।
दरअसल बात यह है डाक्टर साहब--नसरुद्दीन ने जवाब दिया--कि आज तक मुझे
इस सिक्के की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।
आत्मानंद ब्रह्मचारी, तुम्हें ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता है या नहीं? तुम्हें आवश्यकता हो, अगर आ गई हो आवश्यकता, तो इस व्यर्थ के जाल में मत पड़ो। व्यर्थ की बातों में मत पड़ो। तो अपने भीतर उतरो, खोदो। वहीं पड़ा है हीरा। हीरों की खदान वहीं है। फिर तुम भारतीय हो, कि जापानी, कि चीनी, कि अफगानी, कुछ फर्क नहीं पड़ता। प्रत्येक के भीतर परमात्मा विराजमान है। और प्रत्येक के भीतर यह क्षमता है कि वह स्वयं को खोज ले, स्वयं से परिचित हो जाए।
मगर हमें ब्रह्म-ज्ञान से तो जरूरत ही नहीं है। हमें तो और ही दूसरी बकवास में लगे रहना है--भारत ब्रह्म-ज्ञानी है या नहीं! हो भी तो तुम क्या करोगे? हो भी तो तुम ब्रह्मज्ञानी न हो जाओगे। तुम्हें होना पड़ेगा। इसलिए मुद्दे की बात करो, जड़ की बात करो। मूल समस्या को पकड़ो। और समस्या सीधी-साफ हैः अपनी चेतना में उतरना है। अपने साक्षी-भाव को जाग्रत करना है। आत्मानंद ब्रह्मचारी, जागो! काफी सो लिए। भोर हो गई है।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
सातवां प्रवचन

परमात्मा प्रकाश है--और अंधकार भी

पहला प्रश्नः ओशो! आपकी यह सब बात तो ठीक है कि सब शुभ है, सुंदर है; परंतु हमारा क्या होगा--हम जो कि आपकी देह से आसक्त हैं?

योग विद्या! आसक्ति भी अशुभ नहीं। आसक्ति भी असुंदर नहीं। आसक्ति वैसी ही है, जैसे खदान से निकला ताजा-ताजा सोनाः शुद्ध नहीं है। अग्नि से गुजरेगा, निखरेगा, शुद्ध हो जाएगा।
आसक्तिप्रेम का अशुद्ध रूप है। आसक्ति का रूपांतरण करना होता है, परिष्कार करना होता है।
मैं आसक्ति के विपरीत नहीं हूं--मैं किसी भी बात के विपरीत नहीं हूं।
लेकिन प्रत्येक वस्तु के और भी श्रेष्ठतर रूप हो सकते हैं, और भी शुभतर, और भी सुंदरतर।
उपनिषद के ऋषियों ने प्रार्थना की हैः हे प्रभु, हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मैं अगर कहूं तो कहूंगाः हे प्रभु, हमें प्रकाश से और प्रकाश की तरफ
ले चलो। क्योंकि अंधकार भी प्रकाश का ही एक रूप है। अंधकार में भी प्रकाश ही छिपा हुआ है। अंधकार से ही तो सुबह का जन्म होता है, सूरज उगता है।
रात्रि के गर्भ में ही तो सूरज पलता है और बड़ा होता है। यह सुबह का सारा सौंदर्य रात के बिना नहीं हो सकता है।
उपनिषद के ऋषि कहते हैंः हे प्रभु, हमें मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।
मैं कहना चाहूंगाः हे प्रभु, हमें अमृत से और अमृततर की ओर ले चलो।
क्योंकि मृत्यु तो है ही नहीं। अमृत ही है। अमृत के ही सब सोपान हैं। कहीं धूल-धूसरित है, कहीं स्वर्ण-मंडित है। कहीं कीचड़ में दबा है और कहीं कीचड़ से मुक्त हो गया है।
उपनिषद के ऋषि कहते हैंः हे प्रभु, हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो।
असतो मा सदगमय।
मैं कहूंगाः हे प्रभु, हमें सत्य से और भी सत्यतर की तरफ ले चलो।
क्योंकि मेरे लिए कुछ भी असत्य नहीं है। मैं जीवन को उसकी सर्वांगीणता में स्वीकार करता हूं। मेरी स्वीकृति चरम है, समग्र है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि विकास असंभव है। विकास है--पूर्ण से पूर्णतर की ओर, पूर्णतर से पूर्णतम की ओर। अपूर्ण कुछ भी नहीं है। फिर भी विकास संभव है। यही इस जगत का रहस्यमय रूप है। यही इस जगत का जादू है। यही चमत्कार है। योग विद्या, मेरी देह से तुम्हारी आसक्ति है; वह पहला कदम है--मेरी आत्मा से तुम्हारे प्रेम के बनने का। नहीं कहूंगा आसक्ति छोड़ दो। कहूंगा आसक्ति को गहराओ; इतना गहराओ कि आसक्तिप्रेम बन जाए। कहूंगा आसक्ति को पंख दो, कि पृथ्वी पर ही क्यों सरके आसक्ति, आकाश में उड़े! कहूंगा आसक्ति को आंखें दो, देह ही क्यों देखे आसक्ति, आत्मा को क्यों न देखे? तब आसक्ति बंधन नहीं है। तब आसक्ति भी मुक्ति है।
मेरी इस दृष्टि को जिसने समझा, वही मेरे संन्यास को समझ पाएगा। इसलिए मैंने कल कहा कि इस भ्रांति में मत रहना कि मैंने संन्यास को सरल कर दिया है। ऊपर-ऊपर बिल्कुल सरल, भीतर-भीतर बहुत कठिन कर दिया है। ऊपर-ऊपर इतना सरल कि लोगों को लगता है कुछ भी तो नहीं करना है; गैरिक वस्त्र पहन लेने हैं कि माला धारण कर लेनी है, कि नाम बदल लेना है--बस संन्यास हो गया। न व्रत है न उपवास है, न यम है न नियम है, न तप है न तपश्चर्या है, न त्याग है, न संसार से हटना है, न दूर पहाड़ों में निवास है। ऊपर से तो निश्चित ही सरल कर दिया है, क्योंकि जो ऊपर से कठिन हो तो बस ऊपर की कठिनाई ही खा जाती है, भीतर तक पहुंचने का अवसर ही नहीं आता। ऊपर का गणित बिठालने में ही जीवन व्यतीत हो जाता है, भीतर कदम उठाने का मौका ही नहीं मिलता। ऊपर से बिल्कुल सरल कर दिया है, ताकि भीतर की चुनौती परिपूर्णता से झेली जा सके।

और भीतर की सबसे बड़ी चुनौती यही हैः प्रेम जब शुरू होगा तो आसक्ति की तरह ही शुरू होगा। अगर तुमने चाहा कि आसक्ति की तरह प्रेम शुरू न हो तो प्रेम कभी शुरू ही नहीं होगा। बीज होगा तो वृक्ष होगा। बीज की तरह ही वृक्ष शुरू होगा। और कमल शुरू होगा तो कीचड़ में ही शुरू होगा। तुमने अगर कीचड़ से बचना चाहा तो कमल से वंचित रह जाओगे।
इसलिए मेरे लिए कीचड़ भी पूज्य है, पावन है, पवित्र है, क्योंकि उससे कमल का जन्म होता है। कीचड़ जननी है। और जिससे कमल का जन्म होता हो उसे कीचड़ ही कह कर तुम न्याय नहीं कर रहे हो। जिसमें कमल छिपा हो, वह मात्र कीचड़ ही नहीं है, वह कमल का अप्रकट रूप है। ऐसी ही आसक्ति है। यह भी शुभ, यह भी सुंदर।
तू कहती है विद्या कि हमें आपकी देह से आसक्ति है। तुझे चिंता हो रही है। तूने इसे प्रश्नवाचक चिह्न के साथ पूछा है कि हम क्या करें? परंतु हमारा क्या होगा? यही तो मेरे होने का प्रयोजन है कि तुम्हारे भीतर की मिट्टी को सोना बना दूं, कि तुम्हारे भीतर की आसक्ति को प्रेम बना दूं। और प्रेम पर भी रुक नहीं जाना है। रुकना तो कहीं भी नहीं है। रुकना ही नहीं है। यह जगत अनंत यात्रा है। फिर प्रेम को प्रार्थना बनाना है। फिर प्रार्थना को परमात्मा बनाना है। यूं चलते ही जाना है। बुद्ध ने कहा हैः चरैवेति, चरैवेति! चलते रहो, चलते रहो! कहीं रुकना मत। मंजिल नहीं है; यात्रा ही मंजिल है। और यात्रा के हर कदम पर अपूर्व अनुभव होते हैं। मंजिल आ जाए तो सब समाप्त हुआ। फिर कोई विकास नहीं है। फिर कोई गति नहीं है। मंजिल आ जाए तो मृत्यु आ गई। मंजिल नहीं आती, इसलिए मृत्यु है ही नहीं, जीवन ही जीवन है। जीवन और महाजीवन! सरिताएं सागर बन जाती हैं, ऐसे ही जीवन महाजीवन बन जाता है।
तूने पूछाः आपकी यह सब बात तो ठीक है। तेरे पूछने से ही लगता है कि तुझे बात सब ठीक लग नहीं रही है। कहती है कि आप जब कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। आपकी यह सब बात तो ठीक है। यह कहने का ढंग बताता है कि मुझसे विवाद भी नहीं किया जा सकता। मगर तुझे बात रुच नहीं रही, गले के नीचे उतर नहीं रही। न गटकते बनती है, न थूकते बनती है। तो तू कह रही है कि आपकी सब बात तो ठीक है। ठीक होगी ही! कौन विवाद में पड़े! और यूं भी विवाद में पड़ने से लाभ क्या होगा! इतना तू भलीभांति जानती है कि विवाद में हारना होगा। इसलिए विवाद में पड़ना नहीं चाहती। लेकिन नकार तेरे भीतर है। तू सच में तो यह कहना चाहती हैः हमें यह बात जंचती नहीं। और मैं कह भी नहीं रहा हूं कि तुझे जंचनी चाहिए। अभी कैसे जंचेगी? अगर मेरी बात अभी जंच जाए तो तू प्रबुद्ध हो गई। मेरी बात तो जंचते-जंचते ही जंचेगी, बनते-बनते ही बनेगी।
तू कहती हैः आपकी यह सब बात तो ठीक है कि सब शुभ है, सुंदर है। कहने को
कह रही है, औपचारिक रूप से कह रही है। इनकार नहीं करना चाहती मेरी बात को, इसलिए कह रही है। लेकिन भीतर प्रश्न है और प्रश्न यह हैः फिर आसक्ति का क्या होगा? अगर सब शुभ है, सब सुंदर है, तो फिर मृत्यु का क्या होगा? वह भी शुभ है, वह भी सुंदर है।
सदियों-सदियों में आदमी ने जीवन को शुभ में और अशुभ में बांटा है। मैं बांटना नहीं चाहता जीवन को। वही मेरा अनुदान है। वही मेरी क्रांति है। मैं जीवन को बिना बांटे स्वीकार करता हूं। उसे खंडों में नहीं तोड़ना चाहता। जिसने जीवन को खंडों में तोड़ दिया, विपरीत खंडों में तोड़ दिया, वह अपने को भी विपरीत खंडों में तोड़ लेगा। वह स्वयं भी खंडित हो जाएगा। और खंडित व्यक्तित्व अखंड को नहीं जान सकता है, इतना स्मरण रहे। खंडित व्यक्ति विक्षिप्त हो जाता है। खंडित होना विक्षिप्त होना है। अखंडित होना स्वास्थ्य है। मगर अखंडित होने की कला यह है कि जीवन को उसके अखंड रूप में स्वीकार करो। कांटों को भी और फूलों को भी! कांटे अगर हैं तो फूलों के रक्षक हैं। एक ही रसधार से दोनों बने हैं। एक ही प्राण ऊर्जा दोनों में बही है। और एक ही परमात्मा दोनों में प्रकट हुआ है। कहीं कांटे की तरह, कहीं फूल की तरह। कांटे से दुश्मनी मत लेना। जब परमात्मा कांटे और फूल दोनों से राजी है, जब गुलाब की झाड़ी में दोनों को सजा रहा है, तो तुम महात्मा बनने की कोशिश मत करना।

ध्यान रखना, तुम्हारे तथाकथित महात्मा परमात्मा के विपरीत काम में लगे हुए हैं। परमात्मा दोनों बनाता है; तुम्हारे महात्मा कहते हैं, एक को चुनो। तुम्हारे महात्मा अपने को परमात्मा से ऊपर रखने की चेष्टा में संलग्न हैं। परमात्मा अंधकार भी बनाता है और प्रकाश भी। निश्चित ही दोनों को अंगीकार करता है। अंधेरे का भी अपना सौंदर्य है। नहीं, तुमने अंधेरे का सौंदर्य देखा? अमावस की रात का तुमने काव्य नहीं देखा, संगीत नहीं देखा? माना कि पूर्णिमा की रात का भी अपना मजा है, मगर अमावस की रात का कुछ कम मजा नहीं। बुद्ध पूर्णिमा की रात्रि को ज्ञान को उपलब्ध हुए। महावीर ने ठीक ही किया कि वे अमावस की रात को ज्ञान को उपलब्ध हुए। महावीर ने एक क्रांति घटित कर दी। अमावस की रात को शायद महावीर के अतिरिक्त कोई भी परमज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। पूर्णिमा की रात्रि को तो बहुत लोग परमज्ञान को उपलब्ध हुए; यह प्रतीक है। पूर्णिमा की रात्रि हो, इससे ज्यादा शुभ घड़ी क्या होगी, इससे ज्यादा सुंदर और क्या होगा! आकाश में पूरा चांद हो, बरसती चांदनी हो, चारों तरफ फैला हुआ चांदनी का सौंदर्य हो, पृथ्वी चांदी की हो गई हो, पत्ते-पत्ते पर निखार हो, फूल-फूल अलौकिक आभा से मंडित हो--यह तो ठीक है, यह समझ में आता है। यह बात तर्क में बैठती है कि बुद्ध पूर्णिमा को ज्ञान को उपलब्ध हुए। लेकिन महावीर को मत भूल जाना। महावीर अमावस की रात को ज्ञान को उपलब्ध हुए।
अमावस की रात का भी अपना सौंदर्य है। अंधेरी रात की अपनी गहराई है। अंधेरे की अपनी मखमली देह है। अंधेरे में जो रेशमीपन है वह उजाले में नहीं है। और अंधेरे में जैसे तारे उभर कर प्रकट होते हैं, रोशनी में खो जाते हैं। अंधेरे में आकाश जैसा मंडित हो जाता है तारों से, तारों का वितान खिंच जाता है--वैसा चांदनी में कहां, वैसा दिन की धूप में कहां! वह मजा कहां!
लेकिन आदमी ने हमेशा परमात्मा को प्रकाश के साथ पर्यायवाची माना है। करीब-करीब दुनिया के सारे धर्मशास्त्र कहते हैंः परमात्मा प्रकाश है। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः परमात्मा प्रकाश है निश्चित ही, परमात्मा लेकिन उतना ही अंधकार भी है।
यह किसी धर्मशास्त्र ने कहा नहीं है। हमें नया धर्मशास्त्र लिखना ही होगा। क्योंकि अंधेरे को छोड़ दोगे तो परमात्मा अधूरा रह जाएगा। सारे धर्मशास्त्रों ने कहा हैः परमात्मा महाजीवन है। लेकिन कोई धर्मशास्त्र नहीं कहता कि परमात्मा महामृत्यु भी है। यह मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि परमात्मा महामृत्यु भी है। क्योंकि मृत्यु को छोड़ दोगे तो विश्राम छूट जाएगा। और विश्राम की अपनी गहराई है। जैसे जागरण ही जागरण काफी नहीं है, रात के सोने का भी अपना मजा है। वह दिन के जागने से कम नहीं। वैसे ही जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मगर आदमी ने क्यों प्रकाश को परमात्मा कहा, क्योंकि आदमी अंधेरे से डरता है। इसलिए आदमी ने सदियों से शैतान को काला चित्रित किया है और परमात्मा को ज्योतिर्मय। यह आदमी की अपनी भय की सूचना है। इससे कोई परमात्मा के संबंध में वह कुछ नहीं कह रहा है; अपने संबंध में कुछ कह रहा है; अपने मनोविज्ञान की उदघोषणा कर रहा है। यह उसका मनसशास्त्र है कि वह अंधेरे से डरता है, घबड़ाता है; उजाले में निश्चिंत हो जाता है। उजाले में दिखाई पड़ता है। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ता, पता नहीं सांप छिपा हो, बिच्छू छिपा हो, जंगली जानवर हमला बोल दें, कोई चोर-लुटेरा, कोई हत्यारा आ जाए! उजाले में कम से कम सुरक्षा तो है! उजाले में बचने का उपाय तो है, भाग तो सकता है। कुछ न कर सके तो कम से कम भाग तो सकता ही है, चीख-चिल्ला तो सकता है। लेकिन अंधेरे में एकदम असुरक्षित हो जाता है।
मगर असुरक्षा का मजा छोड़ दोगे तुम। सुरक्षा का भी सुख है। मगर सुरक्षा में एक तरह का बंधन है। असुरक्षा में एक स्वतंत्रता है। और जिनकी श्रद्धा परिपूर्ण है, वे असुरक्षा को छोड़ नहीं देंगे। वे उसे भी अंगीकार करते हैं। यह तो श्रद्धा की कमी है, जो असुरक्षा को अस्वीकार करती है।
श्रद्धा की पूर्णता में तो सब स्वीकार है--सुरक्षा भी, असुरक्षा भी।

मृत्यु से तुम डरते हो। इसलिए परमात्मा को तुम मृत्यु की तरह चित्रित नहीं करते--जीवन, महाजीवन, परम जीवन, शाश्वत जीवन। क्यों? क्योंकि तुम्हारे भीतर आकांक्षा है सदा जीने की। तुम सदा जीना चाहते हो। तुम कभी मिटना नहीं चाहते। मरने से तुम बड़े भयातुर हो। क्या डर है यूं मरने में? क्या भय है यूं मिटने में? अगर ओस की बूंद सागर में खो जाए तो इतना क्या भय? नदी भी सागर में उतर कर लीन हो जाए, तो इतनी क्या चिंता है? और तुम भी अगर विराट में लीन हो जाओ, खो जाओ--वह परम-मरण है, महामरण है--तो क्या इतना बचाव की कोशिश में लगे हुए हो? बचा कर भी क्या बचा लोगे? बचाने योग्य है भी क्या?
आदमी ने अपने मनोविज्ञान को परमात्मा पर आरोपित किया है। यह परमात्मा
की असली तस्वीर नहीं है जो हमने छाप रखी है, जो अपने मन में खोद रखी है। ये प्रतिमाएं जो हमने गढ़ी हैं, ये हमारे संबंध में खबर देती हैं। इसलिए जैसे- जैसे आदमी बदला है, वैसे-वैसे उसकी परमात्मा की प्रतिमा बदली है। जैसे- जैसे आदमी बदला, वैसे-वैसे उसका परमात्मा के संबंध में दृष्टिकोण बदला। आदमी की बदलाहट के साथ उसका परमात्मा बदलता गया। यह भी खूब रही! क्योंकि आदमी बदला तो स्वभावतः उसे अपने चित्र बदलने पड़े।
अब धनुर्धारी राम कुछ अप्रासंगिक मालूम होते हैं। जिनको नहीं मालूम होते होंगे, वे या तो अंधे हैं या समसामयिक नहीं हैं। बुद्ध कहीं ज्यादा दिव्य रूप मालूम पड़ते हैं। ये धनुषबाण हाथों में लिए हुए राम खड़े हैं, यह धनुष-बाण की भाषा अब सार्थक नहीं रही। यह कभी सार्थक थी। आज से पांच-दस हजार साल पहले यह जरूर सार्थक थी। लेकिन अगर धनुष-बाण लेकर भगवान खड़े हो सकते हैं तो बंदूक लेकर क्यों नहीं? आखिर बंदूक आधुनिक ढंग का उपाय होगा। तो एटम बम लेकर क्यों नहीं खड़े हो सकते?
एक महापंडित थे--राहुल सांकृत्यायन। वे सिद्ध करने की कोशिश करते रहे जीवन भर--और हो सकता है उनकी बात सच हो--कि गणेश जी हाथ में जो लड्डू लिए हुए हैं वह लड्डू नहीं है, अंडा है। अब तो वे चल बसे, मगर वे जिंदगी भर इस चेष्टा में लगे रहे कि वह अंडा है, लड्डू नहीं है। अगर वे जिंदा होते तो मैं उनसे कहता कि अब छोड़ो अंडा भी, कहो कि एटम-बम है। जरा और आधुनिक करो बात को। क्या लड्डू क्या अंडा? ये कोई रखने की चीजें हैं? अब वक्त बदल गया। ये एटम-बम हाथ में लिए हुए हैं। यह कोई मोतीचूर का लड्डू नहीं है। यह सबको चकनाचूर कर दे, ऐसा एटम-बम है।
सदियां बदलती हैं, लोग बदलते हैं।
यहूदियों का जो परमात्मा है, तीन हजार साल पुराना बाइबिल में, उसका वर्णन ही पढ़ कर तुमको लगेगा कि इसको परमात्मा मानना कि नहीं मानना! क्योंकि यहूदियों का परमात्मा कहता है कि मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं। तुम बहुत चौंकोगे कि परमात्मा और कहे कि मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं, कि मैं बरदाश्त नहीं करता, कि जो मेरे विपरीत जाएगा उसको मैं नष्ट कर दूंगा, तहस-नहस कर दूंगा! यह भाषा दिव्य नहीं मालूम होती। मगर उस समय दिव्य रही होगी। जब रामचंद्र जी धनुषबाण लेकर... ये तो युद्ध के प्रतीक ही हैं।
और राम के भी पहले एक और बड़े राम हो गए--परशुराम। वे फरसा वाले राम कहलाते थे, इसलिए उसका नाम--परशुराम। वे तो फरसा लिए घूमते थे। वे समझो कि पहले सरदार थे दुनिया के--कृपाण लिए घूमते रहे। और घूमे ही नहीं सिर्फ कृपाण लिए, धुआंधार गले काटते रहे। कहते हैं उन्होंने अठारह बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। फिर क्षत्रिय आए कहां से? वह तो भला हो ऋषि-मुनियों का कि उन दिनों एक रिवाज था कि कोई भी स्त्री जाकर ऋषि- मुनियों से प्रार्थना करती और नियोग करवा लेती। तुम सोचते होओगे कि ऋषि- मुनि सब बाल-ब्रह्मचारी थे, तुम गलती में हो। ऋषि-मुनियों का काम अदभुत था। उस महत कार्य में एक कार्य यह भी था कि अगर कोई विधवा उनसे प्रार्थना करे तो उसको बच्चा देना, उसके साथ संभोग करना। उस संभोग की प्रक्रिया को नियोग कहते थे। योगी के द्वारा की जा रही है तो नियोग तो कहेंगे ही। वह तो भला हो इन ऋषि-मुनियों का, अगर ये सब बाल-ब्रह्मचारी होते तो आज दुनिया में क्षत्रिय एक होता ही नहीं। और परशुराम स्त्रियों को मार नहीं सकते थे। स्त्रियों को भी क्या मारना! यह उनकी इज्जत के खिलाफ था। इतने नीचे नहीं

उतर सकते थे। तो पुरुषों से तो खाली कर देते थे, मगर स्त्रियां बच जाती थीं। और स्त्रियां ऋषि-मुनियों से जाकर नियोग करवा लेती थीं, फिर उनके बच्चे पैदा हो जाते थे। तो फिर क्षत्रिय खड़े हो जाते थे। अठारह बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया--और परशुराम को भी ईश्वर का अवतार कहा गया है!
इतने बड़े विध्वंसक को ईश्वर का अवतार आज तुम कह सकोगे? तो फिर एडोल्फ हिटलर में क्या हर्जा है? तो फिर चंगीजखां की क्या बुराई है? तो फिर तैमूर लंगड़े में ऐसी क्या खराबी है? लंगड़ा ही था, और क्या था? लंगड़े ही होने की वजह से अवतार मानने से इनकार कर रहे हो! हत्याएं तो इन्होंने भी खूब कीं, जी खोल कर कीं। तो फिर ट्रूमैन ने अगर हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरवा कर लाखों लोगों को मिनटों के भीतर राख कर दिया, तो इनको भी अवतारी पुरुष मानना चाहिए। क्योंकि परशुराम को तो वर्षों लग जाते थे पृथ्वी को खाली करने में। और वे बेचारे एक कोने से खाली करके जब तक आते लौट कर, तब तक ऋषि-मुनि नियोग करके बच्चे पैदा कर देते। फिर काम शुरू हो जाता। वे खाली नहीं कर पाए।
मैं काशी में एक घर में मेहमान था। यूं बात चली। मैंने कहा कि काशी तीन चीजों के लिए प्रसिद्ध है--मैंने सुना है--भांड, रांड और सांड। जिनके घर ठहरा था वे थोड़े तो चौंके। काशी निवासी थे, मगर फिर भी उन्होंने कहा कि आप बात जो कह रहे हैं, यह है तो, इस तरह की बात कही तो जाती है। इस तरह की लोकोक्ति है। मगर यहां इतने संन्यासी भी हैं।
मैंने कहाः उनकी गिनती सांडों में कर लो। ऋषि-मुनि यह कार्य बहुत प्राचीनकाल से करते रहे हैं। आखिर सांड का काम क्या होता है? नियोग!
आज परशुराम को कोईईश्वरीय मानने को राजी अगर हो तो समझना वह समसामयिक नहीं है। मगर इसमें परशुराम का कोई कसूर नहीं है। उन दिनों की धारणा। उन दिनों की धारणा के अनुकूल थी बात। बुद्ध और महावीर ने सारा रंग बदल दिया, सार ढंग बदल दिया, सारी परिस्थिति बदल दी।
अब फिर एक घड़ी आ गईढाई हजार साल के बाद कि फिर हम रंग बदलें, फिर ढंग बदलें। आज मनुष्य ज्यादा प्रौढ़ है, इतना प्रौढ़ कभी भी नहीं था। आज मनुष्य और भी ज्यादा गहराई की बातें समझ सकता है, जो गहराई की बातें पहले कभी नहीं समझी जा सकती थीं। उन एक गहराई की बात को मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि परमात्मा अंधकार भी है, प्रकाश भी। समान अनुपात में है। सच तो यह है कि प्रकाश और अंधकार दो चीजें नहीं हैं। अंधकार का अर्थ है कम प्रकाश और प्रकाश का अर्थ है कम अंधकार। उनमें जो अंतर है, वह केवल मात्रा का है, गुण का नहीं है। जैसे सर्दी और गर्मी में जो अंतर होता है, वह केवल डिग्री का होता है, मात्रा का होता है, कोई गुण का नहीं होता। इसलिए एक ही थर्मामीटर से दोनों को नाप सकते हो।
और वही स्थिति जीवन और मृत्यु की है। और वही स्थिति जागरण और सुषुप्ति की है। और वही स्थिति आसक्ति और प्रेम की है। वही स्थिति क्रोध की और करुणा की है। और वही स्थिति कामवासना और ब्रह्मचर्य की है। जो तुम्हें विपरीत दिखाई पड़ते हैं, वे विपरीत दिखाई ही पड़ते हैं, लेकिन भीतर से जुड़े हैं। और जिस दिन तुम्हें यह जोड़ दिखाई पड़ जाएगा, उस दिन मैं जो तुम्हें समझा रहा हूं, वह समझ में आएगा, अन्यथा समझ में नहीं आ सकता।
मैं अतीत का पोषण करने को यहां नहीं हूं। अतीत तो जा चुका, मर चुका, समाप्त हो चुका। मैं तुम्हें भविष्य की दृष्टि दे रहा हूं। अतीत में सदा कहा गया हैः आसक्ति बुरी है। मैं तुमसे कहता हूंः नहीं, क्योंकि आसक्ति में ही प्रेम छिपा है। आसक्ति को शुद्ध करना है, त्याग नहीं देना है। और फिर प्रेम में प्रार्थना छिपी है, फिर प्रेम को और निखारना है, और शुद्ध करना है। और फिर प्रार्थना में ही परमात्मा छिपा है, फिर प्रार्थना को और निखारना है। निखारते चलना है। ऐसे धर्म एक जीवन की अदभुत कला हो जाती है, विकास का एक विज्ञान हो जाता है।
तू पूछती है योग विद्याः परंतु हमारा क्या होगा--हम जो कि आपकी देह से आसक्त हैं?

इसके पहले कि मैं देह छोडूं, तुम्हारी आसक्ति को प्रेम में बदल दूंगा। चिंता न करो। मेरी बिना मर्जी के मेरी देह कोई छुड़ा सकता नहीं। जब तक मुझे काम करना है, जो काम परमात्मा को मुझसे लेना है, वह काम पूरा होगा, तो ही देह छूटेगी। हां, यह हो सकता है कभी-कभी देह के छूटने से ही वह काम पूरा होता हो, तो भी देह छूटेगी।
जैसे बुद्ध के जीवन में हुआ। आनंद बयालीस वर्ष बुद्ध के साथ रहा, लेकिन ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। यही आसक्ति विद्या, जो तुझे मुझसे है, आनंद को बुद्ध से थी। बुद्ध की देह की आनंद ने बड़ी चिंता की, बड़ी फिक्र ली। कांटा न चुभ जाए, मच्छर न काट जाए। रात-रात भर बैठ कर पंखा झलता रहता। रात भर सोता नहीं, ताकि बुद्ध विश्राम कर सकें। कोई मच्छर उन्हें सताए न। दिन भर उनकी सेवा में रत रहता। न दिन देखता न रात देखता। बुद्ध ने उसे बहुत बार कहा कि आनंद, तू अपनी फिक्र कब लेगा? तू मेरी ही फिक्र में लगा हुआ है!
वह कहताः आपकी फिक्र ले ली तो अपनी फिक्र ले ली। अपनी फिक्र ले लूंगा, फिर कभी ले लूंगा, क्या जल्दी पड़ी है? फिर आप जैसा प्यारा व्यक्ति मिले न मिले।
जिस दिन बुद्ध ने कहा कि आज मैं देह छोड़ दूंगा... विद्या, तुम घबड़ाओ मत, मैं तुमसे कह दूंगा जिस दिन मुझे देह छोड़नी होगी, कि आज देह छोड़ दूंगा। तुमसे पूछ लूंगा कि बोलो किस ढंग से छोडूं। तुम्हीं निर्णय कर लेना इस ढंग से छोड़ो, तो उसी ढंग से छोड़ दूंगा। बुद्ध ने एक दिन सुबह कहा कि आज देह छोड़ दूंगा, काम पूरा हो गया मेरा। आनंद ने कहाः अभी कहां काम पूरा हो गया? अभी मैं बैठा हूं, मुझे ज्ञान उपलब्ध हुआ नहीं।
बुद्ध ने कहाः तुझे ज्ञान तभी उपलब्ध होगा जब मैं देह छोडूंगा। बयालीस साल हो गए, मैं कहता हूं तू सुनता नहीं। तू उलटे मुझे आज्ञाएं देता है कि इधर मत सोओ, इधर चींटियां हैं; इधर मत बैठो, इधर मच्छर हैं; ऐसा मत करो वैसा मत करो। तू मुझे बताता चलता है कि यह मत खाओ वह मत पीओ। इसमें कुछ नुकसान न हो जाए। यह फल कच्चा है, यह अभी मत खाओ, पेट में दर्द हो जाएगा। तू मेरी तो सुनता नहीं, उलटा मुझे सुनाता है। मेरी तू माने वह तो बात अलग, मैं तेरी मान कर चलता हूं, क्योंकि न मानूं तो तू झंझट खड़ी करता है। वह झंझट से बेहतर है मान ही लेना।
बुद्ध चुपचाप मान लेते थे कि ठीक भैया, तू कहता है कि यह फल कच्चा है, जाने दे। तू कहता है इस स्थान पर नहीं रुकना, नहीं रुकेंगे, आगे चल कर रुकेंगे, किसी और वृक्ष के नीचे बैठेंगे। तू कहता है, इस वृक्ष के नीचे चींटियों की संभावना है, किसी और वृक्ष के नीचे ठहरेंगे। जिंदा मैं था, तूने मेरी सुनी नहीं। अब तो मेरी मृत्यु ही तुझे सजग करे तो करे। और मुझे पक्का भरोसा है कि मेरी मौत तुझे हिला जाएगी, तेरी नींद टूट जाएगी।
आनंद तो रोने लगा, स्वभावतः। आनंद ही नहीं रोया, हजारों शिष्य इकट्ठे
हो गए थे, सारे रोने लगे। लेकिन बुद्ध की मृत्यु के चौबीस घंटे के भीतर आनंद ज्ञान को उपलब्ध हुआ। और जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो उसने झुक कर, जो देह अब विदा हो गई थी, जो देह अब थी नहीं, मिट्टी में मिल गई थी, जो व्यक्ति अब आकाश में तिरोहित हो गया था, जो अब कभी भी लौटने को नहीं था... इसलिए बुद्ध का एक नाम है सुगतः जो इतनी अच्छी भांति चला गया है कि अब कभी वापस नहीं आएगा। दूसरा नाम है तथागत--जो गया सो गया, अब लौटने को नहीं है। जो लीन हो गया है अस्तित्व में।... उसको झुक कर नमस्कार किया। आकाश की तरफ देख कर आनंद ने कहाः अनुगृहीत हूं! तुमने ठीक कहा था। तुम जीवित होते तो मैं तुम्हारी देह में आसक्त ही बना रहता। तुम अब नहीं हो तो अब आसक्त रहने को कुछ भी न रहा। तुम्हें देख लिया तो सब जगत देख लिया। तुम्हारे सौंदर्य को पी लिया तो सारा सौंदर्य चख लिया। अब सब फीका है। अब बाहर कुछ भी नहीं बचा, इसलिए आंख बंद करके अब अपने को देख सकता हूं। तुम थे तो आंख बंद करने का मन ही नहीं होता था। तुम पर ही आंख टिकाए रखने की आकांक्षा बनी रहती थी। तुम ठीक कहते थे। तुम क्या गए, मुझे जगा गए!
तो विद्या, या तो मेरे रहते-रहते तुम्हारी आसक्ति छुड़ा दूंगा। छुड़ा दूंगा से मेरा अर्थ समझ लेनाः उसे प्रेम में रूपांतरित कर दूंगा, प्रार्थना बना दूंगा। यह नहीं हुआ अगर, कुछ का शायद नहीं भी हो पाएगा, तो

शायद मेरा न होना उनकी आसक्ति को रूपांतरित करे। मगर रूपांतरण निश्चित है। जो मेरे पास टिके रहेंगे, उनका रूपांतरण निश्चित है। रूपांतरण से बचना असंभव है। जो खुले आकाश के नीचे जब वर्षा हो रही है, खड़ा होगा तो भीगेगा ही भीगेगा! जो मेरे पास रहेगा वह भीगेगा ही भीगेगा। कैसे बचोगे? कब तक छाता खोले रहोगे? तुम्हारे सब छाते तोड़ दिए जाएंगे। छाते अपने आप जीर्ण-शीर्ण हो जाएंगे। वर्षा पड़ती रहेगी, पड़ती रहेगी। वर्षा चट्टानें तोड़ देती तो छातों का क्या! और तुम्हारे छाते भी क्या हैं--हजार उनमें छेद हैं!
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ एक दिन सुबह-सुबह घूमने निकला था। वह हमेशा छाता अपने बगल में दबाए रखता है। दिन हो कि रात, सर्दी हो कि गर्मी, कोई मौसम हो, कोई ऋतु हो, बिना छाते के उसे नहीं पाओगे। अचानक, अकस्मात एक छोटी सी बदली, जिससे कोई आशा नहीं थी कि पानी बरसा देगी, एकदम बरस उठी। लेकिन नसरुद्दीन अपने छाते को दबाए ही चलता रहा। मैंने कहाः नसरुद्दीन, छाता क्यों नहीं खोलते? तुम भी बचो, मुझे भी बचाओ।
नसरुद्दीन ने कहाः छाता खोलना बेकार है। पहली तो बात, वह खुलता ही नहीं। और अगर किसी तरह खुल भी जाए तो भी बेकार है, क्योंकि उसमें इतने छेद हैं कि वैसे कम पानी बरसेगा, छाता रहा तो ज्यादा पानी बरसेगा।
तो मैंने कहा कि फिर महापुरुष, भलेमानस, इसको किसलिए ढोए फिरते हो? नसरुद्दीन ने कहा कि अरे, बस पुरानी आदत। और फिर यह सोच कर कि शायद कभी पानी गिरने लगे या कभी कुछ हो जाए, जरूरत पड़ जाए, इसलिए!
तुम्हारे छाते भी क्या हैंः या तो खुलेंगे नहीं, खुल भी गए तो उनमें छेद ही छेद हैं। तुम ज्यादा बचा न पाओगे अपने को। और मैं चोट पर चोट करता रहूंगा। मैं उन छातों को तोड़ ही दूंगा।
तुम्हारी धारणाएं क्या हैं--तुम्हारे छाते हैं! तुम्हारे सिद्धांत क्या हैं--तुम्हारे छाते हैं। तुम्हारे शास्त्र क्या हैं--तुम्हारे छाते हैं। छातों पर छाते तुमने लगा रखे हैं। लेकिन तुम अगर मेरे पास बैठे ही रहे, तो मैं छीनता जाऊंगा तुम्हारे छाते। आहिस्ता-आहिस्ता, एक-एक करके। तुम्हें राजी कर लूंगा।
जीवन में हो सका तो जीवन में, मृत्यु में हो सका तो मृत्यु में; मगर मेरे संन्यासी को मुक्त होना ही है। लेकिन मेरे संन्यासी की मुक्ति पुराने ढंग की मुक्ति से बहुत भिन्न है, बहुत अपूर्व है, अनूठी है, अद्वितीय है यह। पुराने ढंग की मुक्ति अधूरी थी, खंडित थी। उसमें चुनाव था। मैं तुम्हें जो मुक्ति देना चाहता हूं, अखंड है; उसमें चुनाव नहीं है, वह समग्र है। वह जीवन के सब रंगों से भरी है। उसमें सारे आयाम हैं। उसमें सारे स्वर हैं। वह पूरा इंद्रधनुष है।
इसलिए विद्या, चिंता न ले। तेरी देह में आसक्ति है, पाप मत समझ लेना, क्योंकि पाप है ही नहीं कुछ। पाप भी पुण्य का अशुद्ध रूप है। शुद्ध कर लेंगे। हीरे निकलते हैं खदान से तो पहले शुद्ध करने होते हैं, निखारना होता है उन्हें, उन पर चमक लानी होती है, उनके पहलू काटने होते हैं। छैनी- हथौड़ी लेकर जौहरी लग पड़ता है उन पर। बहुत कुछ तोड़ना पड़ता है, तब कहीं हीरे के भीतर की चमक प्रकट होती है।
तुम सब हीरे हो। प्रत्येक व्यक्ति हीरा है, लेकिन खदान से निकला है। सत्संग का अर्थ होता हैः किसी जौहरी के हाथ में पड़ जाना। चोटें भी पड़ेंगी। पड़ेंगी ही, क्योंकि बहुत कुछ काटना होगा, बहुत कुछ हटाना होगा। पीड़ा भी होगी। मगर धन्यभागी हैं वे जो किसी भी पीड़ा में भागेंगे नहीं।
और हर अवसर तुम्हारे लिए उपयोगी है। हर अवसर! यह जो आदमी छुरा फेंक गया, यह भी तुम्हारे लिए एक बड़ा अवसर दे गया है। यह तुमसे कह गया है कि जल्दी करो--अपनी आसक्ति को प्रेम बनाओ, ताकि अगर मेरी देह छूट भी जाए तो भी तुमसे मेरा नाता न टूटे। तो तुमसे मेरा आत्मिक नाता बना रहे। यह आदमी यह कह गया तुमसे कि जल्दी करो। यह एक संदेश दे गया है तुम्हें कि जरा जल्दी करो, यूं धीरे-धीरे न चलो। थोड़ी त्वरा लाओ, थोड़ी तीव्रता लाओ, थोड़ी सघनता लाओ प्रयास में। थोड़ा और संकल्प, थोड़ा और समर्पण। थोड़ी और गहन साधना, ताकि

तुम मेरे शब्द ही न समझो; तुम मेरा मौन भी समझ पाओ। तुम मेरी देह ही न देखो; मेरे भीतर जो निराकार है, उसे भी देख पाओ।
इस आदमी को भी धन्यवाद ही देना। इसे ही मैं परम स्वीकार कहता हूं और इसे ही मैं परम श्रद्धा कहता हूं और इसे ही परम आस्तिकता।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं अनुभव करता हूं कि मेरा जीवन बस एक दुर्घटना है। आप क्या कहते हैं?

सुभाष! जागे नहीं हो जब तक, तब तक जीवन दुर्घटना होगा ही। तुम्हारा ही नहीं, सभी का जीवन दुर्घटना मात्र है। क्योंकि तुम जीते कैसे हो? तुम्हें दिशा का बोध नहीं है। दिशा को जाने दो, तुम्हें यह भी बोध नहीं कि तुम कौन हो? यह भी पता नहीं कहां से आते हो, क्या कर रहे हो, क्यों कर रहे हो, कुछ भी पता नहीं। चलते जाते हो भीड़ के धक्कों में। जहां सारी भीड़ जा रही है, तुम भी जा रहे हो। जैसे पानी के प्रवाह में कोई लक्कड़ बहा जाए, बस वैसा तुम्हारा जीवन है। यह दुर्घटना ही है।
अभी तुमने जो भी किया है अपने जीवन में, उस पर पुनर्विचार करो। तुम चकित होओगे। तुम सब बस यूं ही करते रहे, जैसे हवा के झोंके में पत्ते उड़ते रहते। किसी ने कुछ कह दिया, वह कर लिया। फिर किसी ने कुछ और कह दिया, वह कर लिया। अखबार में कोई विज्ञापन देख लिया, वही कर लिया। चार लोग कुछ गपशप करते थे, उनकी बात सुन ली, वही करने में लग गए। तुम्हें खुद तो पता नहीं कि तुम कौन हो, क्या करना चाहते हो, क्या करने योग्य है। तो तुम जी कैसे रहे हो? बस ऐसे ही जी रहे हो--भीड़ के धक्के खाते हुए। फिर जिस भीड़ में पड़ गए... यह संयोगवशात है... कोई हिंदू की भीड़ में पड़ गया तो वह मंदिर चला जा रहा है। वह सोचता हो कि मैं मंदिर जा रहा हूं तो गलती में है। इसी बच्चे को अगर मुसलमान के घर में पाला गया होता, इसे कभी भी भूल कर मंदिर जाने का सवाल उठता नहीं। यह मस्जिद जाता। यह मंदिर को जलाता। अगर कभी जाता भी मंदिर की तरफ तो जलाने को जाता। इसी बच्चे को अगर ईसाई के घर में पाला होता तो यह मस्जिद का नाम न लेता, यह गिरजा जाता। रविवार इसका पवित्र दिन होता। यह बाइबिल पढ़ता। यह घर में बाइबिल को रखता, उस पर फूल चढ़ाता। पढ़ता या नहीं पढ़ता, कम से कम घर में बाइबिल रखता जरूर।
एक छोटे से बच्चे से चर्च में पादरी पूछ रहा थाः बेटा, तुम्हारे घर में बाइबिल है?
उसने कहाः है।
पढ़ते हो?
उसने कहाः पढ़ता तो नहीं, कभी-कभी उलटता हूं।
कह सकते हो क्या लिखा है तुम्हारी बाइबिल में? क्या-क्या है तुम्हारी बाइबिल में?
उसने कहाः क्या लिखा, यह तो नहीं कह सकता; लेकिन क्या-क्या है, यह मैं
कह सकता हूं।
पादरी ने कहाः यह तुम चमत्कार की बात कर रहे हो! क्या-क्या है?
तो उसने कहा कि मेरे डैडी के बाल।
पादरी ने कहाः लेकिन तुम्हारे डैडी तो जिंदा हैं, उनके बाल किसलिए रखे हैं?
उसने कहाः डैडी तो जिंदा है, मगर उनके बाल नदारद हो गए हैं। तो मम्मी
ने उनके दो बाल बचा कर बाइबिल में रख लिए। एक बाबा का दिया हुआ ताबीज, वह बाइबिल में है। डैडी ने जो पहला फूल प्रेम के समय मां को भेंट किया था, वह बाइबिल में है। सूख गया है, मगर अभी भी है। ऐसी कई चीजें बाइबिल में हैं। घर में तुम्हारे कोई और बाइबिल पढ़ता है? उस पादरी ने पूछा। उसने कहाः कोई बाइबिल नहीं पढ़ता। लेकिन बाइबिल पूजते सभी हैं।
बाइबिल पढ़ने की चीज नहीं है, पूजने की चीज है!
कोई हिंदू वेद पढ़ता है? कि कोई बौद्ध धम्मपद पढ़ता है? किसको पड़ी है?
रख लेते हैं, पूजा कर लेते हैं। और पूजा भी कैसी-कैसी, एक से एक मजेदार पूजा करने वाले लोग हैं!

मैं एक घर में ठहरा था। सुबह-सुबह उठ कर जा रहा था मैं स्नान करने, उनके बीच के कमरे से गुजरा जहां उन्होंने गुरुग्रंथ साहब रख छोड़ा था। सामने एक चांदी के लोटे में पानी भरा रखा है और दतौन रखी है। मैंने पूछाः यह मामला क्या है?
उन्होंने कहा कि गुरुग्रंथ साहब के लिए दतौन। आदतें नहीं जातीं। अब मूर्ति के सामने कोई दतौन करने भी रखवा दे तो भी थोड़ा सा अर्थ समझ में आता है। ऐसे तो वह भी व्यर्थ है, क्योंकि मूर्ति भी दतौन करेगी नहीं। लेकिन मूर्ति को कम से कम भोजन कराते हैं, भोग लगाते हैं, तो दतौन भी करवा देनी चाहिए। मगर बेचारे गुरुग्रंथ साहब! मगर वह "साहब" शब्द दिक्कत दे रहा है। वह "साहब" शब्द की वजह से व्यक्तित्व पैदा हो रहा है। व्यक्तित्व की धारणा आ गई, तो दतौन करवानी पड़ेगी। और फिर अब दतौन ही करवानी तो चांदी के लोटे में करवा दो। काई साधारण दतौन थोड़े ही कर रहे हैं!
मैंने कहाः तुम भी पागल हो! अब यह कोई जमाना दतौन का है? अरे बिनाका टुथपेस्ट रखो!
उन्होंने कहाः बात तो आप पते की कहते हैं!
मैंने कहाः तुम जरा सोचो भी कि कैसे अपमान कर रहे हो! तुम सब बिनाका टुथपेस्ट और गुरुग्रंथ साहब को दतौन करवा रहे हो नीम की! अरे शर्म से मर जाओ, चुल्लू भर पानी में डूब मरो!
बड़े चिंतित हो गए बेचारे। रात जब मैं सोने जा रहा था, फिर मुझसे पूछने लगे कि आप मजाक तो नहीं कर रहे, सच कह रहे हैं?
मजाक मैं क्यों करूंगा? मजाक मैंने जिंदगी में कभी की ही नहीं। मैं गंभीर आदमी हूं। शर्म नहीं आती तुम्हें? दूसरे दिन सुबह देखा तो रखा है बिनाका टुथपेस्ट। मैंने कहाः अब जरा कुछ बात जंचती है! अब कर ही रहे हो तो कुछ आधुनिक करो। गुरुग्रंथ साहब के दांत बिल्कुल खराब करवाने हैं? और मुंह कड़वा हो जाए सुबह ही सुबह, नीम की दतौन करवा रहे हो। जमाने गए नीम की दतौन करने के।
एक भीड़ में तुम पैदा हो जाते हो, वह भीड़ जो करती है, वह तुम करते चले जाते हो।
मैं जैन घर में पैदा हुआ तो बचपन से हवा में यह बात थी, घर की हवा में, जिनके बीच में उठता-बैठता, मंदिर जाता, जिस समाज के बीच मेरे सारे संबंध थे, यह बात थी हवा में कि ये कृष्ण हैं, राम हैं! यह कोई... इनकी कोई गिनती? पूछता कि क्यों? तो पहली तो बात यह कि ये सीता मैया खड़ी हैं पास में। ये सीता मैया सब गड़बड़ कर रही हैं। महावीर स्वामी को देखो, अकेले खड़े हैं! आसक्ति से मुक्त! बंधन के अतीत! यह क्या स्त्री-पुरुष का संबंध? और ये कृष्ण कन्हैया देखो, कैसे सजे-बजे खड़े हैं! क्या छैल-छबीले बने हैं! यह कोई भगवान होने का ढंग है? महावीर स्वामी को देखो, नग्न खड़े हैं। बाहुबली की प्रतिमा देखो, ऐसे नग्न खड़े हैं, इसे तपश्चर्या में लीन कि पता ही नहीं चलता! बेलाएं चढ़ गई हैं पैरों पर, कान में पक्षियों ने घोंसले बना लिए हैं! जैन तीर्थंकरों के कान बड़े होते हैं, यह खयाल रखना। पक्षी घोंसले बना सकते हैं, और किसी के कान में तो बना भी नहीं सकते। शायद इसीलिए उनके कान इतने बड़े रखते हैं कि मौका-बेमौका पक्षियों को जरूरत पड़ जाए, घोंसला बना लें। अरे किसी काम तो आ जाएं! मगर उनको पता ही नहीं है। यह भगवान का, भगवत्ता का ठीक-ठीक रूप है। यह क्या मोरमुकुट बांधे हुए हैं! कोई नाटक कर रहे हैं? नौटंकी हो रही है?
तो बचपन से ही जब यह बात सुनने को मिले तो कृष्ण के मंदिर के सामने हाथ कैसे जुड़ें? जुड़ने का सवाल ही नहीं उठता, प्रश्न ही नहीं उठता। बचपन से ही यह सुना कि कृष्ण तो नरक गए हैं। जाएंगे ही नरक! इनके कृत्य तो देखो! स्त्रियां नहा रही हैं, ये उनके कपड़े चुरा कर झाड़ पर चढ़ गए। ये कोईढंग हैं? ये सज्जन के भी ढंग नहीं हैं, संत की तो बात छोड़ो। और भगवान की! अगर भगवान भी ऐसे काम करने लगें तो फिर गुंडों को करने के लिए कुछ भी न बचा। यह तो बात ही बेहूदी है। और इतना ही नहीं, फिर उन स्त्रियों को ललचाते हैं। कपड़ा उनको ऐसा जैसे छोटे-छोटे बच्चों को तुम कहते हो न कि यह ले, तो बच्चा एक कदम आगे बढ़ा तो हाथ पीछे हटा लिया। तो वे स्त्रियां बेचारी किसी तरह अपनी

इज्जत-आबरू पानी में छिपाए बैठी हैं... हालांकि पानी में कोई ज्यादा इज्जत आबरू छिपती नहीं; छिपी हो तो और प्रकट होती है... तो उनकी इज्जत-आबरू और खोलने को उतारू हैं! तो ऐसा लटका-लटका कर कपड़े उनको बता रहे हैं। तो वे बेचारी अपने कपड़े लेने का ऊपर उठती हैं तो वे अपना हाथ ऊपर खींच लेते हैं। जब तक वे खड़ी नहीं हो जातीं... ! अब यह स्त्रियों को नंग-धड़ंग खड़ा करना नदी- तट पर और भारतीय नदी-तट... सारा गांव वहां इकट्ठा रहता है। यह कोई बात है? और फिर अर्जुन बेचारा संन्यासी होना चाहता था, उसको इसी आदमी ने भड़काया, भरमाया। वह तो बहुत बचने की कोशिश की उसने, मगर उसका सिर खा गए। उससे तो ही गीता पैदा हुई उसके सिर खाने से। पचाया उसके सिर को, इतना पचाया कि उसने कहाः अच्छा भैया, हमारे सब भ्रम नष्ट हो गए, अब हम लड़ने को राजी हैं! तुमसे उपद्रव करने से बेहतर है जूझ ही जाएं, जो होगा देखा जाएगा।
तो जो लाखों लोग मरे... लाखों नहीं, महाभारत के हिसाब के एक अरब से ऊपर लोग मरे... उस सबका पाप किस पर लगेगा? ये नरक गए। सातवें नरक में पड़े हैं। और जल्दी छूटने वाले नहीं हैं। यह पूरा कल्प बीत जाएगा, यह सृष्टि नष्ट होगी, प्रलय होगा, फिर दूसरी सृष्टि बनेगी, तब वे छूटेंगे।
जब यह बात बचपन से सुनी हो तो स्वभावतः कृष्ण के प्रति कैसे सम्मान उठे? और मैं हिंदुओं को देखता था, हिंदू बच्चे, वे महावीर की प्रतिमा देख कर हंसते थे, कि ये नंग-धड़ंग खड़े हैं भैया! इन्हें शर्म भी नहीं आती! अरे लोकलाज करो कुछ! यह कोई तौर-तरीका है? कम से कम लंगोटी तो लगा लो! लंगोटी लगाने में क्या बिगड़ जाएगा तुम्हारा? मगर नहीं, नंगे खड़े हैं। यह कैसे भगवान?
सबकी अपनी धारणाएं हैं--मगर भीड़ की धारणाएं। जिस भीड़ में तुम पैदा हो गए, उस भीड़ की धारणाएं तुम्हें मिल गईं। वह एक दुर्घटना है। फिर तुम्हारे मां-बाप तुम्हें जो बनाना चाहते हैं--कोई को डाक्टर बनाना है, किसी को इंजीनियर बनाना है--वे तुम्हें इंजीनियर बना देते हैं, डाक्टर बना देते हैं। कोई पूछता ही नहीं कि तुम, तुम्हारी क्षमता क्या है? जो आदमी संगीतज्ञ हो सकता था, वह बेचारा डाक्टर होकर बैठा है। रो रहा है। उसकी जिंदगी में कोई रस नहीं है। उसको रस आए कैसे? वह कोई मरीजों की नब्ज पकड़ने को बना नहीं था। उसने तो तार छेड़े होते वीणा के, तो उसके जीवन में रसधार बहती। मगर वीणा बजाने से रोटी-रोजी नहीं मिलती, भूखा मरना पड़ता है। कौन बाप चाहता है किसी का बेटा भूखा मरे! कौन झंझट में डाले अपने बेटे को!-- ड़ाक्टर बनो। तो उसको डाक्टर बना दिया है। वह जिंदगी भर उदास रहेगा, परेशान रहेगा।
इसलिए तुम्हें चारों तरह परेशान लोग दिखाई पड़ते हैं। ये दुर्घटनाएं हैं। जिसको जो होना था वही नहीं है। और जो जहां है वहीं नहीं होना चाहिए था उसको, कहीं और होना चाहिए था। मगर किसी व्यक्ति को स्वयं होने का अवसर नहीं है।
एक सम्यक मनुष्यता तब पैदा होगी जब हम प्रत्येक बच्चे को मौका देंगे स्वयं होने का, फिर चाहे वह कुछ भी होना चाहे। हम सहयोग देंगे, वह जो भी होना चाहे उसमें। अगर वह चित्रकार होना चाहता है तो चित्रकार होने में सहयोग देंगे। और यह तुम खयाल रखना, अगर उसका निजी व्यक्तित्व चित्रकार बनने से खिलता है, फूलता है, तो वह भूखा मर कर भी प्रसन्न रहेगा, फटे कपड़े पहन कर भी आनंदित रहेगा। और तुम जबरदस्ती उसे सम्राट भी बना दोगे और अगर उसके व्यक्तित्व का उससे तालमेल नहीं बैठता तो वह सिंहासन पर भी रोएगा, परेशान होगा, दुखी होगा। उसे सिंहासन सुख नहीं दे सकता।
इस दुनिया में इतना दुख इसीलिए है। मगर तुम्हारे महात्मागण इस दुख का फायदा उठाते हैं। वे कहते हैंः हम पहले से ही कह रहे हैं कि जीवन में दुख है। यह देख लो।
इतना दुख नहीं है जीवन में, जितना है। इसमें से निन्यानबे प्रतिशत पैदा किया हुआ है। वह हमारा कृत्य है। क्योंकि हम किसी व्यक्ति को वही नहीं होना देना चाहते, जो वह है। गुलाब से कह रहे हैं चंपा हो जाए, चंपा से कह रहे हैं चमेली हो जाए, चमेली से कह रहे हैं कि तू कुछ और हो जा। तो चंपा

चमेली होने में लगी है; चमेली तो हो नहीं सकती चंपा और चमेली होने की कोशिश में चंपा भी नहीं हो पाएगी। उसका जीवन अधूरा रह जाएगा, अपंग रह जाएगा। ठीक पूछते हो सुभाष। तुम कहते होः "मैं अनुभव करता हूं कि मेरा जीवन
बस एक दुर्घटना है। आप क्या कहते हैं?"
तुम ठीक अनुभव कर रहे हो। यह शुरुआत है। अच्छी शुरुआत है। शुभ लक्षण है। इस अनुभव के बाद तुम्हारे जीवन से दुर्घटनाएं मिट सकती हैं, तुम्हारे जीवन में एक दिशा-बोध आ सकता है। तुम्हारे जीवन में एक गति आ सकती है। तुम्हारे जीवन में एक सम्यक संतुलन आ सकता है। लेकिन दांव पर लगाना होगा। बहुत सी बातें दांव पर लगानी होंगी।
अस्पताल के प्रसव-वार्ड में अट्ठाइस स्त्रियां भरती थीं--सब एक ही मोहल्ले की। घटना पूना की ही है और सब महिलाएं महिलाओं के लायंस-क्लब की सदस्याएं थीं। लेडी डाक्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ यह जान कर कि उन सबने एक ही दिन बच्चों को जन्म दिया। केवल एक स्त्री ने एक दिन बाद बच्चे को जन्म दिया। उस स्त्री से अचरज भरे स्वर में जब डाक्टर ने पूछा क्या बात है कि आपके मोहल्ले की सत्ताईस महिलाओं ने एक ही दिन बच्चे पैदा किए, किंतु आपको बच्चा एक दिन बाद हुआ! तो उस महिला ने जवाब दियाः ये सारी सहेलियां पिछले साल गरमी में महाबलेश्वर गई थीं एक साथ पिकनिक मनाने, किंतु बीमार हो जाने के कारण मैं एक दिन बाद पहुंच पाई थी।
बस यूं ही चल रही है जिंदगी। यहां बच्चे दुर्घटनाएं हैं। यहां विवाह दुर्घटनाएं हैं। यहां मेल-जोल, जीवन भर के संबंध दुर्घटनाएं हैं। और इस सबके आधार पर तुम सोचते हो आनंद फलित हो जाए, कैसे फलित हो? और तुम सोचते हो जीवन में अर्थवत्ता आ जाए, कैसे यह संभव हो? तुम असंभव की आकांक्षा कर रहे हो। यह नहीं हो सकता।
तुम्हें जीवन को थोड़ी सजगता देनी होगी। तुम्हें जीवन में थोड़ा सा ध्यान का स्वर जोड़ना होगा। तुम्हें थोड़ा बोध पैदा करना होगा। एक-एक कदम होशपूर्वक रखना जरूरी है। तो धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन में एक स्पष्टता आ जाएगी, एक सूझ-बूझ आ जाएगी। तब तुम चलोगे अपनी अंतःप्रेरणा से। तब बाहर की चीजें तुम्हें प्रभावित नहीं करेंगी। तब तुम भीतर से जीना शुरू करोगे। तब बाहर की हवाओं के ऊपर तुम निर्भर नहीं रह जाओगे। तब तुम्हारी अंतःस्फूर्ति ही तुम्हारे जीवन की नियंता और निर्णायक होगी। और वैसा निर्णय परम आनंद से भर देता है।
सुभाष, अभी भी देर नहीं हो गई है, क्योंकि कभी भी देर नहीं हो गई है। जब जागे तब सबेरा। सुबह का भटका सांझ को भी घर आ जाए तो भटका नहीं कहलाता। अच्छा है कि तुम्हें अब स्मरण आना शुरू हुआ कि सारा जीवन एक दुर्घटना मालूम होता है। बस यहीं से तुम्हारे जीवन में क्रांति हो सकती है। इस बात को यूं ही मत छोड़ देना इस सूत्र को उठा लो अब और अब सोच-समझ कर चलना शुरू करो। अब विचारपूर्वक कदम उठाना शुरू करो। अब विवेकपूर्वक, देख कर, जो भी करना चाहो उसे इस ढंग से करो जैसे सारा जीवन तुम्हारा उस पर निर्भर है, क्योंकि जीवन छोटी-छोटी चीजों से मिल कर बना है। जीवन में कोईबड़ी-बड़ी चीजें नहीं होतीं, बहुत छोटी-छोटी चीजों से जीवन निर्मित होता है। जो होशियार है, बुद्धिमान है, वह उन सारी चीजों को यूं जमा लेता है कि उसके जीवन में एक सौंदर्य आ जाता है।
पिकासो से एक अमरीकी धनपति महिला ने अपना चित्र बनवाया। उसने एक लाख रुपये मांगे। उस धनपति महिला ने कहाः कोई फिक्र न करो, एक लाख कोई बड़ी बात नहीं। मैं सवा लाख दूंगी, मगर चित्र सुंदर बनाना चाहिए।
पिकासो ने कहाः अगर सुंदर की शर्त हो तो फिर दाम अभी तय मत करो। फिर जब चित्र बन जाए, तभी दाम तय होंगे।
महिला के पास अपार धन-राशि थी। उसने कहाः कितने मांगेगा? लाख मांगता है, सवा लाख, दो लाख मांगेगा, और क्या करेगा? जब चित्र बन कर तैयार हुआ, छह महीने लगा दिए पिकासो ने, वह महिला लेने आई। पिकासो ने दस लाख रुपये मांगे। वह महिला भी चौंकी; यद्यपि बहुत धनी थी, मगर इस एक छोटे से कैनवास के लिए, जिसमें रुपये दो रुपये के रंग लगे होंगे, रुपये दो रुपये का कैनवास

समझ लो, रुपये दो रुपये की फ्रेम समझ लो, इस आदमी की थोड़ी मेहनत गिन लो, दस-पच्चीस रुपये का हिसाब है। दस लाख रुपये!
उसने कहाः तुम कहते क्या हो, दस लाख रुपये! इस छोटे से कैनवास के टुकड़े
के और थोड़े से रंगों के!
पिकासो ने कहा, ठहरो। अपने सहयोगी को कहा कि तुम जाओ, एक कैनवास का टुकड़ा ले आओ, फ्रेम ले आओ, रंग ले आओ। वह सहयोगी रंग ले आया, कैनवास का टुकड़ा ले आया, फ्रेम ले आया। उस महिला को दे दिया और कहा कि यह लो, अब जितना तुम्हें देना हो, दे दो। उस महिला ने कहाः इसका मैं क्या करूंगी? तो पिकासो ने कहाः दाम हम न तो रंग के मांग रहे थे और न फ्रेम के मांग रहे थे और न कैनवास के टुकड़े के मांग रहे थे। रंग मांग रहे थे पिकासो के जमाने की कला के, कि रंग कैसे जमाए गए। वह सिर्फ मैं ही जमा सकता हूं। वह कोई दूसरा आदमी जमा दे तो मैं दस लाख रुपये दूंगा, जिस ढंग से मैंने जमाए हैं।
उस बात से महिला को तत्क्षण समझ में आ गया कि प्रश्न इसका नहीं है कि रंग का कितना मूल्य है। सवाल रंग की जमावट का है।
एक बहुत बड़ी कंपनी में अचानक कंप्यूटर से चलने वाला कारखाना बंद हो गया। एक दिन में लाखों की हानि होने लगी। बहुत खोज-बीन की गई, कुछ पता न चले। विशेषज्ञ आ सकता था दूर अमरीका से। कंपनी थी जापान में। विशेषज्ञ को खबर की गई। उसने अंधाधुंध पैसे मांगे, मगर कोई और उपाय न था। लाखों की रोज हानि हो रही थी। फैक्टरी चलनी ही चाहिए। पूरी फैक्टरी आटोमेटिक थी, आदमियों पर कुछ निर्भर न था। वह आदमी आया। वह अंदर गया। उसने अपने बक्से में से एक छोटी सी हथौड़ी निकाली और एक जगह जरा सी खटाक से चोट की, हथौड़ी वापस रख ली, कारखाना चल पड़ा। और उसने जो मांग की थी--हजारों डालर की! धनपति, जिसका कारखाना था, खड़ा देख रहा था। उसने कहाः तुम्हें शर्म नहीं आती, हजारों डालर मांगते हो जरा सी हथौड़ी के चोट करने का!
उसने कहाः यह सवाल हथौड़ी की चोट करने का नहीं है। सवाल यह है--कहां चोट करना? वह मेरे अलावा इस दुनिया में दूसरा आदमी नहीं जानता। दाम उसके मांगे जा रहे हैं।
जीवन तो सभी को मिला है, लेकिन कहां चोट करना कि जीवन चल पड़े? रंग तो सभी को मिले हुए हैं, कैनवास भी सभी को मिला हुआ है, लेकिन कोई पिकासो, कोई वानगॉग रंगों को उभार पाता है, रंगों को जीवन दे पाता है। नहीं तो हम यूं ही जी लेते हैंः कैनवास ढोते रहते हैं, फ्रेम गले में लटकी रहती है, रंग लटके रहते हैं डब्बों में और हम जिंदगी जी लेते हैं। और फिर अगर जिंदगी यूं ही खतम हो जाती है, टांय-टांय फिस, तो कुछ आश्चर्य नहीं--न कोई अर्थ, न कोई गरिमा, न कोई महिमा, न कोई आनंद का अनुभव, न कोई समाधि की प्रतीति, न कोई परमात्मा का साक्षात्कार। अर्थ ही न बना पाए, संगीत ही न जमा पाए, गीत ही न जुड़ा, कड़ियां ही न बैठीं, साज ही न बैठा, संगीत तो उठता कैसे?
सुभाष, अब तुम यहां आ गए हो तो जीवन की कला सीखो। मैं तो धर्म को जीवन
की कला ही कहता हूं। अब तक सदियों से धर्म को जीवन का त्याग कहा गया है और मैं इस बात को स्पष्ट कर दूं कि मैं उस बात से राजी नहीं हूं। धर्म जीवन की कला है। यह जीवन की वीणा से संगीत उठाने का विज्ञान है। यह जीवन को रंग देने का उपाय है। यह जीवन में छिपे हुए राजों को खोलने की कुंजी है। लेकिन यह तभी संभव है, जब तुम ज्यादा अपनी प्रतिभा को निखारो। लोग मूढ़तापूर्वक जी रहे हैं। और लोग ऐसे अंधे हैं कि अपनी मूढ़ता की रक्षा भी करते हैं। तलवारें निकल आती हैं, अगर उनकी मूढ़ता पर हमला करो। अगर उनकी मूढ़ता पर हमला करो तो वे कहते हैंः हमारी भावना को ठेस पहुंच गई। मूढ़ता उनकी भावना है। व्यर्थता उनका जीवन है। सड़ रहे हैं। कहीं कोई आनंद का कभी अनुभव नहीं किया है। कभी कोई रस चखा नहीं, अमृत की एक बूंद भी जबान पर पड़ी नहीं। लेकिन अगर उनकी धारणाओं पर चोट करो--हमारी भावनाओं पर चोट पहुंच गई! लड़ने-मरने को तैयार हैं। मरने-मारने को तैयार हैं। जीने में उनका रस नहीं है। जीने में उनके कुछ है ही नहीं। जीने में रस हो भी क्या?
अब तुम यहां आ गए हो, तो जीवन की कला सीखो। जीवन की कला का पहला सूत्र हैः ध्यान। क्योंकि ध्यान तुम्हारी प्रतिभा को निखार देगा। ध्यान तुम्हारी प्रतिभा की तलवार पर धार रखेगाः ध्यान तुम्हें बुद्धिमान

बनाएगा। और साधारणतः जिसको तुम धर्म कहते हो, वह तुम्हें बुद्धू बनाता है, बुद्धिमान नहीं। क्योंकि तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती विश्वास आरोपित कर दिए जाते हैं--यह मानो, वह मानो। जानने की तो बात ही मत करना, बस मानो! जानने की बात की कि तुम नास्तिक हो! मानो, चुपचाप मानो! प्रश्न उठाना मत। जिज्ञासा करना मत। खोज-बीन का सवाल नहीं है। खोज-बीन पहले ही कर चुके बापदादे। वे तुम्हारे लिए निपटारा कर गए हैं। वे सदा के लिए सत्य खोज के रख गए हैं। तुम्हारा काम इतना ही है कि जुगाली करते रहो। वही चबाए-चबाए को चबाते रहो। न उसमें कुछ बचा है अब, सब रस कभी का सूख चुका है। कूड़ा-कर्कट है। मगर उसको चबाते रहो। सूखी घास है। उसमें से कुछ मिलेगा नहीं। लेकिन प्राचीन है। सड़ा-गला है, लेकिन बड़ा प्राचीन है। बस प्राचीन का मजा लो। मुर्दों में जीओ। मुर्दे न हो जाओगे तो और क्या होगा?
मैं धर्म को जीवन का त्याग नहीं कहता--जीवन की कला कहता हूं। जीवन से भागना नहीं, जीवन में डूबना है। ऐसे डूबना है, ऐसी गहरी डुबकी मारनी है कि जीवन के सारे राज तुम्हारे सामने खुल जाएं। जीवन को प्रेम करो। आह्लादित होओ कि परमात्मा ने तुम्हें जीवन का एक अपूर्व अवसर दिया है।
मैं उनको नास्तिक कहता हूं जो जीवन को छोड़ कर भाग जाते हैं, क्योंकि इसका अर्थ क्या हुआ? परमात्मा ने तो भेंट दी जीवन की और तुम जीवन छोड़ कर भाग गए। यह परमात्मा का अपमान है। अब तक तथाकथित संन्यासियों ने परमात्मा का अपमान किया है। मैं तुम्हें परमात्मा का सम्मान सिखाता हूं।
लेकिन ध्यान से शुरुआत करो और प्रेम पर पूर्णता। ध्यान तुम्हारी प्रतिभा को चमकाएगा और प्रेम तुम्हारे हृदय में रस भर देगा। बस ये दो चीजें पूरी हो जाएं तो दो पंख मिल गए तुम्हें, फिर तुम आकाश में उड़ सकते हो। अनंत आकाश तुम्हारा है!

तीसरा प्रश्नः ओशो! आपकी स्मृति क्यों इतनी चमत्कारिक है? सुबह नाश्ते में क्या लिया, यह भी मैं दोपहर के आते-आते भूल जाता हूं। क्या अच्छी स्मृति का गुर बताने की कृपा करेंगे?

सहजानंद! मैं तुम्हें बता सकता हूं कि उन्नीस सौ चौहत्तर में, बारह फरवरी को सुबह नाश्ते में मैंने क्या लिया या उन्नीस सौ सतहत्तर में सुबह के भोजन में क्या लिया या उन्नीस सौ अठहत्तर में पंद्रह मार्च को सांझ के भोजन में क्या लिया। और उसका कारण यह नहीं है कि मेरी स्मृति अच्छी है। उसका कुल कारण इतना है कि नाश्ता मैं रोज वही लेता हूं और भोजन भी रोज वही करता हूं, उसमें भेद ही नहीं करता। तुम कोई भी तारीख की पूछ लो, मैं जवाब दे सकता हूं। उसमें भूल-चूक का उपाय ही नहीं है। कुछ चमत्कार की बात नहीं है। अब अगर एक ही नाश्ता कोई आदमी ले रहा हो रोज बरसों से, भूलना भी चाहे तो कैसे भूले, तुम बताओ। चमत्कार याद रखने में नहीं होगा, चमत्कार भूलने में हो जाए। भूल सकते ही नहीं।
खाना भी वही लेता हूं--रोज नियमित। सुबह भी वही, शाम भी वही। उतने ही
कप चाय पीता हूं रोज। तारीख कोई हो, दिन कोई हो, साल कोई हो। स्वस्थ होऊं कि बीमार, कोई फर्क नहीं करता। हर हालत में सब वैसा ही चलने देता हूं जैसा चलता है। इसमें कुछ स्मृति की खूबी नहीं है।
दूसरी बात, जो भी मैं तुमसे कहता हूं, वह मेरा अनुभव है, स्मृति नहीं है। इसलिए उसमें भी भूल-चूक का कोई कारण नहीं है। तुम मुझे आधी रात उठा कर भी पूछ लोगे तो भी यही कहूंगा, क्योंकि मेरा अनुभव है। हां, अगर तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है तो गड़बड़ खड़ी हो जाती है। स्मृति पर निर्भर रहने का मतलब यह होता है कि तुम दूसरों के अनुभव पर निर्भर रह रहे हो। गीता में क्या लिखा है, अगर यह तुम्हें याद रखना है तो स्मृति चाहिए। कुरान में क्या लिखा है, अगर यह तुम्हें याद रखना है तो स्मृति चाहिए। मैं गीता- कुरान की फिक्र ही नहीं करता। और कभी अगर गीता-कुरान का उल्लेख भी करता हूं तो भी इसकी फिक्र नहीं करता कि लिखा भी है उनमें ऐसा कि नहीं लिखा है। मैं नागपुर में था और मैंने एक बुद्ध के जीवन की एक कहानी कही, कि बुद्ध एक रास्ते से गुजर रहे हैं। वह उनके बुद्धत्व की उपलब्धि के पहले की

घटना है। वह अपने एक शिष्य से बात कर रहे हैं। एक मक्खी उनके मुंह पर आकर बैठ गई। बात जारी रखी उन्होंने और जैसा कि आमतौर से हम करते हैं, मक्खी को यंत्रवत हाथ से उड़ा दिया। फिर ठिठक कर खड़े हो गए, तत्क्षण याद आया कि मक्खी को होशपूर्वक नहीं उड़ाया। और वही उनकी साधना थी। वही साधना में वे लगे थे कि प्रत्येक कृत्य होशपूर्वक करना, यंत्रवत नहीं। अब मक्खी तो थी नहीं, वह तो उड़ गई थी। मक्खी को क्या मतलब कि तुमने यंत्रवत उड़ाया कि होशपूर्वक उड़ाया? मक्खी को क्या लेना-देना? वह तो हाथ देख कर उड़ गई। लेकिन बुद्ध अपने हाथ को उठाए फिर से, जैसे कि मक्खी बैठी हो। शिष्य खड़ा होकर भौचक्का देखता रहा। बुद्ध हाथ को ले गए सिर के पास, मक्खी को उड़ाया--जो कि वहां थी ही नहीं। फिर वापस हाथ को नीचा किया। फिर जहां बात टूट गई थी, वहां बात शुरू की। शिष्य ने कहाः मैं बात तो भूल ही गया। मैं यह पूछना चाहता हूं, यह आपने क्या किया? मक्खी तो कब की उड़ चुकी, आप पहले ही उड़ा चुके, अब क्या उड़ा रहे थे?
बुद्ध ने कहाः अब मैं इस तरह उड़ा रहा था जैसे कि मुझे पहले उड़ाना चाहिए था। भूल हो गई, भूल सुधार कर रहा था और देख रहा था कि किस तरह उड़ाना उचित होता। वह मैंने अनुभव करके देखा।
एक बौद्ध भिक्षु मेरी यह बात सुन रहे थे। वे रात मुझसे मिलने आए। उन्होंने कहाः कहानी तो आपने बड़ी अदभुत कही है! लेकिन मैं त्रिपटक पढ़ चुका हूं, पूरे शास्त्र बौद्धों के, यह कहानी कहीं है ही नहीं।
तो मैंने कहाः जोड़ लेना। छूट गई होगी, लिखने वाले भूल गए होंगे। वे मुझे बहुत भौचक्के होकर देखे। उन्होंने कहाः आप कहते क्या हैं? पच्चीस सौ साल बाद आप कैसे सुधार कर सकते हैं शास्त्र में?
मैंने कहाः मुझे शास्त्र से कुछ लेना-देना नहीं। मैं बुद्धत्व का स्वाद जानता हूं। यह कहानी घटनी ही चाहिए--बुद्धत्व की साधना में जो लगा है उसके जीवन में। ऐसी घटे वैसी घटे, कोई और ढंग से घटे, मगर यह घटना घटनी ही चाहिए। कई तरह घट सकती है।
उन्होंने कहाः बात तो बिल्कुल जमी। बात समझ में भी आई कि बुद्ध की सारी साधना ही जागरूकता की है।
तो मैंने कहा कि बस बात जमने की बात है। बात समझने की बात है। बुद्ध की अंतरधारा के विपरीत तो नहीं है बात?
उन्होंने कहाः नहीं, अंतरधारा के विपरीत नहीं है। अंतरधारा के बिल्कुल अनुकूल है।
तो फिर मैंने कहा कि मेरा अंतरधारा से लेना-देना है। शास्त्रों से मुझे क्या पड़ी है? हो शास्त्र में तो ठीक, न हो शास्त्र में तो ठीक। मैं कोई शास्त्रज्ञ नहीं हूं। और न मुझे शास्त्रज्ञ होने में कोई रस है। इसलिए मैं जो उद्धरण देता हूं, तुम यह मत सोचना कि ठीक वैसा उद्धरण तुम्हें मिल ही जाएगा। मिल भी सकता है, न भी मिले। मगर सुनने वाले को निश्चित ही लगेगा कि मैं इतने बलपूर्वक कहता हूं कि होना ही चाहिए। बल का कारण यह नहीं है कि शास्त्र में है ही; बल का कारण यह है कि मैं अपने अनुभव से जानता हूं कि ऐसा ही सत्य है। शास्त्र में हो तो, न हो तो। सारे शास्त्र भी नष्ट हो जाएं तो भी जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। सारे शास्त्र विपरीत हों तो भी जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। और सारे शास्त्र पक्ष में हों, तो भी जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। यह स्मृति का सवाल नहीं है, यह मेरे बोध का सवाल है।
और तुम मुझसे स्मृति का गुर मत पूछो। तुम मुझसे बोध का गुर पूछो। मैं यहां स्मृति सिखाने के लिए नहीं बैठा हूं। स्मृति सीखनी हो, कठिन मामला नहीं है। एक ही रास्ता हैः खूब घोंको। और कोई रास्ता नहीं है स्मृति का। जो भी याद करना है, खूब घोंकते रहो उसको। बार-बार दोहराओ, ताकि लकीर पड़ जाए। कहावत तो सुनी न--रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान! पत्थर तक पर निशान पड़ जाता है रस्सी आती-जाती रहे, आती रहे जाती रहे। करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान! सुजान नहीं होते, ख्याल रखना। जड़मति तो जड़मति ही रहते हैं, अभ्यास कितना ही करें। हां, स्मृति उनकी अच्छी हो जाती है। पंडित हो जाते हैं, सुजान नहीं। सुजान तो बात और है। और जड़मति भी अगर कोई पक्के ही

जड़मति हों तो यह कहावत भी उन पर लागू नहीं होगी। रस्सी आती रहे जाती रहे, घिस जाएगी, रस्सी ही टूट जाएगी, उनकी सिल पर निशान वगैरह नहीं पड़ेगा। अगर सिल ही मजबूत हो तो क्या करेगी रस्सी?

सहजानंद, अगर किसी चीज को याद करना है तो दोहराओ। दोहराते रहो। इसी तरह तो पाठ कर रहे हैं लोग बैठे रोज सुबह गीता का, कुरान का। दोहराते रहते हैं, दोहराते रहते हैं, दोहराते रहते हैं। तोते को भी तुम रोज-रोज कहो कि कहते रहो मिट्ठू! राम-राम, राम-राम। तोता भी घबड़ा जाता है सुन-सुन कर कि राम-राम, राम-राम। वह भी कहने लगता है कि राम-राम, राम-राम। तोतों तक में स्मृति आ जाती है। मगर कोई सुजान नहीं हो जाता तोता। मुझसे तो तुम पूछो बोध का गुर, बुद्धत्व का राज। इसलिए मुझसे पंडित नाराज हैं, क्योंकि उनको अड़चन होती है। उनको हैरानी होती है। वे शास्त्र की बंधी हुई लकीरों से जीते हैं।

मैं कबीर पर बोला तो कबीर-पंथियों के जो प्रधान हैं, उनका पत्र आया, लंबा पत्र आया कि और तो आपने सब अच्छा कहा, लेकिन एक जगह आपने कबीर की इस तरह व्याख्या की जो शास्त्रीय नहीं है।

तो मैंने उनको लिखवा दिया कि वह शास्त्रों का दुर्भाग्य। इसमें मैं क्या कर सकता हूं? मुझे जो कहना है वही कहूंगा। शास्त्र का समर्थन मुझे मिलना चाहिए इसकी न तो अपेक्षा है, न जरूरत है, न प्रयोजन है।

मैं जो भी बोल रहा हूं उसका प्रमाण मैं हूं। उसका प्रमाण कहीं और नहीं है। इसलिए मैं सारी बातों को बलपूर्वक बोल सकता हूं। ऐसा बल स्मृति का नहीं होता। ऐसा बल स्मृति में हो ही नहीं सकता। और भूलने का कोई सवाल ही नहीं उठता। अपना अनुभव है, भूलूं भी तो कैसे भूलूं? जो जाना है सो जाना है। इधर से पूछो, उधर से पूछो, हजार ढंग से पूछो। मैं वही कहूंगा जो मुझे कहना है।

कई लोगों ने मुझे खबरें की हैं कि आप भी गजब हैं, कबीर पर बोलते हैं तो ऐसा लगता है कबीर ठीक और मीरा पर बोलते हैं तो ऐसा लगता है मीरा ठीक और रैदास पर बोलते हैं तो ऐसा लगता है रैदास ठीक, और फरीद पर बोलते हैं तो ऐसा लगता है फरीद ठीक, और नानक पर बोलते हैं तो लगता है नानक ठीक! ... मैं उनको कहना चाहता हूं कि मुझे उनके ठीक और गलत होने से कुछ लेना नहीं। मुझे तो जो ठीक है, वही बोलना है। वे तो बोतलें हैं, शराब मैं अपनी भरता हूं। अब बोतलों से शराब में क्या फर्क पड़ता है? नानक की बोतल कि कबीर की बोतल। गगरी किसी की भी, अनुभव तो मैं अपना डालता हूं। इसलिए पंडित नाराज होते हैं। कबीर-पंथियों का जो पंडित है, वह नाराज होगा। जो लोग अनुभव की दिशा में चल रहे हैं वे तो कबीर के संबंध में, मैंने जो कहा है, उससे आह्लादित हो जाएंगे। मगर कबीर को पांडित्य की तरह पकड़ने वाला आदमी नाराज हो जाएगा। अब करीब जैसे आदमी को भी तुम पंडिताऊ ढंग से पकड़ते हो तो हद हो गई! तो तुम किसे छोड़ोगे?

कबीर ने कहा हैः मसि कागद छुओ नहीं। ... कि मैंने कभी कागज और स्याही हाथ से नहीं छुई। और कबीर ने कहा हैः लिखा लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। मगर कबीर को मानने वाले उनके जो बड़े महंत हैं, उन्होंने पत्र लिखा, बड़े गुस्से में, कि आपने जो कहा, यह शास्त्र के विपरीत पड़ रहा है। और कबीर कहते हैंः लिखा लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात! और मैं देखा-देखी बात कर रहा हूं, वे लिखा लिखी की बात उठा रहे हैं। अब कबीर के साथ कौन है--मैं हूं या ये महंत? कबीर जैसे व्यक्ति को, जिसने कहा कि ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय, उसको भी लोग किताबों में पकड़े हुए हैं, पोथियों में जकड़े हुए हैं!

मेरी स्मृति कुछ बहुत अच्छी नहीं है। मगर मैं फिक्र भी नहीं करता। फिक्र करो तो अड़चन। इसलिए बहुत बार तुम्हें यूं भी हो जाएगा कि मैंने वही कहानी कभी बोकोजू के नाम कही, कभी रिंझाई के नाम से कही, कभी बोधिधर्म के नाम से कही। कौन फिक्र करता है! मेरे लिए ये सब बोतलें हैं। मुझे कहानी कहनी थी। कोई भी बहाना हो, खूंटियां हैं। मुझे अपना कोट टांगना था, टांग दिया। अब खूंटियां देखता फिरूं कि कोट टांगूं? अगर खूंटियां न मिलें तो आदमी खीलों पर भी टांग देता है; खीले न मिलें, द्वार-दरवाजों पर भी टांग देता है। और कुछ न मिले तो अपने कंधे पर टांग लेता है। करेगा क्या!

यह स्मृति नहीं है यह मेरा अनुभव है।

चौथा प्रश्नः ओशो! मैं विवाहित व्यक्ति हूं। मैं तो वैवाहिक जीवन में कोई दुख नहीं देखता हूं, फिर आप क्यों वैवाहिक जीवन का मजाक उड़ाते हैं?

नारायणदत्त तिवारी! भैया, ऐसा मालूम पड़ता है, पत्नी भी तुम्हारे साथ यहां आई हुई है। सच कहना, ईमान से कहना।
अदालत में सरकारी वकील ने मुल्ला नसरुद्दीन पर आरोप लगाते हुए कहा कि माई लार्ड, यही वह आदमी है जिसने अपनी पत्नी को चिड़ियाघर के गहरे तालाब में ढकेला था और जिसे मगरमच्छ खा गए थे।
जज के हृदय में तो आनंद की एक लहर उठी। मगर दुर्भाग्य की बात, उस दिन उसकी पत्नी भी अदालत में मौजूद थी, अदालत देखने आई थी। सो जज ने कहाः लेकिन क्या यह बदमाश यह नहीं जानता था कि चिड़ियाघर के जानवरों को कुछ भी खिलाने की मनाही है?
चंदूलाल एक दिन अपने मित्र नसरुद्दीन से कह रहे थे कि जैसी आज्ञाकारी हमारी पत्नी है, शायद ही किसी की हो। पत्नी भी मौजूद थी, स्वेटर भी बुनती जाती थी और सुनती भी जाती थी कि क्या बात चल रही है। पत्नियां चार-चार पांच-पांच काम इकट्ठे कर लेती हैं। जैसे स्वेटर बुन लें, पैर से लड़के का झूला भी झुलाती रहें, कान से--पति क्या चर्चा कर रहा है... और जितनी धीमी खुसर-पुसर चर्चा हो रही हो, उतनी साफ उनको सुनाई पड़ती है। जोर से बोलो तो वह सुनने की जरूरत नहीं।
चंदूलाल की यह बात सुन कर नसरुद्दीन चौंका। उसने कहा कि तुम्हारा मतलब? चंदूलाल ने कहाः अरे जब भी कहता हूं कि मुझे गर्म पानी चाहिए, फौरन करके देती है। रोज कहूं तो रोज करके देती है।
नसरुद्दीन बोलाः लेकिन एक बात समझ में नहीं आती कि आखिर तुम रोज गर्म पानी का करते क्या हो? तुम्हें देख कर तो ऐसा लगता नहीं कि नहाना-धोना भी तुम्हें आता हो!
चंदूलाल बोलेः अरे यार, तुमने भी मूर्खता की हद कर दी! अरे क्या इतनी ठंड में कोई ठंडे पानी से बर्तन साफ कर सकता है? बर्तनों को धोने के लिए आखिर गर्म पानी ही चाहिए न!
भैया नारायणदत्त तिवारी, अकेले आओ कभी। फिर जो मैं कहता हूं, जंचेगा। अभी पत्नी बिल्कुल बगल में ही बैठी होगी और तुम्हारे चेहरे की तरफ देख रही होगी।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी बीबी सैर करने को निकले थे। बातचीत चल रही
थी कि अचानक बीबी ने किसी बात पर गर्म होकर नसरुद्दीन को जोर से एक चपत रसीद कर दी। नसरुद्दीन तो क्रोध से भनभना गया। बोला कि तूने यह चपत सच में मारी या मजाक में मारी?
गुलजान भी क्रोध में आकर बोलीः सच में मारी है, बोल क्या करना है? नसरुद्दीन नर्म होकर बोलाः कुछ नहीं, यही कि मुझे मजाक इस तरह के बिल्कुल पसंद नहीं। यदि सच में मारी है तो कोई बात नहीं।
तुम कह रहे होः मैं विवाहित व्यक्ति हूं। जरूर होओगे! तुम कह रहे होः मैं तो वैवाहिक जीवन में कोई दुख नहीं देखता हूं। फिर आप क्यों वैवाहिक जीवन का मजाक उड़ाते हैं?
सौभाग्यशाली हो। अगर वैवाहिक जीवन में तुम्हें कोई दुख नहीं दिखाई पड़ता तो तुम यहां आए किसलिए हो? क्यों यहां समय खराब कर रहे हो? वैवाहिक जीवन का सुख लो। मगर खाने के दांत और, दिखाने के दांत और। कहते लोग कुछ और, असलियत कुछ और। कहता कोई भी नहीं। कहे कैसे? जबानें बंद हैं। और फिर फजीहत करवाने से सार क्या?
सभी कहानियां, पुरानी कि नई, विवाह पर खत्म हो जाती हैं। फिल्में भी विवाह पर खत्म हो जाती हैं। शहनाई बजती है, माला डाली जा रही, फेरे लगाए जा रहे, और कहानी खत्म! क्योंकि फिर इसके बाद जो होता है, वह न दिखाने योग्य है, न बताने योग्य है, न किसी से कहने योग्य है। कहानियों में कहा जाता है कि दोनों का विवाह हो गया, फिर दोनों सुख से रहने लगे। तुमने एकाध भी ऐसी

कहानी देखी, जिसमें यह आया हो कि विवाह हो गया और फिर दोनों दुख से रहने लगे? ऐसी कहानी ही नहींलिखी गई आज तक। अगर यह बात सच है कि विवाह हो जाने के बाद दोनों सुख से रहने लगते हैं, तो यह जीवन, यह जगत अपूर्व आनंद से भरा हुआ होना चाहिए। मगर ऐसा कहीं दिखाई पड़ता नहीं। और इस समाज, इस व्यवस्था, इस जीवन की आधारशिला विवाह है। मगर हम छिपाते हैं, हम मुखौटे लगाए रहते हैं।
मैं जो मजाक उड़ाता हूं वह सिर्फ तुम्हारे मुखौटों की उड़ा रहा हूं। अब
यह भी हो सकता है संयोगवशात तुम अपवाद होओ। मिल गई हो कोई अप्सरा तुम्हें या तुम स्वयं कोई देवता होओ। और दोनों का जीवन सच में ही सुख से बीत रहा हो। मैं यह भी नहीं कहता, क्योंकि मैं कौन हूं संदेह करूं तुम पर? श्रद्धा रखता हूं! तुम्हारी तुम जानो! मगर इतना ही निवेदन है कि अगली बार अकेले आना। और फिर बातें तुम्हें ज्यादा और ढंग से दिखाई पड़ेंगी।

अंतिम प्रश्नः ओशो! विवाह से बचना तो असंभव है। क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है कि विवाह में कम से कम दुख हो?

अविनाश! उपाय क्यों नहीं है? उपाय तो हर चीज का है। जहां बीमारी है वहां कोई न कोई औषधि भी होगी।
ढब्बूजी की तीन प्रेमिकाएं थीं। फिर जब उन्होंने शादी की तो जो सबसे छोटे कद की थी, साढ़े तीन फीट की, उसे चुना। एक मित्र ने पूछाः इसका राज क्या है? तुम्हारे पीछे तो दो-दो स्वस्थ सुंदर पढ़ी-लिखी और ऊंचे कद की लड़कियां पड़ी थीं, फिर इस दुबली-पतली मरियल सी ठिगनी लड़की को ही क्यों पसंद किया? ढब्बूजी ने कहाः राज वगैरह कुछ नहीं है, सीधी-सच्ची बात है। अरे भई, मुसीबत जितनी छोटी हो उतना ही अच्छा। उतना ही शुभ, उतना ही सुंदर।
अब तुम कह रहे हो कि कम से कम दुख हो। कोई रास्ता तो मिल सकता है। मुसीबत सोच-समझ कर चुनना। तुम्हारे हाथ में है मुसीबत चुनना।
मुल्ला नसरुद्दीन ने जब शादी की तो गांव की सबसे बदशक्ल औरत से शादी
कर ली, जिससे कोई शादी करने को राजी नहीं था। सारा गांव चौंका। भरोसा ही नहीं आया किसी को, कि इस स्त्री से कोई शादी करेगा। उसका रूप ऐसा था--ऐसा भयंकर कि जो उसे एक दफा देख ले तो या तो पहाड़ों की तरफ भाग जाए, गुफाओं में छिप जाए, संसार से एकदम विरक्त ही हो जाए, आत्महत्या कर ले, कूद पड़े नदी में। उससे विवाह कर लिया। मुसलमानों में रिवाज है कि जब विवाह के बाद पत्नी घर आती है तो वह पूछती है कि मैं अपना बुरका, अपना घूंघट किस-किस के सामने उठा सकती हूं! पति से आज्ञा लेती है। सो नसरुद्दीन ने कहाः देवी, मुझे छोड़ कर सबके सामने! ऐसे भी मैं दिन में घर आऊंगा नहीं। रात अंधेरे में आऊंगा। और इतनी प्रार्थना है, जब आऊं, जैसे ही दरवाजे पर दस्तक दूं, बिजली बुझा देना।
लोगों ने पूछा कि नसरुद्दीन तुमने ऐसी बदशक्ल औरत क्यों चुनी? उसने कहाः कई कारणों से। पहली तो बात, यह कभी धोखा नहीं देगी। धोखा देगी तो कैसे देगी? इस पर कभी संदेह नहीं आएगा। चित्त हमेशा इस पर श्रद्धा रखेगा। यह किसी के साथ भागेगी नहीं। घर इसके हाथ में सुरक्षित है। यह हमेशा मेरी सेवा करेगी। सुंदरी हो तो सेवा करवाती है। और यह हमेशा अनुगृहीत रहेगी। सुंदरी हो तो वह कहती है--हमने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, नहीं तो तुमको कौन चुनने वाला था!
अविनाश, तुम पूछते होः "क्या कोई रास्ता नहीं है?"
रास्ते क्यों नहीं हैं?
ढब्बूजी बेचारे बहुत व्यस्त आदमी हैं। सुबह छह बजे से उठ कर घर का कामकाज करते हैं। फिर आठ बजे से शाम छह बजे तक दफ्तर में भी जी-तोड़ मेहनत करते हैं। शाम को घर आकर फिर घर-गृहस्थी के कामों में जुट जाते हैं। इस तरह उन्हें अपने बच्चे की पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देने का अधिक समय नहीं मिल पाता। अभी पिछले ही रविवार की बात है, दोपहर को उनका मन हुआ कि बेटे से उसके अध्ययन आदि के संबंध में पूछताछ की जाए। परीक्षा पास आ रही है। उन्होंने बेटे से सबसे पहले भाषा-संबंधी प्रश्न किए, फिर गिनती के सवाल।

इसी पूछताछ में एक उपद्रव होते-होते बच गया, जब ढब्बूजी ने पूछाः बताओ बेटे, आठ के बाद क्या आता है?
तो भोले-भाले बेटे ने सहज उत्तर दियाः आठ के बाद रोज आपका दोस्त चंदूलाल आता है--मम्मी से मिलने के लिए। सिर्फ रविवार को छोड़ कर।
उपद्रव तो हो ही जाता, लेकिन ढब्बूजी विपस्सना ध्यान करने लगे। विपस्सना ध्यान का यही तो महत्व है!
अविनाश, विपस्सना ध्यान पहले सीखो, विवाह बाद में करना। क्योंकि कई ऐसे अवसर आएंगे जब विपस्सना ध्यान ही बचा सकता है। और ध्यान होगा तो आदमी समदृष्टि हो जाता है, सुख-दुख में समभाव रखता है।
नसरुद्दीन और उसकी बीबी रात को प्रेम-कीड़ा में मशगूल थे, कि अचानक किसी ने दोनों के चेहरों पर टार्च की रोशनी डाली। देखा तो उनका पुत्र फजलू ही रोशनी में उन्हें देख रहा था। नसरुद्दीन बोलाः क्यों बे उल्लू के पट्ठे, यह क्या कर रहा है? फजलू बोलाः पापा देख रहा हूं कि मम्मी के साथ आप ही हैं या और कोई बदमाश!
नसरुद्दीन बोलाः फजलू, बेटा तेरी सूझ-बूझ का हमें बड़ा गर्व है!
फिर समझदारी से काम लेना पड़ता है। फिर समझदारी में ही सार है। और कुछ
भी न हो सके तो पुलिस किसलिए है? अदालत किसलिए है? जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकते, उनकी रक्षा के लिए पुलिस है।
पुलिस-स्टेशन के टेलीफोन की घंटी बजी। थानेदार ने रिसीवर उठाया। आवाज आईः हलो, मैं पोस्ट आफिस के सामने स्थित गणेश भवन नामक बिल्डिंग से बोल रहा हूं। इस बिल्डिंग की चौथी मंजिल पर पांचवें नंबर के फ्लैट में एक खूंखार स्त्री अपने दुर्बल पति चंदूलाल पर बुरी तरह चीख रही है और उसे मार-पीट रही है। सारे पड़ोस के लोगों की नींद हराम हो रही है। कृपा कर कुछ करिए।
थानेदार ने कहाः अच्छी बात है जनाब, मैं अभी आदमी भेजता हूं। मगर यह
तो बताइए कि आप कौन हैं!
जवाब मिलाः मैं कौन हूं! अरे उसी खतरनाक स्त्री का मरियल पति चंदूलाल हूं, और कौन हूं!
कुछ भी न बन सके, आखिर में तो पुलिस है। मगर विवाह अविनाश, जरूर करो। विवाह से बड़े अनुभव होंगे। और विवाह के बिना अनुभव के जीवन अधूरा रह जाता है। विवाह के बिना अनुभव के... तुमने देखा नहीं अभी, नारायणदत्त तिवारी, ऐसा स्वर्गीय सुख तुम्हें कैसे मिलेगा! पहले स्वर्गीय सुख लो। हालांकि सब स्वर्ग नरक सिद्ध होते हैं। मगर जब सब स्वर्ग नरक सिद्ध हो जाते हैं, तभी कोई व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है। पहले बाहर टटोलता है, खोजता है-- दूसरों में। वही तो विवाह है, और क्या? कोई विवाह धन से करता है, कोई पद से करता है, कोईस्त्री से, कोई पुरुष से, कोई महत्वाकांक्षा से, कोई यश से। ये सब विवाह हैं। पहले और में खोजता है आदमी अपने सुख को। जब कहीं भी नहीं पाता, तब कहीं अंततः हार कर, थक कर अपने भीतर प्रवेश करता है।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
आठवां प्रवचन

सत्य की आंधी

पहला प्रश्नः ओशो! यह कैसा न्याय है कि आप अमृत बांट रहे हैं और लोग आपको जहर पिलाना चाहते हैं। आप मनुष्य-जाति को एक नया जीवन देना चाहते हैं और लोग आपका जीवन छीनने की कोशिश कर रहे हैं। क्या इतिहास फिर-फिर अपनी गलतियों को दोहराता है?

कृष्णतीर्थ भारती! सत्य को कभी भी क्षमा नहीं किया जाता। सत्य को क्षमा करना बहुत कठिन है, क्योंकि भीड़ जीती है असत्य में। सत्य को स्वीकार करना भी कठिन है। सत्य की स्वीकृति का अर्थ होता हैः अपनी सारी जीवन-व्यवस्था, अपनी जीवन-शैली, अपने जीवन की आधारशिलाओं को बदलने का दुस्साहस।
प्रत्येक व्यक्ति ने ताश के पत्तों के घर बना रखे हैं। सत्य आता है एक आंधी की तरह। गिरने लगते हैं वे महल। ताश के पत्तों के हैं--हवा का जरा सा झोंका उन्हें गिरा देता है। स्वभावतः उनके निवासी नाराज होंगे। इसमें अन्याय नहीं है। यह अत्यंत स्वाभाविक है, सहज है।

लोगों ने कागज की नावें बना रखी हैं। कागज की नावों पर भरोसा किए बैठे हैं। सत्य उन्हें झकझोरता है, स्मरण, दिलाता है--ये नावें कागज की हैं, डूबेंगी, मत चढ़ो इन पर। लेकिन बड़ी मेहनत की है लोगों ने उन कागज की नावों पर। सदियों-सदियों में तैयार की हैं। उन पर अपना जीवन निछावर किया है। उनको सजाने में, उनको रंगने में, उनकोशृंगारित करने में। एकदम से उनसे मोह का छूटना, एकदम से इस बात को देख लेना कि वे कागज की हैं और व्यर्थ हैं, अत्यंत प्रतिभा का लक्षण होगा। इतनी प्रतिभा भीड़ में नहीं होती। इतनी प्रतिभा भीड़ में हो तो फिर भीड़ भीड़ नहीं है। हां, इतनी प्रतिभा व्यक्ति में हो सकती है।
इसलिए सत्य का संदेश सदा थोड़े से व्यक्तियों को ही सुनाई पड़ता है। शेष सुनते भी हैं तो अनसुना कर देते हैं। सुनते भी हैं तो अपने ढंग से सुन लेते हैं। कुछ कहो, कुछ और सुन लेते हैं। कुछ कहो, कुछ और व्याख्या कर लेते हैं। उनके अपने निहित स्वार्थ हैं। वे सत्य को भी अपने अनुकूल चाहते हैं।
और सत्य किसी के अनुकूल नहीं होता। सत्य तो स्वयं के अनुकूल होता है। जिन्हें सत्य चाहिए हो, उन्हें सत्य के अनुकूल होना पड़ता है। लेकिन हमारी आकांक्षा होती है, सत्य हमारे अनुकूल हो।
हम स्वयं सत्य के अनुकूल हों तो एक आंतरिक क्रांति से गुजरना जरूरी है। आग से गुजरना जरूरी है। बहुत कुछ टूटेगा, बहुत कुछ गिरेगा। बहुत कुछ बदलेगा। बहुत से सपने, बहुत सी आशाएं धूल-धूसरित हो जाएंगी। जिन पर तुमने सारे जीवन को आरोपित किया होगा, वे बुनियादें पैर के नीचे से खिसक जाएंगी। तुम अधर में अटके रह जाओगे। और कभी-कभी ऐसा होता है कि हम अधर में अटकने से इतने डरते हैं, इतने डरते हैं कि पास में ही भूमि हो, वह भी चूक जाती है। मैंने सुना है, एक यात्री रात जंगल में भटक गया। अंधेरी रात थी। फिसल गया पैर उसका रास्ते से। गिर पड़ा किसी खड्ड में। सोचाः गए प्राण! लटक रहा एक वृक्ष की जड़ से। ठंडी रात थी। हाथ बर्फ की तरह होने लगे, ठंडे होने लगे। जड़ें हाथ से छूटने लगीं। चिल्लाया, चीखा, मगर उस निर्जन वन में कोई सुनने को न था। अंततः कोई उपाय न रहा। हाथ का खून जैसे जम गया। पकड़ ढीली हो गई। आखिर-आखिर में हाथ से जड़ें छूट गईं। उस आदमी ने समझा कि मर गया। उसने तो हे राम कह कर जीवन से आशा छोड़ दी। मगर चौंका, क्योंकि वह तो जमीन पर खड़ा था। आधा फीट नीचे ही जमीन थी। वह नाहक घंटों अधर में लटका रहा। लटका रहा भय के कारण, कि कहीं गिरे, पता नहीं कितना गहरा खड्ड हो, बचे कि न बचे! खड्ड था ही नहीं। मगर खड्डे के भय ने आधी रात तक उसे मृत्यु के मुंह में रखा। वह कल्पित मृत्यु थी उसकी।

लोग भीड़ के साथ इसी डर से हैं कि अकेले होने में अधर में अटक जाएंगे।
कम से कम भीड़ में यह तो भरोसा रहता है--इतने लोग जा रहे हैं किसी दिशा में, तो दिशा ठीक ही होगी।
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ को किसी ने कहा--एक ईसाई पादरी ने--कि आप इतना तो स्वीकार करेंगे कि आधी पृथ्वी ईसाइयत को स्वीकार करती है, आधी मनुष्य-जाति। क्या इतने लोग गलत हो सकते हैं?
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने जो उत्तर दिया, उसे खूब सोचना और मनन करना। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने क्षण भर उस ईसाई पादरी को गौर से देखा और कहा कि मैं तुमसे यह पूछता हूं, इतने लोगों की भीड़ सही कैसे हो सकती है?
उस पादरी की दलील थी कि इतनी बड़ी भीड़, आधी मनुष्य-जाति गलत कैसे हो सकती है? और बर्नार्ड शॉ की दलील थी कि इतनी बड़ी भीड़ सही कैसे हो सकती है? सत्य तो कभी एकाध-दो व्यक्तियों को मिला है--किसी बुद्ध को, किसी कृष्ण को, किसी लाओत्सु को, किसी जीसस को। अंगुलियों पर गिने जा सकें ये नाम। भीड़ों के पास तो सत्य नहीं रहा--न हिंदुओं की भीड़, न मुसलमानों की भीड़, न ईसाइयों की भीड़, न आस्तिकों की भीड़, न नास्तिकों की भीड़। भीड़-मात्र के पास सत्य नहीं होता। भीड़ में तो सम्मिलित ही भेड़ें होती हैं। भयभीत जो हैं वे भीड़ में सम्मिलित होते हैं, क्योंकि भीड़ में ऐसा लगता है अकेला नहीं हूं, इतने लोग साथ हैं, क्या डर?
आदमी अकेले होने में डरता है। और सत्य की खोज एकांत में होती है। एकांत से मेरा अर्थ नहीं है कि तुम हिमालय की गुफाओं में जाओ। एकांत से अर्थ है अपने भीतर जाओ। वहीं है एक और वहीं है एकांत। भीड़ बाहर होती है, एकांत भीतर है। भीड़ बहिर्मुखता है और एकांत अंतर्मुखता। सत्य को उन्होंने जाना है जो अपने भीतर गए, जिन्होंने अपना साक्षात किया। और स्वभावतः इनके वक्तव्य कभी भी भीड़ से तालमेल नहीं खाते, कभी नहीं खाए; आज भी नहीं खा सकते, कभी खाएंगे भी नहीं।
कृष्णतीर्थ भारती, तुम पूछते हो कि यह कैसा न्याय है कि आप अमृत बांट रहे हैं और लोग आपको जहर पिलाना चाहते हैं। यही उन्होंने सदा किया है। यही न्याय है। यही नियम है। अगर वे ऐसा न करें तो समझना कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य नहीं है।
लाओत्सु का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है। लाओत्सु ने कहा हैः मूढ़ों के सामने सत्य बोला जाए तो वे सुनते ही नहीं हैं। विद्वानों के सामने सत्य बोला जाए, वे सोच-विचार में पड़ जाते हैं।
सोच-विचार भी बचने की एक तरकीब है। सत्य को देखते नहीं, सत्य के संबंध में ऊहापोह करने लगते हैं--ठीक है या गलत है, शास्त्रों के अनुकूल है या प्रतिकूल है, तर्क में बैठता कि नहीं, मेरे पक्षपात और इसके साथ तालमेल हो सकता है या नहीं? और अगर भीड़ के सामने सत्य कहा जाए तो लोग हंसने लगते हैं। लोग समझते हैंः क्या मूढ़ता की बात कही!
जीसस को लोगों ने पागल समझा। जीसस पर लोग हंसे। और यह बात पागलपन की लगी होगी कि कोई आदमी अपने को कहे कि मैं ईश्वर का बेटा हूं। लेकिन जीसस सिर्फ अपने लिए नहीं कह रहे थे, वे प्रत्येक के लिए कह रहे थे कि प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा का ही बेटा है। यह घोषणा निज के संबंध में नहीं थी। यह घोषणा प्रत्येक की निजता के संबंध में थी। यह स्व के संबंध में न थी, यह प्रत्येक की आंतरिक आत्मा के संबंध में थी। मगर लोग हंसे।
जब जीसस को लोग सूली पर चढ़ाने ले गए, तो सूली उनके कंधे पर रख दी और उनका कोड़े मारे, क्योंकि सूली वजनी थी। और जीसस को पहाड़ी पर चढ़ना पड़ा सूली को लेकर। लोग हंसते थे। सड़े-गले टमाटर फेंके रहे थे, केलों के छिलके फेंक रहे थे, पत्थर फेंक रहे थे और कह रहे थे--यह रहा ईश्वर का बेटा! यह रहा सम्राट! और उन्होंने कांटों का एक ताज जीसस को पहना रखा था। सम्राट की तरह स्वागत होना चाहिए न! सूली पर भी लिख रखा था कि यह है परमात्मा का इकलौता बेटा, अब देखो चमत्कार! और जब सूली लगाई तो लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। देखने क्या, हंसने इकट्ठे हुए थे। और जब सूली लग गई तो लोग हंसते हुए, गपशप करते हुए घर लौट गए। एक तमाशा हुआ। लोग हंसे।

लाओत्सु ठीक कहता हैः भीड़ के सामने सत्य कहो तो भीड़ पहले हंसेगी। और अगर तुम कहते ही चले जाओ तो भीड़ फिर तुमसे बदला लेगी। भीड़ डरने लगेगी कि तुम कहे ही चले जा रहे हो, कहीं कुछ लोग भीड़ में तुमसे राजी ही न हो जाएं! कहीं ऐसा न हो कि कुछ लोग को तुम्हारी बात ठीक ही लगने लगे।
इतिहास का यही न्याय है, क्योंकि इतिहास अंधों से बनता है। भेड़चाल तुम्हें समझ लेनी चाहिए। एक छोटे से बच्चे से स्कूल में शिक्षक ने पूछा कि तेरे बगीचे में चारदीवारी के भीतर दस भेड़ें बंद हैं, उनमें से एक चारदीवारी को छलांग लगा कर बाहर निकल गई, तो पीछे कितनी बचेंगी? उस बच्चे ने कहाः एक भी नहीं।
शिक्षक ने कहाः तू गणित समझता है या नहीं? तुझे बुद्धि कब आएगी? यह छोटा सा सवाल तुझसे हल नहीं होता? एक भेड़ मैं कह रहा हूं बाहर निकल गई तो भीतर कितनी बचेंगी, दस थीं?
उस बच्चे ने कहाः गणित आपको आता होगा, लेकिन मेरे घर में भेड़ें हैं। मैं गड़रिये का बेटा हूं। मैं भेड़ों को जानता हूं। और मैं आपसे कहता हूं, भेड़ों को भी गणित नहीं आता। और एक भेड़ अगर निकल गई तो बाकी भी निकल जाएंगी, कोई पीछे बचने वाला नहीं।
भेड़ें भीड़ में चलती हैं। एक भेड़ गड्ढे में गिर जाए तो बाकी भी गिर जाएंगी। एक कुएं में गिर जाए तो बाकी भी गिर जाएंगी।
तुम चारों तरफ यह होते देखते हो। भीड़ के पास अपनी सूझ नहीं होती। किसी
के पास अपनी सूझ नहीं होती भीड़ में। इसीलिए तो वे भीड़ में इकट्ठे हो जाते हैं। सोचते हैं दूसरों के पास सूझ होगी; दूसरे सोचते हैं इनके पास सूझ होगी। किसी के पास सूझ नहीं।
कबीर कहते हैंः अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। अंधे अंधों को धक्के दे रहे हैं। अंधे अंधों के नेता बने हुए हैं। फिर सब कुएं में गिरते हैं। और तुम देख तो रहे हो कि प्रत्येक व्यक्ति कुएं में गिरा हुआ है। किसकी आंखों में आनंद की किरण है? और किसके प्राणों में प्रेम के गीत हैं? और किसके ओंठों पर अमृत का स्वाद है? किसने पहचाना है परमात्मा को? किसने शाश्वत जीवन की झलक पाई है? वे कौन हैं जिनके पैरों में शाश्वत के घुंघरू बंधे हों, जिनके जीवन में नृत्य हो, गीत हो, उत्सव हो? सब उदास हैं। सब महा उदास हैं। सबका जीवन बोझ है। लोग ढो रहे हैं बोझ की तरह। घसिट रहे हैं। नृत्य कहां, चलना मुश्किल है। चलना भी कहां, घसिट रहे हैं, घुटनों के बल घसिट रहे हैं। और उनकी आंखों में सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं। और उनके प्राणों में अगर झांको तो कोई फूल खिलता नहीं, कांटे ही कांटे हैं। दुख ही दुख है। विषाद ही विषाद है। संताप ही संताप है।
लोग मुझसे आकर पूछते हैंः नरक है?
मैं उनसे पूछता हूंः पागल हो गए हो! पूछते हो नरक है! नरक में रह रहे हो
और फिर भी पूछते हो नरक है! जरा आंख खोल कर चारों तरफ देखो, नरक और कहां होगा?
एक आदमी नई दिल्ली में मरा। नरक के द्वार पर उसने दस्तक दी। शैतान ने द्वार खोला। नाम-धाम, पता-ठिकाना पूछा। जब उसने कहा कि नई दिल्ली से आता हूं, तो शैतान ने कहा कि भई, तुम नरक में काफी रह लिए, अब और नरक में आने की कोई जरूरत नहीं। और जो तुम देख चुके हो नई दिल्ली में, उससे ज्यादा हमारे पास दिखाने को कुछ भी नहीं है। अब तुम स्वर्ग जाओ। तुम स्वर्ग के योग्य हो गए। पर्याप्त भोग चुके, अब और क्या भोगना है? यहां किसलिए आए हो? अभी तृप्ति नहीं हुई?
लोग नरक में जी रहे हैं। मगर हम जहां जीते हैं, उसका हमें स्मरण नहीं
रह जाता। जैसे कि मछली को सागर याद में नहीं रह जाता। सागर में ही पैदा होती है, सागर में ही जीती है, सागर में ही मर जाती है। कहते हैं, जो दार्शनिक मछलियां होती हैं वे विचार करती हैं कि सागर कहां है; चिंतन करती हैं, मनन करती हैं, शास्त्रों का अध्ययन करती हैं। पूछती हैं जानकारों से, अनुभवियों से, वृद्धों से, बुजुर्गों से--सागर कहां है? मछली को तो सागर का पता तभी चलता है जब कोई मछुआ उसे खींच लेता है बाहर सागर के, डाल देता है तट

पर और तड़पने लगती है धूप में तपती रेत पर, तब उसे पता चलता है कि अरे मैं जहां थी वह सागर था।
तुम जहां जी रहे हो वह नरक है। लेकिन तुम जहां भी जी रहे हो वह नरक ही क्यों न हो, तुम्हारा जीवन है। और तुम अपने जीवन से चिपटते हो। यह जीवेषणा बड़ी गहरी है।
इजिप्त में ऐसा हुआ, एक वास्तविक घटना कोई हजार साल पुरानी। ईसाइयों
की एक बहुत पुरानी संस्था थी, आश्रम था--दूर रेगिस्तान में बना हुआ। वहां जब भी कोई साधु मर जाता, उस आश्रम का नियम था कि जो साधु एक बार प्रवेश कर जाए, फिर दुबारा आश्रम के बाहर नहीं जाता था। प्रवेश-द्वार ही था वहां, निकास का कोई द्वार नहीं था। तो वहां जो गया, गया। अभी भी ऐसे आश्रम ईसाइयों के हैं, जिनमें एक बार जाने के बाद दुबारा बाहर आना संभव नहीं है। फिर लाश ही निकलती है। पर उस आश्रम से लाश भी नहीं निकलती थी। वहां जब कोई मर जाता था तो उन्होंने नीचे आश्रम की जमीन में ही गुफा खोद रखी थी, उस गुफा में उसकी लाश को उतार देते थे और चट्टान से गुफा बंद कर देते थे।
एक ईसाई फकीर मरा। उसे गुफा में उतार कर चट्टान से बंद कर दिया गया। संयोग की बात, वह मरा नहीं था सिर्फ बेहोश था, कोमा में था। कोई दस-बारह घंटे बाद उसे होश आ गया। जब उसे होश आया, तुम उसकी तकलीफ समझ सकते हो। बहुत चिल्लाया, मगर अब तो कब्रिस्तान का द्वार बंद हो चुका था। चट्टान वापस रख दी गई थी। उसकी आवाज बाहर पहुंच सकती नहीं थी। वह तो मुर्दों की बस्ती में था। चारों तरफ लाशें ही लाशें थीं। सड़ रही थीं। कीड़े-मकोड़े थे। दुर्गंध ही दुर्गंध थी। सैकड़ों वर्षों में न मालूम कितने फकीर मरे थे। पहले तो बहुत घबड़ाया। तुम शायद सोचोगे, उसने आत्महत्या कर ली होगी, पत्थरों से सिर मार कर तोड़ लिया होगा। नहीं, जीवेषणा बड़ी प्रबल है! दो-चार दिन तो वह दुखी रहा, परेशान रहा, चिल्लाया, चीखा-पुकारा, फिर धीरे-धीरे अपनी नई परिस्थिति से राजी हो गया। मनुष्य के समायोजन की क्षमता अनंत है। वह राजी हो गया। और उसका राजी होना तुम्हें घबड़ाएगा। लेकिन तुम भी अगर सोचोगे तो शायद तुम भी राजी हो जाते। यूं ही तो दुनिया में अधिकतम लोग राजी हैं। मरना उसने नहीं चाहा। सोचा कौन जाने दो-चार आठ दिन में कोई आदमी मर ही जाए, और कोई दूसरा फकीर मर जाए। बहुत बूढ़े हैं आश्रम में, कोई मरेगा ही। तो अपनी जिंदगी क्यों गंवानी! कोई मरेगा तो चट्टान फिर उठेगी और तब मैं निकल जाऊंगा। जरा सी प्रतीक्षा करनी है। इतनी जल्दबाजी की जरूरत नहीं है। और यूं भी आश्रम में ही ऐसा कौन सा महासुख था जो मैं इतना घबड़ाऊं।
रही दुर्गंध, सो दो-चार दिन में नासापुट दुर्गंध से राजी हो गए। मगर भूख लगी, प्यास भी लगी। आश्रम की नालियों से जो पानी बहता था, वह इस गुफा के, यह जो अंतर्गर्भ में बनी हुई मरघट की गुफा थी, उसकी दीवालों से रिस-रिस कर बहता था। पहले तो उस पानी को यह सोच कर कि चाटना, बड़ी ग्लानि हुई, लेकिन मरता क्या न करता! कब तक प्यासा रहता! वह उस पानी को चाट-चाट कर प्यास बुझाने लगा। मगर भूख का भी सवाल था। और तुम चकित होओगे कि वह सड़ी-गली लाशों का मांस खाने लगा। आदमी कुछ भी कर सकता है। बचने के लिए ऐसी प्रबल आकांक्षा होती है। और दिन गुजरे, सप्ताह गुजरे, माह गुजरे, एक ही प्रार्थना करता था, रोज पांच बार प्रार्थना करनी पड़ती थी आश्रम में, लेकिन यहां तो और काम ही न था तो दिन भर जब फुर्सत मिलती प्रार्थना करता। और प्रार्थना एक ही थी कि हे प्रभु, जल्दी किसी को मार, किसी को भी मार डाल! एक बार यह चट्टान उघड़ जाए तो मैं बाहर निकल जाऊं।
यह भी कोई धार्मिक व्यक्ति की प्रार्थना हुई, कि किसी को मार डालो? मगर यही उसकी प्रार्थना थी, एकमात्र प्रार्थना थी। वर्ष बीत गए, धीरे-धीरे तो वह भूल ही गया। प्रार्थना करता था, वह रोज का उपक्रम हो गया, औपचारिकता हो गई। जैसे आदमी यंत्रवत दोहराता चला जाए। मांस खाने लगा। मांस में मजा भी आने लगा--सड़े-गले मांस में।
दस साल बाद कोई मरा, तब चट्टान खुली। उस आदमी की दाढ़ी बढ़ कर जमीन तक पहुंच गई थी। उसकी आंखें अंधी हो गई थीं अंधेरे के कारण। लेकिन वह बड़ा मोटा-तगड़ा हो गया था। मांस ही मांस खा रहा था। और कोई काम न था--खाना और विश्राम करना। और जब वह बाहर निकला तो साथ में एक पोटली बाहर लेकर निकला।

सारा आश्रम इकट्ठा हो गया कि इस पोटली में क्या है! लोगों को तो भरोसा ही नहीं आया। उसको देखा तो विश्वास ही नहीं आया। वे तो भूल ही चुके थे। दस साल पहले मरा हुआ आदमी, किसको याद था! आश्रम में कोई हजार फकीर थे। फिर उन्हें याद आई। और उस आदमी ने कहाः भूल से तुमने मुझे गड़ा दिया। मैं जिंदा था। मैं बच गया। बड़ी मुश्किल पड़ी, लेकिन बच गया। प्रभु की कृपा कि बच गया।
इस पोटली में क्या है?
तो उन ईसाई फकीरों का यह रिवाज था कि जब भी कोई मरता था, उसके साथ दो जोड़ी कपड़े, कुछ धन-पैसा साथ में रखते थे। वह रिवाज था। अभी भी रिवाज है कई मुल्कों में कि जब काई मर जाए तो उसकी कब्र में कुछ पैसे फेंके जाएं, कुछ कपड़े रख दिए जाएं--परलोक की यात्रा के लिए। लंबी यात्रा पर जा रहा है, साधन तो जुटा देने चाहिए, पाथेय, रास्ते के लिए कलेवा। उसने सारे मुर्दे, जो उसके पहले मर चुके थे, उन सबके पैसे इकट्ठे कर लिए, उन सबके कपड़े इकट्ठे कर लिए, वह सब पोटली बांध कर बाहर ला रहा था। न केवल वह आदमी जीया, उसने संग्रह भी किया, उसने परिग्रह भी किया। उसने कहा कि जब मैं निकलूंगा बाहर तो खाली हाथ क्यों जाना! अरे कुछ लेते ही चलें। अब जब आ ही गए हैं और दस साल इतनी तकलीफ सही है, तो कुछ बचा ही चलें।
भरोसा नहीं आता इस घटना पर। जब पहली दफा मैंने ईसाई आश्रमों के इतिहास में इस कहानी को पढ़ा तो सोचा यह कहानी सिर्फ कहानी ही होगी। मगर फिर लगा कि इसी तरह तो लाखों-करोड़ों लोग जी रहे हैं। जिस आदमी के पैर नहीं हैं, हाथ नहीं हैं, अंधा है, सड़क पर भीख मांग रहा है, घिसट रहा है, कोढ़ी है, शरीर गल-गल कर गिर रहा है, वह भी जीना चाहता है, वह भी मरना नहीं चाहता, वह भी चाहता है तुम उससे कहोः जुग-जुग जीओ! वह भी आशीर्वाद चाहता है। उसके जीने में क्या है? लेकिन औरों के जीने में भी क्या है, जो कोढ़ी भी नहीं हैं, आंखें भी ठीक हैं, हाथ भी ठीक हैं, पैर भी ठीक हैं, भिखमंगे भी नहीं हैं, उनके जीने में भी क्या है? मगर हमारे पास जो भी है, उसी को हम जोर से पकड़ लेते हैं। और सत्य के साथ यही अड़चन है कि सत्य तुम्हारे हाथों को खुलवाता है। और सत्य कहता हैः जरा हाथ खोल कर देखो, तुम्हारे हाथ खाली हैं। तुम्हारे हाथों में कुछ नहीं है। तुम सिर्फ कल्पना कर रहे हो।
जिसने धन को पकड़ा है, उसने क्या पकड़ा है? जब मरेगा तब पता चलेगा कि वह कुछ भी न था। एक सपना था। जिसने पद को पकड़ा है उसने क्या पकड़ा है? लेकिन कुर्सी पर लोग बैठ जाते हैं तो कैसा पकड़ते हैं! छोड़ते ही नहीं। कितनी खींचातानी होती है, कितनी जूता-जूती होती है, मगर छोड़ते ही नहीं। जो पकड़ लिया, उसे जोर से पकड़ लेते हैं।
इसलिए कृष्णतीर्थ भारती, यह मत कहो कि यह कैसा न्याय है! यही होता रहा है। यही इतिहास का न्याय है। यह अंधों का न्याय है। यह अंधों की बस्ती है। इस अंधों की बस्ती में सत्य के साथ यही हो सकता है। सत्य को सूली ही लग सकती है, सिंहासन नहीं मिल सकता। यहां असत्य सिंहासन पर विराजमान है। और असत्य के साथ बहुत लोग हैं, क्योंकि असत्य सस्ता है, मुफ्त मिलता है, कुछ करना नहीं पड़ता। तुम्हें हिंदू होने के लिए कुछ करना पड़ा है? तुम्हें मुसलमान होने के लिए कुछ करना पड़ा है, तुम्हें ईसाई या जैन होने के लिए कुछ करना पड़ा है? ये पैदाइशी बातें हैं, जन्म से मिल गईं। कैसा पागलपन है! धर्म भी कहीं जन्म से मिल सकता है? धर्म जैसी बहुमूल्य प्रक्रिया तो साधनी होती है। इसके लिए तो हजार-हजार पीड़ाएं उठानी होती हैं। न मालूम कितने पर्वत शिखर चढ़ने पड़ते हैं। यह तो दूभर मार्ग है। यह तो कंटकाकीर्ण मार्ग है। हजारों चलते हैं, तब कहीं एकाध पहुंच पाता है। यह तो यूं है जैसे कोई गौरीशंकर के शिखर पर चढ़े। मगर तुम्हें मुफ्त मिल गया है। तुम पैदा हुए, जनेऊ पहना दिया गया, तुम हिंदू हो गए, द्विज हो गए। इतने सस्ते में द्विज! द्विज शब्द का अर्थ समझते हो। द्विज का अर्थ होता हैः दुबारा जिसका जन्म हो। और दुबारा जन्म समाधि से होता है, जनेऊ पहनने से नहीं। हर ब्राह्मण द्विज नहीं है, यद्यपि हर द्विज ब्राह्मण होता है। फिर वह द्विज चाहे कोई भी हो। जीसस ब्राह्मण हैं। बुद्ध ब्राह्मण हैं। मोहम्मद ब्राह्मण हैं। बहाऊद्दीन ब्राह्मण हैं। वे द्विज हैं। उन्होंने समाधि से दूसरे जन्म को पा लिया।

मां-बाप से तो शरीर को जन्म मिलता है। फिर एक और जन्म है, जो स्वयं पाना होता है। मगर तुमने दूसरे जन्म की तो कोई कोशिश की नहीं। ईसाई पादरी आया, उसने पानी छिड़क कर बप्तिस्मा कर दिया--और तुम्हारा दूसरा जन्म हो गया, तुम ईसाई हो गए! यूं पानी छिड़कने से! कि यहूदी पुरोहित आया और उसने आकर खतना कर दिया--और तुम यहूदी हो गए! जननेंद्रिय की जरा सी चमड़ी काट देने से, तुम यहूदी हो गए! काश, मामले इतने सस्ते होते! काश, धर्म इतना आसान होता! मगर हमने सस्ती तरकीबें निकाली ली हैं। हमने प्लास्टिक के फूल बना लिए हैं। असली फूल तो उगाने पड़ते हैं, मेहनत करनी पड़ती है, श्रम करना पड़ता है। जमीन तैयार करो, घास-पात उखाड़ो, पत्थर हटाओ, खाद लाओ, बागुड़ लगाओ, गुलाब बोओ। फिर रक्षा करो, फिर पानी डालो, फिर धूप-धाप की फिकर करो। तब कहीं असली गुलाब आएंगे पर उनमें सुगंध होती है।
और नकली गुलाबों में जो जी रहे हैं, वे असली गुलाबों को पसंद नहीं करेंगे, क्योंकि असली गुलाब की मौजूदगी उनके नकली गुलाब का अपमान मालूम पड़ती है। यह अड़चन है। इसलिए इतिहास का यही न्याय है। अंधों का यही न्याय है कि जब सत्य प्रकट हो तो तुम उसकी हत्या कर देना, जहर पिला देना, फांसी पर लटका देना, ताकि तुम्हारी असत्य की दुनिया चलती रहे--निश्चिंत, कोई बाधा न डाले।
तुम पूछते होः "आप मनुष्य-जाति को नया जीवन देना चाहते हैं और वे आपका जीवन छीनना चाहते हैं।"
स्वाभाविक, मैं भी उनका जीवन छीनना चाहता हूं, तभी तो उनको नया जीवन
दे सकूंगा। मैं, जैसा वे जीवन जी रहे हैं, छीनना चाहता हूं। जिसको वे जीवन समझते हैं, मैं जीवन नहीं समझता। उसे मैं मरण से भी बदतर समझता हूं। वह जीवन है ही नहीं। वह जीवन का धोखा है। मैं भी जीवन छीनना चाहता हूं उनका, स्वभावतः वे भी नाराज होते हैं। वे भी कुपित हो जाते हैं। वे भी क्रुद्ध हो जाते हैं। वे मुझे न समझ सकें, मैं तो उन्हें समझ सकता हूं। वे मुझे क्षमा न कर सकें, मैं तो उन्हें क्षमा कर सकता हूं। मैं भलीभांति समझता हूं उनकी तकलीफ। मैं उनका जीवन छीन रहा हूं। भला मुझे लगता है उनका जीवन गलत है, उन्हें तो नहीं लगता।
एक छोटे बच्चे से उसका खिलौना तुम छीनो, तो तुम्हें पता चल जाएगा। रोएगा, चिल्लाएगा, शोरगुल मचाएगा। उसके लिए खिलौना नहीं है, तुम्हारे लिए खिलौना होगा। तुम कौन हो उसका खिलौना छीनने वाले। उसके लिए तो खिलौना बहुत सच है।
और यहां छोटे बच्चे हैं, बड़े बच्चे हैं, और फर्क क्या है? छोटा बच्चा अपनी गुड़िया को या गुड्डे को लेकर बिस्तर पर सोता है। बंगाल में कृष्ण को मानने वालों का एक संप्रदाय है, जो कृष्ण की मूर्ति साथ लेकर सोता है। इनमें और छोटे बच्चों में कुछ भेद है? छोटा बच्चा अपने खिलौने से बातचीत करता है कि राजा बेटा, कैसे हो? रात नींद आई, ठीक से सोए? तुम्हें हंसी आती है कि यह क्या पागलपन की बातें कर रहा है! लेकिन तुम क्या कर रहे हो? कृष्ण को झूला झुला रहे हो। कृष्ण को गए पांच हजार साल हो गए, झूला किसको झुला रहे हो? एक मूर्ति बिठा रखी है; वह भी खिलौना है--धार्मिक खिलौना सही। मगर झूला झुला रहे हो। लिटा देते हो रात में कृष्ण को, दिन में बिठा देते हो। क्या मजा है, जिंदा कृष्ण के साथ तुम ये हरकतें कर सकते थे? जब तुम्हारा दिल हो, लिटा दो; जब तुम्हारा दिल हो, बिठा दो। भोग लगा देते हो; नाम कृष्ण का, लगाते भोग अपने को। बातचीत भी करते हो। और इसको तुम प्रार्थना कहते हो, उपासना कहते हो! और छोटे-मोटे लोग नहीं, मार्टिन बूबर जैसा बहुत बड़ा विचारक इस सदी का, उसने अपनी प्रसिद्ध किताब आई एंड दाउ में लिखा है, मैं और तू, कि परमात्मा और व्यक्ति के बीच जो वार्ता होती है, उसी का नाम प्रार्थना है। हद हो गई नासमझी की भी! छोटे-छोटे आदमी, छोड़ दो उनको गिनती के बाहर लेकिन मार्टिन बूबर तो इस सदी के दस-पांच अग्रगण्य विचारकों में से एक था। यहूदियों में तो उससे श्रेष्ठ विचारक इस सदी में दूसरा कोई हुआ नहीं। लेकिन वह भी क्या कह रहा है! वह यह कह रहा है--वार्ता, परमात्मा के साथ।

किससे वार्ता करोगे? परमात्मा कोई व्यक्ति है जिससे तुम वार्ता करोगे, जिससे तुम हालचाल पूछोगे, जिसके सामने तुम गिड़गिड़ाओगे और प्रार्थना करोगे? परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा अस्तित्व का दूसरा नाम है। परमात्मा की प्रार्थना नहीं हो सकती। कोई उपाय नहीं है। प्रार्थना का। सब प्रार्थनाएं बचकानी हैं। परमात्मा का तो ध्यान ही हो सकता है, प्रार्थना नहीं हो सकती।
और ध्यान का अर्थ सिर्फ इतना ही होता है कि तुम शून्य हो जाते हो, शांत
हो जाते हो, मौन हो जाते हो। तुम्हारे परम मौन में अस्तित्व तुम्हारे भीतर थिरक उठता है। तुम्हारे शून्य में अस्तित्व नाच उठता है। तुम्हारे शून्य में अस्तित्व की बांसुरी बजने लगती है। तुम मिटे कि अस्तित्व तुमको भर देता है--लबालब, भरपूर! बह उठता है, झर उठता है तुमसे! लेकिन कोई वार्ता नहीं हो सकती। वार्ता तो बचकानी बात है।
लेकिन धर्म के नाम पर ये सब सस्ते काम हमने कर रखे हैं। रविवार को तुम चर्च में हो आए कि बात खत्म हो गई। धर्म सध गया, ईसाई हो गए तुम। जीसस को तो सूली लगी और तुम चर्च हो आए घड़ी भर को, एक औपचारिकता निभा ली। बुद्ध ने तो छह वर्ष ध्यान की गहन तपश्चर्या की और तुम्हें क्या करना है? तुम्हें कुछ नहीं। तुम्हें जब बनना हो बौद्ध, तब तुम बन जाओ। अंबेदकर लाखों लोगों को लेकर बौद्ध बन गए। न अंबेदकर बौद्ध थे, न वे लाखों लोगों में एक कोई बौद्ध है। राजनीति, शुद्ध राजनीति। अंबेदकर जिंदगी भर कभी सोचते रहे मुसलमान हो जाएं, कभी सोचते रहे ईसाई हो जाएं, फिर आखिर में तय किया कि बौद्ध हो जाएं। ये कोई ढंग हैं? लेकिन बौद्ध हो गए तो उनके मानने वाले उनको बोधिसत्व कहने लगे। अगर वे ईसाई हो जाते तो? ईसाई भी होने में कुछ अड़चन न थी। ये ही अनुयायी उनके साथ ईसाई हो गए होते। ये ही अनुयायी उनके साथ मुसलमान हो गए होते। सब राजनीतिक दांव-पेंच हुए। धर्म से कोई लेना-देना न हुआ। तुम्हारा धर्म तुमने कमाया है, या तुम्हें मुफ्त मिल गया है? धर्म की कोई वसीयत नहीं होती। बाप मर जाएं तो धन तुम्हें दे सकते हैं, लेकिन धर्म नहीं दे सकते। धर्म हस्तांतरणीय नहीं है, एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वभाव का स्वयं ही आविष्कार करना होता है। अपने सत्य को स्वयं ही पाना होता है।
इसलिए जब भी कोई सत्य की बात कहेगा तो न मालूम कितने लोगों को बेचैनी होगी। सत्य को उपलब्ध व्यक्ति को बरदाश्त करना कठिन हो जाएगा क्योंकि उसकी मौजूदगी तुम्हें बताएगी कि तुम असत्य हो। उसकी मौजूदगी तुम्हें बेचैन करेगी, तुम्हें परेशान करेगी। तुम चाहोगे इस आदमी की वाणी को बंद कर दो, इस आदमी की गर्दन काट दो, इसको समाप्त कर दो। यह समाप्त हो जाए तो हमारी झंझट मिटे; तो हम निश्चिंत होकर जैसे जी रहे हैं जीते रहें। हमारी जीवन-शैली में कोई बाधा न डाले।
कृष्णतीर्थ भारती, मैं नया जीवन देना चाहता हूं मनुष्य को, लेकिन उनका पुराना जीवन छीनूंगा, तभी न! जगह खाली करनी पड़ेगी पहले। मैं उनका पुराना जीवन छीनूंगा तो उनका भी कसूर क्या, अगर वे मेरा जीवन छीन लेने को आतुर हो जाएं? इसलिए वे भी जो कर रहे हैं--अपनी तंद्रा में, अपनी निद्रा में--सब ठीक ही है। मैं अपना काम करता रहूंगा, वे अपना काम करते रहेंगे। यूं ही चलता रहा है, यूं ही चलता रहेगा। इतिहास अपनी भूलों को दोहराता रहेगा, जब तक कि सारे मनुष्य बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो जाते। लेकिन यह तो कब होगा? यह तो आशा दुराशा है। यह सारी मनुष्य-जाति कब बुद्धत्व को उपलब्ध होगी? यह हो नहीं सकता।
मैं कल्पना में जीना पसंद नहीं करता। मैं तो यथार्थवादी हूं। मैं तो
यह मानता हूं, थोड़े से ही लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं, थोड़े से ही लोग बुद्धत्व को उपलब्ध होंगे। उनकी संख्या बढ़ती जाएगी। जैसे-जैसे मनुष्य प्रौढ़ होता जाएगा, उनकी संख्या बढ़ती जाएगी। जितने ज्यादा बुद्ध होंगे दुनिया में, उतनी सुगंध होगी, सौरभ होगा, उतनी रोशनी होगी, उतने दीये होंगे। मगर फिर भी अंधेरा रहेगा। अंधेरा बहुत है! अंधेरे के पक्षधर बहुत हैं!

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं धर्म में जरा भी रुचि नहीं ले पाता हूं, लेकिन राजनीति में मेरी बड़ी उत्सुकता है। क्या कारण हो सकता है?

कृष्णकांत! राजनीति में किसकी उत्सुकता नहीं है? तुम कुछ अनूठे नहीं हो। अनूठे तो तुम उस दिन हो जाओगे जिस दिन धर्म में उत्सुकता ले सकोगे। राजनीति में तो सभी उत्सुक हैं। राजनीति तो अंधों का खेल है--अंधों की शतरंज।
राजनीति का अर्थ क्या होता है? राजनीति का अर्थ होता हैः अहंकार की दौड़। और धर्म का अर्थ होता हैः अहंकार का विसर्जन। राजनीति और धर्म विपरीत चीजें हैं, बुनियादी रूप से विपरीत चीजें हैं। और तुम्हें राजनीति की शिक्षा दी जाती है। छोटे-छोटे बच्चे को भी हम यह जहर पिलाते हैं। यह प्रथम होने की दौड़! छोटे से बच्चे को भी हम कहते हैं कि प्रथम आना, कक्षा में प्रथम आना, स्कूल में प्रथम आना, विद्यालय में प्रथम आना, विश्वविद्यालय में प्रथम आना। क्यों? दूसरों को पीछे छोड़ना और तुम प्रथम आना।
लेकिन जीसस का वचन याद करो। जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं क्योंकि जो अंतिम हैं वस्तुतः वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे।
यह धर्म का सूत्र हुआ। इतने प्यारे ढंग से धर्म को और किसी ने अभिव्यक्ति नहीं दी थी। धन्य हैं वे जो अंतिम हैं!
राजनीति का खेल है--प्रथम होने का खेल। राष्ट्रपति बनना है, प्रधानमंत्री बनना है। आगे-आगे! सबको पीछे छोड़ देना है। मैं कुछ खास हो जाऊं, मैं विशिष्ट हो जाऊं, मैं की घोषणा कर दूं! लेकिन मैं की इतनी दौड़ क्यों है? क्यों आदमी इतना पागल होकर पीछे पड़ता है मैं के? कारण हैः हीनता की ग्रंथि। राजनीति एक रोग है, जो इनफीरियारिटी कांप्लेक्स, हीनता की ग्रंथि से पैदा होता है। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा लग रहा है कि मैं हीन हूं। मुझे सिद्ध करना है कि मैं कुछ हूं। अगर नहीं सिद्ध कर पाया तो मेरा जीवन यूं ही गया। मैं सिद्ध करके रहूंगा--धन पाकर या पद पाकर, यश पाकर, नोबल प्राइज पाकर, लेकिन सिद्ध कर के रहूंगा कि मैं कुछ खास हूं। मैं साधारण नहीं हूं, असाधारण हूं, विशिष्ट हूं, गणमान्य हूं!
लेकिन तुम कितनी ही बड़ी कुर्सी पर बैठ जाओ, हाथी पर बैठ जाओ, तुम बुद्धू हो तो बुद्धू हो। हाथी पर और ज्यादा बुद्धू मालूम पड़ोगे। दूर-दूर तक तुम्हारा बुद्धूपन दिखाई पड़ेगा, और कुछ भी नहीं। तुम बड़ी कुर्सी पर बैठ कर सिर्फ अपने बुद्धूपन की घोषणा कर सकोगे ज्यादा आसानी से। और क्या होगा? धन तुम्हारे पास होगा तो तुम अपने बुद्धूपन को व्यावहारिक रूप दे सकोगे, जो बिना धन के देना मुश्किल होता। लेकिन तुम नहीं बदल जाओगे।
राजनीति में व्यक्ति नहीं बदलता, सिर्फ व्यक्ति के हाथ में सत्ता बढ़ती चली जाती है। और यही तो प्रत्येक व्यक्ति चाहता है।
कृष्णकांत, तुम्हीं कुछ विशिष्ट बीमारी से पीड़ित नहीं हो, यह आम बीमारी है। सभी इससे पीड़ित हैं--सारा समाज, सारी संस्कृति, सारी शिक्षा इससे पीड़ित है। हम यही जहर हर बच्चे को पिला रहे हैं। और लगे रहे अगर इस दौड़ में तो कहीं न कहीं पहुंच ही जाओगे। धक्कमधुक्की करते ही रहे, सवाल है धीरज रखने का, पिटते रहे, कुटते रहे, मगर छोड़ा नहीं, जमे रहे, तो पहुंच हो जाओगे। मोटी खाल चाहिए, सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें! बस ऐसी हिम्मत चाहिए, तो कुछ कठिनाई नहीं है कि प्रधानमंत्री न हो जाओ, कि राष्ट्रपति न हो जाओ। उत्सुकता पूरी हो जाएगी, मगर उत्सुकता ही पूरी नहीं होगी, जिंदगी भी पूरी हो जाएगी। और हाथ में घुनघुना आ जाएगा, उसको बजाते रहना, उसको बजाते-बजाते मर जना। घुनघुना है, और कुछ भी नहीं है।
चुनाव के दिनों में
गली के मोड़ पर
चुपचाप बैठे एक कुत्ते से
एक उम्मीदवार ने पूछा--
यार!

आजकल तुम भौंकते नहीं हो?
कुत्ते ने तुनक कर उत्तर दिया--
हां!
क्योंकि अब भौंकने का अर्थ
भाषण हो गया है।
भौंकते रहो, धीरे-धीरे लोग समझेंगे भाषण दे रहे हो। कुत्ते तक शर्माने लगे हैं। कुत्ते तक चुनाव के दिनों में बिल्कुल चुपचाप हो जाते हैं। तुमने जरा खयाल किया? शायद तुमने खयाल नहीं किया होगा। कुत्तों तक को शर्म आती है, सिर झुका लेते हैं कि अब क्या भौंकना! आदमी ही हमारा काम किए दे रहे हैं।
एक क्लर्क का सुत नचिकेता,
लख घर के दुख-शोक।
कथा याद कर उपनिषदों की
चला गया यमलोक।
यम बोला--हे बालक! तेरी
पूरी होगी आशा।
तीन दिवस तू रहा हमारे,
घर में भूखा-प्यासा।
वत्स! मांग ले देता हूं मैं,
तीन तुझे वरदान।
नचिकेता चिल्लाया--रोटी,
कपड़ा, और मकान।
मॉडर्न नचिकेता! तुम पहुंच भी जाओगे तो और क्या करोगे? तुम्हें अगर ईश्वर भी मिल जाए, कृष्णकांत, और तुमसे पूछे--बोलो, बोलो बेटा क्या चाहते हो?--तो तुम क्या मांगोगे? कुछ क्षुद्र, कुछ व्यर्थ, कुछ दो कौड़ी का। और लगे ही रहे पीछे तो दो कौड़ी की चीजें हैं, मिल ही जाएंगी।

दोपहरी में चोर द्वार का,
तोड़ रहा था ताला।
पुलिसमैन था खड़ा सड़क पर,
बोले उससे लाला--
खड़े-खड़े क्या देख रहे हो,
पकड़ो इसे सिपाही।
कहा सिपाही ने--इसको मैं,
नहीं पकड़ता भाई,
आगे चल कर यह मेरी,
सर्विस को खो सकता है।
खुले आम चोरी करता है,
मंत्री हो सकता है।

तुम पूछते होः "मैं धर्म में जरा भी रुचि नहीं ले पाता हूं, लेकिन राजनीति में बड़ी मेरी उत्सुकता है।"
अहंकार में उत्सुकता है। राजनीति अहंकार का फैलाव है, अहंकार का व्यवसाय है, व्यापार है। और धर्म बिल्कुल उलटा है।
हारे हुए राजनीतिज्ञ धर्म में उत्सुकता लेने लगते हैं, क्योंकि फिर
वे सोचते हैं कि अब यहां तो बाजी हार गए, अब आगे की सुध लें। मतलब--अब आगे वहां राजनीति चलाएं। परलोक में भी अब उनकी चेष्टा है कि आगे। राजनीति का जाल बड़ा गहरा है।
जीसस, जिस दिन सूली लगी, अंतिम दिन शिष्यों से विदा ले रहे हैं। और तुम्हें पता है, शिष्यों ने क्या पूछा? और इन्हीं शिष्यों ने फिर ईसाइयत खड़ी की। शिष्यों ने यह पूछा कि गुरुदेव, आप तो अब विदा होते हैं, एक प्रश्न हमारा हल कर जाएं, क्योंकि फिर हम किससे पूछेंगे? प्रश्न हमारा यह है कि परलोक में, प्रभु के राज्य में जिसकी आपने जीवन भर चर्चा की और जिससे

प्रभावित होकर हम आपके साथ आ गए थे... । लगता है वह राज्य शब्द उनको धोखा दे दिया! प्रभु का राज्य--किंगडम ऑफ गॉड! उन्होंने सोचाः यहां का राज्य क्या! अरे यहां का राज्य तो क्षणभंगुर है! महात्मागण समझाते हैं--शाश्वत, सनातन, सदा चलने वाला! वही जीसस समझा रहे हैं।... उस शाश्वत राज्य में आप तो परमात्मा के बिल्कुल बगल में बैठेंगे, आपका तो नंबर दो स्थान होगा; मगर हम आपके जो बारह खास शिष्य हैं, हम किस क्रम से बैठेंगे, यह तो बता जाएं!
यह तुम चकित होओगे जान कर, अंतिम दिन, विदा के दिन, जीसस को सूली लग रही
है और इन मूढ़ों को यह प्रश्न सूझा है! कृष्णकांत, तुम्हारे जैसे ही लोग रहे होंगे। अभी भी राजनीति है। अब उनको फिकर यह लगी है कि हम बारह में से कौन प्रथम होगा, कौन द्वितीय, कौन तृतीय? ये बारह में से आखिर सभी तो नंबर तीन पर नहीं हो सकते। जीसस को तो वे कहते हैं कि चलो आपको हम स्वीकार करते हैं कि आप नंबर दो पर होंगे; ईश्वर प्रथम, आप नंबर दो, फिर नंबर तीन कौन? इतना जाते-जाते बता जाएं।
जिंदगी भर यह आदमी समझाता रहाः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं! और मरते वक्त उसके ही शिष्य पूछ रहे हैं कि इतना तो बता जाएं कि प्रथम कौन होगा! जीसस की आंखों से अगर खून के आंसू टपके हों तो आश्चर्य नहीं। और फिर इन्हीं शिष्यों ने ईसाइयत खड़ी की। यह बड़ी हैरानी की बात है कि बुद्ध ने बुद्ध धर्म खड़ा नहीं किया; उन बुद्धुओं ने खड़ा किया, जो बुद्ध को समझे ही नहीं कभी। और ईसाइयत की उन बुद्धुओं ने खड़ी की, जिन्होंने ईसा को कभी समझा नहीं। और वही हाल सारे धर्मों का है। बुद्ध और जीसस और जरथुस्त्र तो पर्वत के शिखरों से बोलते हैं। उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे हो जाते हैं, वे पता नहीं किन-किन कारणों से इकट्ठे हो जाते हैं। उनकी अपनी आकांक्षाएं हैं। वे उन्हीं आकांक्षाओं के कारण इकट्ठे हो जाते हैं।
एक ईसाई फकीर को एक आदमी ने चांटा मार दिया। क्योंकि वह ईसाई फकीर हमेशा अपने व्याख्यानों में कहता था कि जीसस ने कहा हैः जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दायां गाल कर देना। यह आदमी नास्तिक था। इसने कहा कि बहुत बकवास लगा रखी है, इसने, आज देख ही लें। तो उसने एक चांटा उसके बाएं गाल पर लगाया और चकित हुआ मारने वाला, क्योंकि फकीर ने तत्क्षण अपना दायां गाल उसके सामने कर दिया। मगर मारने वाला भी कुछ यूं इतनी जल्दी हार जाने वाला न था। उसने और भी कस कर दाएं गाल पर भी एक चांटा जड़ दिया। बस इसके बाद जो ईसाई फकीर उस पर टूटा, जो उसकी पिटाई की, जो उसकी मरम्मत की... । फकीर यूं ही मस्त होते हैं! नास्तिक आदमी था, वह तो सोच-विचार में ही दुबला था। फकीर को क्या सोच-विचार! आस्तिक को क्या सोच-विचार! श्रद्धा से जीता है। डट कर खाता-पीता था। उसने वह मरम्मत की--मुस्तंडा था--कि वह नास्तिक की छाती पर बैठ कर जब उसको कूटने लगा, तो उस नास्तिक ने कहाः भई, सुनो तो! जीसस ने क्या कहा है, भूल गए?
उसने कहाः नहीं भूला। जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दायां कर देना। मगर तीसरा तो कोई गाल ही नहीं है, अब मैं स्वतंत्र हूं। अब मैं तुझे मजा चखाता हूं। जहां तक जीसस ने कहा था, वहां तक पालन कर लिया। अब तो बात खत्म हो गई। अब तो मैं अपना मालिक, अब नियम के बाहर बात है। इसके आगे जीसस कुछ कह नहीं गए हैं।
बुद्ध से एक आदमी ने पूछाः आप बहुत कहते हैं कि क्षमा करो। कितनी बार? आखिर हर चीज की सीमा होती है!
तो बुद्ध ने कहाः सात बार क्षमा करो। उस आदमी ने कहाः अच्छी बात है!
जिस ढंग से उसने कहा अच्छी बात, साफ हो गया बुद्ध को कि यह आदमी खतरनाक है। ये आठवीं बार में ऐसा बदला लेगा कि जैसे सौ सुनार की और एक लोहार की! कहाः ठहर भाई, सत्तहतर बार।
उस आदमी ने कहाः आप इतनी जल्दी बदल गए! क्यों बदल गए?
तो बुद्ध ने कहाः तूने जिस ढंग से कहा कि अच्छी बात, उससे जाहिर हो गया
कि तू सात बार बरदाश्त कर लेगा और आठवीं की प्रतीक्षा करेगा। सच तो यह है कि जब कोई पूछता है कितनी बार क्षमा करें, तभी गलत प्रश्न पूछता है। क्षमा में भी कोई गिनती का सवाल है? गणना का सवाल है, माप-तौल से क्षमा करोगे? तो तुम क्षमा का अर्थ ही नहीं समझे।

जब कोई पूछता है प्रेम कितना--तोला, छटांक, आधा पाव, पाव, आधा गज, गज, दो गज, या मीटर, दो मीटर, कितना? जब कोई इस तरह की बातें पूछने लगता है, गुणों के संबंध में जब कोई मात्रा की बात पूछता है, तो समझ जाना कि गलत बात उसने पूछी। उसके उत्तर में जो भी कहा जाएगा, उसका परिणाम बुरा होगा। वह उस उत्तर में से अपना रास्ता निकाल लेगा।
अगर तुम्हें राजनीति में उत्सुकता है तो मूल को समझो, तुम्हें अपने अहंकार में उत्सुकता है। तुम अभी अपने अहंकार के फुग्गे को फुलाना चाहते हो। तो फुला ही लो। और डट कर फुला लो, क्योंकि खूब फुग्गे को फुलाओ तो फूट ही जाता है। और अनुभव से ही आदमी सीखे तो सीखे। मेरी मान कर मत राजनीति छोड़ देना, नहीं तो तुम यहां राजनीति चलाओगे। राजनीति का जाल ऐसा गहरा है कि तुम जहां जाओगे वहीं चलाओगे।
धर्म में भी चलती है राजनीति, खूब चलती है! वहां कौन ऊपर कौन नीचे! वहां भी सीढ़ियां बन जाती हैं, हायरेरकी बन जाती है। एक दफा राजनीति से तुम बिल्कुल साफ-साफ सजग हो जाने चाहिए, तो ही धर्म में गति हो सकती है। क्योंकि धर्म का तो पूरा का पूरा आयाम भिन्न है। यहां तो मिटना है। यहां तो खोना है। यहां तो समाप्त होना है। यहां तो शून्य होना है। क्योंकि जो शून्य होगा, वही परमात्मा से पूर्ण हो पाता है।
राजनीति और धर्म की भाषा ही अलग-अलग भाषा है।
एक राजनेता के घर एक आदमी ने आ कर द्वार पर दस्तक दी। नौकर ने पूछाः क्या बात है श्रीमान?
आगंतुक ने कहाः तुम्हारे साहब घर पर हैं? एक बिल।
नौकर तत्क्षण बोलाः साहब तो कल शाम ही शहर के बाहर चले गए थे।
आगंतुक ने कहाः मुझे उनका यह बिल अदा करना था।
नौकर बोलाः फिकर न करें, वे आज ही सुबह वापस आ गए हैं। मैं उन्हें बुलाता हूं, आप बैठिए।
राजनीति की तो दुनिया ही अलग है। वहां तो हर चीज चालबाजी है, बेईमानी है, धोखाधड़ी है। राजनीतिक को देख कर तुम यह भी तय नहीं कर सकते कि वह पूरब की तरफ जा रहा है कि पश्चिम की तरफ जा रहा है। देखता पूरब की तरफ है, चलता पश्चिम की तरफ है; या एक आंख पूरब एक आंख पश्चिम, एक टांग उत्तर, एक दक्षिण। जब हवा का रुख जैसा हो जाए। वास्तविक राजनेता तो उसी को कहते हैं, जो देख ले कि जनता किस तरफ जा रही है और इसके पहले कि जनता उस तरफ जाए, उचक कर आगे हो जाए। जो इसमें चूक जाते हैं उनकी दुर्गति हो जाती है।
अब इस तरह के लोगों की तुम दुर्गति तो रोज देखते हो। जैसे बाबू जगजीवन राम, अब जग्गू भैया हो गए। दुर्गति हो गई! इस बार वे उचक कर सामने नहीं हो पाए, जरा चूक गए। पिछली बार उचक कर बिल्कुल ठीक मौके पर भीड़ के सामने हो गए थे।
आमतौर से लोग समझते हैं नेता आगे होता है। नेता अपने अनुयायियों का
भी अनुयायी होता है, यह खयाल रखना। वह देखता रहता हैः अनुयायी किस तरफ जा रहे हैं, हवा का रुख किस तरफ है?
राजनीति तो भीड़ की दुनिया है। भीड़ जो मानती है, उसको ही फुसलाओ, उस पर
ही मक्खन लगाओ। भीड़ जो मानती है, उसका ही गुणगान करो।
और धर्म तो क्रांति है। यहां तो सिवाय सत्य के और परमात्मा के न किसी
का कोई गुणगान है, न संभावना है। धर्म तो भीड़ के विपरीत पड़ जाता है। राजनीति का भीड़ के साथ तालमेल है।
तुम्हें अगर राजनीति में उत्सुकता हो तो उत्सुकता को पूरी ही कर लो। आधे कच्चे, मेरी बातें सुन कर छूट मत आना। पक कर ही गिरो। इस जन्म में न हो, अगले जन्म में होगा। लेकिन अधकच्चे गिरना उचित नहीं है। नहीं तो आदमी लौट-लौट जाता है। तुम्हारे अनंत-अनंत जन्मों की यात्रा में बहुत बार तुमने धर्म में उत्सुकता ली होगी, मगर वह उत्सुकता काम नहीं आई, क्योंकि तुम कच्चे थे। फिर-फिर तुम लौट गए। पुराने गड्ढों ने तुम्हें फिर आकर्षित कर लिया। एक बार उस उत्सुकता को पूरा ही कर लो। मैं भरोसा करता हूं अनुभव में।

और राजनीति का अनुभव अत्यंत दुखांत है। अगर तुम होशपूर्वक राजनीति का अनुभव कर लो तो किसी को समझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जहर कड़वा है यह समझाने की जरूरत नहीं पड़ती है। मगर अगर तुम बिना अनुभव किए मेरी बात सुन लिए, संन्यस्त हो गए, छोड़ दिया कि राजनीति में कुछ सार नहीं है, तो यह यूं ही होगा जैसे लोमड़ी ने कहा था कि अंगूर खट्टे हैं, क्योंकि पहुंच नहीं पाई अंगूरों तक। अंगूरों को चख ही लो। न तो अंगूर खट्टे हैं, न मीठे हैं, अंगूर हैं ही नहीं! बस दूर से दिखाई पड़ते हैं। जैसे-जैसे पास पहुंचते हो, वैसे- वैसे तिरोहित होते चले जाते हैं। मृग-मरीचिकाएं हैं।
जिस दिन राजनीति तुम्हारे जीवन में हार कर गिर जाएगी, उस दिन तुम्हारे जीवन में धर्म का सच्चा सूत्रपात होगा। और राजनीति से तुम सिर्फ उतना ही मत समझना जितना राजनीति में समझा जाता है। राजनीति का जाल बड़ा है। पति राजनीति चलाता है पत्नी के ऊपर, कब्जा किए हुए है। वह भी राजनीति है।
छोटा दायरा है उसका। पत्नी राजनीति चलाती है पति के ऊपर, बच्चों के ऊपर। मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि तुम्हारे घर में किसकी चलती है? तो उसने कहा कि सबकी चलती है--यथायोग्य, यथास्थान। पूछने वाले ने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। उत्तर जरा आपका दार्शनिक है। थोड़ा विस्तार से कहिए। यथायोग्य, यथास्थान!
तो उन्होंने कहा कि जैसे पत्नी की मेरे ऊपर चलती है, बच्चों के ऊपर चलती है। बच्चों की भी मेरे ऊपर चलती है। लेकिन मेरे कुत्ते के ऊपर सिर्फ मेरी चलती है। ऐसा डांटता-डपटता हूं! गुस्सा आ जाता है, पूंछ मरोड़ देता हूं। सुबह घुमाने ले जाता हूं। कुत्ता लाख उपाय करे वृक्षों के पास पहुंचने के, नहीं पहुंचने देता। घसीटता ही चला जाता हूं। जितना तड़पा सकता हूं तड़पाता हूं। अरे वे मुझको तड़पा लेते हैं, मैं उसको तड़पा लेता हूं। और कुत्ता भी, घर में जो बिल्ली है, उस पर चलाता है और दिल खोल कर चलाता है! और बिल्ली चूहों पर चलाती है। सब यथास्थान, यथायोग्य। सबकी चल रही है।
अगर तुम गौर से देखोगे तो राजनीति सबकी चल रही है। किसी की छोटी, किसी
की बड़ी। यह सब राजनीति है। कुछ ऐसा नहीं है कि राजनेताओं की ही चलती है। जहां भी तुम अधिकार की घोषणा करते हो, जहां भी तुम किसी दूसरे व्यक्ति के ऊपर मालकियत सिद्ध करते हो, जहां भी तुम चाहते हो कि दूसरा मेरे द्वारा चले, मेरे अनुशासन में चले, मैं जैसा कहूं वैसा चले--बस वहीं राजनीति आ गई। दूसरे पर मालकियत करना दूसरे की हत्या करना है।
राजनीति हिंसा है। राजनीति अहिंसक हो ही नहीं सकती। महात्मा गांधी की राजनीति भी अहिंसक नहीं थी, सिर्फ दिखावा अहिंसक था। जैसे गांधी जी के आश्रम में एक आदमी ने चाय पी ली, बस पाप हो गया! यूं तो चाय निर्दोष चीज है, कुछ खास पाप नहीं। जरा सा निकोटिन होता है, इतना कम निकोटिन होता है और वह भी कोई की जान नहीं ले लेता, कि अगर तुम दस कप चाय रोज पीओ और बीस साल में जितनी चाय पीओ, उस सबका निकोटिन निकाल कर अगर एकबारगी में तुम्हें दिया जाए तो मौत होगी। कोई ऐसी घबड़ाने की जरूरत नहीं है निकोटिन से इतनी, इतना कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं है। लेकिन गांधी जी के आश्रम में चाय पर पाबंदी थी, चाय नहीं पी सकते। सिर्फ एक व्यक्ति को छूट थी--राजा जी को, क्योंकि वे समधी थे। अब समधी के साथ तो समधी का व्यवहार करना पड़ता है। उनके साथ तो नियम नहीं चल सकते। मगर एक आश्रमवासी चाय पीता हुआ पकड़ा गया। अब तुम देखते हो मजा! जहां जबरदस्ती की जाएगी, वहां छोटी-छोटी चीजें पाप हो जाएंगी। अब वह आदमी अपराध-भाव से भर गया। पहले तो उसने इनकार किया कि मैंने पी ही नहीं। मैं तो सिर्फ बना रहा था।
अरे तो तुम बना किसलिए रहे थे? अब कोई चाय बनाता है बिना पीने के लिए! ...
... कि नहीं, मैं तो सिर्फ बना कर देख रहा था!
तो किसलिए देख रहे थे?
कि मतलब कैसी होती है! मगर लोगों ने कहा, हमने इसको पीते भी देखा है। तुम्हारे वहां कप-बसी किसलिए हैं? कप-बसी भी पकड़े गए। जब उसको बहुत ही डांटा-डपटा गया तो वह राजी हुआ कि हां, उसने चाय पी है। मगर सिर्फ एक दफा पी है। तो कप-बसी किसलिए रखे हो? एक दफे तो आदमी गिलास से भी पी ले। कप-बसी रखे

हो, केतली रखे हो, इसका मतलब है कि इंतजाम तुमने पूरा किया हुआ है। और चाय की कोई छोटी-मोटी पुड़िया नहीं, पूरा ब्रुक-ब्रांड का डब्बा रखे हुए हो! गांधी जी ने अनशन कर दिया तीन दिन का, कि जब तक यह आदमी अपने अपराध की क्षमा नहीं मांगता और अपनी भूल स्वीकार नहीं करता, वे तीन दिन उपवास करेंगे। अब इसको तुम क्या कहोगे? यूं तो लगता है कि अहिंसात्मक है, मगर नहीं, यह हिंसा है, यह परोक्ष हिंसा है। अब किसी गरीब आदमी को चाय भी न पीने दो और धमकी दो कि मैं अपने को मार डालूंगा! यह धमकी है। यह शुद्ध धमकी है। सिर्फ लफ्फाजी है अहिंसा की। यह कहना कि मैं तीन दिन... अब तीन दिन गांधी ने भोजन नहीं किया। अब सारा आश्रम उसके खिलाफ पड़ा है। हर आदमी उसको कचोट रहा है। हर आदमी उस पर लानत भेज रहा है। हर आदमी उससे कह रहा हैः अरे शर्म खाओ! अरे बेशर्म! अरे पापी! तुझे इतना पता नहीं है कि बेचारे वृद्ध गुरु को इस तरह सता रहा है! एक जरा सी सड़ी सी चाय का स्वाद, एक क्षण भर का स्वाद, क्या मिल गया तुझे? अगर उनकी मौत हो जाए तो? और उसकी कितनी निंदा और अपमान हो रहा है... यह सब निंदा और अपमान हिंसा है।
मैंने सुना, एक गांव में एक आदमी ने--एक युवक ने--एक घर के सामने जाकर रात बिस्तर लगा दिया। घर के मालिक ने पूछा कि आप यहां बिस्तर क्यों लगा रहे हैं, मेरे बरांडे में? तो उसने कहा कि हैं सत्याग्रह कर रहा हूं। काहे के लिए सत्याग्रह कर रहे हैं? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?
आपने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा। मुझे आपकी लड़की से विवाह करना है। जब तक
आप विवाह नहीं करवाएंगे तब तक मैंने आमरण अनशन किया हुआ है। मैं सत्याग्रह करूंगा।
सारे गांव में हवा फैल गई, भीड़ लग गई। और स्वभावतः जो भी सत्याग्रह करे, लोगों का हमेशा उसके लिए साथ है। लोग कहने लगे कि बात तो ठीक है, अहिंसक आदमी है बेचारा, भला आदमी है, खादी पहने हुए है। और लोग फूलमालाएं पहनाने लगे। पहले तो उसी के दो-चार दोस्तों ने पहनाईं, फिर लोग तो नकलची हैं, फिर जब फूलमालाएं चढ़ रही हैं तो औरों ने भी चढ़ाईं। फिर तो झंडे वगैरह लग गए, झंडियां लटक गईं। वह बेचारा गरीब बाप तो बहुत घबड़ाया कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। इस लफंगे के साथ वह अपनी लड़की की शादी करना नहीं चाहता। करना क्या? इससे बचो कैसे? और गांव भर उसको लानत देने लगा कि अरे क्या तुम कर रहे हो, क्या जान लोगे इसकी? पछताओगे जिंदगी भर! इसका प्रेम तो देखो। इसको कहते हैं प्रेम! मजनू भी यह नहीं किया। यह आदमी मजनू से भी आगे निकल गया। फरहाद को भी मात कर दिया इस आदमी ने।
दो दिन में तो उस आदमी की फजीहत हो गई, हालांकि रात को उसके मित्र आकर उसको खाना भी खिला जाते। और शोरगुल मच गया, अखबारों में फोटो छप गए और सब तरफ निंदा होने लगी बाप की। आखिर उसे कुछ न सूझा तो गांव के एक वृद्ध सर्वोदयी से उसने जाकर पूछा कि आप कुछ बताएं, अब मैं क्या करूं?
उसने कहाः एक ही रास्ता है। मैं एक वेश्या को जानता हूं। बूढ़ी है, भयानक है, कोढ़ भी निकल आया है, शरीर गल गया है, दांत सब गिर गए हैं। देख कर पहले ऐसा शक होता है कि शायद कोई चुड़ैल है। तुम उसको राजी कर लो। उसको भी कहो कि तू भी बिस्तर लगा दे।
उसने भी बिस्तर लगा दिया बुढ़िया ने आकर। वह युवक के पास जब बिस्तर लगाने लगी, उस युवक ने पूछाः यह क्या कर रही है? माई तू यहां बिस्तर किसलिए लगा रही है?
उसने कहा कि मैं तुझसे विवाह करूंगी। नहीं तो आमरण अनशन करूंगी।
रात ही वह युवक अपना बिस्तर लेकर भाग गया, कि इसके साथ कौन विवाह करेगा! सत्याग्रह से ऐसे सत्याग्रह कटा। मगर यह सब अहिंसा है? यह सब हिंसा है। जब भी तुम दूसरे पर अपने को थोपना चाहते हो--हिंसा है। और जब भी तुम दूसरे पर अपने को थोपते हो--यह राजनीति है। इसलिए अगर तुम राजनीति से बच भी गए, कम्युनिस्ट न हुए, सोशलिस्ट न हुए, कांग्रेसी न हुए, यह न हुए, वह न हुए--तो तुम फिर छोटी-मोटी राजनीति चलाओगे। पति हो जाओगे, बाप हो जाओगे। इसलिए तो पति होने में इतना रस है। कितने ही कष्ट सहे आदमी, लेकिन पति होना चाहते हैं। किसी और पर न चलेगा, कम से कम पत्नी पर तो चलेगा। बाप बनना चाहते हैं। किसी और पर न चलेगा तो कम से कम बेटे पर तो चलेगा! बाप बेटों पर

चला लेते हैं। फिर जब बूढ़े हो जाते हैं तो बेटे बापों पर चला लेते हैं। ऐसे सबका जी भर जाता है, सबकी राजनीति पूरी हो जाती है।
मगर तुम गौर करना। राजनीति सूक्ष्म बात है। जब तक अहंकार है तब तक राजनीति रहेगी। अहंकार की छाया है राजनीति। अहंकार से मुक्त हो जाओ, तो ही राजनीति से कोई मुक्त हो सकता है। और तभी धर्म में प्रवेश है।

चौथा प्रश्नः ओशो! मैं अपने परिवार और परिचितों द्वारा मूढ़मति समझा जाता हूं। क्या मैं भी निर्वाण पा सकता हूं? आज ही पहली बार आपके सान्निध्य में उपस्थित हुआ हूं।

बनारसी दास! मैं तुम्हारे परिवार, और परिचितों को दोष नहीं दे सकता। पहली ही बार उपस्थित हुए हो और लंबी छलांग लगा रहे हो--एकदम निर्वाण! क ख ग से शुरू करो। ध्यान की पूछो। तुम समुद्र लांघने चले! मूढ़मति कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। तुमने आते ही अपनी मति प्रकट कर दी। अभी मैंने तुम्हें देखा भी नहीं, तुम्हें जाना भी नहीं। अब मैं कहूं भी तो कैसे कहूं कि तुम निर्वाण पा सकोगे कि नहीं पा सकोगे?
एक लंबा-तगड़ा बहुत ही मोटा व्यक्ति दर्जी की दुकान पर पहुंचा। दर्जी
ने बड़ी कठिनाई से नाप लेकर हांफते हुए कहाः जनाब, इस शेरवानी की सिलाई के सौ रुपये होंगे।
परंतु तुमने तो टेलीफोन पर पचास रुपये बताए थे!
दर्जी ने पसीना पोंछते हुए कहाः जी हां, बताए तो थे, परंतु शेरवानी के बताए थे, शामियाने के नहीं।
पहले मुझे तुम्हें देख तो लेने दो, शेरवानी बनानी है कि शामियाना बनाना है, माजरा क्या है! अभी मैंने तुम्हारे दर्शन नहीं किए, दरस-परस हो जाने दो, फिर सोच लेंगे, निर्वाण की इतनी जल्दी क्या है? और निर्वाण का मतलब समझते हो? शायद तुम्हें मतलब भी पता नहीं होगा। निर्वाण शब्द खतरनाक है। निर्वाण शब्द का अर्थ ही हैः दीये का बुझ जाना। वह जो तुम्हारे भीतर अहंकार का दीया है, वह बुझ जाए।
रवींद्रनाथ बजरे पर यात्रा कर रहे थे। रात थी आधी। पूरा चांद! और बजरे
की अपनी कोठरी में, नाव पर वे देर तक पश्चिम के एक बहुत बड़े सौंदर्यशास्त्री, क्रोशे का एक ग्रंथ पढ़ते रहे--सौंदर्यशास्त्र क्या है, इस संबंध में। आधी रात, थके-मांदे। सौंदर्य के संबंध में जो पहले समझते थे वह भी गड़बड़ हो गया। क्रोशे उलझा हुआ दार्शनिक है। उससे कोई सुलझने की आशा न करे। जो क्रोशे को पढ़ेगा, वह सुलझा हुआ होगा तो उलझ जाएगा। दार्शनिक होते ही उलझे हुए लोग हैं। जिन चीजों के संबंध में तुम्हें पहले खयाल था सब ठीक-ठाक है, वह भी सब गड़बड़ हो जाता है। दार्शनिक ऐसे-ऐसे प्रश्नों पर विचार करते हैं, जिन पर तुमने कभी सोचा ही नहीं। जैसे दार्शनिक पूछते हैं कि दो और दो सच में ही चार होते हैं, हो सकते हैं दो और दो चार? तुम कहोगेः यह भी कोई सवाल है! मगर दार्शनिक इस पर विचार करते हैं। कुछ दार्शनिक हैं, जो कहते हैं कि कभी नहीं हो सकते दो और दो चार, क्योंकि दो चीजें एक जैसी होती ही नहीं। तो चार चीजें तो एक जैसी कैसे हो सकती हैं! इसलिए या तो पौने चार होंगे या सवा चार होंगे, मगर ठीक चार नहीं हो सकते। और फिर दो और दो चार क्यों होते हैं? क्या कारण है दो और दो चार के होने का? प्रकृति में तो कोई गणित होता नहीं; यह तो आदमी की ईजाद है, काल्पनिक है।
तुमने शायद सोचा ही नहीं होगा कभी। दो और दो चार तो हम मान कर चलते हैं। हम तो कहते हैं; जब किसी बात को कहना होता है बिल्कुल साफ है, तो हम कहते हैं बिल्कुल दो और दो चार की तरह साफ है। मतलब इससे ज्यादा और साफ क्या बात होगी! मगर नहीं, दार्शनिक के लिए दो और दो चार भी इतनी साफ बात नहीं है, बहुत उलझी हुई बात है।
आदमी की सारी गिनतियां दस के आंकड़ों पर बनी हैं। और कारण यह है कि आदमी की दस अंगुलियां होती हैं। अब जब तुम किसी देहाती को अंगुलियों पर गिनती करते देखते हो तो हंसते हो। हंसना मत। तुम भी वही कर रहे हो। सारी दुनिया का गणित दस पर बना हुआ है। वे सब देहाती की अंगुलियां हैं। हजारों

साल में अंगुलियां तो हट गई हैं, मगर दस की गिनती कायम है। अब दस की कोई अनिवार्यता नहीं है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा दार्शनिक हुआ--लीबनिज! उसने तीन ही आंकड़े माने--एक, दो, तीन। वह कहताः तीन काफी हैं, दस आंकड़े मानने की जरूरत नहीं है, अनिवार्यता नहीं है। अगर एक दो तीन मानो, तो दो और दो चार नहीं हो सकते। चार होते ही नहीं है लीबनिज के हिसाब में। फिर दो और दो कितने होंगे? दो और दो होंगे दस, क्योंकि तीन के बाद आएगा दस, फिर ग्यारह, फिर बारह, फिर तेरह, और फिर बीस।
अलबर्ट आइंस्टीन ने तो तीन का आंकड़ा भी तोड़ दिया था। आइंस्टीन मानता था, दो काफी है--एक और दो। तो अलबर्ट आइंस्टीन के साथ तो और भी फर्क पड़ जाएगा। अलबर्ट आइंस्टीन ने कहा कि दो से कम आंकड़े नहीं हो सकते, कम से कम दो अनिवार्य हैं; बस दो से काम चल जाएगा।
तो दो और दो चार होते हैं, इतनी साफ बात नहीं है दार्शनिकों के साथ। रवींद्रनाथ सोचते थे, सौंदर्य सरल बात है। कवि थे, सौंदर्य का अनुभव किया था, मगर यह क्रोशे को पढ़ कर तो उनको और अड़चन हो गई, उलझ गए, थक गए। एक छोटी सी मोमबत्ती जला कर पढ़ रहे थे। मोमबत्ती फूंक कर बुझा दी, किताब बंद कर दी। सिर से पसीना पोंछ लिया। और जैसे ही पसीना पोंछ कर आंख खोलीं, चकित हो गए, एकदम चकित हो गए, अवाक हो गए। रंध्र-रंध्र से, बजरे के छिद्र-छिद्र से चांद की रोशनी भीतर आ गई। नाचने लगी रोशनी। द्वार खोला, चांद द्वार पर ही खड़ा था, भीतर आ गया। बाहर निकले, अपूर्व रात्रि थी! सारा आकाश स्निग्ध चांदनी से पटा पड़ा था। सारी नदी चांदी से पटी पड़ी थी। रवींद्रनाथ की आंखें आनंद के आंसुओं से गीली हो गईं। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि मैं भी कैसा पागल हूं, सौंदर्यशास्त्र क्या है यह किताब में देख रहा था, जब कि सौंदर्य मेरे चारों तरफ बिखरा हुआ पड़ा था! और एक अदभुत अनुभव मुझे आज हुआ है कि मेरी पीली सी मोमबत्ती, टिमटिमाती सी रोशनी, धुआं देती रोशनी, उसकी वजह से चांद भीतर नहीं आ पा रहा था! जैसे ही मैंने वह टिमटिमाता मोमबत्ती का प्रकाश बुझा दिया, वैसे ही चांद भीतर चला आया।
उन्होंने अपनी डायरी में लिखाः ऐसा ही मुझे लगता है हमारा अहंकार है। टिमटिमाता सा! इसको हम बुझा दें तो अनंत सौंदर्य हम पर अभी बरस उठे। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझना। अहंकार बुझ जाए।
तुम पूछ रहे होः "क्या मैं निर्वाण पा सकता हूं?"
तुम सोच रहे हो, निर्वाण कोई पाने की बात है। यह खोने की बात है, भैया! इसमें बिल्कुल मिटने का धंधा है। यह बरबादी का काम है। यह जुआरियों का काम है। मगर तुमने आते ही से राज खोल दिया। तुम न भी कहते कि मैं अपने परिवार और परिचितों द्वारा मूढ़मति समझा जाता हूं तो भी मैं समझ लेता।
एक फौजी आफिसर की पत्नी कम पढ़ी-लिखी थी। अफसर को उसे पार्टी इत्यादि में ले जाते हुए शर्म आती थी। एक बार मित्रों के बहुत जिद करने पर बीबी को बहुत समझा कर एक पार्टी में ले गया। पत्नी पूरे समय चुप रही। लोगों को मुस्कुराते देख कर मुस्कुराई, हंसते देख कर हंसी, गंभीर देख कर गंभीर मुद्रा बनाई तथा अंत तक सब ठीक-ठाक से निभा लिया। अंत में विदाई के समय उसने जो संबोधन किया, वह बड़ा अजीब था। उसने कहाः हार्न प्लीज! सब लोग चौंके। पति भी बहुत चौंका। फिर बाद में पति ने पूछा कि आखिर तूने हार्न प्लीज क्यों कहा? तो पत्नी बोलीः अरे सब लोग कह रहे थे टा-टा, बॉय-बॉय, फिर मिलेंगे, इत्यादि, जो कि ट्रकों के पीछे लिखा होता है। और किसी ने भी नहीं कहा हार्न प्लीज! सो मैंने कहा कि मैं यह कह दूं। एक ही चीज लोग छोड़ रहे थे--हार्न प्लीज! टा-टा, बॉय-बॉय, फिर मिलेंगे, यह सब तो लोगों ने कहा।
कब तक छिपाओगे, कैसे छिपाओगे? कहीं न कहीं से बात प्रकट हो ही जाएगी। तुमने आते ही से जाहिर कर दिया। मगर कोई हर्जा नहीं। अच्छा ही है। अगर कोई व्यक्ति अपने को स्वयं भी मूढ़मति समझ ले तो ज्ञान की शुरुआत हो जाती है। तुम अपने मित्रों को, परिवार के लोगों को, परिचितों को धन्यवाद दो। और तुम अंगीकार कर लो यह बात कि मूढ़मति हो। मूढ़मति तो वे भी होंगे, क्योंकि दुनिया में दो ही मतियां होती हैं--या तो मूढ़मति होते हैं लोग, या बुद्धमति होते हैं। तीसरी तो कोई मति होती नहीं। उनको यह भ्रांति होगी कि वे मूढ़मति

नहीं हैं। मगर तुमको कम से कम चौंका रहे हैं, चलो, तुम पर उनकी इतनी कृपा है! अगर तुम इस बात को स्वीकार कर लो कि मूढ़मति हो तो तुम्हारे जीवन में पहली किरण उतर आए। यह निर्वाण का पहला कदम होगा। अब आज से तुम यह मत कहना कि परिचित और परिवार के लोग ऐसा कहते हैं। आज से तुम यह कहो कि मैं जानता हूं कि मैं मूढ़मति हूं।
स्वभावतः अभी हम मूर्च्छित हैं, बेहोश हैं। हमें पता नहीं कौन हैं, कहां से आए, कहां जा रहे हैं। मूढ़मति न होंगे तो और क्या होंगे? और इसलिए तुम पूछ रहे होः क्या मैं निर्वाण पा सकता हूं? अब निर्वाण कोई लक्ष्य नहीं है, कोई वासना का विषय नहीं है। इसे तुम महत्वाकांक्षा नहीं बना सकते। निर्वाण पाया नहीं जाता। निर्वाण आता है। तुम मिट जाओ तो आता है। जब तक तुम पाने के लिए मौजूद हो तब तक नहीं आता।
कबीर ने कहा हैः जब तक मैं था तब तक हरि नाहिं। और जब से मैं मिटा हूं
तब से हरि ही हरि है।
हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराइ।
बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाइ।।

हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराइ।
समुंद समाना बुंद में सो कत हेरी जाइ।।
खोजते-खोजते--कबीर कहते हैं--मैं खो गया, खोजने वाला खो गया और जब खोजने वाला खो गया तो एक चमत्कार घटा। बूंद सागर में समा गई। और इतना ही नहीं, और एक बड़ा चमत्कार फिर बाद में घटा कि सागर बूंद में समा गया। अब तो अलग करने को कोई उपाय भी न रहा।
निर्वाण उस मिटने की परम अवस्था का नाम है। तुम मिटो तो परमात्मा है-- अभी है, यहीं है!
पर बनारसीदास, जल्दी न करो। धैर्य। बहुत धैर्य चाहिए। अनंत धैर्य चाहिए।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं समझता तो हूं कि विवाह के चक्कर में पड़ना खतरे
से खाली नहीं है। फिर भी मन नहीं मानता है। क्या करूं क्या न करूं? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।

वीरेंद्र सिंह! बहादुर आदमी मालूम पड़ते हो--कम से कम नाम से तो! मत चूक चौहान! कूद पड़ो! ऐसे कहीं डरते हैं! लाख मैं कहूं, लाख बुद्ध पुरुष कहते रहें कि विवाह के चक्कर में पड़ना खतरे से खाली नहीं है--कहने दो। ऐसे विचलित नहीं होते वीर पुरुष किन्हीं की बातों से।
तुम कहते होः क्या करूं क्या न करूं, कुछ समझ में नहीं आता। विवाह करो, फिर पत्नी तय करेगी, तुमको तय करना ही नहीं पड़ेगा--क्या करना है, क्या नहीं करना!
मुल्ला नसरुद्दीन को एक दिन रास्ते पर पुलिसवाले ने रोका, क्योंकि गाड़ी को भगाए जा रहा है--ऐसे रास्ते से, जहां बीस मील से ज्यादा रफ्तार की मनाही है, वह कम से कम अस्सी मील की रफ्तार से जा रहा है। पुलिसवाले ने कहा कि बड़े मियां, होश में हो? बीस मील से ज्यादा रफ्तार की मनाही है। चालान करता हूं। जुर्माना भरना होगा।
नसरुद्दीन ने कहाः अब आपसे क्या छिपाना! गाड़ी के लाइट खराब हैं और रात उतर आ रही है। सो तेजी से भाग रहा हूं कि अंधेरा उतरने के पहले घर पहुंच जाऊं।
तो पुलिसवाले ने कहाः अच्छा तो लाइट भी खराब है! तो जुर्माना और ज्यादा होगा।
नसरुद्दीन ने कहाः अब करो भी क्या! इस गांव में कोई ठीक से मेकेनिक तो मिलते नहीं। लाइट ठीक करवाने गया था उस मूर्ख ने ब्रेक भी खराब कर दिए।
तो पुलिसवाले ने कहाः हद हो गई! तो ब्रेक भी खराब हैं!
तभी पत्नी पीछे से चिल्लाई कि हजार दफे कहा तुमसे फजलू के बाप कि होश
से बातें किया करें। जब भी तुम ज्यादा पी लेते हो, अंट-शंट बकने लगते हो।

पुलिसवाले ने कहाः अच्छा तो ये ज्यादा भी पीए हुए हैं, तो गाड़ी कौन चला रहा है फिर?
नसरुद्दीन ने कहाः गाड़ी तो जब से पत्नी मिली है, पत्नी ही चलाती है।
हम तो सिर्फ स्टियरिंग पर बैठे रहते हैं। यह पीछे से बताती है--बाएं मुड़ो, दाएं मुड़ो, यूं करो, वूं करो। वही हम करते हैं। आप खुद ही देख लो कैसी बमक रही है और हमारी घर जाकर क्या गति होगी!
पुलिसवाले ने झांक कर पत्नी की तरफ देखा और उसने कहाः भैया, तू घर जा! तेरे जुर्माने की कोई जरूरत नहीं है, तेरा जुर्माना हो चुका है। तू काफी दंड भुगत चुका है, और क्या भुगतेगा, जा! तेरा क्या कसूर! ऐसी पत्नी मेरी होती तो मैं भी ज्यादा पी लेता।
तुम पूछते होः "क्या करूं क्या न करूं?"
ऐसी अवस्था में ही तो लोग विवाह करते हैं। पत्नी फिर यह मौका नहीं देती कि क्या करो क्या न करो। पत्नियां बिल्कुल सुनिश्चित होती हैं। इस मामले में उनका मन कभी भी संदेहग्रस्त नहीं होता। यह-वह, ऐसी झंझट में पत्नियां नहीं पड़तीं। वह बिल्कुल उनकी दिशा साफ होती है। और उसी दिशा पर तुमको चलावाएंगी। नहीं चलोगे तो पछताओगे।
तुम कह रहे होः "विवाह के चक्कर में पड़ना खतरे से खाली नहीं है, यह मैं समझता हूं।"
क्या खाक समझते हो! समझते ही होते तो फिर पूछते? सुन रहे हो, समझ नहीं रहे हो। समझोगे अनुभव से। समझोगे तब जब घनचक्कर ही बन जाओगे। तब समझ में आएगा कि चक्कर है।
पंडित जी--एक आदमी पहुंचा पंडित जी के पास और बोला--क्या यह उचित है कि कोई आदमी किसी की गलती का फायदा उठाए?
नहीं, बिल्कुल नहीं--पंडित जी ने कहा।
तो फिर आप मुझे वे रुपये लौटा दीजिए जो मैंने आपको अपनी शादी कराते समय दिए थे।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर में बैठा हुआ था। उसका बेटा पास ही खेल रहा था। अचानक बोलाः नीचे के कमरे में कोई आया है।
मैंने पूछाः हद हो गई, ऊपर के कमरे से तुझे कैसे पता चला? मुझे पता नहीं चल रहा, तुझे कैसे पता चला फजलू कि नीचे के कमरे में कोई आया है? उसने कहाः देखते नहीं हो, अभी तक मम्मी बोल रही थीं, अब मम्मी चुपचाप हैं, पापा बोल रहे हैं। जरूर कोई आया है।

पत्नी होगी तो बोलने का ही मौका नहीं देगी, सोचने वगैरह की तो बात बहुत दूर है। वाणी नहीं खुलने देगी।
नसरुद्दीन के पिता मरे। मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारे पिता चल बसे, आखिरी समय कुछ कह गए?
उसने कहा कि क्या खाक कहते! माताराम अंत तक उनके साथ थीं। बोलने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला।

वाणी ही तुम्हारी इतनी है ओजमयी,
या कि मुझे भय देने के लिए दहाड़ रही हो।
बंकिम नयन से जो देखती हो मेरी ओर,
भृकुटी कटाक्ष है कि मुझे ताड़ रही हो।।
बार-बार पकड़-पकड़ झकझोर देती हो,
स्पर्श करती हो कि वस्त्र फाड़ रही हो?
ऐसा भी क्या प्यार हुआ सारी देह नोच डाली,
च्यूंटी काट रही हो कि खूंटी गाड़ रही हो?

अनुभव! थोड़ा अनुभव करो वीरेंद्र सिंह, कोई भी स्त्री बिल्ली बना कर छोड़ेगी। सिंह वगैरह होना सब भूल जाओगे।

मगर अनुभव से ही लोग सीखते हैं। कई तो ऐसे मूढ़ हैं कि अनुभव से भी नहीं सीखते। अनुभव से भी सीख लें वे तो समझना कि मेधावी हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन को बहुत उदास बैठा देख कर मैंने उससे पूछाः नसरुद्दीन, क्या बात है? इतने गुमसुम क्यों हो? क्या तुम्हारे ऊपर कोई बड़ी आफत आ पड़ी है?
मुल्ला ने कहाः हां। क्या आपको मालूम नहीं, परसों शाम को चंदूलाल की पत्नी चल बसी?
मैंने कहाः मगर चंदूलाल से तो बहुत दिनों से तुम्हारा बैर है, तुम्हें तो खुश ही होना चाहिए।
मुल्ला ने गुस्से में कहाः खुश होना चाहिए! आपका दिमाग खराब हो गया है क्या? अरे कल रात को ही धन्नालाल की पत्नी भी चल बसी और ढब्बूजी की पत्नी को डाकू उठा ले गए। इतना कहते-कहते नसरुद्दीन की आंखों से टपाटप आंसू गिरने लगे। मैंने सांत्वना देते हुए कहाः इतने दुखी न होओ मेरे भाई, एक न एक दिन दुनिया से सभी को जाना होता है।
मुल्ला बोलाः उसी दुख से तो पागल हुआ जा रहा हूं, कि दोस्तों की, दुश्मनों की, सभी की बीबियां मरती जा रही हैं, पता नहीं मैंने ही क्या गुनाह किया है जो परमात्मा मुझ पर कृपा ही नहीं करता है!
वीरेंद्र सिंह, हो जाने दो। अरे चार दिन की जिंदगी है, ऐसे ही गंवा दोगे क्या? कुछ अनुभव लेकर जाओ। कुछ चोटें खाकर जाओ। अब तुम कहते हो कि मन मानता नहीं। मनाओ भी मत, क्योंकि मनाया तो वह जबरदस्ती होगी। मनाया तो खिसल-खिसल जाएगा, फिसल-फिसल जाएगा, बार-बार सताएगा। इस अनुभव से गुजर ही लो।
मैं तो हमेशा इस पक्ष में हूं कि जो भी चीज तुम्हारे मन को पकड़ती है,
उस अनुभव से गुजर ही जाओ। हां, होशपूर्वक गुजरना, ध्यानपूर्वक गुजरना, ताकि एक ही भूल दुबारा न करो।
एक आदमी मरा, स्वर्ग पहुंचा। द्वार पर दस्तक दी। द्वारपाल ने पूछाः विवाहित हो?
उस आदमी ने कहाः हां।
द्वारपाल ने कहाः आ जा भैया, भीतर आ जा। अब तुझे नरक जाने की जरूरत नहीं। नरक तू भोग चुका।
उसी के पीछे दूसरा आदमी चला आ रहा था। उसने यह सुना। उसने भी दस्तक दी। उससे पूछाः विवाहित हो?
उसने कहाः एक बार नहीं, तीन बार।
द्वारपाल ने दरवाजा बंद किया और कहा कि दुखियों के लिए यहां स्थान है, पागलों के लिए नहीं।
अगर कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक किसी भी अनुभव से गुजरे तो एक बार पर्याप्त होगा। और अगर ध्यानपूर्वक जीवन की कोई भी प्रक्रिया को हम समझ लें तो उससे मुक्ति हो जाती है। नहीं तो मन भरमाता रहेगा, भटकाता रहेगा। मैं नहीं कहता कि विवाह मत करो। मैं तो किसी बात की रुकावट नहीं डालता। मैं तो कहता हूं, जो करना है कर ही लो। कल पर मत छोड़ो। कल का क्या भरोसा! कल करते हो तो आज ही कर लो। अनुभव से गुजर जाओ। अनुभव परिपक्वता लाता है, प्रौढ़ता लाता है। अनुभव मुक्ति है। दुख तो आएगा उससे, पीड़ा भी आएगी। मगर कौन बिना पीड़ा के सीखा है?

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
नौवां प्रवचन

धर्मः आत्यंतिक जिज्ञासा

पहला प्रश्नः ओशो! आप अपनी मृत्यु की बात करते हैं तो मैं कांप जाती हूं। प्रभु, हमसे नहीं सुना जाता है। हम तो आपके बिना नहीं रह सकते हैं। यह सोच कर भी दिल दहल जाता है।

धर्म भारती! जीवन को न जानने के कारण मृत्यु का भय है। जैसे प्रकाश न
हो तो अंधेरा होता है। प्रकाश हो, अंधेरा नहीं होता।
हम जीवित तो हैं, लेकिन ठीक-ठीक अर्थों में नहीं--मुर्दा-मुर्दा से, मरे-मरे से। हमारी बस्तियां मरघट से ज्यादा नहीं--मुर्दों के टीले हैं। जीवन को जाना न हो तो कोई जीवित कैसे हो सकता है? और जीवन का अपरिचय ही मृत्यु का भय बन जाता है। स्वभावतः फिर अपनी मृत्यु का भय होता है; जिनसे हम प्रेम करते हैं उनकी मृत्यु का भय होता है। मृत्यु का ही नहीं, मृत्यु शब्द तक से मन कांप उठता है! पर नासमझी है।
मृत्यु बड़ा से बड़ा असत्य है। उससे बड़ा कोई और असत्य नहीं। दुनिया में
दो ही असत्य हैं, और दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू समझो। एक है अहंकार और दूसरा है मृत्यु। अहंकार पहला असत्य है। मृत्यु दूसरा असत्य है। अहंकार का अर्थ हैः मैं पृथक हूं अस्तित्व से, जीवन से। बस यहीं से भ्रांति शुरू होती है। जैसे कोई लहर अपने को सागर से भिन्न मान ले। मान लेने से भिन्न हो नहीं जाती। मगर मान लेने से भय पैदा होता है कि कहीं मिट न जाऊं, कहीं सागर में खो न जाऊं! तो अपने को बचाने की कोशिश में लग जाती है। वही मनुष्य की चिंता है, संताप है।
लहर सागर है! मिट कर भी मिटेगी नहीं। बन कर भी बनी कहां? न कोई जन्म है,
न कोई मृत्यु है। लहर केवल एक रूप मात्र है। इसलिए ज्ञानियों ने हमारे तथाकथित अस्तित्व को नाम-रूप कहा है। लहर एक नाम है। यूं तो सागर ही है।
जरा गहरे झांको तो सागर को ही पाओगे। जरा डुबकी मारो, सागर ही मिलेगा। और लहर खोएगी कैसे? जब थी ही नहीं तो खोने का कोई उपाय नहीं है।
अहंकार हमारी पहली भ्रांति है। फिर अड़चनों का सिलसिला शुरू होता है। फिर चिंता पकड़ती है, कहीं मैं मिट न जाऊं! तो पहले तो मान बैठे कि मैं हूं।
बिना सोचे-समझे मान बैठे कि मैं हूं। न देखा, न खोजा, न जांचा, न परखा। भीतर गए नहीं। बस मान लिया। एक विश्वास है कि मैं हूं, इससे ज्यादा नहीं। जिस दिन तुम जानोगे मैं हूं ही नहीं, उसी दिन मृत्यु भी मिट गई। फिर कौन मिटेगा? फिर परमात्मा है।
मैं को हम पकड़ते हैं जोर से। जितनी जोर से मैं को पकड़ते हैं, उतना ही
भय छा जाता है। क्योंकि कहीं गहरे में, कहीं अचेतन में यह प्रतीति तो बनी ही रहती है कि मिटना होगा; हम जिसे पकड़े हैं वह आभास है। लाख कोई अपने को धोखा दे, तिनकों के सहारे, सहारे नहीं होते। समझा लो भला थोड़ी देर मन को, पर देर-अबेर भ्रांति टूटेगी ही। रोज-रोज टूटती है... कोई मरता है, कोई अरथी निकलती है और तुम्हें भी पता चलता है--मरना होगा, यूं ही अरथी निकलेगी। न हम मरना चाहते हैं--न जिन्हें हम प्रेम करते हैं, चाहते हैं कि वे मरें। मगर मजा यह है कि मरता कोई कभी है ही नहीं। इसलिए चिंता बिल्कुल व्यर्थ है।
चिंता यूं है जैसे नंगा नहाता नहीं--इस डर से कि नहाएगा तो निचोड़ेगा कहां, कपड़े सुखाएगा कहां? कपड़े हैं ही नहीं, लेकिन निचोड़ने और सुखाने की चिंता नहाने नहीं देती। नंगा तो जी भर के नहाए, क्या डर है? उसका क्या खो जाएगा?
पर हमने मान लिया है कि हम हैं। यह मनुष्य-जाति का मूलभूत पागलपन है। उसको ही तुम स्वभावतः मुझ पर भी आरोपित कर दोगे। मैं चाहता हूं कि तुम जागो इस भ्रांति से, इस सपने से। लेकिन तुम अपने सपने को मुझ पर ही आरोपित कर दोगे। मैं चाहता हूं तुम्हारी आसक्ति टूटे, मिटे; लेकिन तुम अपनी आसक्ति का जाल मुझ पर ही फेंक दोगे।

लेकिन अभी,
मुर्गे की समझ नहीं आया।

सुनते हो मुझे, शायद समझ भी लेते हो बौद्धिक रूप से, लेकिन प्राणों की गहराई में बात नहीं उतर पाती। वहां अहंकार के साथ बहुत से स्वार्थ जुड़े हैं। वहां तो अहंकार की नई-नई आयोजनाएं चल रही हैं। वहां तो अहंकार कहता हैः यूं सजाओ मुझे, यूंशृंगार करो! ऐसा धन, ऐसा पद, ऐसी प्रतिष्ठा... ! अहंकार नहीं है, यह मानो तो कैसे मानो? क्योंकि यह मान लो तो तुम्हारे जीवन की जो तथाकथित यात्रा चल रही है, यह पूरी की पूरी गिर जाए, तत्क्षण बिखर जाए। मृत्यु से तो तुम बचना चाहते हो। तुम भी चाहोगे कि मृत्यु न हो, मगर अहंकार को नहीं छोड़ सकते। यही विडंबना है। और जब तक अहंकार को पकड़े हो, मृत्यु से भाग नहीं सकते, बच नहीं सकते। अहंकार छोड़ नहीं सकते, क्योंकि वही तुम्हारे जीवन का सार है, सूत्र है। अहंकार को हटा लो, सब खेल बिखर जाता है। फिर न चुनाव है, न आपा-धापी है, न प्रतियोगिता है, न प्रतिस्पर्धा है, न जलन, न ईर्ष्या; न मैत्री, न द्वेष... सब खो जाता है। अहंकार के जाते ही सारा संसार तिरोहित हो जाता है। यह सारा संसार तुम्हारा अहंकार के वृक्ष पर ही लगे पत्ते हैं, उस पर ही खिले फूल। यह अहंकार की ही फड़फड़ाहट है।
और तुम डरते हो अहंकार नहीं है, तो फिर मैं करूंगा क्या? फिर बचता क्या
है करने को! फिर लगेगा एक शून्य में डूबने लगे। उससे तो बेहतर है अहंकार में ही उलझे रहो। मगर मौत से डरते हो। और अहंकार के पीछे मौत आएगी ही आएगी। क्योंकि झूठ को कब तक सम्हालोगे? एक न एक दिन गिरेगा, टूटेगा, बिखरेगा। मैं चाहता हूं कि तुम समझो--न तो मैं कभी जन्मा हूं न कभी मरूंगा। जन्म
भी एक घटना है जीवन में और मृत्यु भी एक घटना है। लहर का उठना लहर का गिरना दोनों घटनाएं हैं। उठने के पहले भी लहर है, गिरने के बाद भी है। और जो मैं अपने संबंध में कह रहा हूं, वह तुम्हारे संबंध में भी कह रहा हूं। मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं, तुम्हें अभी अनुभव करना है। अगर मैं तुम्हें अनुभव न करा सकूं तो मेरी मौजूदगी व्यर्थ, तुम्हारा मेरे साथ होना व्यर्थ।
धर्म भारती, तू कहती हैः "आप अपनी मृत्यु की बात करते हैं तो मैं कांप जाती हूं।"
इसीलिए कांप जाती है कि अभी भी मृत्यु को मानती है। नहीं तो हंसती। कांपने का क्या था? कौन कब मरा है? लेकिन तुझे लगता है कि तू मर सकती है... तो फिर हम अपनी ही भ्रांतियां तो दूसरों पर आरोपित करते हैं। जो हम अपने संबंध में सोचते हैं, उसी गणित को हम फैला कर उनके संबंध में सोचते हैं जिनको हम प्रेम करते हैं। यह भी हो जाता है कि हम अपने प्रेमियों के प्रति इतने आसक्त हो सकते हैं कि खुद मरने को राजी हो जाएं।
न मालूम कितने पत्र आए हैं! मित्रों ने कहा कि हमारी उम्र आपको लग जाए। हम अपना जीवन आपको देना चाहते हैं। आपकी मृत्यु हमारी मृत्यु बन जाए और हमारा जीवन आपका जीवन।
तुम्हारे प्रेम को मैं समझा। तुम्हारी शुभाकांक्षा को समझा। लेकिन तुम्हारी भ्रांति भी है वहां। हम सब शाश्वत हैं, सनातन हैं। तुम भी सदा से यहां हो, मैं भी सदा से यहां हूं। न कोई कहीं गया है, न कहीं कोई आया है। इस भ्रांति को अब तोड़ो और जितने जल्दी तोड़ो उतना अच्छा है।
तू कहती हैः "प्रभु, हमसे यह नहीं सुना जाता है। अगर सुना भी नहीं जाता
है तो देखा कैसे जाएगा?"
बुद्ध मरे। आखिर उनके शिष्यों को उनकी मृत्यु को देखना ही पड़ा। महावीर विदा हुए तो उनके शिष्यों को विदा देनी ही पड़ी, अलविदा कहना ही पड़ा। जीसस को सूली लगी। शिष्यों को देखना ही पड़ा; आंसू भरी आंखों से सही। बुद्ध की मृत्यु के समय सिर्फ एक बुद्ध का शिष्य था--मंजुश्री, जो न कुछ बोला, न रोया, न चिंता प्रकट की। जिस वृक्ष के नीचे बैठा था वहीं बैठा रहा। लोगों ने मंजुश्री को कहा कि पागल तो नहीं हो गए हो? सदमा क्या ऐसा पहुंचा? हम रो रहे हैं... दुख हलका हुआ जा रहा है। तुम रो भी नहीं रहे हो। मंजुश्री ने कहाः रोए वह, जो जानता नहीं। मैं क्यों रोऊं? सदमा मुझे पहुंचा नहीं। और यूं नहीं है कि मंजुश्री को बुद्ध से कुछ कम प्रेम था।

शायद सर्वाधिक प्रेम था। मंजुश्री के ऊपर बुद्ध की जितनी अनुकंपा बरसी थी, शायद किसी और पर नहीं। मंजुश्री बुद्ध के उन पहले भिक्षुओं में एक था, जो समाधि को उपलब्ध हुए। बुद्ध मंजुश्री को देख कर आह्लादित हो जाते थे। वे सदा लोगों को कहते थेः मंजुश्री से सीखो। मंजुश्री ने जो पाया है वह पाओ। उनके वचनों में जगह-जगह यह मुहावरा आता है--मंजूश्री की तलवार। तुम पढ़ोगे तो चौंको कि मंजुश्री की तलवार यानी क्या! बुद्ध कहते थेः तलवार हो तो मंजुश्री जैसी होनी चाहिए, एक ही झटके में अपनी गर्दन काट डाली! देर नहीं की। क्रमिक, आहिस्ता-आहिस्ता नहीं, एक झटके में!
बुद्ध ने मुंजश्री को कहाः चुप हो जा, बस कुछ और नहीं करना है। तेरे भीतर शब्द खो जाएं।
मंजुश्री ने कहाः ठीक! बैठ गया एक वृक्ष के तले। नहीं उठा जब तक शब्द नहीं खो गए। और जब सारे शब्द खो गए तो कथा बड़ी प्रीतिकर है--आकाश से देवता फूलों की वर्षा करने लगे। पूछा मंजुश्री ने... निश्चित ही यह पूछना शब्दों में नहीं हुआ। यह पूछना भाव का रहा। देवताओं से शब्दों की जरूरत भी नहीं है। हृदय से हृदय संबंधित हुआ। पूछा मंजुश्री ने निःशब्द मौन मेंः ये फूल किसलिए गिरा रहे हो? किस बात का उत्सव मना रहे हो? कौन सा महोत्सव है आज? कौन सी होली, कौन सी दीवाली?
देवताओं ने कहाः तुमने जो धर्म पर प्रवचन दिया, उसके लिए हम फूल बरसा रहे हैं।
मंजुश्री खूब हंसा। उसने कहाः मैं तो बोला ही नहीं, प्रवचन कैसा? धर्म
पर प्रवचन कैसा?
तो देवताओं ने कहाः यही तो प्रवचन है धर्म पर कि तुम बोले नहीं। तुम यूं चुप हुए कि तुम्हारे भीतर शब्द की एक लहर भी न रही, तरंग भी न रही। धर्म के बोलने का यही ढंग है--मौन से मुखर होता है धर्म। शून्य में संगीत बजता है धर्म का। शून्य ही उसकी वीणा है। उसके तारों पर ही छिड़ती है तान। ध्यान की यह परम अवस्था, यह समाधि ही बांसुरी है। इसी में उठता है वह गीत, वह अनाहत नाद, जिसको नानक कहते हैं--एक ओंकार सतनाम! वह ओंकार का नाद इसी शून्य में अपने से होता है, करना नहीं होता। रोएं-रोएं से प्रकट होने लगता है। पूरा व्यक्तित्व एक लयबद्ध संगीत में रूपांतरित हो जाता है। देवताओं ने कहाः इसीलिए कि तुम बोले नहीं, हम फूल गिरा रहे हैं। ऐसी चुप्पी कभी-कभी घटती हैः बुद्ध के बाद तुमको घटी है।
बुद्ध से आकर मंजुश्री ने कहा थाः ये देवता भी बड़े पागल हैं! मैं तो चुप बैठा हूं और ये कहते हैं--तुमने धर्म पर प्रवचन दिया!
बुद्ध ने कहाः वे ठीक कहते हैं। वे पागल नहीं हैं। अभी तू नया-नया शून्य में प्रविष्ट हुआ है, इसलिए तुझे पता नहीं है। धीरे-धीरे अनुभव होगा। जैसे-जैसे शून्य गहन होगा, वैसे-वैसे और भी और फूल बरसेंगे। फूल ही फूल रह जाएंगे, कांटे सब खो जाते हैं। भाव ही भाव रह जाते हैं, सुगंध ही सुगंध।
यह मंजुश्री बुद्ध की मृत्यु पर चुपचाप बैठा रहा, वक्तव्य ही नहीं दिया। न अरथी में सम्मिलित हुआ, न अंतिम संस्कारों में। बहुत कहा औरों ने किया मंजुश्री, यह शोभा नहीं देता। मंजुश्री ने कहाः वे न कभी पैदा हुए न मर सकते हैं। मैं उन्हें पहचानता हूं। वे अब भी वहीं हैं जहां थे।
धर्म भारती, ऐसा ही मैं चाहूंगा, मंजुश्री की तलवार तुममें से बहुतों
के हाथों में हो! तुम पर भी फूल बरसें! तुम्हारे भीतर भी मौन का अनाहत नाद उठे!
फिर अगर मैं तुमसे मृत्यु की बात न करूंगा तो कौन करेगा? इधर तुमसे कहूंगा अहंकार छोड़ो, उधर तुमसे कहूंगा मृत्यु एक झूठ है। अपने ही जीवन से मुझे तुम्हें जीवन की शिक्षा देनी होगी और अपनी ही मृत्यु से मुझे तुम्हें मृत्यु का संदेश देना होगा। और तो कोई उपाय भी नहीं है। ये घटनाएं अस्तित्वगत हैं।
पीड़ा तुम्हें होती है मोह के कारण, मृत्यु के कारण नहीं। आसक्ति के कारण। इस आसक्ति को थोड़ा ऊपर उठाओ, इसे थोड़ा प्रेम बनाओ, प्रार्थना बनाओ, इसे पंख दो। इसे आकाश में उड़ने दो।

आसक्ति तो यूं है जैसे बीज, बंद और प्रेम यूं है जैसे वृक्ष पर खिल आए फूल, मुक्त हो गई गंध, बिखर गई हवाओं में!
आसक्ति से ऊपर उठो। मैं सदा शरीर में नहीं हो सकता। और अच्छा है कि तुम्हें तैयार करूं कि तुम मेरे अशरीरी रूप से भी संबंधित होने लगो। अभी, जब कि मैं शरीर में हूं, तभी! तुम्हें धीरे-धीरे निष्णात करना है, प्रशिक्षित करना है। हर चुनौती का उपयोग कर लेना है, हर अवसर का! ऐसा उपयोग करना है कि सोने में सुगंध आने लगे।
दुख भी होगा, पीड़ा भी होगी तुम्हें--यह जानता हूं, यह स्वीकार करता हूं। लेकिन तुम्हारे आंसू भी शुभ हैं, क्योंकि तुम्हारी आंखों को स्वच्छ कर जाएंगे। तुम्हारी आंखें ज्यादा साफ देख सकेंगी।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मुझे आश्चर्य है कि पूर्व-सदगुरु इतनी पिटाई नहीं किए जितनी कि आप कर रहे हैं। फिर भी हम लोग जागते नहीं और प्रश्न पर प्रश्न पूछते चले जाते हैं। कृपा कर बोध देने की अनुकंपा करें!

मोहन वेदांत! मनुष्य जैसा आज सोया है, ऐसा पहले कभी सोया भी नहीं था। इसलिए झकझोरना भी ज्यादा होगा। क्योंकि मनुष्य ने सोने के लिए सारी सुविधाएं जुटा ली हैं, सोने के सारे आयोजन जुटा लिए हैं। इतनी सुविधाएं न थीं कभी, इतने आयोजन न थे कभी।
आज जितने गहरे तुम सो कहते हो, इतना आदमी कभी नहीं सो सकता था। जीवन बहुत कंटकाकीर्ण था, बहुत दुखों से भरा था। विज्ञान ने, नये-नये तकनीकों ने, नई-नई खोजों ने, मनुष्य के जीवन से बहुत सा दुख अलग कर लिया। ऊपर-ऊपर ही सही, परिधि पर ही सही, लेकिन मनुष्य को सुख के बहुत से आयोजन दे दिए, बहुत से खिलौने दे दिए हैं जिनमें उलझा रहे। इसलिए जगाने में, उसके बहुत से खिलौनों को तोड़ना पड़ेगा। इतने खिलौने आदमी के पास पहले कभी थे ही नहीं। बुद्ध तोड़ते भी तो क्या तोड़ते? महावीर तोड़ते तो भी क्या तोड़ते?
महावीर और बुद्ध की बात सरलता से समझ में आ जाती थी कि जीवन दुख है। और
आज भी पूरब के देशों में, जहां जीवन अभी भी महादुख है, नरक है, उनकी बात समझ में आ जाती है। लेकिन पश्चिम में जीवन दुख नहीं है, नरक नहीं है। और पूरब में भी, जिनमें थोड़ी बुद्धि है, उन्होंने जीवन से दुख को कम से कम कर लिया है। और जल्दी ही सारी पृथ्वी पर दुख क्षीण हो जाएगा। और मैं इसके विरोध में नहीं हूं कि दुख क्षीण न किया जाए, कि समृद्धि न बढ़े। मैं कोई दरिद्रनारायण का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तो मानता हूं समृद्धि बढ़े। बर्ट्रेंड रसल ने कहा हैः अगर आदमी परिपूर्ण रूप से सुखी हो जाए, जैसा
कि विज्ञान एक दिन आदमी को कर सकेगा, तो फिर किसी को धार्मिक होने की जरूरत न रह जाएगी।
उसकी बात में थोड़ी दूर तक सचाई है। अगर तुम्हारे जीवन में सब सुख हो
तो तुम्हें बुद्ध की बात ठीक कैसे लगेगी कि जीवन दुख है, जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मृत्यु दुख है, दुख ही दुख है?
हजारों बीमारियां आदमी ने दूर कर ली हैं। न मालूम कितनी महामारियां समाप्त हो गईं! आए दिन प्लेग पड़ती थी, आधे-आधे देश मर जाते थे। अब तो प्लेग सुनी नहीं जाती, अब तो बात इतिहास की हो गई। काला ज्वर लाखों लोगों को मार डालता था। अब तो काला ज्वर सुना नहीं जाता। अब तो सिर्फ पूरब के देशों में तुम्हें कभी-कभी किसी बच्चे पर चेचक के दाग दिखाई पड़ेंगे। पश्चिम में किसी बच्चे के चेहरे पर चेचक के दाग दिखाई नहीं पड़ेंगे। पश्चिम में चेचक विदा हो गई; यहां भी विदा हो रही है। बीमारियां कम हुई हैं, स्वास्थ्य ज्यादा उपलब्ध हुआ है।
पांच हजार वर्ष पहले की जो भी अस्थियां मिली है, हड्डियां मिली हैं, उनसे एक बहुत हैरानी की बात पता चलती है कि कोई अस्थिपंजर चालीस वर्ष से ज्यादा उम्र का नहीं मिला। आमतौर से तुम यह सुनते हो कि प्राचीन समय में लोग खूब जीते थे, बड़ी उनकी लंबी आयु होती थी। बात सच नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि चालीस साल से लंबी उम्र वाला कोई भी अस्थिपंजर नहीं मिला, अब तक नहीं मिला। लेकिन यह हो सकता है कि चालीस साल भी लंबे मालूम पड़ते हों। दुख

में समय लंबा मालूम पड़ता है। और गिनती भी नहीं आती थी। आज भी दूर देहात में जाकर जहां गिनती नहीं आती, अगर लोगों से पूछो कि उनकी उम्र क्या है, तो उम्र नहीं बता सकते वे। न उन्हें पता है कब जन्मे, न उन्हें पता है कितनी उम्र बीत गई। अंदाज ही है बस। और ठेठ आदिवासियों को तो अंदाज भी नहीं होता। चालीस साल से ज्यादा कोई उम्र नहीं होती थी।
आज हालतें और हैं। आज अस्सी वर्ष तक पहुंच जाना बड़ी सरल बात है। नब्बे वर्ष भी बहुत कठिन नहीं है। सौ वर्ष के बहुत लोग हैं पृथ्वी पर। रूस जैसे देशों में जहां स्वास्थ्य ने बहुत प्रगति की है, डेढ़ सौ वर्ष की उम्र वाले हजारों लोग हैं। पौने दो सौ वर्ष और दो सौ वर्ष तक की उम्र तक पहुंचने वाले लोग रूस में मौजूद हैं। और यूं नहीं कि खाट पर पड़े हों कि अस्पतालों में पड़े हों, काम में संलग्न हैं। डेढ़ सौ साल के बूढ़े खेतों में, बगीचों में काम कर रहे हैं, जैसा कि जवान काम करता हो।
वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का यह जो शरीर है इसकी क्षमता इतनी है कि इसे बड़ी आसानी से तीन सौ साल तक तो जिलाया ही जा सकता है। और ज्यादा भी सुविधाएं अगर उपलब्ध हुईं तो आदमी का शरीर जी सकता है। इसे इतना लंबाया जा सकता है, क्योंकि इसके भीतर स्वयं को बार-बार पुनरुज्जीवित कर लेने की क्षमता है।
तो रसेल की बात में थोड़ी सी सचाई है। अगर जीवन से सब बीमारियां मिट जाएं, अगर जीवन से बुढ़ापा मिट जाए--जिसकी संभावना है... । आने वाली सदी में बुढ़ापा अतीत की बात हो जाएगी। हममें से बहुत लोग अपने जीवन में यह देख सकेंगे कि बुढ़ापा अतीत की बात हो गई। क्योंकि बुढ़ापा एक खास चीज पर निर्भर है। आदमी जब पैदा होता है तो मां-बाप के जिन जीवाणुओं से मिल कर बनता है, उन जीवाणुओं में उम्र तय होती है। अगर उन जीवाणुओं के प्रोग्राम को बदला जा सके तो उम्र को कितना ही किया जा सकता है, कितना ही लंबाया जा सकता है। और विज्ञान धीरे-धीरे सफल हो रहा है कि उनकी अंतर्निहित प्रक्रिया को बदला जा सकता है। तो बुढ़ापे को काटा जा सकता है। फिर कौन मानेगा बुद्ध की बात कि बुढ़ापा दुख है! बुढ़ापा होगा नहीं। फिर कौन मानेगा कि जीवन पीड़ा है! जीवन बहुत सुखद हो सकता है। जीवन में नब्बे प्रतिशत दुख तो हम अपने कारण बनाए हुए हैं, जीवन में नहीं हैं।
मगर फिर भी मैं रसेल से राजी नहीं हूं पूरा-पूरा, क्योंकि मेरा मानना
है कि कितना ही जीवन सुखद हो जाए तो भी धर्म समाप्त नहीं हो जाएगा। हां, इतना ही होगा कि सदगुरुओं का काम थोड़ा जटिल हो जाएगा, थोड़ा कठिन हो जाएगा। लोगों को जगाने के लिए पुराने आदिम ढंग काम में नहीं आएंगे, नये ढंग काम में लाने होंगे। जैसे विज्ञान विधियां उपयोग करता है मनुष्य को सुलाने की सुख में, वैसा ही धर्म को भी विधियां उपयोग करनी पड़ेंगी जगाने की। मैं उन सारी विधियों पर ही प्रयोग कर रहा हूं। मेरी उत्सुकता सिर्फ तुममें ही नहीं है; मेरी उत्सुकता उनमें भी है जो तुम्हारे पीछे आने वाले हैं। मेरी उत्सुकता भविष्य में है।
इसलिए मेरा अतीत के धर्मों में बहुत रस नहीं है। उनके दिन लद गए। वह भाषा पुरानी पड़ गई। और भाषाएं पुरानी पड़ ही जाएंगी। वे सिद्धांत भी पुराने पड़ गए। अब हमें नई प्रक्रियाएं खोजगी होंगी। जीवन ही बदल गया, पूरा का पूरा जीवन बदल गया। अब हमें लोगों को जगाने के लिए भी नये आयोजन करने होंगे।
इसलिए यह आश्रम इस पृथ्वी पर अपने किस्म का अकेला आश्रम है। जिन प्रक्रियाओं से यहां संन्यासी गुजर रहे हैं, दुनिया में कहीं नहीं गुजर रहे हैं। कम से कम भारत में तो जो आश्रम हैं, वे उन्हीं पिटी-पिटाई लीकों पर चल रहे हैं। इसलिए वहां बूढ़ों को ही बात जमती है।
यहां लोग आकर चौंकते हैं। जब इतने युवक और युवतियों को देखते हैं तो उनको भरोसा नहीं आताः मुझसे आकर पूछते हैं कि इतने युवक और युवतियां धर्म में उत्सुक हों, इस पर हमें भरोसा नहीं आता। क्योंकि चर्चों में और मंदिरों में तो बूढ़े और बूढ़ियां दिखाई पड़ते हैं। उसका कारण है। उसका कारण हैः चर्च और मंदिर की भाषा अत्यंत दकियानूसी हो गई है। वह सिर्फ बूढ़ों की समझ में आ पाती है--बूढ़े, जो कि समसामयिक नहीं है।

मैं जो भाषा बोल रहा हूं, वह शायद बूढ़ों की समझ में न आए। वह युवकों की समझ में ही आएगी।
इसलिए अब मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जीवन दुख है और जीवन का त्याग कर दो। मैं यह कह रहा हूं कि जीवन महासुख है। जीवन को भोगो, जी भर कर भोगो। जीवन का सारा रस निचोड़ लो। जीवन में एक बूंद भी मत छोड़ो। और तभी तुम्हें पता चलेगा कि जब जीवन इतना रस है तो महाजीवन कितना रस न होगा!
पुराना धर्म कहता थाः जीवन दुख है। इसलिए परमात्मा को खोजो, क्योंकि परमात्मा सुख है। मैं कहता हूंः जीवन सुख है। इसलिए परमात्मा को खोजो, क्योंकि परमात्मा महासुख है। इस भेद को समझना। यह भेद बुनियादी है, आधारभूत है। इसलिए दकियानूसी लोग अगर मुझसे नाराज हों तो आश्चर्य नहीं। उनका कसूर भी क्या! मैं उनकी नाराजगी समझ सकता हूं, क्योंकि मैं सारे मापदंड बदल रहा हूं। मैं नई धारणाएं स्थापित कर रहा हूं, नये मूल्य निर्धारित कर रहा हूं। मैं कह रहा हूंः जीवन सुख है। इतने से राजी मत हो जाना, क्योंकि अभी महासुख भी मिल सकता है। जीवन को सीढ़ी बनाओ। अगर यह शरीर का जीवन इतना सुख हो सकता है तो आत्मा का जीवन कितना सुख न होगा, इसकी थोड़ी कल्पना करो!
मैं तुम्हारी कल्पना पर निखार देना चाहता हूं। मैं तुम्हारे भीतर नई आशाओं के सूरज उगाना चाहता हूं। मैं तुम्हारे भीतर एक नई अभीप्सा को प्रज्वलित करना चाहता हूं। मैं तुम्हें भगोड़ा नहीं बनाना चाहता।
इसलिए स्वभावतः, तुम्हें जगाने के लिए मुझे बहुत झकझोरना पड़ेगा। क्योंकि मैं कहता हूंः जीवन सुख है। सुख में आदमी सो जाता है, दुख में सोना मुश्किल हो जाता है। तुम्हारे सिर में दर्द हो तो सोना मुश्किल हो जाता है। हां, दर्द को मिटाने की एक गोली ले लो, एस्प्रो ले लो, फिर नींद आ जाती है। एक कांटा भी पैर में चुभ रहा हो तो सोना मुश्किल हो जाता है। जरा सा भी दुख हो तो जागना आसान होता है, सोना कठिन होता है। और सुख हो तो जागना मुश्किल हो जाता है, सोना आसान हो जाता है।
और चूंकि मैं कह रहा हूं जीवन सुख है और मैं जीवन-विरोधी नहीं हूं, जीवन का पक्षपाती हूं; कहता हूं कि जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं; परमात्मा महाजीवन है, जीवन उसका द्वार है; परमात्मा मंदिर है तो जीवन उसके मंदिर की सीढ़ियां हैं--तो फिर निश्चित ही मुझे जगाने के लिए खूब तुम्हें झकझोरना पड़ेगा। फिर दुख से तो कोई भी जागना चाहता है। एक तो सो नहीं सकता; अगर सो भी जाए तो जागना चाहता है। लेकिन सुख से नींद भी गहरी आती है और सोया हुआ आदमी जागना भी नहीं चाहता।
तुमने देखा, अगर तुम्हें दुखस्वप्न आता हो तो दुखस्वप्न तुम्हारी नींद का अपने आप तोड़ देता है! जैसे तुम देख रहे हो कि तुम गिर रहे हो पहाड़ से और अब टकराए चट्टान से, अब टकराए चट्टान से, बस टकराओगे और छितर-बितर हो जाओगे--नींद टूट जाएगी।... कि तुम देख रहे हो कि तुम्हारी छाती पर एक सिंह आकर बैठ गया है और बस अब तुम्हारी छाती को चीरने-फाड़ने की तैयारी कर रहा है, उसके नाखून, उसकी हुंकार--तुम सोए रहोगे? तुम जाग ही जाओगे। लेकिन तुम एक सपना देख रहे हो कि तुम्हारे सोने का महल है, सुंदर रानियां हैं, बड़ा राज्य है, जीवन में सुख ही सुख है--कैसे जागोगे? हां, कोई जगाना भी चाहेगा तो भी मुश्किल होगी। जो जगाएगा वह दुश्मन मालूम होगा। जो जगाना चाहेगा तुम उसे झिड़कोगे; तुम कहोगे कि भई सोने दो, गड़बड़ न करो, परेशान न करो। अगर तुमने खुद ही अलार्म भर कर रखा होगा तो तुम खुद ही अलार्म बंद कर दोगे, और करवट लेकर सो जाओगे।
तुम पूछते हो वेदांतः "मुझे आश्चर्य है कि पूर्व-सदगुरु इतनी पिटाई नहीं किए।"
जरूरत न थी। आदमी वैसे ही काफी पिटा हुआ था। आदमी खुद ही मरा जा रहा था, इतने दुख में दबा जा रहा था। आदमी को सांत्वना की जरूरत थी, संतोष की जरूरत थी। आज हालत बिल्कुल बदल गई है। जीवन ने नया मोड़ ले लिया है। हम एक क्रांति से गुजर गए और हम एक क्रांति से गुजर रहे हैं। और वह क्रांति यह है कि मनुष्य का जीवन रोज-रोज सुख से भरता जा रहा है। इसलिए तुम्हें खूब झकझोरना पड़ेगा। तुम्हें जगाने के लिए बहुत प्रगाढ़ आयोजन करने होंगे।

इसलिए मैं तुम्हें कूटूंगा, पीटूंगा। तुम्हारी आंखों पर ठंडा पानी छिड़कूंगा, बर्फीला पानी। तुम यूं न उठोगे तो खींचूंगा बिस्तर से, तुम्हारा कंबल छीन लूंगा। उसी से तुम नाराज हो जाते हो।
अब जो आदमी छुरा फेंका, वह क्यों फेंका? चार दिन से सुन रहा था आकर। उसको लगा होगा मेरा कंबल ही छीने लेते हैं; कि मैं मजे की नींद में सो रहा हूं, मेरी नींद ही खराब किए देते हैं! मेरी धारणाओं को तहस-नहस किए देते हैं। मेरे धर्म पर आघात हो रहा है।
तुम सीधी बात नहीं कहते कि हमारी नींद पर आघात हो रहा है; कहते हो धर्म
पर आघात हो रहा है। मगर सचाई यह है कि सिर्फ तुम्हारी नींद पर आघात हो रहा है। लेकिन तुम अच्छे-अच्छे शब्दों का उपयोग करने के आदी हो गए हो। अच्छे शब्दों की आड़ में छिपा लेते हो अपने को, अपनी तंद्रा को, अपनी निद्रा को, अपनी बेहोशी को।
तुम पूछते हो वेदांतः "फिर भी हम जागते नहीं और प्रश्न पर प्रश्न पूछे चले जाते हैं।"
पुराने सदगुरु तो चाहते ही नहीं थे कि तुम प्रश्न पूछो। प्रश्नों के पूछने की वस्तुतः मनाही थी। प्रश्न पूछना नास्तिकता समझी जाती थी। पुराने सदगुरुओं का जोर थाः हम जो कहें, मानो। भरोसा करो, श्रद्धा रखो। मेरा मामला जरा भिन्न है। भरोसा की भाषा अब नहीं चलेगी। पुराने सदगुरुओं को पता ही नहीं था, एक दिन भरोसे की भाषा मर जाएगी। विज्ञान ने प्राण ले लिए भरोसे की भाषा के। विज्ञान संदेह पर खड़ा है। विज्ञान पूछता है, खोजता है, प्रयोग करता है और जब तक सुनिश्चित परिणाम हाथ में न आ जाएं, तब तक स्वीकार नहीं करता। सारे जगत की हवा विज्ञान से भरी है। जो लोग विज्ञान से परिचित नहीं हैं, वे भी वैज्ञानिक ढंग में धीरे-धीरे ढलते जा रहे हैं। हर बच्चा वैज्ञानिक ढंग में ढला जा रहा। इसके सिवा कोई उपाय भी नहीं है। विज्ञान आधुनिक जगत की आधारशिला है। विज्ञान को झुठलाया नहीं जा सकता।
अब तुम किसी वैज्ञानिक से कहो कि हम जो कहते हैं मान लो, तो वैज्ञानिक
की पूरी की पूरी शिक्षा-दीक्षा के विपरीत है यह बात। अगर मेरी बात सुशिक्षित लोगों के ही समझ में आ रही है तो उसका कारण है। अशिक्षित लोगों को मेरी बात समझ में नहीं आ सकती। अगर मेरी बात पश्चिम के लोगों को ज्यादा समझ में आ रही है तो उसका कारण है। उसका कारण है कि पश्चिम विज्ञान के रंग में रंग गया है। और पूरब में भी उनकी ही समझ में मेरी बात आ रही है और आएगी, जो बौद्धिक रूप से विकसित हैं। जो पूरब में या पश्चिम में बौद्धिक आभिजात्य है, उससे ही मेरा तालमेल बैठेगा।
मैं कोई ग्रामीण भाषा नहीं बोल रहा हूं। ग्रामीण भाषा यह है कि जो कहा जाए वह मान लो; प्रश्न तो पूछना ही मत। नास्तिकता है प्रश्न पूछना। और मेरे हिसाब में नास्तिकता आस्तिकता की सीढ़ी है। मेरे हिसाब में जो व्यक्ति कभी ठीक से नास्तिक नहीं हुआ, वह कभी ठीक से आस्तिक नहीं हो सकेगा। उसकी आस्तिकता हमेशा लचरपचर रहेगी, पोच, नपुंसक! उसकी आस्तिकता में प्राण नहीं होंगे। आत्मा नहीं होगी। उसकी आस्तिकता कहीं न कहीं थोथी होगी। वह हमेशा डरा रहेगा, घबड़ाया रहेगा कि कहीं कोई संदेह न उठ आए। संदेह मिटाए तो हैं नहीं उसने, सिर्फ दबाए हैं।
विश्वास करने का क्या अर्थ होता है?
मैंने खुद कभी किसी चीज पर विश्वास नहीं किया। इसलिए मैं तुमसे कैसे कहूं कि विश्वास करो। मैं तो अविश्वास के मार्ग से चला और सत्य तक पहुंचा। मैं तो तुम्हें भी उसी मार्ग पर निमंत्रण दे सकता हूं, जो मेरा जाना-माना है, जिससे चल कर मैं आया हूं। मैं तो यह सोच ही नहीं सकता कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कैसे विश्वास कर सकता है! असंभव है मेरे लिए, कल्पना भी असंभव है। ईश्वर को तुमने देखा नहीं, कैसे मानोगे? और अगर मान लिया तो तुम बेईमान हो। और बेईमान आदमी कहीं धार्मिक होते हैं? धार्मिक आदमी को कम से कम ईमानदार तो होना चाहिए! इतना भी ईमान नहीं है। सच पूछो तो ईमान शब्द का अर्थ धर्म होता है। इतना भी ईमान नहीं है कि तुम कह सको कि यह मुझे पता नहीं, तो मैं कैसे मानूं? तुम कायर हो।

लोग कहते हैं कि मानो--और ऐसे लोग, जिनके हाथ में ताकत है। तुम ताकत के सामने झुकते हो। तुम डंडे के बल को मानते हो। तुम जिसकी लाठी उसकी भैंस में भरोसा रखते हो। इसलिए रूस में लाठी नास्तिकों के हाथ में है तो सारा देश नास्तिक। ये ही लोग उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के पहले आस्तिक थे, क्योंकि लाठी आस्तिकों के हाथ में थी। यह चमत्कार तुम देखते हो? रूस दुनिया के सर्वाधिक धार्मिक देशों में से एक देश था--बहुत रूढ़िवादी, बहुत रूढ़िचुस्त, बहुत दकियानूसी, बहुत पुरातनपंथी। साधारण से साधारण आदमी से लेकर रूस का जो सम्राट था जार... जार तक सारे लोग अंधविश्वासी थे। लेकिन यही रूस क्रांति के बाद दस साल में नास्तिक हो गया। इसकी आस्तिकता थोथी थी। बस यह आस्तिक था, क्योंकि जिनके हाथ में डंडे थे वे आस्तिक थे। और वे आस्तिकता आरोपित कर रहे थे। फिर डंडे बदल गए, नास्तिकों के हाथ में पहुंच गए और उन्होंने नास्तिकता थोप दी।
तुम सोचते हो तुम आस्तिक हो? तुम आस्तिक नहीं हो। तुम्हारे मां-बाप आस्तिक थे, उन्होंने तुम पर आस्तिकता थोप दी। वे भी आस्तिक नहीं थे, उनके मां-बाप उन पर थोप गए। ये बीमारियां पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती हैं। तुम सोचते हो आस्तिक हो? पंडित, पुरोहित, अध्यापक, राजनेता, वे सब आस्तिक हैं? मगर वे भी आस्तिक नहीं हैं। उन पर भी थोपा गया है।
इन सबके बीच ईमानदार आदमी पहला काम तो यह करेगा कि वह इस कूड़े-कचरे को हटा कर रख देगा। वह कहेगाः जो मैं नहीं जानता हूं, उसे कैसे मान सकता हूं? धार्मिक व्यक्ति जिज्ञासु होगा, मुमुक्षु होगा, विश्वासी नहीं। और जिसने विश्वास कर लिया उसके जीवन में श्रद्धा कभी पैदा नहीं होगी। क्योंकि उसने झूठे सिक्के पर भरोसा कर लिया तो असली सिक्के की खोज कौन करेगा? क्यों करेगा? जब झूठा ही असली मान लिया तो असली की खोज की झंझट क्यों उठानी? कैसे उठानी?
तुमसे कहा गया है सदियों-सदियों से कि अगर ईश्वर को पाना है तो पहले मानो। यह भी कोई बात हुई? यह तुम्हारी बुद्धिमत्ता का अपमान हुआ। यह तुम्हारी आत्मा का अपमान हुआ।
मैं तुमसे कहता हूंः अगर ईश्वर को जानना है तो मानना कभी नहीं, अन्यथा तुम कभी जान न सकोगे। अगर ईश्वर को जानना है तो खोजना। विश्वास मत करना, प्रयोग करना। ध्यान प्रयोग है, विश्वास नहीं। जैसे विज्ञान बाहर प्रयोग करता है, वैसे धर्म भीतर प्रयोग करता है। मगर दोनों प्रयोग करते हैं। विज्ञान के प्रयोग वस्तुगत होते हैं; धर्म के प्रयोग आत्मगत होते हैं। विज्ञान के प्रयोग पदार्थों पर होते हैं; धर्म के प्रयोग चैतन्य पर होते हैं। मगर दोनों प्रयोग हैं।
मेरे हिसाब में विज्ञान एक शब्द काफी है। भविष्य में धर्म शब्द को जीने की कोई जरूरत नहीं है। विज्ञान की दो शाखाएं होंगी--एक बहिर्मुखी और एक अंतर्मुखी। बहिर्मुखी शाखा पदार्थ की खोज करेगी; अंतर्मुखी शाखा चैतन्य की खोज करेगी। और एक ही बात रह जाएगी--विज्ञान। और एक ही जीवन का दृष्टिकोण रह जाएगा--वैज्ञानिक।
और तुम देखते हो, वैज्ञानिक चाहे हिंदू हो, चाहे मुसलमान हो, चाहे ईसाई हो, उसका विज्ञान अलग-अलग नहीं होता; उसका विज्ञान तो एक ही होता है। चाहे हिंदू पानी गरम करे और चाहे मुसलमान, सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है तो सौ ही डिग्री पर बनता है। वह यह नहीं देखता कि कौन गरम कर रहा है। गरम करने वाला कुरान पढ़ता है, कि गीता पढ़ता है, कि बाइबिल पढ़ता है? पानी को क्या लेना-देना?
जैसे विज्ञान ने एक कर दिया है दुनिया के सारे वैज्ञानिकों को, इसी तरह जिस दिन धर्म अंतर का विज्ञान होगा उस दिन दुनिया से ये सारे धर्म--तीन सौ धर्म हैं दुनिया में--ये सब विदा हो जाएंगे। इनके उपद्रव भी विदा हो जाएंगे।
मैं एक वैज्ञानिक धर्म की नींव रख रहा हूं या अंतर के विज्ञान की आधारशिला। यहां तो पूछो, जी भर कर पूछो। पूछोगे तो उसका अर्थ हुआ--तुम खोज रहे हो। जिज्ञासा करो। और कंजूसी मत करना। मैं तुम पर कुछ थोपना नहीं चाहता। इसलिए तुम्हारे प्रश्नों के विपरीत नहीं हूं। चाहता हूं तुम्हारे

भीतर प्रश्नों को जगाऊं। सदियों-सदियों से सोए पड़े प्रश्नों को उकसाऊं। सदियों-सदियों से तुम्हारे भीतर प्रश्नों के अंगार विश्वास की राख में दब गए हैं, उस राख को हटाऊं और अंगारों को फिर से हवा दूं कि फिर से वे दमकने लगें। उनकी दमक के साथ तुम्हारे भीतर भी एक दमक आएगी।
इसलिए वेदांत, तुम यह तो कहो ही मत कि हम प्रश्न पर प्रश्न क्यों पूछे चले जाते हैं! यहां नहीं पूछोगे तो कहां पूछोगे? और कहीं पूछोगे तो फौरन तुम्हारा मुंह बंद कर दिया जाएगा। उतना ही पूछना जितना विश्वास की परिधि में आता हो--और वह भी कोई पूछना है? असली पूछना तो तब उठता है जब तुम विश्वास की परिधि के पार जाते हो। और तुम्हारे छोटे-मोटे लोगों की बात छोड़ दो, तुम्हारे छोटे-मोटे महात्माओं की बात छोड़ दो। वे गांव-गांव फैले हुए हैं। तुम्हारे बड़े से बड़े महात्मा भी बहुत भिन्न नहीं हैं। मात्रा के भला भेद हों, गुण के भेद नहीं दिखाई पड़ते।
जनक ने--उपनिषदों में कथा है--एक बहुत बड़ा विराट आयोजन किया, ब्रह्मज्ञानियों को बुलाया। उस आयोजन में दो अपूर्व घटनाएं घटीं। एक तो घटना घटी याज्ञवल्क्य के संबंध में। याज्ञवल्क्य उस समय का बहुत बड़ा तथाकथित ज्ञानी था। तथाकथित ही मैं कहूंगा। कम से कम उस समय तक तो तथाकथित ही रहा होगा, बाद में सच्चा हो गया हो तो परमात्मा जाने। और अहंकारी भी रहा होगा। क्योंकि जनक ने एक हजार गऊएं भवन के बाहर, राजमहल के बाहर खड़ी कर रखी थी, उनके सींग सोने से मढ़ दिए थे। वह पुरस्कार था। जो भी ब्रह्मज्ञान में जीत जाएगा वह हजार गऊओं को ले जाएगा। सुंदरतम गऊएं थी, श्रेष्ठतम गऊएं थीं। सोने से मढ़े उनके सींग थे। बड़ा पुरस्कार था। अब ब्रह्मज्ञानी पुरस्कार के लिए जाएंगे, पहले तो यही जरा सोचने की बात है। ब्रह्मज्ञानी न हुए, बच्चे हुए कि कोई वाद-विवाद प्रतियोगिता में पहुंच गए, कि जीत लाएंगे कोई चांदी का कप, कि सोने की शील्ड। ब्रह्मज्ञानी न हुए, बहुत बचकाने हुए। सारे ब्रह्मज्ञानी इकट्ठे हो गए! कौन छोड़े हजार गऊएं! गऊ उस समय बड़ी संपदा थी। और श्रेष्ठतम गऊएं थीं वे जनक की गऊशाला की।
याज्ञवल्क्य पहुंचा। जरा पहुंचने में उसे देर हो गई। आश्रम उसका दूर था। और अपने शिष्यों के साथ पहुंचा। गऊएं बाहर खड़ी थीं धूप में, पसीना- पसीना हो रही थीं। उसने अपने शिष्यों से कहा कि तुम गऊओं को खदेड़ कर आश्रम ले जाओ, विवाद मैं जीत लूंगा। यह बात बड़े अहंकार की है। जनक भी चौंका और ब्रह्मज्ञानी भी भड़के। मगर वे जानते थे कि याज्ञवल्क्य है तो बड़ा शास्त्रज्ञ, तो कोई कुछ बोला नहीं। उसके शिष्य गऊओं को खदेड़ कर आश्रम ले गए। अभी जीता है नहीं और पुरस्कार उन्होंने उठा ही लिया। अहंकार की और क्या घोषणा हो सकती है? ब्रह्मज्ञानी तो विनम्र होगा, ऐसा अहंकारी नहीं हो सकता।
फिर दूसरी घटना घटी कि उसने सारे ब्रह्मज्ञानियों को हरा दिया। हरा दिया, क्योंकि वह तार्किक था और शास्त्रों के खूब उल्लेख उसने दिए। कोई दूसरा उतना बड़ा पंडित नहीं था। फिर एक महिला, एक स्त्री ब्रह्मवादिनी, गार्गी खड़ी हुई। और उसने उससे तीन-चर प्रश्न पूछे। और जैसे गऊओं को पसीना बह रहा था, ऐसा पसीना याज्ञवल्क्य को बह गया।
गार्गी के प्रति मेरे मन में बड़ा सम्मान है। और तब से ही भारत के तथाकथित ब्रह्मज्ञानी स्त्रियों से नाराज हुए, तो उन्होंने उनके लिए वेद पढ़ने की मनाही कर दी। स्त्रियों से ऐसे भी विवाद में जीतना जरा मुश्किल है। सभी पति जानते हैं। याज्ञवल्क्य को भी पता होगा। वह भी कोई साधारण पति नहीं था, उसकी दो पत्नियां थीं--मैत्रेयी और कात्यायनी। अब दो पत्नियों के अनुभव से ही उसको पता होगा अच्छी तरह। जब गार्गी खड़ी हुई तो गार्गी ने पूछा कि मैं यह पूछती हूं कि यह पृथ्वी किस पर टिकी है? थोड़ा याज्ञवल्क्य चौंका, क्योंकि यह प्रश्न शास्त्रीय नहीं था। स्त्रियों को शास्त्र वगैरह से क्या लेना? मगर ऐसी कोई रोक भी न थी कि शास्त्रीय प्रश्न हो। तो उसे उत्तर तो देना पड़ा। उत्तर तो बुद्धूपन का था कि कछुए पर टिकी है यह पृथ्वी। मगर उस समय के ब्रह्मज्ञानी, तथाकथित ब्रह्मज्ञानी यही समझते थे कि पृथ्वी कछुए पर टिकी है। मगर गार्गी यूं हर जाने वाली न थी। उसने कहाः कछुआ किस पर टिका हुआ है? क्योंकि कछुआ भी किसी पर टिका होना चाहिए।

वह हाथी पर टिका हुआ है।
और फिर हाथी किस पर टिका हुआ है?
तब याज्ञवल्क्य समझ गया कि यह स्त्री दिक्कत में डालेगी। मैं कुछ भी कहूंगा, यह पूछेगी वह किस पर टिका हुआ है, वह किस पर टिका हुआ है, वह किस पर टिका हुआ है? इसने एक ऐसा प्रश्न उठाया है कि मेरी फजीहत करा कर रहेगी। तो उसने कहा इसको एक सीधा जवाब दे देना उचित है। उसने कहा कि ये सब इतने पूछने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक चीज ब्रह्म पर टिकी हुई है। गार्गी ने पूछा तो मैं भी एक ही प्रश्न पूछती हूं फिर कि ब्रह्म किस पर टिका हुआ है?
याज्ञवल्क्य आगबबूला हो गया। उसने कहाः गार्गी, यह अतिप्रश्न है। अगर आगे तूने बकवास की तो तेरा सिर धड़ से गिर जाएगा।
इसके बाद शास्त्र कुछ नहीं कहते कि क्या हुआ। मगर यह कोई बात न हुई। उसका प्रश्न अतिप्रश्न नहीं है। कोई प्रश्न अतिप्रश्न नहीं है। लेकिन याज्ञवल्क्य इतना घबड़ा क्यों गया? ब्रह्म किस पर टिका है, वह ठीक पूछ रही है। या तो पहले ही कह दो कि कोई चीज किसी पर नहीं टिकी है। जब पहले से तुम जवाब देने को तैयार हो तो फिर आगे चल कर एक जगह जाकर कहना कि यह अतिप्रश्न हो जाएगा... । अतिप्रश्न का क्या अर्थ? जो नहीं पूछना चाहिए। क्यों नहीं पूछन चाहिए? इसलिए कि ब्रह्मज्ञानी के पास उत्तर नहीं है? अतिप्रश्न, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी की बेइज्जती हो जाएगी। अतिप्रश्न, क्योंकि वे एक हजार गऊएं वापस लौटानी पड़ेंगी। यह बड़ी भद्द हो जाएगी। और यह भी कोई धमकी, यह उत्तर हुआ? यह बातचीत हुई? यह तो मार-पीट पर बात उतर आई, मारा-मारी पर बात उतर आई कि सिर धड़ से गिरा दिया जाएगा, कि सिर धड़ से गिर जाएगा, बस अब चुप हो जा! यह तो जबरदस्ती हो गई। यह जवाब न हुआ, लट्ठ मारना हुआ।
और तब से स्त्रियों को ब्रह्मज्ञान में भाग लेने का हकदार नहीं समझा गया। हालांकि मेरी दृष्टि में गार्गी ने ठीक पूछा था। याज्ञवल्क्य के पास उतर नहीं था तो क्षमा मांगनी थी। तो झुक कर गार्गी के चरणों में बैठना था और कहना था कि गार्गी, मेरे पास उत्तर नहीं है, अगर तेरे पास उत्तर हो तो तू दे। मैं तुझसे पूछता हूं फिर। मैं हार गया।
मगर अहंकार कहीं अपनी पराजय स्वीकार करे! और पुरुष स्त्री के सामने पराजय स्वीकार करे! असंभव! फिर तो उचित यही था कि स्त्रियों के लिए द्वार ही दरवाजे बंद कर दो, क्योंकि स्त्रियां पार्थिव होती हैं। उनके प्रश्न भी ज्यादा ठोस होंगे, ज्यादा वास्तविक होंगे, ज्यादा यथार्थवादी होंगे, हवाई कम होंगे। उनको हवाई बातों में कम रस होता है, व्यर्थ की बकवास में कम रस होता है।
और दूसरी घटना उस जनक की ब्रह्मज्ञानियों की सभा में घटी--अष्टावक्र
का आना। अष्टावक्र का पिता भी ब्रह्मज्ञानी था, वह भी गया था भाग लेने। देर होती देख कर अष्टावक्र की मां ने कहा कि बहुत देर हो गई, तुम्हारे पिता आए नहीं, जाओ उन्हें बुला लाओ। अष्टावक्र का नाम अष्टावक्र इसीलिए था, क्योंकि उसका शरीर आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा था। बड़ा कुरूप रहा होगा बेचारा। आठ जगह से शरीर टेढ़ा-मेढ़ा हो तो आदमी कम, ऊंट ज्यादा। ऊंट भी देख कर हंसने लगें।
अष्टावक्र गया। जैसे ही अंदर प्रविष्ट हुआ, सारे ब्रह्मज्ञानी हंसने लगे। अष्टावक्र तो और जोर से ताली बजा कर हंसा। वह इतनी जोर से ताली बजा कर हंसा कि ब्रह्मज्ञानियों में एकदम सन्नाटा छा गया। एक तो गार्गी फजीहत कर गई थी। किसी तरह गार्गी से सुलझे तो यह अष्टावक्र आ गया। जनक ने पूछाः अष्टावक्र, इन सबका हंसना तो मेरी समझ में आया, लेकिन तू ताली बजा कर क्यों हंसा?
उसने कहाः मैं इसलिए ताली बजा कर हंसा कि मैं तो सोचता था कि यह सभा ब्रह्मज्ञानियों की है। ये चमार यहां किसलिए इकट्ठे हुए हैं?
जनक ने कहाः चमार!
अष्टावक्र ने कहाः निश्चित चमार! जिनको चमड़ी दिखाई पड़े वे चमार। आत्मा तो मेरी भी वैसी ही है जैसी इनकी। मेरी आत्मा में और इनकी आत्मा में कोई भेद नहीं है। मेरी आत्मा इरछी-तिरछी नहीं है, सिर्फ मेरी चमड़ी। मेरी

चमड़ी देख कर अगर चमार हंसें तो क्षम्य हैं, मगर ये ब्रह्मज्ञानी हंसते हैं!
और तुम जान कर हैरान होओगे, जनक अष्टावक्र का शिष्य हो गया। याज्ञवल्क्य का शिष्य नहीं हुआ, याद रखना। अष्टावक्र का शिष्य हुआ। उसने अष्टावक्र से कहा कि मुझे बोध दो। मुझे लगता है कि वह जो देह के अतीत है, उसका तुम्हें बोध हुआ है। तुमने बात पते की कही है। और तुम इस सभा में विवाद लेने आए भी नहीं थे। तुम तो सिर्फ अपने पिता को बुलाने आए थे। मैं भी सोचता था कि ये सारे ब्रह्मज्ञानी कैसे ब्रह्मज्ञानी हैं कि हजार गऊओं के पीछे चले आए! पुरस्कार पाने की आकांक्षा में! यह बच्चों को शोभा देता है। लेकिन तुम जरूर कुछ पते की बात कह रहे हो।
ये दो घटनाएं उस अदभुत सभा में घटी थीं। भारत में और भारत के बाहर भी सदियों से हमने ब्रह्मज्ञान को ही अतिप्रश्न बना रखा है। असली बात पूछना ही मत। व्यर्थ की बातों में लोग उलझे हुए हैं।
मध्य-युग में यूरोप में पंडित और पुरोहित विचार करते थे कि एक सुई की नोक पर कितने देवता नाच सकते हैं। इस पर विवाद चलता था। और ये बड़े-बड़े संत थे, महंत थे, ऋषि थे, महर्षि थे। और इनकी बातचीत... अगर तुम अपने शास्त्रों को उठा कर देखोगे तो इसी तरह की व्यर्थताओं से भरे हुए पाओगे।
जिज्ञासा शुभ है। और मेरे हिसाब में नकार पहले है, फिर ही स्वीकार है। जिसने नहीं नहीं कहा, उसके हां कहने में कभी भी तेजस्विता नहीं होती। इसलिए तुम जितना नहीं कह सको कहो, क्योंकि मैं तुम्हारे ऊपर कुछ भी थोपने को नहीं हूं यहां। तुम पूछो, जी भर कर पूछो। क्योंकि मैं पूछ-पूछ कर, खोज-खोज कर, इनकार करते-करते परम स्वीकार को उपलब्ध हुआ। ऐसे ही तुम भी उपलब्ध होओगे।
यह मत सोचना कि पूछना उचित नहीं है, पूछने से अश्रद्धा प्रकट होती है। नहीं, जरा भी नहीं। पूछने से श्रद्धा प्रकट होती है। तुम पूछ कर यह बात रहे हो कि तुम मुझे इस योग्य मानते हो कि मुझसे पूछो। यह तुम्हारा सम्मान है मेरे प्रति। तुम जितना पूछते हो उतना ही तुम कह रहे हो कि तुम्हें आशा है उत्तर की, अपेक्षा है, अभीप्सा है, प्यास है।
इसलिए वेदांत, पूछते चले जाओ। संकोच न करना। तुम्हारी आदतें पुरानी हैं। इसलिए बहुत तुममें से यह सोचते होंगे कि क्यों लोग इतने प्रश्न पूछते हैं! अरे चुपचाप मान लो! मान लो और बस बात खत्म हो गई। ये कमजोरों के लक्षण हैं। ये कायरों के लक्षण हैं। ये खोजियों के लक्षण नहीं हैं, अन्वेषकों के ये लक्षण नहीं हैं। ये वीरों के लक्षण नहीं हैं।
मेरी पुकार तो साहसियों के लिए है, दुस्साहसियों के लिए है, जुआरियों
के लिए है।
धर्म मेरे लिए आत्यंतिक जिज्ञासा है। वहां कोई प्रश्न अतिप्रश्न नहीं है। यद्यपि मैं जानता हूं कि किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। लेकिन मेरे उत्तर धीरे-धीरे तुम्हारे प्रश्नों को तिरोहित करते जाएंगे। उत्तर नहीं मिल जाएगा तुम्हें, खयाल रखना। उत्तर तो तुम्हें मिलेगा अपने ही अनुभव से, लेकिन मेरे उत्तर तुम्हारे प्रश्नों को काटते जाएंगे। धीरे- धीरे तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न न बचेगा। और जब कोई प्रश्न न बचेगा तो कोई शब्द भी न बचेगा। उसी निःशब्द में, उसी निष्प्रश्न दशा में समाधि का फूल खिलता है। और वही परम अनुभव है। वही मुक्तिदायी है।
तुम पुरानी आदत छोड़ो, वेदांत। यह आदत तुममें होगी, क्योंकि निवासी हो तुम वाराणसी के। सो बड़ी खतरनाक जगह से आते हो। वाराणसी नंबर एक की खतरनाक जगह है; पूना समझो नंबर दो, यह महाराष्ट्र की वाराणसी है। ये पंडितों के गढ़ हैं। पंडित यानी जड़बुद्धि, मंदबुद्धि--जो यंत्रवत शास्त्रों को दोहराए चले जाते हैं; जिनके लिए ब्रह्मज्ञान तकिया कलाम जैसा हो जाता है, रट गया होता है।
मैंने सुना, चंदूलाल की आदत थी कि प्रत्येक बात के अंत में कहते--आपके मुंह में। यह उनका तकिया कलाम था। एक दिन नसरुद्दीन उनसे बोला कि क्यों भई चंदूलाल, अरे कहां जा रहे हो सबेरे-सबेरे?
चंदूलाल बोलेः अजी मियां, बस यहीं नुक्कड़ तक जा रहा था, आपके मुंह में!

नसरुद्दीन बोलाः ठीक है, ठीक है, अरे जहां मर्जी हो वहां जाओ, हमें क्या? गुस्सा तो नसरुद्दीन को बहुत आया कि यह भी कोई बात हुई--आपके मुंह में! नुक्कड़ मेरे मुंह में--सड़क का नुक्कड़! लेकिन फिर भी एक बात उसे चंदूलाल से कहनी थी तो उसने कहा कि सुनो भई, एक बात जरूर तुमसे कहनी थी, जहां तुम्हें जाना हो जाओ, मुझे उससे कुछ देना-लेना नहीं। लेकिन जरा अपने साहबजादे को समझाना। कल की ही बात है, सामने के मैदान में क्रिकेट खेलते समय हमारी खिड़की का शीशा तोड़ दिया।
चंदूलाल बोलेः अरे भाईजान, जो कुछ भी नुकसान हुआ--आपके मुंह में! उसकी मरम्मत करवा देंगे--आपके मुंह में! अरे ऐसी कौन सी खास बात हो गई--आपके मुंह में! अरे एक शीशा ही टूट गया न--आपके मुंह में!
नसरुद्दीन यह सब सुन कर पगला गया। और बोला कि अबे चंदूलाल के बच्चे, अकल के कच्चे! यह बार-बार क्या लगा रखा है, आपके मुंह में? अब यदि एक बार और बोला आपके मुंह में, तो ऐसा घूंसा मारूंगा आपके मुंह में, कि सारे दांत निकल कर बाहर आ जाएंगे आपके मुंह में! और जिंदगी भर याद रखेगा आपके मुंह में।
इस देश में तो ब्रह्मज्ञान तकिया कलाम जैसा है। हर कोई ब्रह्मज्ञान दोहरा रहा है। जो देखो वही बाबा तुलसीदास की चौपाइयां याद किए बैठे हैं। चौपाइयां याद कर-कर के सब चौपाए हो गए हैं। ऐसी कंठस्थ हो गई हैं कि नींद में भी बड़बड़ाते हैं तो चौपाई... ज्ञान की बातें! जीवन में कहीं कोई लक्षण नहीं। जीवन ठीक उलटा। जीवन ठीक उसके विपरीत। लेकिन जीवन से किसी को लेना- देना नहीं है।
जीवन रूपांतरित होता है प्रयोग से, अनुभव से, खोज से; मानने से नहीं, जानने से। मेरा सारा जोर जानने पर है। मैं ईश्वर को जानता हूं और चाहता हूं कि तुम भी ईश्वर को जानो। और मैंने मान कर नहीं जाना, इसलिए तुमसे मैं कैसे कहूं कि मान कर तुम जान सकोगे? और मेरे जानने में किसी ने कभी मान कर नहीं जाना है। जिन्होंने मान कर सोच लिया हो कि जाना है, वे भ्रांति में ही जीए और भ्रांति में ही मरे। मैं अपने किसी संन्यासी को न भ्रांति में जीने देना चाहता हूं और न भ्रांति में मरने देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं तुम सजग होओ, तुम पर फूलों की वर्षा हो! तुम्हारे भीतर दीया जले! तुम जगमग हो उठो--अपने अंतर्प्रकाश से!

तीसरा प्रश्नः ओशो! क्या बुद्धत्व की भी श्रेणियां होती हैं? क्या इसीलिए हिंदुओं ने अवतारों की कलाएं निर्धारित कीं?

सहजानंद! बुद्धत्व का अर्थ ही होता है सीढ़ियों का अतिक्रमण कर जाना, श्रेणियों के पार हो जाना--जहां सब सीमाएं समाप्त हो जाती हैं, जहां सब माप गिर जाते हैं, जहां अमाप शुरू होता है--वहीं बुद्धत्व है। इसलिए दो बुद्धों में कोई छोटा नहीं होता, कोई बड़ा नहीं होता।

मगर ये सब श्रेणियों को निर्धारण बुद्धपुरुष नहीं करते, बुद्धू करते हैं। और बुद्धू तो अपने ही ढंग से करेंगे न! बुद्धू तो हर चीज में श्रेणियां खोजेंगे। वे तो हर चीज को तराजू पर तौलेंगे।
एक जैन पंडित थे--ऋषभदास रांका। वे ही मुझे सबसे पहली दफा पूना लाए थे। अगर पूना को नाराज होना चाहिए तो ऋषभदास रांका पर, मेरा इसमें कुछ कसूर नहीं है। मैं तो शायद कभी पूना आया भी नहीं होता। वे गांधी जी के साथ वर्षों तक रहे, वर्धा में ही रहे। बड़े सर्वोदयी थे। गांधी और विनोबा का सत्संग करते-करते एक बात उन्होंने सीख ली, रट ली, तकिया कलाम हो गया उनका, कि सब धर्म समान हैं। यूं कहने तो लगे; मगर यह बात रही ऊपर ही ऊपर, भीतर तो जाती कैसे! भीतर तो जैन धर्म बैठा हुआ था। उन्होंने एक किताब लिखी महावीर और बुद्ध पर। मुझे उसकी पांडुलिपि दिखाई और कहा कि आप अपना मंतव्य दें। मैंने किताब का शीर्षक देखा और लौटा दी। मैंने कहा कि बस शीर्षक देख लिया, उतना बहुत। उन्होंने कहाः क्या कहते हैं?

मैंने कहाः बस खत्म हो गई बात। आगे कुछ कहना नहीं। इतना ही बहुत है। शीर्षक ने ही सब बता दिया। महावीर और बुद्ध के संबंध में तो नहीं, आपके संबंध में सब बता दिया।
शीर्षक था किताब का--भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। मैंने पूछा कि
एक को भगवान और दूसरे को महात्मा क्यों लिखते हो? और अब तक मेरी खोपड़ी चाटते रहे कि सब धर्म समान हैं और जो गीता में लिखा, वही धम्मपद में, वही कुरान में, वही जिनवाणी में। फिर यह भेद क्यों?
कहने लगेः अब आपसे क्या छिपाना! माना कि सब धर्म समान हैं, मगर महावीर
को एक सीढ़ी ऊपर तो रखना ही होगा। वे भगवान हैं, वीतराग पुरुष हैं। बुद्ध, माना कि बहुत पहुंचे सिद्ध हैं, लेकिन महात्मा ही हैं, अभी भगवान नहीं। अभी एक सीढ़ी नीचे हैं।
कोई जैन बुद्ध को महावीर के साथ नहीं रख सकता, एक साथ नहीं रख सकते, अड़चन होती है, कठिनाई होती है। और जो बुद्ध को नहीं रख सकता महावीर के साथ तो फिर औरों का तो कहना ही क्या! मोहम्मद को तो तुम सोचो कैसे रखेगा? मोहम्मद तो तलवार लिए रहते थे। बुद्ध का कसूर अगर जैनियों की नजर में कुछ था तो दो कसूर थे। एक तो कसूर यह था कि वे कपड़ा पहनते थे, भगवान को कपड़ा पहनना नहीं चाहिए। अरे भगवान को क्या छिपाना? सब प्रकट होना चाहिए। उसे तो बच्चे की तरह निर्दोष होना चाहिए। जैसे कपड़े ही उतार देने से कोई बच्चे की तरह निर्दोष हो जाता है। तो हिंदुओं के इतने नागा साधु हैं, ये सब निर्दोष बच्चे हैं! ये छंटे हुए बदमाश मालूम होते हैं। तुम किसी भी कुंभ में इनकी जमात देख लो, ये सबसे ज्यादा उपद्रवी हैं--हर कुंभ में कोई झगड़ा होता है, कोई मार-पीट खड़ी होती है, भाले चलते हैं, इन्हीं नागा साधुओं की वजह से। क्योंकि वे कहते हैंः पहले स्नान करने का हक हमारा, क्योंकि हम नंगे हैं! और इनका नंगापन भी बड़ा मजेदार है। ये जब कुंभ में आते हैं तभी नंगे हो जाते हैं, बाकी अपने अखाड़ों में कपड़े पहनते हैं। अखाड़ों में कौन देखता है? इसलिए आमतौर से तुम्हें ये नागा साधु और कहीं दिखाई नहीं पड़ेंगे, सिर्फ कुंभ में दिखाई पड़ेंगे। बाकी समय अपने अखाड़ों में कपड़े पहन कर रहते हैं। सिर्फ नंगे हो जाने से ही अगर कोई भगवान होता हो तो सारे पशु-पक्षी नंगे हैं।
एक तो वह गलती थी बुद्ध की कि वे कपड़ा पहनते थे। दूसरी गलती यह थी कि उन्होंने मरे हुए जानवर का मांस खाने के लिए आज्ञा दी। बुद्ध का कहना यह था कि मारने में हिंसा है, मांस खाने में हिंसा नहीं है। बात तो तर्कयुक्त है, अर्थपूर्ण है। मारने में हिंसा है, मांस खाने में क्या हिंसा हो सकती है? तो अब जो जानवर मर गया है, उसके मांस को खाया जा सकता है। बस ये दो बातों ने बड़ी बेचैनी पैदा कर दी। और सब बातों में मेल खाता हो तो भी ये दो बात अड़चन कर गईं। तो महात्मा मान लिया, यही बहुत है। असल में उनका मतलब यह था मुझसे कहने का कि आप यह समझिए मेरे समभाव को मैंने महात्मा मान लिया, यही कम है क्या? कोई जैन महात्मा भी मानने को तैयार नहीं है।
तो मोहम्मद को तो छोड़ ही दो। जीसस की तो बात ही न उठाओ। मेरे पास जैन पत्र लिखते हैं कि आप जीसस और महावीर को एक साथ बोल देते हैं, दोनों के नाम... यह बात ठीक नहीं है। यह हमारे महावीर का अपमान है। अरे कहां महावीर! रास्ते पर चलते थे, अगर कांटा सीधा पड़ा हो, तो उनको देख कर उलटा हो जाता था कि कहीं पैर में गड़ न जाए। यह लक्षण है तीर्थंकर का। और एक जीसस, जिनको सूली लगी। सूली लगने का साफ मतलब है कि किसी पिछले जन्म में कोई महापाप किया होगा। कोई छोटा-मोटा पाप नहीं, कोई महापाप किया होगा, तभी तो सूली लगेगी न! कर्म का फल ही तो भोगना पड़ेगा! हर किसी को तो सूली नहीं लगती। कांटा भी नहीं गड़ सकता तीर्थंकर को, क्योंकि उसके सारे पाप क्षय हो गए, उसकी निर्जरा हो गई। अब कांटा भी कैसे गड़ेगा? कांटा गड़ने के लिए भी कोई पाप किया हो, यह होना चाहिए। कहां जीसस और कहां महावीर! आप दोनों को एक साथ बोल देते हैं, ठीक नहीं करते।
और अगर ईसाई से पूछो... । मेरे पास ईसाई मिशनरियों ने कहा है आकर कि आप जीसस के साथ महावीर और बुद्ध को न तौलें तो अच्छा। जीसस ने मनुष्य-जाति के लिए अपना जीवन दे दिया, इन्होंने क्या दिया? जीसस ने अंधों को आंखें दीं,

बहरों को कान दिए, लंगड़ों को पैर दिए। महावीर ने किसकी सेवा की? एक अस्पताल भी तो नहीं खोला। एक प्राइमरी स्कूल ही खोल देते। वह भी तो नहीं किया। सेवा तो नाममात्र को नहीं। जब सेवा ही नहीं है तो क्या खाक करुणा! और क्या उपलब्धि? ये महावीर और बुद्ध ने तो स्वार्थ सिखाया। इनकी गिनती आप कहां जीसस के साथ कर रहे हैं? जिसने कि मनुष्य के उद्वार के लिए, मनुष्य के मोक्ष के लिए अपने को सूली पर लटकवा लिया!
परिभाषाएं बदल गईं। उनको लगता है दुख कि मैं महावीर और बुद्ध का नाम जीसस के साथ लेता हूं। बौद्धों को दुख लगता है कि मैं महावीर का नाम बुद्ध के साथ लेता हूं, क्योंकि बौद्ध शास्त्रों में महावीर का बहुत मजाक उड़ाया गया है। महावीर को महात्मा भी नहीं माना गया। भगवान होना तो दूर, ज्ञानी भी नहीं माना है। यह बुद्धुओं की दुनिया है। यह बुद्धुओं की दुनिया में हिसाब-किताब इस तरह बिठाए जाएंगे कि हर एक के पास अपना तराजू है, अपना मापदंड है, अपने बटखरे हैं, उनसे वह तौलेगा। अन्यथा जो व्यक्ति जाग गया, जो परम जीवन को अनुभव कर लिया, उसमें कोई भेद नहीं होते।
ये कलाओं इत्यादि की बातें सब व्यर्थ हैं। ये हमारे हिसाब हैं, क्योंकि हम सभी को समान नहीं रख सकते। हम बिना तौले मान ही नहीं सकते।
एक नेताजी चुनाव में हार गए। जब वे घर लौटे तो उनकी पत्नी बोलीः तुम्हारे हारने-जीतने से मुझे कोई मतलब नहीं है। तुम सिर्फ इतना बता दो कि तुम्हें मिले दो वोटों में एक तो मरा था, लेकिन दूसरा किस चुड़ैल का था? पत्नियों के अपने मापदंड होगे। हारने-जीतने से क्या लेना-देना? यह सवाल है असली कि तुम्हें दो वोट मिले, वे कैसे मिले! एक तो मेरा था वह मैंने डाला, दूसरा किस चुड़ैल का था?
बुद्धू तो बुद्धू रहेंगे। वे बुद्धों को संबंध में भी चर्चा करेंगे
तो भी क्या फर्क पड़ता है? उनका बुद्धूपन तो आ ही जाएगा।
एक होटल में आग लग गई, सब लोग जान बचाने के लिए हड़बड़ा कर भाग खड़े हुए। फायर ब्रिगेड का इंतजार करने लगे। उसी समय होटल में ठहरने वाले एक यात्री ने अपने पास खड़े लोगों से कहना शुरू कियाः मैं तो आग से जरा भी नहीं घबड़ाता। आग लगने पर मैं ठाठ से उठा, शर्ट पहनी, घड़ी बांधी, टाई संवारी, बालों में कंघी की, सिगरेट जलाया, फिर शान से बाहर निकल कर आ रहा हूं। एक तुम हो कि कायरों की तरह भागे हड़बड़ा कर! अरे क्या यूं डरना? यह शोभा देता है मनुष्य को? मर्दों को?
पास में ही खड़े एक यात्री ने कहाः श्रीमान, आपने सब कुछ तो किया, परंतु पतलून पहनना क्यों भूल गए?
तुम अगर बुद्धों के संबंध में भी सोचोगे, तो भी कुछ न कुछ भूल हो ही जाएगी। टाई सम्हाल ली होगी, मगर पतलून का क्या हुआ? इधर सम्हालोगे उधर बात उघड़ जाएगी। तुम्हारी चादर छोटी है। तुम करो भी क्या? सिर ढांकोगे, पैर उघड़ जाएंगे; पैर ढांकोगे, सिर उघड़ जाएगा। लेकिन कहीं न कहीं से बात जाहिर हो जाएगी।
सहजानंद, तुम पूछते होः "क्या बुद्धत्व की भी श्रेणियां होती हैं?"
नहीं, कोई श्रेणियां नहीं होतीं। बुद्धत्व का अर्थ ही है श्रेणियों
का अतिक्रमण।
और तुम पूछते होः "क्या इसलिए हिंदुओं ने अवतारों की कलाएं निर्धारित
की हैं?"
इसलिए नहीं, बल्कि इसीलिए कि हमको सबके लिए जगह बनानी पड़ती है। शिष्टाचारवश। कुछ तो जगह सबके लिए बनानी पड़ेगी। अच्छे लोग सबको जमा कर रख देते हैं। अपने को सबसे ऊपर रख लेते हैं। कृष्ण को मानने वाला कृष्ण को सबसे ऊपर रख लेता है; वे पूर्णावतार हैं। बाकी सब अवतार अपूर्ण अवतार हैं।
बुद्ध को मानने वाला कृष्ण को अवतार नहीं गिनता, गिन ही नहीं सकता।
पूर्णावतार होने की तो बात दूर। महावीर को मानने वालों ने तो कृष्ण को नरक में डाल रखा है।
सबके अपने-अपने हिसाब हैं।
मुसलमान कहते हैंः मोहम्मद अंतिम पैगंबर हैं। बस ईश्वर की आखिरी किताब उतर आई--कुरान। अब किसी किताब की कोई जरूरत नहीं है। हां, उसके पहले

भी पैगंबर हुए हैं। जीसस हुए, मोजे.ज हुए, इब्राहिम हुए; मगर ये सब तिथिबाह्य हो गए। जब मोहम्मद आ गए तो आखिरी किताब आ गई। फिर उसके बाद कोई जरूरत नहीं।
भले लोग हैं। इतना तो मान लेते हैं कि चलो जीसस को भी स्वीकार कर लिया
कि ये भी पैगंबर थे छोटे-मोटे, अच्छे आदमी थे! मगर मोहम्मद के सामने तो सब फीके पड़ गए। सूरज उग आया, सब तारे बुझ गए। अब दीये जलाने की कोई जरूरत न रही। हालांकि दीया भी रोशनी देता है अंधेरे में। जब मोहम्मद नहीं थे तो इनकी जरूरत थी।
ये हम बुद्धूओं के हिसाब हैं। बुद्धों का इससे कोई संबंध नहीं। जाग्रत पुरुषों का इससे कोई संबंध नहीं। नींद में भेद होते हैं। कोई मीठा सपना देख रहा है, कोई कड़वा सपना देख रहा है, कोई सुखद कोई दुखद; लेकिन जाग गए, सपने खत्म हुए। फिर न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। फिर वस्तुतः व्यक्ति है ही नहीं, समष्टि है। बूंद खो गई सागर में, अब क्या बूंद का हिसाब?
मगर हमारी पुरानी आदतें हैं। हमारे अपने सोचने के ढंग हैं। हम आरोपित
ही किए चले जाते हैं। हम छोड़ते ही नहीं किसी को। हम कुछ न कुछ तरकीब निकाल लेंगे। अपनी मूढ़ता न छोड़ेंगे। अपनी मूढ़ता के माध्यम से ही हम बुद्धों को भी देखेंगे। फिर भूल-चूक होनी स्वाभाविक है।
कोई बुद्ध पुरुष किसी से न नीचा है, न ऊंचा। न कोई बुद्ध पुरुष पूर्ण है, न कोई अपूर्ण। बुद्धत्व पूर्णता का नाम है। अब इससे और ज्यादा कोई पूर्ण नहीं हो सकता, न इससे कम कोई पूर्ण हो सकता है।
संगीत के गुरु ने अपने एक शिष्य से पूछाः तुम किस ताल के विषय में अधिक जानते हो?
शिष्य ने तुरंत कहाः हड़ताल के विषय में।
आदमी भी करे तो क्या करे?
ताला-चाबी मरम्मत करने वाला व्यक्ति कभी उपवास नहीं रखता था। पत्नी उसके बहुत पीछे पड़ी रहती थी। पत्नियां तो पतियों को धार्मिक बनाने के पीछे पड़ी ही रहती हैं। पता नहीं उन्हें क्या बेचैनी है! पतियों को मोक्ष भेजना ही है उनको। अपना मोक्ष तो वे तय किए हुए हैं, कहीं पति पीछे न छूट जाएं; उनको भी साथ ही ले जाना है, ताकि वहां भी सताएं, कि इधर-उधर कहीं छूट गए, कहीं किसी और से आंख-मिचौनी करने लगें, कुछ हरकत करने लगें, तो नजर भी रखनी पड़ेगी न मोक्ष में भी! ... तो पत्नी एकदम पीछे पड़ी थी। बहुत ही पीछे पड़ी, तो बेचारा आदमी भी क्या करे, उसने एक दिन उपवास कर लिया। शाम को पत्नी ने पूछाः तुम्हारे रंग-ढंग से ऐसा मालूम पड़ता है कि तुमने उपवास खोल दिया। शायद खा-पी आया होगा बाजार में। आखिर पति भी तो अपनी आत्मरक्षा का उपाय कोई न कोई करता ही है। लेकिन पति ने क्या कहा? पति ने कहाः अभी नहीं, चाबी ही गुम गई है, खोलूं तो कैसे खोलूं? ताला-चाबी खोलने का उनका धंधा था। उपवास खोलना, उनको तत्क्षण अपनी भाषा ही याद आई।
तुम जिंदगी को नापते हो, तौलते हो--बड़े-छोटे में, ऊंचे-नीचे में--शूद्र हैं, ब्राह्मण हैं, महापुरुष हैं, संत हैं, सज्जन हैं, दुर्जन हैं--बस वही हिसाब तुम बुद्ध पुरुषों पर भी लगा देते हो। बुद्ध पुरुष का ही अर्थ होता है--तुम्हारे हिसाब के बाहर। जहां तुम अवाक रह जाओ, आश्चर्यविमुग्ध! जहां बोल न निकले! जहां कहने को कुछ न सूझे। जहां हृदय धक से रह जाए! तुम्हारी सारी अब तक की आदतें, अब तक के विचार की प्रक्रियाएं एकदम व्यर्थ हो जाएं-- वहीं समझना कि किसी बुद्धपुरुष से सम्मिलन हुआ हैं।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
दसवां प्रवचन

जहां प्रेम है वहां सूर्योदय है

पहला प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं धर्म जीने की कला है। यह कला क्या है?

पूर्णानंद! मनुष्य सदियों से एक भ्रांत धारणा के अंतर्गत जीआ है। यह भ्रांत धारणा थी कि धर्म जीवन का त्याग है, जीवन से पलायन है, जीवन से विरक्ति है। मनुष्य ने अब तक धर्म को निषेध की भांति लिया, नकार की भांति लिया। जीवन को इनकार करना संन्यास बन गया था। और जो जीवन को जितना इनकार करे उतना बड़ा संत था। इसके दुष्परिणाम होने सुनिश्चित थे, अपरिहार्य थे। और दुष्परिणाम हुए। इस धारणा के जितने दुष्परिणाम हुए उतने किसी और धारणा के नहीं हुए। इस धारणा ने मनुष्य की आत्मा को यूं पकड़ लिया, जैसे किसी की देह को कैंसर जकड़ ले।
इसका पहला परिणाम तो यह हुआ कि सिर्फ गलत लोग धर्म की तरफ आकृष्ट हुए-- रुग्ण लोग, विक्षिप्त लोग; ऐसे लोग जो जीने में असमर्थ थे। जिन्हें नाचना नहीं आता था उन्होंने जल्दी से मान लिया कि आंगन टेढ़ा है। यह मानना तो अहंकार को कठिन पड़ता है कि मुझे नाचना नहीं आता। यह मानना बड़ा सुगम, बड़ा सरल, अहंकार का पोषण करने वाला है कि मैं करूं भी तो क्या करूं, नाचूं तो कैसे नाचूं, आंगन जो टेढ़ा है!
आंगन के टेढ़े होने से नाचने का कुछ लेना-देना नहीं है। नाचना आता हो
तो आंगन टेढ़ा हो, तो भी नाचा जा सकता है। नाचना न आता हो और आंगन बिल्कुल चौकोर हो, तो भी क्या करोगे?
मुल्ला नसरुद्दीन आंख के चिकित्सक के पास गया था। पूछने गलाः डाक्टर साहिब, चश्मा तो आप बनाए दे रहे हैं। चश्मा लग जाने पर मैं पढ़ने तो लगूंगा न?
डाक्टर ने कहाः निश्चित ही। जरूर पढ़ने लगोगे।
थोड़ी देर मुल्ला चुप रहा, फिर बोलाः आप आश्वस्त हैं? आपको भरोसा है? सोच-समझ कर कह रहे हैं? पढ़ने तो लगूंगा न?
डाक्टर ने कहाः एक बार कह दिया कि जरूर चश्मा लग जाएगा तो पढ़ने लगोगे। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं इसलिए दुबारा पूछ रहा हूं कि पढ़ना मुझे आता नहीं।
पढ़ना न आता हो तो चश्मा लग जाए, तो भी न पढ़ सकोगे। चश्मे से पढ़ने का क्या लेना-देना? पढ़ना आता हो तो चश्मा लग जाए, तो स्वभावतः ठीक से पढ़ सकोगे। मगर पढ़ना आता हो तो बिना चश्मे के भी कुछ-कुछ तो पढ़ा ही जा सकता है। जो लोग धर्म में उत्सुक हुए इस नकारवादी धारणा के कारण... मुझे आज्ञा
दो तो मैं कहना चाहूं--इस नास्तिक धारणा के कारण। क्योंकि जीवन का निषेध नास्तिकता है। जीवन अर्थात परमात्मा। जीवन को तो किया इनकार, और एक काल्पनिक परमात्मा को किया स्वीकार। खूब बेईमानी हुई! आदमी के साथ खूब खिलवाड़ हुआ। आकाश में दूर बैठे किसी परमात्मा के प्रति तो आस्था और चारों तरफ छाए हुए जीवन के प्रति अनास्था--यह कैसा शीर्षासन था! लेकिन सदियों से धर्म शीर्षासन करता रहा है। अब सिर के बल खड़े होने में जिनको रस हो, वे ही उत्सुक होंगे ऐसे धर्म में। स्वभावतः गलत लोग उत्सुक हुए। जो हारे हुए लोग थे, जो जीवन में जीत नहीं सके, जिन्हें जीवन में जीतने योग्य प्रतिभा भी न थी, जो जीवन में जीतने योग्य श्रम करने को भी राजी न थे, काहिल, सुस्त, आलसी--वे सब धार्मिक हो गए। जीवन ने जिन्हें सब तरह पछाड़ा था, वे जीवन से भाग खड़े हुए। जो जीवन की चुनौती का मुकाबला न कर सकते थे, जिनकी इतनी बड़ी छाती न थी, कमजोर थे, कायर थे--वे सब भगोड़े हो गए। और धर्म ने उन्हें सुंदर आड़ दे दी, प्यारा पर्दा दे दिया, खूबसूरत ओट दे दी, एक बड़ा मनमोहक मुखौटा दे दिया। वे संत हो गए, महात्मा हो गए। थे वे केवल संतापग्रस्त, भयभीत, पराजित, भगोड़े; इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। मगर उन्होंने अपने भगोड़ेपन को खूब दार्शनिक लिबास पहनाया। सुंदर-सुंदर वस्त्र पहनाए। कुरूप से कुरूप बातों को ऐसी प्यारी सैद्धांतिक सजावट दी कि लगा वे जो कहते हैं वही सत्य

है। और खूब शोरगुल मचाया। सदियों तक शोरगुल मचाया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वस्थ लोग धर्म से रुचि खो दिए। स्वस्थ लोग सोचने लगेः धर्म हमारे लिए नहीं है। प्रतिभाशाली लोग, बुद्धिमान लोग धर्म से दूर हट गए। गलत लोग जिस जगह इकट्ठे हो जाएं, वहां से ठीक लोग अपने आप हट जाते हैं।
अर्थशास्त्र का एक नियम है कि गलत सिक्के सही सिक्कों को चलन के बाहर
कर देते हैं। तुम्हारी जेब में अगर दो नोट हों--एक असली नोट दस रुपये का और एक नकली नोट दस रुपये का, तो तुम पहले नकली नोट को चलाओगे, स्वभावतः क्योंकि इससे जितनी जल्दी झंझट निकले, छूटे, उतना अच्छा। असली तो कभी चल जाए, नकली कभी चले न चले। पकड़ जाओ। तो किसी भी बहाने नकली को निकाल देना चाहोगे। नकली रुपया निकालना हो तो तुम मोल-तौल भी नहीं करोगे। दो-चार पैसे कम या ज्यादा, क्या फर्क पड़ता है, रुपया ही नकली है! जल्दी से भागोगे। नोट देकर जितनी जल्दी होगा रफूचक्कर हो जाओगे। और जिसके पास नकली पहुंचेगा, जैसे ही पहचानेगा नकली है, वह भी चलाने में लग जाएगा। इस तरह नकली नोट चलने लगेंगे और असली नोट तिजोड़ियों में बंद हो जाएंगे।
यह नियम बड़ा महत्वपूर्ण है। यह जीवन के और पहलुओं पर भी लागू होता है।
यह धर्म के संबंध में भी सत्य है। जब नकली नोट चल पड़े धर्म के नाम पर, तो असली नोट चलन के बाहर हो गए। बुद्धुओं की तो भीड़ इकट्ठी हो गई, स्वभावतः उस भीड़ में बुद्धों ने खड़ा होना पसंद न किया। बुद्ध अकेले हो गए। वे भीड़ से मुक्त हो गए। वे भीड़ के बाहर हो गए।
दूसरा दुष्परिणाम हुआ... यह तो बड़ी हानि हो गई, छोटी हानि मत समझना। क्योंकि इसका परिणाम यह हुआ कि सारी पृथ्वी धर्म की रौनक से भर सकती थी, धर्म की महिमा से जीवन नये-नये अनुभव के आयाम खोल सकता था। धर्म की प्रतीति से जीवन रोज-रोज ऊंचाइयों पर उड़ सकता था। धर्म के अनुभव से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उड़ान आती, आकाश मिलता, सीमाएं टूटतीं। यह तो न हुआ। गलत लोग इकट्ठे हो गए, सही लोगों ने पीठ फेर ली। सही लोग हट गए। बुद्ध ने अगर वेदों को इनकार किया तो इसलिए नहीं कि वेदों से कुछ दुश्मनी थी, बल्कि इसलिए कि वेदों के पास गलत लोग इकट्ठे थे। अगर महावीर ने हिंदू धर्म को इनकार किया तो कुछ गलती हिंदू धर्म की न थी, गलती थी तथाकथित हिंदुओं की। अगर जीसस ने यहूदियों के धर्म को इनकार किया यहूदियों के घर में पैदा होकर, तो कारण यह नहीं था कि उस धर्म में कोई बुनियादी भूल थी; कारण यह था, उस धर्म के ठेकेदार गलत लोग थे। और सही चीज भी गलत हाथों में गलत हो जाती है।
इस नियम को भी समझ लेनाः गलत चीजें भी सही हाथों में सही हो जाती हैं
और सही चीजें भी गलत हाथों में गलत हो जाती हैं। सारा खेल हाथों का है। जौहरी के हाथ में पत्थर भी हीरे जैसे चमकने लगते हैं और मूढ़ों के हाथ में हीरे भी पड़ जाएं तो पत्थर ही हो जाएंगे। मूढ़ समझेगा ही क्या? मूढ़ पहचानेगा क्या? मूढ़ हीरे का करेगा भी क्या?
तुम गधों के ऊपर अगर शास्त्रों को भी लाद दोगे तो गधे पंडित न हो जाएंगे। कितने गधों पर तो विश्वविद्यालयों की डिग्रियां लदी हुई हैं, लेकिन उससे वे कुछ ज्ञानी नहीं हो गए हैं।
गलत आदमी के हाथ में सब चीजें गलत हो जाती हैं। सही आदमी के हाथ में सब चीजें सही हो जाती हैं। सही आदमी का अर्थ ही यह होता है, उसके पास प्रतिभा है। वह कांटों का भी उपयोग कर लेता है, फूलों की तो बात छोड़ो। और गलत आदमी फूलों का भी दुरुपयोग कर लेता है, कांटों का तो करेगा ही।
यूं समझो कि जैसे छोटे बच्चे के हाथ में कोई तलवार दे दे, अब खतरा ही होने वाला है। या तो खुद को चोट पहुंचाएगा या किसी और को चोट पहुंचाएगा।
चोट पहुंचने ही वाली है। खून बहेगा ही।
और धर्म के नाम पर कितना खून बहा है! हिसाब लगाओगे तो अधर्म तुम्हें अधर्म नहीं मालूम पड़ेगा, फिर धर्म तुम्हें अधर्म जैसा मालूम पड़ेगा।
क्योंकि अधर्म के नाम पर तो खून बहा नहीं।
जीसस अलग हो गए यहूदियों से।
अगर मैं आज हिंदुओं, ईसाइयों, जैनों, बौद्धों, यहूदियों, पारसियों की
जड़ संस्थाओं के विपरीत कुछ बोल रहा हूं, तो उसका कारण यह नहीं है कि उन

परंपराओं के मूल में कहीं सत्य नहीं है। मूल में तो सत्य है, मगर जिनके हाथ में वे परंपराएं पड़ गई हैं, जिन मूढ़ों के हाथ में वे हीरे पड़ गए हैं, वे उनका उपयोग पत्थरों की तरह कर रहे हैं। और एक ही उपाय है उन मूढ़ों से उन हीरों को छीन लेने का--और वह यह है कि उनकी सारी दुकानदारी गलत है, इसकी उदघोषणा की जाए। यह कोने-कोने तक यह आदमी के हृदय-हृदय तक खबर पहुंचा दी जाए।
तो एक तो दुष्परिणाम यह हुआ कि गलत लोग इकट्ठे हुए, ठीक लोग हटने लगे। दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि जो ठीक लोग हट गए, उनका मन भी विषाक्त हो गया। फ्रेड्रिक नीत्शे कहता था... और ठीक कहता था। वह आदमी कोई प्रबुद्ध व्यक्ति नहीं था। उसने कोई समाधि नहीं जानी थी। लेकिन फिर भी सूझ-बूझ उसकी गहरी थी, अंतर्दृष्टि उसकी पैनी थी। उसकी प्रतिभा में धार थी। उसे मौका मिला होता तो वह बुद्ध, महावीर, जरथुस्त्र, लाओत्सु की हैसियत का आदमी होता। लेकिन पश्चिम में मौके नहीं थे।
नीत्शे ने कहा है कि धर्म लोगों के जीवन को पलायन से तो नहीं भर पाया; कुछ थोड़े से लोगों को छोड़ दो, शेष सारे लोगों का जीवन पलायनवादी तो नहीं हुआ--लेकिन लोगों के मन में जीवन के प्रति एक अपराध-भाव जरूर भर गया। जिन्होंने जीवन छोड़ दिया उनकी तो गिनती थोड़ी है। मगर जो जीवन में बने रहे वे भी यूं बने रहे जैसे चोर हों, जैसे अपराधी हों। उत्फुल्लता चली गई, आनंद चला गया, उत्सव चला गया, नृत्य खो गया। जीवन के प्रति अहोभाव खो गया। जो जीवन में बने रहे, उनका मन भी तिक्त हो गया, कड़वा हो गया। उन्होंने गटक नहीं लिया जहर को, मगर थूक भी न सके। न पी सके न थूक सके, कंठ में अटका रह गया। जो पी गए वे तो संत हो गए--थोथे संत। जो नहीं पी सके वे भी थूक न सके। इतनी हिम्मत वे भी न जुटा पाए, क्योंकि इतनी हिम्मत करने का अर्थ होता है भीड़ को नाराज करना। फिर भीड़ सूली लगाएगी। फिर भीड़ जहर पिलाएगी। बेहतर है चुप्पी साधे रहो, मुंह बंद ही रखो। मगर मुंह बंद रखा तो जहर जो तुम पी गए हो, गले के नीचे न भी उतारो, तुम्हारे मुंह में भी भरा रहे, तो तुम्हारे मुंह का स्वाद तो खराब कर ही जाएगा। तो सारे लोगों के जीवन में एक विषाद छा गया। रहे जीवन में वे, भागे वे--सब जीवन के प्रति एक तरह की उदासी से भर गए। जीवन मंगलदायी न रहा। ये दो दुष्परिणाम हुए।
और अब समय आ गया है कि पृथ्वी इस महामारी से मुक्त हो। इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म जीवन की कला है, जीने की कला है। धर्म जीवन का त्याग नहीं है।
मैं जीवन को और परमात्मा को पर्यायवाची घोषित करता हूं। परमात्मा शब्द छोड़ दो तो भी चलेगा; जीवन पर्याप्त है। जीवन शब्द काफी प्यारा है। परमात्मा कुछ और नई ऊंचाइयां नहीं दे देता। जीवन को ही निखार देना--धर्म है।
और जीवन जन्म से नहीं मिलता है। जन्म से ही मिल जाता तो बात बड़ी आसान
हो जाती। तो फिर कोई कला न सीखनी पड़ती। तुम बाजार से एक वीणा खरीद लाए, इससे यह मत सोच लेना कि तुम्हें वीणा बजाना आ गया। यूं वीणा बाजार से खरीद लाए हो, इससे वीणा सीखने का अवसर तुम्हारे हाथ लगा; अब तुम्हें अभ्यास करना होगा; अब तुम्हें सतत साधना करनी होगी, तब संगीत जन्मेगा। ऐसा मत समझ लेना कि वीणा हाथ पड़ गई तो सब मिल गया, अब क्या करना है? अब तो बजाओ वीणा, जगाओ दीपक राग, बुझे दीये जल जाएंगे? बुझे दीये तो नहीं जलेंगे, जले दीये बुझ सकते हैं। तुम्हारा दीपक राग ऐसा ही होगा, अगर एकदम से वीणा बजानी शुरू कर दी तो--मोहल्ले में जो सो गए हैं वे जग जाएंगे। दीये नहीं जलेंगे। मोहल्ले के कुत्ते भौंकने लगेंगे, लोग फोन पुलिस को करने लगेंगे। घर के बच्चे चिल्लाने लगेंगे, पत्नी चिल्लाने लगेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी जब भी गाने का अभ्यास करती तो वह अपने घर
के बाहर टहलने लगता। मैंने उससे पूछाः नसरुद्दीन, यह मामला क्या है? जब भी तेरी पत्नी संगीत का अभ्यास करती है, तू बाहर क्यों टहलता है?
उसने कहाः इसलिए ताकि मोहल्ले वाले जान लें कि मैं उसको पीट नहीं रहा हूं। नहीं तो लोग समझते हैं कि मैं उसकी पिटाई कर रहा हूं। यह गाना है?
और उसने अपने कान बताए। कान में उसने रुई के फाहे लगा लिए हैं दबा-दबा कर, कि मैं तो सुन-सुन कर मरा जा रहा हूं। फिर जब कोई उपाय न रहा तो वह भी एक

वीणा खरीद लाया। और जो उसने बजाना शुरू किया वीणा का, तो पत्नी को भी थका दिया, पड़ोसियों को भी थका दिया। बस एक ही तार को टुनटुनाए जाए। बस टुन-टुन, टुन-टुन... ! आखिर लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, बहुत बजाने वाले देखे, कम से कम तारों पर हाथ चलाते हैं, तू तो एक ही तार को छेड़ रहा है!
नसरुद्दीन ने कहाः वे असली तार खोज रहे हैं कि उनका तार कहां है, मेरा तार मुझे मिल गया। अब मैं क्यों खोजूं? जिसको मिल गया वह क्यों खोजे? वे खोज रहे हैं अभी, इसलिए तलाश कर रहे हैं। मैंने तो तत्क्षण पा लिया। मैंने तो जब खरीदा तभी मैंने देख लिया कि कौन सा तार इसमें जंचता है। जो जंचा है, अब उसको ही बजाऊंगा। अब तो मैं हूं और यह तार है। और इसके लाभ ही लाभ हैं। एक तो बड़ा लाभ यह हुआ कि पत्नी ने एकदम संगीत छोड़ दिया। मोहल्ले में और जो कोई हारमोनियम इत्यादि बजाते थे, उन सबने बंद दिया। सारे मोहल्ले में संगीत समाप्त हो गया। मेरा ही संगीत एकमात्र बचा है। सब मेरी जान खा रहे थे। अब कम से कम इतना तो सुख मुझे है कि कोई मेरी जान नहीं खा रहा है। अब मैं भी काफी तड़फ चुका, अब तुम तड़फो। मैं तो यही टुन-टुन, टुन-टुन करूंगा। और वक्त-बेवक्त बजाऊंगा, क्योंकि संगीत की साधना का कोई समय थोड़े ही होता है। अरे जब मौज आई, जब स्वस्फुरणा उठी!
आधी रात उठ कर वह टुन-टुन, टुन-टुन शुरू कर दे।
वीणा खरीद लाए, इससे कोई संगीत थोड़े ही आ जाएगा। संगीत सतत अभ्यास मांगता है। जन्म तो केवल वीणा के खरीदने जैसा है। फिर जीवन तो संगीत जैसा है।
धर्म को मैं जीवन की कला कहता हूं--इस अर्थों में।
पूर्णानंद, जन्म एक अवसर है। इस अवसर को तुम चाहो तो महासंगीत बन सकता है। मगर चाहो तो! तो तुम्हारे भीतर भी बुद्धत्व का प्रकाश उठे। तुम्हारे भीतर भी दीपक राग जगे। और चाहो तो शोरगुल मचेगा। शोरगुल ही मच रहा है। चारों तरफ शोरगुल है। लोग शोरगुल को ही जीवन समझ रहे हैं। जितना ज्यादा शोरगुल होता है उतना ही लोग समझते हैं कि जीवित हैं। शांत बैठो तो लोग कहते हैंः क्यों शांत बैठे हो, क्या हो गया तुम्हें? शोरगुल मचाओ, उपद्रव करो, तो लोग मानते हैं कि तुम जीवित हो। और लोग नकलची हैं। लोग बिल्कुल नकलची हैं। अगर पास का आदमी कुछ शोरगुल मचा रहा है, तुम भी मचाने लगोगे शोरगुल।
मैं छोटा था, तब देश में आजादी का आंदोलन चलता था। उन्नीस सौ बयालीस
के दिनों में। मेरी उम्र रही होगी यही कोई आठ-नौ साल, दस साल। जिस नेता से मैं नाराज हो जाता गांव के... । मुझे नारे लगाने का शौक था; उससे कंठ का व्यायाम भी हो जाता था--वह अब तक काम पड़ रहा है--प्राणायाम भी हो जाता था। और सुबह ही सुबह झंडाफेरी निकाल दी। और जिन-जिन से बदला लेना हो, उन-उन से मैं बदला ले लेता था। मेरा बदला लेने का एक ढंग था। और तबसे मैं समझा कि आदमी का मनोविज्ञान अदभुत है।
मेरे गांव के दो-तीन ही खास-खास नेता थे। वे भी समझ गए। तो मुझे बुला
कर मिठाई खिलाते, खिलौने देते। कहतेः भैया, कैसी नाराजगी है? और मेरा राज क्या था? राज यह था कि ब्रिटिश राज्य--मुर्दाबाद इसके नारे लगवाता। पांच-सात दफे ब्रिटिश राज्य, मुर्दाबाद; ब्रिटिश राज्य, मुर्दाबाद; और फिर साहिबदास... तो जनता कहती--मुर्दाबाद! क्योंकि वह पांच-सात दफे का जो अभ्यास हो जाता--मुर्दाबाद, मुर्दाबाद, मुर्दाबाद--तो साहिबदास... । तो साहिबदास मुझे बुला कर कहते कि तू जब भी कहता है, मेरा नाम गलत जगह लेता है। जब जिंदाबाद जनता कह रही हो--महात्मा गांधी, जिंदाबाद; जवाहरलाल नेहरू, जिंदाबाद--तब तो तू कभी साहिबदास का नाम नहीं लेता। ब्रिटिश राज्य, मुर्दाबाद--तब तू मेरा नाम घुसेड़ देता है बीच में। और सारी जनता मुर्दाबाद कह देती है। और मैं ही वहां झंडा लिए खड़ा हूं और मुझको ही मुर्दाबाद कहलवाया जा रहा है।
मैं बचपन से अध्ययन करता रहा हर चीज का, कि लोग कैसा व्यवहार करते हैं। लोगों को न मुर्दाबाद से मतलब, न जिंदाबाद से। कौन मुर्दाबाद, कौन जिंदाबाद, किसको लेना-देना है! जो धुन पकड़ गई। लोग नकलची हैं।

तो मैं कहताः भई, अगर ठीक जगह पर बुलवाना हो तो फिर उसका इंतजाम करना पड़ता है। फिर देवी-देवता को चढ़ोतरी करनी पड़ती है।
तो साहिबदास कहते कि करेंगे भई, तू क्या चाहता है? मिठाई ले, फल ले। सारा बगीचा हमारा पड़ा है, तू घुस। जो तुझे करना हो कर। मगर देख, गलत जगह हमारा नाम नहीं लेना। अगर गलत जगह नाम लेना है तो श्रीनाथ भट्ट... । वे गांव के दूसरे नेता थे। तो मैं गलत जगह श्रीनाथ भट्ट का नाम ले देता। वे बुलाते कि भई, क्या मामला है? मिठाई ले लो, यह करो।
मैं कहताः साहिबदास ज्यादा दे रहे हैं। अगर उससे ज्यादा की हिम्मत हो
तो बोलो, नहीं तो मुर्दाबाद चलेगा।
नेताओं-नेताओं में प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है। नेताओं का धंधा ही प्रतिस्पर्धा है।
भीड़ जहां जा रही है, तुम उस तरफ चल पड़ते हो। तुम कभी नहीं देखते कि क्या कर रहे हो। सारे लोग धन कमाने में लगे हैं, तुम लग गए। सारे लोग हनुमान जी के मंदिर में जाते हैं, तुम भी चले। सारे लोग गंगास्नान करने जा रहे हैं, तुम भी चले। तुम्हारा धर्म, तुम्हारा जीवन, तुम्हारा दर्शन-- सिवाय नकलचीपन के और क्या है? और यूं कार्बनकापियों की तरह जीओगे तो तुम्हारे जीवन से संगीत उठेगा? शोरगुल ही होने वाला है। और तुम्हें देख कर तुम्हारे बच्चे यही करते रहेंगे और उनके बच्चे यही करते रहेंगे। सदियां बीत जाती हैं, बीमारियां इस तरह दोहरती रहती हैं, दोहरती रहती हैं। जितनी दोहरती हैं उतनी मजबूत हो जाती हैं। जितनी पुनरुक्त होती हैं उतनी प्रचारित हो जाती हैं।
लोग कहते हैंः हमारे बापदादे भी यही करते थे। जैसे कि तुम्हारे बापदादों ने किया, इसलिए करने में कोई सत्य हो गया! तुम्हारे बापदादों से पूछते तो वे कहतेः हमारे बापदादे ऐसा करते थे। फिर फिकर ही नहीं है कि कौन ने शुरू किया, क्यों शुरू किया, किस मूढ़ ने किसी बात को शुरू किया, किस कारण शुरू किया। मगर लोग चलते रहेंगे।
इन पांच हजार वर्षों के ज्ञात इतिहास में आदमी धर्म के नाम पर जहर के घूंट पीता रहा है। मगर चूंकि पांच हजार वर्ष पुरानी बात हो गई, इसलिए इसकी महिमा हो गई, साख हो गई। पुराने होने से, इतनी भीड़ ने इसको दोहराया है कि तुम्हारी यह हिम्मत ही नहीं जुटती कि पांच हजार साल पुरानी इस भीड़ से तुम पृथक हो जाओ। तुम्हारे प्राण कंपते हैं।
और धार्मिक व्यक्ति वही है जो निज होने की घोषणा करे। निजता की उदघोषणा धर्म की शुरुआत है। अपने जीवन को जीना है, किसी और के जीवन को नहीं। यह जीवन की कला का पहला सूत्र हुआ। अपने जीवन को अपने ढंग से जीएंगे, चाहे जो परिणाम हों, दांव पर लगाएंगे अपने को। फिर हारे भी तो मजा है। जीते तो तो मजा है ही।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अगर व्यक्ति अपनी निजता की घोषणा करे
तो उसके जीवन में हार होती ही नहीं, क्योंकि वहां फिर हार भी जीत है। और भीड़ के साथ चल कर अगर कोई जीते भी तो जीत नहीं होती। वहां जीत भी हार है। भीड़ जीतती है, तुम नहीं जीतते। और भीड़ के साथ चले, आत्मा को गंवा दिया। और जिसने आत्मा गंवा दी, उसने सब गंवा दिया। फिर जीवन अगर निषेध हो तो बात सरल हो जाती है, प्रतिभा की जरूरत नहीं होती। भाग गए छोड़ कर, बैठ गए गुफा में। गुफा में बैठ जाने में कोई बहुत बड़ी बुद्धिमानी चाहिए? कोई अलबर्ट आइंस्टीन, न्यूटन, एडिंग्टन, कोई प्रतिभा चाहिए? गुफाओं में बैठने के लिए बुद्धू होना पर्याप्त है। सिवाय बुद्धुओं के और कौन गुफाओं में बैठेगा, किसलिए बैठेगा? यह परमात्मा, यह चारों तरफ जो इतने फूलों में खिला है, इतने चांद-तारों में उठा है, इतने जीवन में फैला हुआ है, इतने रंग-रूपों में, इतने इंद्रधनुष, इनको छोड़ कर कोई मूढ़ ही गुफाओं में बैठेगा।
वे हिमालय की गुफाओं में जो बैठे हैं, उनके प्रति मेरा कोई समादर नहीं है। और मैं उनको जानता हूं, गुफा-गुफा में भटका हूं, देखा है उन लोगों को। उनकी आंखों में मुझे कोई प्रतिभा की चमक नहीं दिखाई पड़ी। तुम्हारे महात्माओं को खूब परख कर कह रहा हूं, खूब देख कर कह रहा हूं कि वे जड़ हैं।
उनकी खूबी इतनी है कि वे तुमसे थोड़े ज्यादा जड़ हैं। इससे तुमसे आगे हैं,

तुम्हारे नेता हैं। वे बुद्धू हैं, तुमसे थोड़े ज्यादा बुद्धू हैं। ज्यादा हैं, इसलिए स्वभावतः तुम्हें पीछे चलना पड़ता है, वे आगे चलते हैं। वे रूढ़ हैं, परंपराग्रस्त हैं। तुममें थोड़ी स्वतंत्रता भी है, उनमें इतनी भी नहीं। वे तो लकीर के फकीर हैं। वे तो यंत्रवत जी रहे हैं। वे तो यूं जी रहे हैं, जैसे कि कोई मुर्दा जीए। और जो आदमी जितना मुर्दगी से जी रहा है, उसको हम उतना बड़ा संत कहते हैं।
तुम जरा अपने संतों का हिसाब तो करना कि तुम फलां आदमी को संत क्यों कहते हो? क्योंकि वह इतने उपवास करता है। उपवास तो मरने का लक्षण है, जीने का नहीं। वह आदमी इसलिए संत है कि वह नंगा रहता है। नंगे तो सारे पशु रहते हैं। मनुष्य की खूबी है यह कि उसने वस्त्र खोजे। ये पशुओं में इतनी क्षमता नहीं है कि वस्त्र खोज सकें। तो नंगे होने में कोई कला नहीं है।
तुम्हारे संत की महिमा क्या है, विशिष्टता क्या है? क्योंकि कांटों
की सेज पर सोया हुआ है। यह तो बुद्धूपन का लक्षण है। बुद्धिमानी तो सुंदर सेज बनाएगी--प्रीतिकर, सुरुचिपूर्ण। कांटों पर क्यों सोएगा कोई? यह तो आत्महत्या है। ये आत्महत्या की तरफ छोटे-छोटे कदम हैं। लेकिन इन कदमों का हम सम्मान करते हैं। हम इसको कहते हैं--तपश्चर्या! किसी भी तरह की मूढ़ता को हम तपश्चर्या कहने लगते हैं। और जो भी अपने को सता रहा है, उसको हम मान लेते हैं तपस्वी।
अपने को सताने वाला सिर्फ विध्वंसक है, हिंसक है, आत्महिंसा से भरा हुआ है। ये सारे लोग दमन से भरे हुए लोग हैं। और दमन क्रोध पैदा करता है, हिंसा पैदा करता है। हिंसा को निकालें कहां? वह कहीं तो निकलेगी, किसी जगह तो निकलेगी! वह कोई रास्ता तो खोजेगी। और तो किसी पर निकालेंगे तो फौरन संतत्व डगमगा जाएगा, अपने पर ही निकाल सकते हैं। अपने से ज्यादा निहत्था इस दुनिया में कोई भी नहीं है। और अपनी रक्षा जब तुम ही नहीं करोगे तो कोई क्या करेगा? कोई क्यों करेगा? और लोग तो मजा लूटेंगे। लोग तो देखेंगे कि चलो अच्छा है। एक तमाशा होगा।
जैन मुनि अपने बाल उखाड़ते हैं और भीड़ इकट्ठी होकर देखती है और ताली बजाती है। लोग तमाशा देख रहे हैं। लोग कहते हैंः अहा, कैसा त्याग! बाल उखाड़ रहे हो, निपट गंवारी कर रहे हो--एक तरह का पागलपन है। स्त्रियों में तो हमेशा से पाया जाता है यह पागलपन। जब भी वे गुस्से में होती हैं तो बाल खींचने लगती हैं, बोल लोंचने लगती हैं। यह केश-लोंच कोई बड़ी बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है, विक्षिप्तता का लक्षण है। लेकिन स्त्रियों को कोई नहीं कहता कि अहा, कैसा त्याग, कैसी तपश्चर्या! लोग कहेंगेः मूढ़ हो! स्त्रियों को जब क्रोध आएगा, वे भोजन नहीं करेंगी, खाना बंद कर देंगी। स्त्रियां तो बहुत पुराने समय से गांधी वादी रही हैं, गांधी के बहुत पहले से। सत्याग्रही रही हैं, बहुत पहले से! गांधी तो स्त्रियों की जो आदतें थीं, उनको ही बड़े पैमाने पर दोहरा रहे थे। लेकिन उन्हीं आदतों के कारण महात्मा हैं। और फिर ये सब जो रोग इकट्ठे हो जाएंगे, इनका कहीं से निकास करना होगा। मैंने सुना है, एक वेश्या ने एक सर्वोदयी नेता को निमंत्रण दिया। तुम थोड़ा चौंकोगे कि वेश्या और सर्वोदयी नेता को क्यों निमंत्रण दे! सर्वोदयी नेता तो ब्रह्मचर्य की बात करते हैं। जो-जो ब्रह्मचर्य की बात करते हैं, उन्हीं ने तो वेश्याएं पैदा की हैं। वेश्याएं हैं ही दुनिया में इसलिए। और तब तक रहेंगी, जब तक लोग अस्वाभाविक दमन की प्रक्रियाओं को आरोपित करते रहेंगे। वेश्याओं में और सर्वोदयी नेताओं में और महात्माओं में एक आंतरिक गठबंधन है। सर्वोदयिओं का जो संगठन है, उसको नाम हैः सर्व-सेवा- संघ। मैं कभी-कभी सोचता हूं, अगर वेश्याएं भी कभी कोई अखिल भारतीय संगठन बनाएं, उसका नाम भी होगा--सर्व-सेवा-संघ। उससे अच्छा और क्या नाम होगा? सबकी सेवा करना ही उनका लक्ष्य है। और तन-प्राण से करती हैं, पूरी तरह करती हैं।
... सर्वोदयी महात्मा पूरे दो मुर्गे खा गया। तुम कहोगेः सर्वोदयी महात्मा और मुर्गे! इससे तुम चौंकना मत। लोकनायक जयप्रकाश नारायण भी मुर्गे खाने के शौकीन थे, अंडे खाने के शौकीन थे--फिर भी लोकनायक थे। फिर भी महात्मा गांधी के परम शिष्य थे और विनोबा भावे के परम शिष्य थे; उनके

वसीयतदार थे। इधर अहिंसा की बातें भी चलती रहती हैं, भीतर हिंसा भी चलती रहती है।
यह जो जयप्रकाश नारायण ने इतना बड़ा उपद्रव इस देश में किया--जो कि बिल्कुल ही बेमानी था और जिससे देश को सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं हुआ--इस उपद्रव के पीछे कोई सैद्धांतिक बात नहीं थी। छोटी सी बात थी, बड़ी क्षुद्र बात थी--और वह यह थी कि इंदिरा ने जयप्रकाश को यह पूछ लिया था कि आपका खर्चा कैसे चलता है! बस यह बात उनको चोट कर गई। यह घाव छू गया। और यह चोट करने वाली बात थी, क्योंकि जयप्रकाश का जीवन भर खर्चा चला है बिरला के खानदान से। माहवारी बंधी हुई थी। वेतन बंधा हुआ था।
अब यह दुनिया बड़ी मजेदार है! यहां क्या-क्या खूबियों की चीजें चलती हैं, जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है! बिरला इस देश के सभी तथाकथित सर्वोदयिओं को तनख्वाह देते हैं--मासिक तनख्वाह। एक तारीख को उनको तनख्वाह पहुंच जाती है। और यह जो जयप्रकाश नारायण को पैसा मिलता था, यह महात्मा गांधी की आज्ञा से मिल रहा था। और यह जयप्रकाश कहना नहीं चाहते थे कि खर्च कहां से चलता है। बिरला का कैसे नाम लें! गरीब जनता के सेवक, धनपतियों के दुश्मन--और धनपतियों की ही नौकरी पर जी रहे हैं, उनसे ही पैसा पा रहे हैं! ऊपर से अहिंसा की बातें हैं, भीतर हिंसा। ऊपर से विनम्रता की बातें हैं, भीतर अहंकार।
... सर्वोदयी महात्मा पूरे दो मुर्गे खा गया। खाने के बाद उसे एक बूढ़ा मुर्गा आंगन में नजर आया। उसे देख कर सर्वोदयी महात्मा बोलाः देखो, यह मुर्गा किस शान से चल रहा है!
वेश्या ने जल कर जवाब दियाः शान क्यों न हो, इसके दो बेटे एक महात्मा
की सेवा कर चुके हैं।
जब-जब जबरदस्ती कुछ आरोपण किया जाएगा तो पीछे के रास्ते से सारे उपद्रव बहेंगे, मवाद बहेगी। और जीवन में एक अप्रामणिकता आ जाएगी, जीवन में एक झूठ आ जाएगा। जीवन दोहरा हो जाएगा--एक दिखाने का और एक जीने का।
अगर तुम्हें जीवन की कला सीखनी हो तो उसका दूसरा सूत्र हैः प्रामाणिकता, ऑथेंटिसिटी। जैसे हो वैसे ही जीना, दोहरे चेहरे लगाने की जरूरत नहीं। डरो क्यों, किससे डरना है; किससे भयभीत होना हैः छिपना किससे है, छिपाना किससे है?
मेरा अपने संन्यासियों से यही कहना हैः पाखंडी भर मत होना। और अब तक सारे तथाकथित महात्मा किसी न किसी तरह के पाखंड में रत रहे हैं। पांखड का अर्थ होता है--कहना कुछ, करना कुछ।
मैं तुमसे यह कह राह हूं कि तम जो कहो, वह वही होना चाहिए जो तुम करो। कोई जरूरत नहीं है अन्यथा कहने की, क्योंकि तुम जो कर रहे हो वह स्वाभाविक है। इसलिए अन्यथा क्यों कहोगे? मगर जब तुम्हें यह सिखाया गया कि ब्रह्मचर्य जीवन है और कामवासना तुम्हारे भीतर हिलोरें ले रही है, तब तुम क्या करोगे? तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। पाखंड पैदा हुआ ही रखा है। पाखंड से बचना असंभव है। बचने का उपाय ही नहीं छोड़ा गया। ब्रह्मचर्य ही जीवन है, यह तो सिद्धांत हो गया। मगर अपनी कामवासना का क्या करोगे? वह लहरें मार रही है, वह धक्के मार रही है।

संत महाराज ने पूछा हैः ओशो! मेरे दिल विच प्रेम हिलोरें ले रिहा है, उचक-उचक बल मारदा है। जिसे भी दो ओ लैंदा ही नहीं। मैं बड़ा मजबूर हो गिया हां। सदगुरु साहिब, मैं इस प्रेम दा की करां?

कामवासना तो पंजाबी है। वह तो बल मारेगी। सभी की कामवासना पंजाबी है।
वह तो उठ-उठ बैठेगी।
तुम ठीक कह रहे हो कि "उचक-उचक बल मारदा है।"
संत महाराज बिल्कुल सत्य कह रहे हैं। इसलिए तो उनको महाराज कहता हूं। सत्य ही कहते हैं वे, छिपाते-करते नहीं। ठीक बात कह रहे हैं कि "मेरे दिल विच प्रेम हिलोरें ले रहा है।" अब अगर ब्रह्मचर्य ही जीवन है और दिल विच प्रेम हिलोरें ले रहा है और उचक-उचक बल मारदा है, तो करोगे क्या? तो ऊपर से

एक मुखौटा ओढ़ लेना, राम-नाम की चदरिया। और फिर भीतर से कोई रास्ता खोजना पड़ेगा। और तब धोखा हो जाएगा। तब तुम अपने साथ ही बेईमानी करोगे।
नहीं, इस प्रेम को स्वीकार करो, अंगीकार करो। यह तुम्हारी जीवन-ऊर्जा है। और घबड़ाओ मत संत। तुम कहते होः जिसे भी दो वह लैंदा ही नहीं। लोग डर गए हैं, लोग डरे हुए हैं। प्रेम के विपरीत उन्हें समझाया गया है। कोई लेना ही नहीं चाहता। न कोई लेना चाहता, न कोई देना चाहता है। लेना भी पड़ता है, देना भी पड़ा है। लेकिन लेना भी कोई नहीं चाहता, देना भी कोई नहीं चाहता। बड़ी उलझन में आदमी को डाला गया है। आदमी की फांसी लगा दी है। जीए तो मुश्किल, न जीए तो मुश्किल। आदमी का जीना ऐसा अकारण संकट से भर दिया है। फिजूल ही। तुम कह रहे होः "मैं बड़ा मजबूर हो गिया हां!"
मजबूर तो हो ही जाओगे। मगर फिकर मत करो। अपने को अंगीकार करो। अपने को स्वीकार करो। तलाश जारी रखो। कोई न कोई मिलेगा। लेगा। और यहां नहीं मिलेगा तो पूरी पृथ्वी पर कहीं भी नहीं मिल सकता है। और तुम्हारे ही भीतर थोड़े ही उचक-उचक बल मारदा है, औरों के भीतर भी उचक-उचक बल मारदा है। मगर वे इसको बिठाए हुए हैं भीतर। वह उचक-उचक बल मारदा है, वे उचक-उचक उसको दबा देते हैं। आखिर उनकी भी समझ में आएगा। यहां रहेंगे तो समझना ही पड़ेगा, क्योंकि यहां मेरा मूल सूत्र यही है कि जीवन में जो भी है, सब शुभ है। उस शुभ को और भी शुभ करना है। उस शुभ्र को और भी शुभ्रतर करना है। मगर जो भी है वह पाप नहीं है; वह पुण्य की संभावना है, पुण्य का बीज है। बीज को बोना है, श्रम करना होगा। अगर बीज को फलों तक ले जाना है, फूलों तक ले जाना है, तो प्रतीक्षा भी करनी होगी।
जीवन का जीने की कला का दूसरा सूत्र हैः प्रामाणिकता। एक ही तुम्हारा व्यक्तित्व होना चाहिए, दोहरा नहीं।
पहला सूत्र हैः निजता। अपने ढंग से जीओ, अपने रंग से जीओ, अपनी मौज से जीओ। मैं उसको संन्यास कह रहा हूं। और दूसरा सूत्र हैः प्रामाणिकता। और तीसरा सूत्र हैः भूल कर भी कहीं इस खयाल को मत टिकने देना कि तुम्हारे जीवन में कुछ है जो गलत है। अगर कुछ गलत लग भी रहा हो तो जानना कि इसी के भीतर कहीं सही छिपा हुआ है। यह गलत, सही को अपने में छिपाए हुए है। जैसे बीज की सख्त खोल के भीतर कितने फूल छिपे हैं! करोड़ों फूल छिपे हैं। बीज की सख्त खोल पर ही मत अटक जाना। फूल अभी दिखाई भी नहीं पड़ते। बोओगे जमीन में, पौधा बड़ा होगा, वृक्ष बनेगा, हजारों पक्षी निवास करेंगे, सैकड़ों लोग उसकी छाया में बैठ सकेंगे--तब फूल से भरेगा आकाश।
वैज्ञानिक कहते हैं कि एक बीज की इतनी क्षमता है कि सारी पृथ्वी को हरा कर दे, क्योंकि एक बीज से फिर करोड़ों बीज होते हैं। फिर एक-एक बीज से करोड़ों-करोड़ हो जाते हैं। होते-होते सारी पृथ्वी एक बीज के द्वारा... ।
पहली दफा इस पृथ्वी पर एक ही बीज आया होगा और उसी एक बीज का परिणाम है सारी पृथ्वी हरी है।
तो तीसरा सूत्र खयाल रखनाः जो भी जीवन ने तुम्हें दिया है, शुभ है। उसका सम्मान करो, सत्कार करो, निंदा नहीं।
और तब चौथा और अंतिम सूत्र है, कि जो तुम्हारे भीतर है अनगढ़ पत्थर की तरह, उसे गढ़ना है, उसकी मूर्ति बनानी है। ध्यान से वह अदभुत कार्य पूरा होता है। ध्यान है अपने भीतर मूर्ति-निर्माण की कला। पत्थर में जो-जो अनगढ़ हिस्से हैं, उनको छांटना; जैसे मूर्तिकार छैनी से छांटता है। फिर धीरे- धीरे एक अनगढ़ पत्थर, जो रास्ते के किनारे पड़ा था, इतनी सुंदर मूर्ति बन जाती है बुद्ध की, कि महावीर की, कि कृष्ण की, कि क्राइस्ट की, कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ध्यान छैनी है।
ध्यान एकमात्र उपाय है अपने भीतर अनगढ़ को गढ़ने को।
बस ये चार सूत्र तुम्हारे खयाल में आ जाएं कि तुम्हें जीवन की कला आ जाएगी। और जिसने जीवन जाना, उसने ईश्वर जाना।
पूर्णानंद, जिसने जीवन जाना उसने आनंद जाना। जिसने जीवन जाना उसने मोक्ष जाना, क्योंकि जीवन शाश्वत है। एक दफा जाना तो पता चलता है कि अरे मैं न तो कभी जन्मा और मैं न कभी मरूंगा। मैं था जन्म के पहले, मैं रहूंगा मृत्यु के बाद भी। इस अमृत की अनुभूति धर्म का सार-सूत्र है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप रोज-रोज पतियों के पक्ष में बोल कर और पत्नियों
पर व्यंग्य, चुटकुले बोल कर, पतियों को और सिर पर चढ़ाए दे रहे हैं। वैसे ही पति पत्नी को पैर की जूती समझता है। कृपया कुछ बोलें!

मनीषा! पति मन ही मन में भला समझता रहे कि पत्नी पैर की जूती है, इधर-उधर बाजार में कहता भी फिरे, घर आते ही चौकड़ी भूल जाता है; पत्नी को देख कर ही होश-हवास खो देता है। यूं कहता फिरता है कि मैं पति हूं--पति यानी स्वामी! पति शब्द का अर्थ ही स्वामी होता है। लेकिन पत्नियां भलीभांति जानती हैं कि कौन मालिक है और कौन गुलाम। हालांकि पत्नियां चिट्ठी वगैरह लिखती हैं पति को तो लिखती हैंः हे स्वामी! नीचे दस्तखत करती हैं--आपके चरणों की दासी। मगर ये सब औपचारिक बातें हैं। इनमें कुछ सचाई नहीं है। पत्नी भलीभांति जानती है, कौन चरणों का दास है! असल में पति इतनी मुश्किल में पड़ा रहता है कि इस तरह की बातें कह-कह कर अपने का सांत्वना दे लेता है कि पत्नी पैर की जूती है! अरे यह नरक का द्वार है! अरे यह कुछ भी नहीं! पुरुष का ही मोक्ष होता है, स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं होता। लिखते रहो अपने शास्त्रों में, करते रहो अपने मन में अपने को समझाने की ये कोशिशें। मगर ये सब कोशिशें यह बताती हैं कि असलियत कुछ और है। पत्नी को कोई दिक्कत नहीं, दस्तखत कर देती है--आपकी दासी। क्योंकि जानती है कि दस्तखत करने से क्या होता है! दस्तखत करने में बिल्कुल निश्चिंत भाव से कर देती है, क्योंकि भलीभांति पता है कि दास कौन है। इतनी आश्वस्त है अपनी मालकियत की कि तुम्हारी चिंता क्या लेनी! अगर तुम्हें इसमें ही मजा आता है कि आपकी दासी लिख दिया कागज पर तो चलो लिखे देते हैं। मगर ये कागजी बातें हैं। इनका असलियत से कुछ लेना-देना नहीं। हालत असलियत में बिल्कुल उलटी है।
अकबर के दरबार में यूं हुआ। बीरबर ने एक दिन कहा कि आपके दरबार में ये
सब जोरू के गुलाम हैं, सब! अकबर ने कहाः यह बात नहीं हो सकती सही। मेरे दरबारी, मेरे बहादुर योद्धा, जो न मालूम कितने युद्ध जीत चुके हैं, ये सब जोरू के गुलाम हैं! तुम बात क्या करते हो?
उसने उसी वक्त अपने दरबारियों से कहा कि जो-जो जोरू के गुलाम हैं, एक लाइन में खड़े हो जाएं। और कोई झूठ बोलने की कोशिश न करे। अगर बात गलत पाई गई तो गर्दन उतार दी जाएगी। सैनिकों से कहा, नंगी तलवारें खींच लो म्यान के बाहर। तुम्हारी पत्नियों से पूछा जाएगा, तुम्हारे पड़ोसियों से पूछा जाएगा, तुम्हारे बच्चों से पूछा जाएगा। अगर जरा भी प्रमाण मिल गया कि तुम जोरू के गुलाम हो और तुम झूठ बोले, तो गर्दन उतर जाएगी।
कौन ऐसी झंझट मोल ले! पड़ोसी तो फौरन पोल खोल देंगे। नौकर-चाकर फौरन पोल खोल देंगे। बच्चों को क्या पता, वे तो सत्य-सत्य बोल देंगे कि मम्मी को देख कर डैडी एकदम पूछ दबा लेते हैं, कि घर में ऐसे आते हैं जैसे अब पिटे अब पिटे, कि यूं मम्मी चूहे से डरती है मगर डैडी से नहीं डरती, डैडी मम्मी से डरते हैं! चूहों से गई-बीती हालत है डैडी की। चूहे से भी डरती है मम्मी। चूहा देख कर एकदम उचक कर खड़ी हो जाती है कुर्सी पर कि चूहा-चूहा! और पति को देख कर कभी उचक कर खड़ी नहीं होती कुर्सी पर कि पति-पति! देखा है किसी पत्नी को उचक कर खड़े होते? तो पता तो चल ही जाएगा। बेहतर है, झंझट में पड़ना ठीक नहीं है। और फिर सारे दरबारी एक-दूसरे का राज जानते हैं, ये ही खोल देंगे पोल।
झिझकते, अटकते--मगर सब जाकर खड़े हो गए; सिर्फ एक आदमी, जिसकी कभी आशा ही नहीं थी किसी को, अकबर को भी आशा नहीं थी, बीरबल भी चौंका। वह तो बिल्कुल पक्का जोरू का गुलाम था। दुनिया जानती थी। इसमें कोई शक-शुबे का सवाल ही नहीं था। वह अलग ही खड़ा रहा।
अकबर ने पूछा कि चलो कोई बात नहीं, कम से कम इतना ही बहुत है, कम से कम
एक आदमी तो है मेरे दरबार में जो जोरू का गुलाम नहीं है। उस आदमी ने कहाः ठहरिए आप, गलत नतीजा न लें। जब मैं घर से चलने लगा तो मेरी पत्नी ने कहा-- सुनो जी, भीड़-भाड़ में खड़े मत होना! सो मैं उस भीड़ में खड़ा नहीं हो सकता, और

कोई कारण नहीं है। अगर उसको पता चल गया कि मैं भीड़-भाड़ में खड़ा था तो रोटी- पानी बंद! फिर झंझट होगी।
तो अकबर ने कहाः ऐसा करो बीरबल, दरबार में तो तुम जो कहते हो ठीक है। मगर क्या यह बात राजधानी के संबंध में सच है?
बीरबल ने कहाः यह बिल्कुल सच है। पति हो और जोरू का गुलाम न हो, यह बड़ा मुश्किल है। ऐसे व्यक्ति पति बनते ही नहीं। अगर जोरूं के गुलाम नहीं बनना हो तो पति ही किसलिए बने?
अकबर ने कहाः तू उलटी-सीधी बात कर रहा है। पूरी राजधानी!
बीरबल ने कहाः आप पहले नहीं मानते थे दरबारियों के संबंध में, अब नहीं मानते राजधानी के संबंध में। तो बीरबल से कहा कि फिर ऐसा कर, तू एक आदमी ले, मेरे जो सबसे शानदार दो घोड़े हैं... (अरबी घोड़े थे--एक सफेद, एक काला। अकबर उनको बहुत प्रेम करता था।)... ये दोनों तू ले जा। और जो भी आदमी सिद्ध कर दे कि वह जोरू का गुलाम नहीं है, वह जो भी घोड़ा पसंद करे उसको भेंट कर देना। बीरबल चला आदमी को लेकर, दो घोड़ों को लेकर। हम घर में गया, कोई सिद्ध न
कर सका। सिर्फ एक घर में ऐसा हुआ... । सुबह ही सुबह वहां पहुंचा। सुबह सर्द धूप निकल रही थी। सर्द सुबह और आदमी बैठा हुआ था, मालिश कर रहा था--अपने ही हाथ से। उसके मसल देखने लायक थे, पहलवान था। बड़ा मजबूत आदमी मालूम पड़ता था। सात फीट ऊंचा! बड़ा मस्त-तड़ंग। एक घूंसा किसी को मार दे तो वह आदमी फिर उठ न सके।
बीरबल ने कहा कि भई, एक बात पूछनी है, नाराज तो न होओगे? (बीरबल भी थोड़ा डरा कि यह आदमी तो कुछ खतरनाक सा मालूम पड़ता है, खूंखार!) नाराज न होओ तो पूछूं। और पूछना मुझे पड़ेगा, क्योंकि सम्राट ने भेजा है।
उसने कहाः पूछ, क्या पूछना है? क्या चाहता है?
नहीं, चाहता कुछ नहीं हूं। ये जो दो घोड़े लाया हुआ हूं, अगर तुम यह सिद्ध कर दो कि तुम्हारे घर में मालिक कौन है--तुम कि तुम्हारी पत्नी... । वह आदमी खिलखिला कर हंसा। उसकी हंसी ऐसी थी कि घोड़े तक घबड़ा गए। घोड़े तक ठिठक कर पीछे हट गए। बीरबल तक की छाती दहल गई। और उस आदमी ने बीरबल के पास लाकर अपने हाथ की मसलें दिखाईं, कहाः ये मसलें देखते हो? और बीरबल से कहाः मेरे हाथ में हाथ दे!
और हाथ में हाथ लेकर जो उसने बीरबल का हाथ दबाया, बीरबल बोलाः अरे, मार डालेगा क्या? अरे भाई, छोड़!
उसने कहाः मैं और जोरू का गुलाम! जिंदा नहीं लौटेगा यहां से। मेरा शरीर देखता है और वह रही मेरी जोरू!
अंदर गेहूं बीन रही थी उसकी पत्नी--बिल्कुल एक दुबली-पतली औरत कि उसको
यह आदमी दबा ही दे मुट्ठी में तो वह मर ही जाए। उसकी हालत बिल्कुल उलटी थी। वह अपना गेहूं बीन रही थी। उसने कहाः वह मेरी पत्नी है। यह मुर्गी और मेरी मालिक! इसकी गर्दन दबा कर बताऊं? खात्मा कर दूं? तेरा खात्मा कर दूं? यह जो आदमी घोड़ा लिए है, इसका खात्मा कर दूं? बोल किसका खात्मा कर दूं?
अरे बीरबल ने कहाः खात्मा किसी का नहीं करना, भैया। हम मान गए कि तू मालिक है। जाहिर ही है। इसमें कुछ पता लगाने की जरूरत नहीं। अकबर भी तुझे देख कर मान जाएगा कि तू है मालिक घर का। घर का क्या, तू तो मतलब राजधानी का सरताज है। अब यह बोल कौन सा घोड़ा चाहिए।
तो उस आदमी ने बुला कर कहा कि जुम्मन की मां, घोड़ा कौन सा लूं, सफेद कि काला? जुम्मन की मां ने कहा कि अगर काला लिया तो वह मजा चखाऊंगी कि जिंदगी भर याद रखेगा! सफेद ले!
तो उसने कहा कि सफेद लेंगे। तो बीरबल ने कहाः बस अब रहने दे। अब घोड़ा- मोड़ा नहीं मिलता। बात खत्म हो गई। देख लिया कि मालिक कौन है। ये मसल वगैरह अपने पास रख। मुझको मार सकता है, घोड़े को भी मार सकता है; मगर जुम्मन की मां क्या कह रही है, सुन!
मनीषा, तू चिंता न कर। यह तो मैं बेचारे पतियों को थोड़ी सी हवा देता रहता हूं। यूं पिटे-कुटे आते हैं, सत्संग में थोड़ा तो उनको लाभ हो! यूं बिल्कुल पिचके-पिचकाए आते हैं। ऐसे थोड़े पंप मार दिए, थोड़े फुग्गे में उनकी हवा आ गई। वे जरा घर की तरफ शान से चले! कम से कम घर तक तो शान से

जाएंगे, कि सत्संग करके आ रहे हैं! वाह क्या बात कही! घर जाकर तो मरम्मत हो ही जाने वाले है।
इसलिए मैं निश्चिंतता से उनमें जितनी फूंक सकता हूं फूंकता हूं। मगर कोई फिकर मत कर। इसलिए तो स्त्रियां मजे से सुनती रहती हैं, कोई फिकर नहीं करतीं। तू पहली है जिसने फिकर की। अविवाहित मालूम होती है। विवाहित होती, इस तरह की बात तू करती ही नहीं, भूल कर नहीं करती। स्त्रियां यहां बैठ कर हंसती रहती हैं, पुरुषों से भी ज्यादा हंसती हैं; हालांकि मैं मजाक उनका चाहे उड़ाऊं।
और पुरुषों का बेचारों का क्या मजाक उड़ाओ! उनका मजाक तो ऐसा उड़ा हुआ है, इसलिए सिर्फ दया भाव से उनका नहीं उड़ाता मजाक। और कोई कारण नहीं है। यह नहीं कि मैं जो कह रहा हूं वह पुरुषों को कोई उनके अहंकार को बल देने का। लाख कोशिश करके देख चुका हूं, उनको कितना ही खड़ा करो, वे जैसे ही पत्नी को देखते हैं, एकदम पिचक जाते हैं। यह कोई एकाध अनुभव से नहीं कह रहा हूं। कितनों को ही खड़ा करके देख लिया, एकांत में तो बिल्कुल खड़े हो जाते हैं, डंड-बैठक लगाने लगते हैं; जैसे ही पत्नी को देखते हैं कि बस पूछते हैं-- जुम्मन की मां, काला घोड़ा लें कि सफेद? बस खत्म!
तू निश्चिंत हो कोई फिकर न कर।
एक सज्जन ने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछाः नसरुद्दीन, बताओ शादी के बाद चैन की नींद कौन सोता है--पति या पत्नी?
दोनों--नसरुद्दीन ने कहा। फर्क सिर्फ इतना है कि पत्नी घर में सोती है
और पति दफ्तर में।
घर में तो बेचारा सोए भी तो कैसे सोए! किसी तरह समय गुजार देता है, थोड़ा-बहुत जितना समय मिला। सारी दुनिया में यह खयाल है कि पुरुष शक्तिशाली वर्ग है और स्त्रियों कमजोर। यह बिल्कुल भ्रांत धारणा है। यह पुरुषों ने फैला रखी हैं आत्मरक्षा के लिए। और पुरुष पुरुषों से बातें करते रहते हैं और स्त्रियां चुपचाप मुस्कुराती रहती हैं कि ठीक है, कर लो बातचीत, गुड़गुड़ा लो हुक्का, जरा दिल बहला लो!
एक बच्चा अपनी मां से एक दिन पूछने लगाः मम्मी, क्या आप सर्कस में काम करती थीं?
मम्मी ने कहाः नहीं तो बेटा। क्यों तुम ऐसा पूछ रहे हो?
बच्चे ने कहाः मम्मी, पड़ोस की आंटी कह रही थीं कि आप पप्पा को अंगुलियों पर नचाती हैं!
मगर कौन स्त्री नहीं नचाती?
एक स्त्री का कार-एक्सीडेंट हुआ और उसकी एक अंगुली एक्सीडेंट में कट गई। उसने पचास हजार रुपये का दावा इंश्योरेंस कंपनी पर किया। इंश्योरेंस कंपनी भी हैरान हुई। मैनेजर ने बुला कर पूछा कि देवी, एक अंगुली के कट जाने का पचास हजार रुपया!
उसने कहाः यह कुछ भी नहीं है। क्योंकि यह वही अंगुली है जिस पर मैं अपने पति को नचाया करती थी। यह कोई साधारण अंगुली नहीं थी। तुमने मेरे पति की कीमत क्या समझी है? जो मेरे पति की कीमत है, वही इस अंगुली की कीमत है। अब कहां नचाऊंगी पति को?
मैनेजर भी मान गया। उसका भी अपना अनुभव तो यही था कि नचाती तो उसकी भी पत्नी अंगुलियों पर ही है।
पति तो करीब-करीब कठपुतलियों की तरह है। तुमने कठपुतलियों का नाच देखा? पीछे छिपा रहता है नाचने वाला, धागे उसके हाथ में रहते हैं और कठपुतलियां नाचती हैं। उनसे जो करवाओ, करती हैं। जहां भेजो वहां जाती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था। मजिस्ट्रेट ने पूछाः नसरुद्दीन, तुम्हें ऐसा करते शर्म नहीं आई कि तुमने पत्नी को झाडू मारी? नसरुद्दीन ने कहाः हुजूर, अवसर-अवसर की बात है।
मजिस्ट्रेट ने पूछाः मैं समझा नहीं तुम्हारा मंतव्य।
उसने कहाः मंतव्य मेरा यह कि सुबह का वक्त था, पत्नी के दोनों हाथ काम में उलझे हुए थे, उसकी पीठ मेरी तरफ थी। झाडू पास में पड़ी थी, पीछे का

दरवाजा खुला था। सो मैंने मारा और भाग खड़ा हुआ। मैंने सोचा कि यह अवसर अगर चूका, फिर मिले न मिले। इस अवसर की कबसे तलाश कर रहा था। आपको जो भी जुर्माना करना हो, कर दो।
मजिस्ट्रेट ने कहाः जुर्माना! अरे जुर्माना बिल्कुल नहीं। मगर तूने
एक राज की बात बता दी। मैं भी इसका अभ्यास करूंगा।
बात तो जंचती है। ऐसा अवसर अगर मिल जाए तो उपयोग कर ही लेना चाहिए।
मनीषा, तू बिल्कुल चिंता मत कर। यह पतियों को फुलाना कुछ खास मामला नहीं। इनको जरूरत है थोड़ी सी। थोड़े इनमें प्राण पड़े रहें। इनकी आत्मा बिल्कुल ही न निकल जाए। इन्हीं में से मुझे संन्यासी खोजने पड़ते हैं।
यह जान कर तू हैरान होगी कि स्त्रियां पहले संन्यासी हो जाती हैं, पति पीछे। पति अगर कभी-कभी पहले संन्यासी होना भी चाहता है तो पत्नी नहीं होने देती। पति मेरे पास आकर कहते कि मुझे तो होना है, अगर जुम्मन की मां! पत्नी राजी नहीं है, वह जीना हराम कर देगी। आखिर रहना तो घर में उसके पास है। और आपने भी कैसा संन्यास चुना है! अगर आप कहो कि घर छोड़ देना है, तो भी समझ में आता है, तो आज भाग जाएं।
वह वही है--अवसर की बात। पीछे का दरवाजा खुला है, भाग खड़े हुए। वह पुराने ढब का संन्यासी था। मेरे संन्यासी को भागना नहीं है। तो मेरे से लोग आकर कहते हैं कि आपने भी खूब संन्यास रचा है, ऐसी झंझट में डाल दोगे! पत्नी कहती है, लेना मत! पत्नी ने कह दियाः वहां तो जा रहे हो, लेकिन गैरिक वस्त्र पहन कर घर में मत आना। और आप कहते हो घर छोड़ना नहीं। घर छोड़ने की भी आज्ञा दे दो तो यहीं से भाग खड़ा होऊं, लौट कर जाने की जरूरत नहीं। वह आप आज्ञा देते नहीं। वह आप भगोड़ापन कहते हैं। आप कहते हैं घर जाओ। और वहां पत्नी बैठी है, वह कहती है गैरिक वस्त्र पहन कर घर में आना मत।
मगर पत्नियां फिकर नहीं करतीं। पत्नियां... एक पत्नी नहीं आकर कहती मुझसे कि मुझे संन्यास लेना है तो पति बाधा डाल रहा है। वह कहती हैः पति से मैं निपट लूंगी, आप फिकर न करें। मैं खुद ही पूछता हूं कि पति कुछ नाराज तो नहीं होंगे?
वह कहती हैः पति-वति की छोड़ो। अरे उनको मैं जानती हूं। उनसे मैं निपट लूंगी। कौन मुझे रोक सकता है?
पत्नी को संन्यास लेना हो तो न वह खुद ले लेती है, बल्कि धीरे-धीरे पति
को भी लेना पड़ता है। लेना ही पड़ेगा।
कॉफीहाउस में कुछ बुद्धिजीवी आत्म-निर्भरता पर बहस कर रहे थे। एक ने गर्व से उदाहरण देते हुए कहाः अब मुझे ही देख लो कि मैं कितना आत्म-निर्भर हू। सुबह पांच बजे उठता हूं, नित्य कर्म से निपट कर चाय-नाश्ता बनाता हूं, बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करता हूं। आफिस जाने के पहले पत्नी को जगाता हूं, उसे बेड-टी लेने की आदत है। फिर ठीक साढ़े सात बजे घर से निकल पड़ता हूं। पर लोग हैं कि मुझे जोरू का गुलाम कहते हैं। उन्हें बिल्कुल नहीं मालूम कि आत्म-निर्भरता भी कोई चीज है!
अच्छे-अच्छे शब्द खोज लेता है आदमी। इसको आत्म-निर्भरता कहते हैं!
मनीषा, तू पूछती हैः आप रोज-रोज पतियों के पक्ष के बोल कर... । उनको जरूरत है बेचारों को। उनको बेचारे समझो। उनके पक्ष में नहीं बोल रहा हूं, सिर्फ उनको थोड़ी सी बैसाखियां दे देता हूं कि लो भैया! तुम्हारी टांगें तो टूट चुकी हैं, हाथ तो कट चुके, ये बैसाखियां ले लो। किसी तरह टेक-टेक कर चल सको तो अच्छा है। थोड़ी बैसाखियां देता हूं बस, और कुछ नहीं। मगर मैं जानता हूं कि ये बैसाखियां भी ज्यादा देर तक काम नहीं आतीं, पत्नियां छीन लेंगी। इन्हीं बैसाखियों से इनकी कुटाई हो जाएगी।
कोई स्त्री दुखी नहीं होती है मेरे इन मजाकों से। सच तो यह है कि मैं स्त्रियों को ज्यादा प्रसन्न देखता हूं। जब मैं पतियों को फुलाने की कोशिश करता हूं तो वे जानती हैं कि अच्छा फुला लो, कोई बात नहीं। फुग्गे हैं, जरा सी सुई चुभा देंगे, फट्ट हो जाएंगे। स्त्रियों के पक्ष में मैं कोई मजाक नहीं करता। मारों को और क्या मारना! पति तो बेचारे पिटे-कुटे हैं, अब इनको और क्या मारना? इनको थोड़ी सी मलहम-पट्टी की जरूरत है। स्त्रियों को कोई मलहम-पट्टी की जरूरत नहीं। सच तो यह है कि पतियों को पुनः आत्मवान

होने की आवश्यकता है। पत्नियां तो काफी आत्मवान हैं, बलवान हैं। उनका बल और ढंग का है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। पतियों का बल उपरी है; वह मसल का है, शरीर का है, ऊंचाई का है, कद का है, हड्डी-मांस-मज्जा का है, शारीरिक है। स्त्री का बल थोड़ा हार्दिक है, थोड़ा गहरा है। इसलिए दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से, थोड़ा अदृश्य है। मगर स्त्री सदा ज्यादा बलवान रही है और सदा बलवान रहेगी।
यह जानना तुम्हें चाहिए कि स्त्रियां पुरुषों से पांच साल ज्यादा जिंदा रहती हैं। क्यों? यह भी तुम्हें जानना चाहिए कि एक सौ पंद्रह लड़के पैदा होते हैं और सौ लड़कियां पैदा होती हैं। लेकिन शादी की उम्र आते-आते संख्या बराबर हो जाती है, पंद्रह लड़के सफा हो जाते हैं। प्रकृति भी उतना हिसाब रख कर चलती है--मार्जिन। पंद्रह ज्यादा पैदा करती है। पैदायश के वक्त संख्या सौ लड़कियों की और एक सौ पंद्रह लड़कों की, क्योंकि प्रकृति को भी पता है ये कमजोर प्राणी हैं। इनमें से पंद्रह प्रतिशत तो फट्ट हो ही जाने वाले। चौदह साल की उम्र के पहले ही फट्ट हो जाने वाले हैं। फिर बाद में फट्ट होते रहेंगे, वह तो अलग बात है। चौदह साल तक ही न पहुंच पाएंगे। यह तुमने देखा होगा कि लड़के ज्यादा बीमार पड़ते हैं लड़कियों की बजाय।
यह भी तुमने देखा होगा कि स्त्रियां शारीरिक रूप से दुर्दिन को, कठिनाई को, परेशानी को झेलने में ज्यादा समर्थ होती हैं, पुरुषों की बजाय। पुरुष तो एकदम टूट जाते हैं। जरा सी बात तोड़ देती है। उनका बल ऊपरी-ऊपरी है, भीतर बिल्कुल निर्बल हैं।
पुरुष ज्यादा पागल होते हैं, ज्यादा आत्महत्या करते हैं। स्त्रियां आत्महत्या की बातचीत करती हैं ज्यादा, करती-कराती नहीं। और करती भी हैं तो हिसाब-किताब से। दो-चार गोली खा लेंगी इतने हिसाब से कि सुबह एक घंटे जरा ज्यादा नींद आ जाएगी, उतने में ही पति को काफी पसीना छुड़वा देंगी। और पति के प्राण निकल जाएंगे कि अब मारे गए, कहीं पुलिस न आती हो! अब डाक्टर को बुलाओ। और कुल मामला इतना है कि अगर एक साड़ी ले देता तो वह आत्महत्या करती नहीं। की उन्होंने है भी नहीं अभी। यह भी हो सकता है कि गोली खाने का सिर्फ बहाना किया हो और आंखें बंद किए हुए पड़ी हों, होश में हों बिल्कुल। मगर पति हिला-डुला रहा हो, हाथ उठा रहा हो और उनका हाथ गिर-गिर जा रहा हो! स्त्रियों का अपना तर्क है।
बचपन की दो सहेलियां काफी वर्षों बाद अचानक बाजार में मिल गईं। पहल बोलीः उफ्! तू तो कितनी बदल गई है री! मैं तो पहचान ही नहीं पाई एकदम से! दूसरी बोलीः हाय रे, तू भी तो कितनी बदल गई है! वह तो अच्छा हुआ कि मैं तेरी साड़ी और सैंडिलें देख कर एकदम से तुझे पहचान गई।
स्त्रियां जीती हैं साड़ी और सैंडिलों में। नहीं तो जान हाजिर है। अभी जान दिए देते हैं। अभी कूद कर मर जाएंगे, फांसी लगा लेंगे। पति सोचता है एक साड़ी लाना बेहतर है, बजाय उपद्रव मचाने के, मोहल्ले भर को इकट्ठा करने के, बदनामी सहने के। बच्चे क्या कहेंगे! लोग क्या कहेंगे! डाक्टर क्या कहेगा! अगर पुलिस को खबर हो गई! कहीं अखबार में छप गई खबर! साड़ी लो, सैंडिल लो, जो चाहिए लो।
पत्नी के मरने के कारण भी बड़े और होते हैं, पति की समझ के बाहर होते हैं। मरती-करती भी नहीं। पत्नियां ज्यादा बलशाली हैं--मेरे हिसाब में। वैज्ञानिकों के हिसाब में भी ज्यादा बलशाली हैं। और प्रकृति ने उन्हें बलशाली बनाया है, क्योंकि उनसे काम लेना है, एक महत्वपूर्ण काम लेना है। पुरुष से तो कुछ खास महत्वपूर्ण काम प्रकृति को लेना नहीं है। पति तो बिल्कुल ही अप्रासंगिक जैसा है। अगर तुम प्रकृति को देखो तो पति है ही नहीं वहां। यह तो मनुष्यों के द्वारा ईजाद की गई संस्था है, कृत्रिम है। और एक दिन विदा हो जाएगी। यह संस्था ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है, इसके दिन लद गए, यह खत्म होने के करीब है। यह सड़ भी चुकी है। इसका समय पूरा हो चुका। प्रकृति में तो पति-पत्नी का कोई सवाल ही नहीं उठता। मां होती है, पिता तो होता ही नहीं। मां जरूरी है। मां के बिना तो प्रकृति का क्रम रुक जाएगा, सृष्टि रुक जाएगी। मां के बिना तो बच्चे का क्या होगा? नौ महीने कौन उसे पेट रखेगा? कोई पुरुष एकाध दफा तो नौ महीने बच्चे को पेट में रख कर

बता दे! पेट में रखना तो दूर, पेट के ऊपर ही रख कर बता दे! या तो बच्चे को मार डालेगा या खुद मर जाएगा, दो में से कुछ न कुछ कर लेगा। एक रात बच्चे के साथ बिस्तर पर सो कर तो बता दे! रात भर बच्चा सताएगा--कहीं कहेगा पेशाब लगी, कहीं कहेगा भूख लगी, कहीं कहेगा यह चाहिए, कहीं कहेगा वह चाहिए। रात भर उपद्रव मचाए रखेगा। बच्चे भी खूब हैं, दिन में सोएंगे, रात सताएंगे! और जरा गड़बड़ करो तो ऐसा जोर से फुक्कारा फोड़ेंगे कि मोहल्ले भर में खबर हो जाए। रोएंगे, चीख-पुकार मचाएंगे। सोने तो नहीं देंगे। वे तो स्त्रियां हैं कि सह लेती हैं। पुरुष की नींद अगर दस-पांच दफा टूट जाए रात में तो वह सुबह बिल्कुल मुर्दा हो जाएगा। स्त्री की कितनी ही दफा टूट जाए, वह फिर सो जाती है। सुबह मुर्दा नहीं होती। सुबह ताजी उठती है। बच्चे को सम्हाल भी लेती है, उसका कपड़ा भी बदल देती है रात में। वह पेशाब भी कर लेगा, वह पाखाना भी कर लेगा; वह सब करती रहेगी। फिर भी उसके धैर्य की क्षमता बहुत है। उसको सहने की भी क्षमता बहुत है। प्रकृति ने उसे बनाया है उस योग्य।
पुरुष की क्षमता नहीं है। पुरुष का काम तो बहुत ही छोटा सा है--एक इंजेक्शन का काम है ज्यादा से ज्यादा उनका। तो अब कोई भी इंजेक्शन कर देता है। पशुओं में तो तुम देखते ही हो आर्टीफीसियल इनसेमिनेशन, कृत्रिम संतानोत्पत्ति। डाक्टर आकर एक इंजेक्शन लगा देता है गऊमाता को, पर्याप्त! कोई सांड पिता को बुलाने की जरूरत नहीं है। सांड चाहे रहता हो इंग्लैंड में--अक्सर इंग्लैंड में रहते हैं! इंग्लैंड के सांड जरा जोरदार हैं। मगर उनके वीर्यकण आ जाते हैं इंजेक्शनों में भर कर। यहां इंजेक्शन दे दो। और हिंदुओं को भी शर्म नहीं आती कि अंग्रेज साडों से और हिंदू गऊमाताओं का कैसा संयोग करवा रहे हैं! न संकोच है, न लाज है! अरे शर्म से मर जाओ, चुल्लू भर पानी में डूब मरो! कुछ तो सोचो, क्या कर रहे हो? इससे ज्यादा और संस्कृति का क्या पतन होगा!
एक गांव में बाप को काम से जाना था, तो अपनी बेटी से कह गया--देहाती बेटी, उससे कह गया कि डाक्टर आने वाला है, वह गऊमाता को बच्चा पैदा करवाने के लिए। सो तू गर्म पानी करके रख देना बाल्टी में, और भी कुछ जरूरत हो डाक्टर को तो इंतजाम कर देना। और मुझे मजबूरी में जाना पड़ रहा है, सो तुझे फिकर करनी पड़ेगी।
उसने कहाः मैं फिकर कर लूंगी। उसने गरम पानी बाल्टी में करके रख दिया!
और गऊएं कई थीं किसान के पास। सो उसने कहाः देख, यह जिस गऊ को बच्चा पैदा करवाना है, उसके खूंटे पर मैंने खीला गाड़ दिया है, ताकि तुझे याद रहे कि कौन सी गऊ, नहीं तो तू भूल-भाल जाए।
उसने कहाः ठीक है। उसने खीला भी देख लिया। फिर डाक्टर आया, तो उसने डाक्टर को कहा कि आइए। गरम पानी की बाल्टी ले जाकर रखी और कहा कि यही गऊ है जिसके खूंटे पर खीला गड़ा हुआ है।
डाक्टर ने पूछाः खीला किसलिए गड़ा हुआ है।
कहाः आप पैंट कहांटांगेंगे? और क्या मैं भी यहां खड़े होकर देख सकती हूं?
उसको बेचारी को क्या पता कि यह बेचारा इंजेक्शन लगाएगा कि क्या करेगा, क्या नहीं करेगा? उसने सोचा कि बाप खीला जो ठोंक गया है, वह मतलब यह होगा कि पैंट कहां टांगेगा यह डाक्टर! और विस्मय उसके मन में होगा स्वभावतः, कि जरा मैं भी तो देखूं कि यह आदमी है कैसा कि गऊमाता के साथ ऐसा व्यवहार करते शर्म नहीं आती!
डाक्टर ने कहाः भाग छोकरी! तुझे कुछ अकल है क्या कह रही है? तू अपना काम कर!
जो आज पशुओं में हो रहा है, वह कल पुरुषों में, मनुष्यों में भी होगा। होना चाहिए, क्योंकि वैज्ञानिक है। बजाय हर कोई मरा-खुरा आदमी बच्चे- कच्चे पैदा करे, मरियल, उससे बेहतर है कि सुंदर, और श्रेष्ठ और प्रतिभाशाली व्यक्तियों के वीर्याणु उपलब्ध हो सकें। जो पशुओं के साथ है वह मनुष्यों के साथ हो सकता है।
इसलिए भविष्य में ध्यान रखो, पिता की कोई जगह रह जाने वाली नहीं है। पैंट-मैंट टांगने के लिए कोई आवश्यकता नहीं रह जाने वाली। खूंटी वगैरह

लगाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाने वाली। खीली-वीली ठोंकना ही मत। पिता के दिन लद गए। देर-अबेर कितनी ही लग जाए, मगर पिता के दिन लग गए। पिता नहीं होगा भविष्य में, भविष्य फिर मातृ-सत्ताक होगा। जब शुरू हुआ था मनुष्य की यात्रा का पहला पड़ाव, तो समाज मातृ-सत्ताक था, फिर पितृ-सत्ताक हुआ। फिर पिता की सत्ता आई, क्योंकि पिता में एक दंभ पैदा हुआ कि मेरे बच्चे ही मेरी संपत्ति के मालिक होने चाहिए।
कार्ल मार्क्स सच है इस संबंध में कि व्यक्तिगत संपत्ति के कारण ही पति और पत्नी की प्रथा शुरू हुई, क्योंकि बाप को यह शक बना रहा कि अगर पत्नी मुक्त रहे तो पता नहीं किसके बच्चे! और मैं संपत्ति जिंदगी भर कमाऊं और न मालूम किसके बच्चे उसके मालिक हो जाएं! तो मेरी कमाई जिंदगी भर की बेकार गई।... यूं भी बेकार जाने वाली है, किसके बच्चे मालिक होते हैं, क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारे हुए कि किसी और के हुए, क्या फर्क पड़ने वाला है? तुम तो गए सो गए। कोई न कोई तो मालिक होगा। मगर आदमी का अहंकार कि मेरा ही बच्चा, कम से कम मेरी ही एक शाखा मालिक रहेगी! इसलिए पत्नी को बिल्कुल घेर कर रखो। इसलिए लड़की कुंआरी होनी चाहिए विवाह के वक्त। पुरुष की कोई बात नहीं। हम कहते हैंः पुरुष तो पुरुष हैं, इनकी कोई बात नहीं! लेकिन लड़की कुंआरी होनी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि लड़की पहले से ही गर्भवती हो और किसी का बीजांकुर लेकर घर में आ जाए और बच्चा पैदा हो, वह किसी और का हो और वह सारी संपत्ति का मालिक हो जाए!
नसरुद्दीन का जब पहली दफा विवाह हुआ तो छह महीने में ही बच्चा पैदा हो गया। वह बड़ा चिंतित हुआ। मोहल्ले के लोग हंसने लगे। लोग कहने लगेः बड़े मियां, कुछ समझे?
नसरुद्दीन ने कहा कि क्या समझे इसमें। डाक्टर के पास गया। डाक्टर से कहाः आप समझाएं। लोग कहते हैं, कुछ समझे? मेरी कुछ समझ में आता नहीं। डाक्टर ने कहाः बिल्कुल चिंता मत करो। पहली बार अक्सर ऐसा होता है। मगर दुबारा अब कभी ऐसा नहीं होगा। पहली बार अभ्यास नहीं होता न स्त्रियों को, कभी छह महीने में बच्चा दे देती हैं, कभी सात महीने में दे देती हैं। डाक्टर होशियार था, बूढ़ा आदमी था, अनुभवी था। उसने कहाः मैं अनुभव से कहता हूं। पहली दफा यह अक्सर हो जाता है, अभ्यास नहीं होने से। कब देना, पता क्या? फिर जब अभ्यास हो जाएगा तो हमेशा नौ महीने में देंगी बच्चा, तुम घबड़ाओ मत। दुबारा कभी ऐसी गड़बड़ नहीं होगी।
और जब दुबारा नौ महीने में बच्चा पैदा हुआ तो नसरुद्दीन ने घूम कर मोहल्ले में कहाः समझे? समझे कुछ कि नहीं?
उन्होंने कहाः क्या समझना है इसमें?
उसने कहाः नहीं समझ में आया हो तो हो डाक्टर से समझ आओ। अरे पहली दफा यूं हो ही जाता है। लड़की है, जाने क्या! कुंआरी लड़की, अनुभव नहीं है।
आदमी ने कब्जा किया स्त्री पर, मालकियत जाहिर की उसके ऊपर--सिर्फ इस कारण कि उसकी संपत्ति पर मालकियत बनी रहे। लेकिन अब तो संपत्ति भी समाज की हो जाएगी। देर-अबेर। और पिता भी अवैज्ञानिक हो जाएगा। लेकिन मां अवैज्ञानिक नहीं होगी। फिर मातृ-सत्ताक जगत आने के करीब है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आपने आश्रम में सारा महत्वपूर्ण काम स्त्रियों को क्यों दे रखा है?
यह आश्रम भविष्य का सूचक है। जो कल होने वाला है, वह यहां आज हो रहा है। जान कर ही मैंने यह किया हुआ है। इस आश्रम को मैं प्रतीक बनाना चाहता हूं कि भविष्य में जो होगा, उसका यह प्रतीक है।
और स्वभावतः स्त्रियां जिस कुशलता से काम करती हैं, पुरुष नहीं कर सकता। पुरुष का काम थोड़ा अनगढ़ होता है। उसमें वह स्पष्टता, सौंदर्य, प्रसाद नहीं होता। इस आश्रम में तुम्हें जो सौंदर्य और प्रसाद दिखाई पड़ेगा, वह स्त्रियों के कारण है। इसलिए जो भी काम स्त्रियों से हो सकता है, वह मैं पहले स्त्रियों को ही देता हूं। स्त्रियों के प्रति मेरे मन में बहुत आदर है।
इसलिए मनीषा, मैं अगर तुम्हारे कभी मजाक और व्यंग्य उड़ाता हूं, तो चिंता न लेना। उससे मेरे आदर में जरा भी कभी नहीं है। मेरा जितना आदर

स्त्रियों के प्रति है, संभवतः किसी पुरुष का कभी पूरे इतिहास में नहीं रहा है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं भी मारवाड़ी हूं। क्या मेरे लिए कोई आशा है?

हरिकृष्ण! मारवाड़ी से तो भगवान भी हारा। तुम्हारे लिए आशा ही आशा है। तुम चिंता न करो। तुम तो जहां जाओगे वहीं सफल होओगे। तुम तो जो करोगे वहीं सफल होओगे। सफलता का राज कोई सीखे तो तुमसे सीखे। मारवाड़ी हारना जानता ही नहीं। मारवाड़ी निराश होना जानता ही नहीं। तुम क्यों चिंतित होते हो?
एक कैदी ने दूसरे मारवाड़ी कैदी से पूछा कि तुम यहां कैसे और क्यों आए? मारवाड़ी ने कहाः सरकार से मेरी जिद चल रही थी।
पहले ने पूछाः क्या मतलब?
मारवाड़ी बोलाः मैं भी सरकार की तरह नोट बनाता था।
सरकार से जिद चल रही थी! मारवाड़ी की जिद भगवान से भी चलती है। और भगवान
को ही हारना पड़ता है। तुम बिल्कुल फिकर मत करो।
एक व्यक्ति जाली नोट छापता था। एक मर्तबा गलती से पंद्र्रह रुपये का नोट छप गया। उसने सोचा, शहर में तो कोई बेवकूफ बनेगा नहीं, इसलिए गांव में जाकर एक रुपये का सामान एक मारवाड़ी से खरीदा और चौदह रुपये वापस मांगे। मारवाड़ी ने सात-सात के दो नोट वापस कर दिए! उस व्यक्ति ने तो सोचाः चलो न सही पंद्र्रह रुपये का, कम से कम एक रुपये का तो फायदा हो ही गया! मारवाड़ी ने भी एक रुपये का तो आखिर सामान दे ही दिया! वह खुश था। जब उसने घर जाकर सामान का पैकेट खोला तो सिर्फ एक चिट निकली, जिसमें लिखा थाः हम भी यही काम करते हैं।
मारवाड़ी होकर और हारने की बात! कभी भूल कर नहीं करना। निराशा की बात मारवाड़ी को शोभा देती ही नहीं।
चंदूलाल मारवाड़ी अपने पुत्र के साथ किसी भोज में गया था। जैसा कि उसकी पुरानी आदत थी, उसने दिल खोल कर भोजन का आनंद लिया। पूरी पर पूरी और रसगुल्ले पर रसगुल्ले रुके ही न! तभी उसने देखा कि उसका बेटा भोजन के बीच-बीच में पानी भी पीता जा रहा है। उसे तो बड़ा क्रोध आया। उसने कहा कि इस मूढ़ को मैं कहां ले आया! अरे भोज में भी कोई पानी पीता है! अरे पानी ही पीना है तो घर चल कर पी ले, यहां तो जितना खा सके खाता जाए। कुछ कह तो सकता नहीं था, मगर बीच-बीच में लड़के को हुद्दे मारता था। मगर लड़का है कि समझे ही न। वह बीच-बीच में पानी पीता ही रहा। लेकिन जैसे ही घर आए, उसने जोर से एक चपत बेटे को लगाई और कहा कि नालायक, आखिर भोज में पानी पीने की जरूरत क्या थी? अरे पानी भी कोई पीने की चीज है? और मैं तुझे इतने हुद्दे मारता रहा और अकल के दुश्मन! तू हुद्दे का मतलब भी नहीं समझा!
बेटे ने कहाः आप नाहक मुझे मारते हैं। देखिए, अभी आपको प्रयोग करके दिखाता हूं कि पानी पीने से आदमी और भी ज्यादा भोजन कर सकता है।
यह कह कर वह एक बर्तन में राख भर कर ले आया और उसने एक गिलास पानी उस राख में डाला। पानी डालते ही राख नीचे चली गई और बर्तन में कुछ स्थान खाली हो गया। यह देख चंदूलाल ने बेटे को एक चपत और रसीद की। बेटा बोला कि अब क्यों मारते हैं? अब तो मैंने प्रयोग भी करके बता दिया!
चंदूलाल बोले कि अरे नालायक, यह बात पहले क्यों नहीं बताई? अरे पहले बता देता तो हम भी पानी पीकर जगह बनाते।
और लड़का बोलाः इसलिए तो तुम्हारे हुद्दों की मैं फिकर नहीं कर रहा था, क्योंकि जितने तुम हुद्दे दे रहे थे उतने ही मेरे भीतर चीजें ठहरती जा रही थीं नीचे, बैठती जा रही थीं नीचे। सो मैं सोच रहा था वाह क्या हुद्दा मारा, एक रसगुल्ला और भीतर गया!
तुम पूछते हो हरिकृष्णः "क्या मेरे लिए कोई आशा है?"
आशा तो है। मारवाड़ी होना छोड़ना पड़े। और मारवाड़ी होना कोई आत्मा का लक्षण थोड़े ही है। मैं तो किसी शास्त्र में नहीं देखा कि मारवाड़ी होना किसी आत्मा का लक्षण हो। न तो आत्मा मारवाड़ी होती, न मद्रासी होती है। मारवाड़ी और मद्रासी, चीनी और जापानी, हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी--सब मन के

खेल हैं। और मन से ही उठने के लिए तो संन्यास है। मन से ही पार जाने के लिए तो ध्यान है। मन के पार गए कि फिर कहां मारवाड़, फिर कहां मद्रास! मन के पार गए कि सब पीछे छूट गया--म्हारो देश मारवाड़! सब बहुत पीछे छूट जाते हैं। वहां फिर तो शुद्ध चैतन्य साक्षी ही बचता है।
तुम चिंता न लो। अभी संन्यास तुमने लिया नहीं, मगर मारवाड़ी हो, हिसाब लगा रहे हो कि लेना कि नहीं लेना, फायदा क्या होगा, हानि क्या होगी, आशा है कि आशा नहीं है? हिसाब-हिसाब रखोगे तो चूकोगे। यह तो दुनिया हिसाब-किताब रखने वालों की नहीं है। यहां तो हिसाब-किताब खोने वालों का काम है। डरो मत, छलांग लो! आशा ही आशा है। निराशा का कोई कारण ही नहीं है, क्योंकि तुम्हारे भीतर स्वयं परमात्मा विराजमान है।
लेकिन कब तक झिझकोगे? तीन-चार बार तुम यहां आ चुके। बार-बार आकर सोचते हो--संन्यास लेना कि नहीं लेना! आते हो, चले जाते हो। ऐसे आने-जाने की अगर आदत बन गई तो फिर निराशा हाथ लगेगी। क्योंकि तुम यहां आओ और दर्शक की भांति चले जाओ, तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यहां तो डुबकी मारो। यहां तो उतरो इस सागर में। और सागर में उतरने के लिए हिम्मत तो चाहिए ही! और हिसाब-किताब वाले लोग सागरों में नहीं उतरा करते। सागरों में उतरने के लिए साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए।
संन्यास इस जगत में सबसे बड़े साहस का कृत्य है। परमात्मा तुम्हें साहस दे! तुम्हारा नाम तो बड़ा प्यारा है--हरिकृष्ण! इस नाम को सार्थक करो। छलांग लो। कहां की छोटी-छोटी बातों में उलझे हो--मारवाड़ी, गैर-मारवाड़ी! यहां कोई कुछ नहीं है। यहां कितने मारवाड़ी डूब गए, तुम देखते नहीं? एक बार डूबे कि डूबे, फिर कौन मारवाड़ी बचता है?
यहां सब तरह के लोग हैं। यहूदी यहां हैं, मारवाड़ी तो क्या उनका मुकाबला करेंगे? मारवाड़ी तो बेचारे समझो छोटे पैमाने पर भारतीय ढंग के यहूदी हैं। यहूदी तो जागतिक मारवाड़ी हैं--मगर यहां यहूदी डूबे हुए हैं-- यूं डूबे हुए हैं कि भूल ही भाल गए-- सारा हिसाब-किताब, सारा गुणनफल, सारा तर्कजाल... । गणित का यह काम नहीं। प्रेम का यह काम है। और जहां प्रेम है, वहां आशा है। जहां प्रेम है, वहां सूर्योदय है।

आज इतना ही।

सुमिरन मेरा हरि करैं
ग्यारहवां प्रवचन

वासना दुख है

पहला प्रश्नः ओशो! दुख क्या है? उसका बल क्या है कि कुछ बुद्धों को बाद देकर वह सबको धर दबाता है?

सहजानंद! दुख है आत्म-मूर्च्छा; अपने प्रति बेहोशी; स्वयं को न जानना। आनंद है स्वयं को जानना; आत्म-परिचय। जैसे प्रकाश जले तो अंधकार अपने से तिरोहित हो जाता है, वैसे ही आत्म-ज्ञान की ज्योति जले तो दुख विसर्जित हो जाता है।
इसलिए बुद्धों को छोड़ कर और सभी को दुख सताएगा--कभी कम कभी ज्यादा। जिसे तुम सुख कहते हो, वह भी दुख की ही न्यून मात्रा है। तुमने सुख कभी जाना ही नहीं है। जब दुख कम होता है तो तुम उसे सुख कहते हो। जब दुख अतिशय हो जाता है, सहने के बाहर, असह्य--तब तुम उसे दुख कहते हो। तुम्हारे सुख और दुख में कोई गुणात्मक भेद नहीं है, सिर्फ मात्रा का भेद है, परिमाण का भेद है।
जिन्होंने सुख जाना है, लिए दुख बचता हीेनहीं --बच सकता ही नहीं! और फिर ऐसा नहीं है कि तुम्हें कभी-कभी दुख धर दबाता है। दुख तुम्हारी छाती पर ही सवार है। पुराना दुख होता है तो तुम उसके आदी हो जाते हो। पुरानी चोट होती है, तो तुम धीरे-धीरे उसे भूल जाते हो, तुम उसे अंगीकार कर लेते हो, आत्मसात कर लेते हो। नई चोट होती है तो तिलमिलाती है।
दुख जब पहली बार घटता है, कोई दुख, तो तुम्हें झकझोरता है। फिर घटता ही रहे, घटता ही रहे, तो कब तक झकझोरेगा? तुम उससे न केवल परिचित हो जाते हो, बल्कि तुम्हारी उससे मैत्री भी हो जाती है। किसी दिन छोड़ कर चला जाए तो तुम दुखी होओगे।
मेरे एक मित्र रेलवे-स्टेशन पर काम करते थे। रेलवे-स्टेशन पर सोना मुश्किल हैः दिन भर ट्रेनों का आना और जाना और यात्रियों का उतरना और खोंमचे वालों का शोरगुल और कुलियों की आवाजें... । मगर वे इतने आदी हो गए तीस साल की नौकरी में कि घर पर उन्हें नींद नहीं आती थी, नींद आती स्टेशन पर थी। छुट्टी के दिन भी सोने के लिए स्टेशन ही जाते थे। मैंने उनसे पूछाः पागल हो तुम?
उन्होंने कहाः पागल नहीं हूं। जब तक यह शोरगुल न मचे, तब तक ठीक वातावरण मेरी नींद का बनता नहीं।
ऐसी घटना अमरीका में शिकागो नगर में घटी। शिकागो नगर से वर्षों से एक ट्रेन सुबह पांच बजे गुजरती थी, बीच नगर से। फिर रेलवे के अधिकारियों ने सोचा कि पांच बजे लोगों की नींद खराब होती होगी। यद्यपि कोई शिकायत न आई थी, लेकिन खुद ही सोच कर कि इस महानगरी में से पांच बजे ट्रेन को गुजारना, नाहक इतने लोगों की नींद खराब करना है। तो उन्होंने समय में रद्दोबदल कर दी। जो ट्रेन पांच बजे गुजरती थी, वह सात बजे गुजरने लगी। पहले दिन जब वह सात बजे गुजरी, तब शिकागो में बहुत से लोग पांच बजे चौंक कर जग गए। वे आदी हो गए थे पांच बजे उस ट्रेन के गुजरने के। और दूसरे दिन कई फोन आए कि ट्रेन का क्या हुआ? वह जो ट्रेन पांच बजे गुजरती थी, गुजरी नहीं! आखिर ट्रेन का हुआ क्या? हमारी नींद में बड़ी खलल पड़ी।
आदमी दुख से भी समायोजित हो जाता है। दुख को भी फिर छोड़ नहीं सकता। इसलिए तुम कहते हो कि हमें दुख से मुक्त होना है, मगर वस्तुतः तुम अगर विचार करोगे तो तुम दुख से मुक्त होना नहीं चाहते। होना चाहो तो दुख तुम्हें नहीं पकड़े हुए है, तुम दुख को पकड़े हुए हो। अभी मुक्त हो सकते हो, इसी क्षण! दुख की क्या सामर्थ्य है? लेकिन बस तुम बातें करते हो दुख से मुक्त होने की। बातचीत करनी अच्छी लगती है। लेकिन तुम अपने घावों से भी लगाव बना लेते हो।
बैस्तिले में, फ्रांस में क्रांति हुई, तो बैस्तिले का किला तोड़ दिया क्रांतिकारियों ने। वह किला फ्रांस के सबसे ज्यादा जघन्य अपराधियों को

बंद रखता था--ऐसे अपराधियों को, जो या तो आजीवन सजा पाए थे, या जिन्हें फांसी की सजा होनी थी। बस दो ही तरह के कैदी वहां होते थे। इसलिए उन कैदियों को जो जंजीरें पहनाई जाती थीं, उनके खोलने का कोई उपाय नहीं होता था। उनमें ताले नहीं होते थे, चाबी नहीं होती थी। वे खुलेंगी ही नहीं। आदमी मरेगा, तभी जंजीरें हाथ तोड़ कर निकाल ली जाएंगी, पैर तोड़ कर बेड़ियां निकाल ली जाएंगी, या फांसी लगेगी। जीते-जी तो जंजीरों और बेड़ियां का टूटना होने वाला नहीं था। इसलिए ताले-चाबी की कौन झंझट में पड़े! क्रांतिकारियों ने सोचा कि बैस्तिले को पहले मुक्त कर दें। उन्होंने जाकर किले का द्वार तोड़ दिया, कैदियों को मुक्त किया। कोई पांच हजार कैदी वहां बंद थे। पहले तो कैदियों ने इनकार किया कि हमें मुक्त होना नहीं है। हम जैसे हैं भले हैं। हम जैसे हैं मजे में हैं। हमें बाहर जाना नहीं। हम बाहर जाकर करेंगे क्या? यहां सब सुख-सुविधा है, उन्होंने कहा। सोने को जगह है। ठीक वक्त पर खाने को मिलता है। ठीक समय पर सोने को मिलता है। बीमार हों तो चिकित्सा मिलती है। और आदमी को चाहिए क्या? हमारे मित्र यहां हैं, हमारे प्रियजन यहां हैं। बाहर तो सब अजनबी हैं।
अब कोई आदमी बीस साल से बंद था, कोई तीस साल से बंद था। ऐसे भी व्यक्ति
थे वहां जो चालीस साल और पचास साल से बंद थे। उन्होंने कहाः पचास साल के बाद हम कहां कमाएंगे? हम तो भूल ही भाल गए कमाना। अब हम कहां खोजेंगे अपने परिवार के लोगों को? वे भी हमें क्या पहचानेंगे? हम जाना नहीं चाहते। हमें क्षमा करो।
मगर क्रांतिकारी तो जिद्दी होते हैं। वे तो माने ही नहीं, उन्होंने
तो जबरदस्ती उनकी बेड़ियां और हथकड़ियां तुड़वा दीं और उनको धक्के दे कर मुक्त कर दिया। दुनिया में किसी को धक्के देकर मुक्त किया नहीं जा सकता। मुक्ति थोपी नहीं जा सकती। थोपी गई मुक्ति मुक्ति नहीं होगी, वह नये तरह का बंधन होगा। और चकित तो क्रांतिकारी तब हुए तब सांझ होते-होते कैदी वापस लौटने लगे। उन्होंने कहाः दिन भर के भूखे हैं, कोई भोजन देता नहीं।
रात हुई तो और कैदी वापस लौटे। उन्होंने कहाः हमें नींद नहीं आती बाहर, हमें हमारी अंधेरी कोठरी की शांति चाहिए। बाहर बहुत शोरगुल है। कुछ ने तो यह भी कहा कि जब तक हमारी जंजीरें और बेड़ियां वापस न दोगे,
हम सो ही न सकेंगे। हम उनके आदी हो गए हैं। जब तक उतना वजन हमारे हाथ-पैर में न हो, हम नंगे-नंगे मालूम होते हैं, उखड़े-उखड़े मालूम होते हैं। जैसे जड़ें खो गई हों किसी वृक्ष की।
यह एक अपूर्व अनुभव था। यह बड़ा मनोवैज्ञानिक अनुभव था कि आदमी अपनी बेड़ियों को भी छोड़ने को राजी नहीं होगा। इसलिए अक्सर जो व्यक्ति एक बार कारागृह चला जाता है, वह फिर बार-बार जाता है। यह पूरी की पूरी दंड की व्यवस्था अमनोवैज्ञानिक है। सोचा तो यही जाता है। न्यायवेत्ता यही सोचते हैं कि जिनको हम दंड दे रहे हैं, उनको हम अपराधों से रोक लेंगे। वे गलती में हैं। उन्हें मनोविज्ञान का कोई बोध नहीं है। उन्हें मनुष्य की अंतर्व्यवस्था का भी कोई अंदाज नहीं है। उन्हें मनुष्य के जीवन के संबंध में कोई सूझ-बूझ नहीं है। वे सिर्फ अंधी लकीरें पीट रहे हैं।
जो आदमी एक दफा जेल चला गया, सारे कारागृहों का इतिहास यह बताता है कि
वह आदमी फिर वापस लौटेगा, बार-बार वापस लौटेगा। वह कारागृह का आदी हो जाता है। उसे फिर बाहर अच्छा नहीं लगता। उसके मित्र वहां, उसके संबंध वहां, उसकी सारी दुनिया वहां। वह बाहर करे तो क्या करे!
यह न्याय की पूरी व्यवस्था मूढ़तापूर्ण है। ऐसे आदमी नहीं बदले जाते। यूं आदमी बिगाड़े जाते हैं। यूं पहले अपराधी को हम सदा के लिए अपराधी बना देते हैं। अपराधी को कारागृह में डालने की जरूरत नहीं है; उसे मनोचिकित्सा की जरूरत है। वह विक्षिप्त है। उसके साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो हम बीमार के साथ करते हैं। उसका इलाज होना चाहिए। इलाज नहीं, उसको हम दंड देते हैं। दंड से क्या संबंध है? दंड से किसी को बोध आया है? वह दंड का ही आदी हो जाता है। वह दंड में ही मजा लेने लगता है।

कारागृह में कैदी एक-दूसरे से इस बात का भी अहंकारपूर्वक दावा करते हैं कि मैंने कितनी सजा काटी, तुमने कितनी काटी? तुम अभी सिक्खड़ हो, तुम्हारी हैसियत क्या?
कारागृह में भी दादा होते हैं! कोई तीस दफा जेल आया है; उसके सामने तुम्हारे क्या हैसियत, दो ही दफा आए जेल!
एक कारागृह में एक आदमी प्रविष्ट हुआ। जो कोठरी में आदमी पहले से बंद था, अपना कंबल ओढ़े लेटा हुआ था दोपहरी में, इस नये आगंतुक से उसने पूछा कि भाई, कितने दिन रहोगे? इसने कहा कि दस साल की सजा हुई है। तो उसने कहा कि दरवाजे पर ही बिस्तर लगाओ, क्योंकि तुम्हें जल्दी निकलना पड़ेगा। हमें बीस साल यहां रहना है! तुम दरवाजे पर ही अपना बिस्तर लगाओ। ज्यादा भीतर घुसने की जरूरत नहीं है। तुम्हारी हैसियत क्या है? अरे दस साल! हमें बीस साल यहां रहना है। और यह कोई पहला मौका नहीं है हमारा।
अनुभवी होते हैं वहां भी।
संसार में इतना दुख है, इसका निन्यानबे प्रतिशत कारण तो यही है कि तुम दुख को पकड़ते हो, तुम छोड़ नहीं सकते। तुम छोड़ दो तो तुम्हें खालीपन लगेगा। तुम रिक्त हो जाओगे। तुम घबड़ाओगे, जैसे अधर में लटक गए। त्रिशंकु हो जाओगे। कांटे तो कांटे सही, मगर कुछ तो हाथों में चाहिए ही। खाली हाथ से तो कचरे से भरे हाथ को भी हम पसंद करेंगे। खाली होने से आदमी सर्वाधिक डरता है। कुछ भी हो, कंकड़-पत्थर ही हों, मगर कुछ भी हो! एक तरह का भराव हो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो लोग अपने जीवन में अर्थहीनता अनुभव करते हैं, वे ज्यादा भोजन करने लगते हैं। भोजन से ही भरने लगते हैं। कुछ नहीं तो भोजन से ही भरो! एक सीमा के बाद भोजन जहर हो जाता है। जब तुम्हारी जरूरत से ज्यादा तुम भोजन करोगे तो वह जहर है। वही तुम्हें मारेगा। और जो मारे वह जहरः मगर लोग भोजन से भरते चले जाते हैं। खालीपन से घबड़ाहट लगती है।
लोग घर में क्या-क्या लक्कड़-पत्थर इकट्ठे करते रहते हैं। कुछ भी! चोर-बाजार में चले जाएंगे, वहां से कुछ भी व्यर्थ की चीजें खरीद लाएंगे। घर को भरे रखेंगे। खाली घर काटता है। खाली घर में डर लगता है। तो भर रखो। बाहर घर भरा है तो यूं भ्रांति पैदा होती है कि भीतर भी हम भरे हैं। फिर किस चीज से भरा है, इसकी क्या फिकर! हीरे-जवाहरात तो सभी को मिलते नहीं, कंकड़-पत्थरों से ही भर लेते हैं।
तुमने अपने को दुख से भरा हुआ है। सहजानंद, तूमे पूछते होः दुख क्या है? दुख है आत्म-अज्ञान। तुम्हें इस बात का पता नहीं कि तुम्हारे भीतर कौन विराजमान है। इसलिए तुम्हें एक भ्रांति है कि तुम भीतर खाली हो। भीतर खाली हो, इसलिए किसी भी चीज से भरो। और तुम जिससे भी अपने को भरोगे, वह व्यर्थ ही है। वह दुख ही है। जिस दिन तुम अपने भीतर की ज्योति को जानोगे, किसी चीज से भरने की कोई जरूरत नहीं है।
एक सम्राट बूढ़ा हुआ। उसके तीन बेटे थे। उसे तय करना था किसको राज्य दे। तीनों साथ-साथ पैदा हुए थे, जुड़वां थे। तीनों समान योग्य थे, समान सुंदर थे, समान शिक्षित थे। एक ही उम्र के थे। नहीं तो कोई रास्ता निकाल लेताः जो बड़ा होता, उसे राज्य दे देता, जो ज्यादा बुद्धिमान होता, ज्यादा बलशाली होता... । मगर तीनों साथ-साथ पैदा हुए थे। तीनों एक जैसे थे, हर हालत में एक जैसे थे, पहचानना तक मुश्किल होता था कि कौन कौन है। उसने एक सूफी फकीर को पूछा कि मैं क्या करूं? पुराना कोई नियम काम नहीं आता। किसको राज्य दे दूं?
फकीर ने कहाः तुम एक काम करो। सबको समान राशि धन दे दो और कहना... उन सबके अपने-अपने महल हैं... कि इतने धन से तुम अपने महल को भर कर बताओ। मगर महल भरा हुआ होना चाहिए। और फलां दिन मैं देखने आऊंगा। जिसका महल सर्वाधिक भर गया होगा, जो अपने महल को पूरा भर देगा, वही मेरे साम्राज्य का मालिक होगा।
पहले लड़के ने सोचाः किस चीज से महल को भरना है? सोना-चांदी इतने से धन में आ नहीं सकता। और सोना-चांदी के बिना भरने का क्या मतलब है! मगर भरना तो पड़ेगा ही, किसी न किसी चीज से भरना होगा। कोई न कोई उपाय करना होगा। क्या करूं, क्या न करूं?

सस्ती चीजें, जो भी मिल सकता था, कूड़ा-करकट, वह खरीद लाया। घर को भर दिया। मगर कूड़ा-करकट! सम्राट देखने आया। ऐसी दुर्गंध उठ रही थी घर में से कि वह तो घबड़ा कर बाहर निकल आया। उसने कहाः यह भी कोई भरना हुआ? सूफी फकीर भी साथ आया था, उसने कहा कि यह तुम्हारा बेटा ठीक संसारी बेटा है। यही तो संसार भर के लोग कर रहे हैं। खाली जगह है, खाली जगह काटती है।
तुमने देखा न, एकाध दांत तुम्हारा गिर जाए तो दिन भर जीभ वहीं-वहीं जाती है। यूं कभी न गई थी। दांत जब था, कभी न गई थी। दांत क्या गिर गया है, वहीं-वहीं जाती है। जीभ पगला जाती है बिल्कुल। वह खाली जगह एकदम चुभने लगती है।
जो तुम्हारे पास होता है, उसकी तुम्हें याद ही नहीं आती; जो खो जाता है, फिर याद आती है।
फकीर ने कहाः यह बेटा तुम्हारा सांसारिक है। यूं नाराज न होओ, यही तो दुनिया भर के लोगों ने किया है। इसलिए हर आदमी की जिंदगी में दुर्गंध उठ रही है।
वे दूसरे बेटे के द्वार पर पहुंचे। उसने क्षमा मांगी। उसने कहा कि मैंने भरने की तो कोशिश की, मगर इतने से धन से कैसे भरूं! लाया--सोना-चांदी लाया हूं; मगर वे तो एक कोने में भी नहीं भर पाए; एक कोने को भी नहीं भर पाया। हार गया। बहुत सोचा, मगर कोई रास्ता पाया नहीं। इसलिए मकान खाली है। थोड़ा सा भरा है।
फकीर से पूछा बादशाह नेः क्या करना?
फकीर ने कहाः यह बेटा पहले बेटे से तो ज्यादा होशियार है, लेकिन बहुत होशियार नहीं है। अभी तीसरे को हम और देख लें, फिर तय करेंगे।
तीसरे ने कुछ अदभुत ही काम किया था। जैसे ही उसके घर के पास पहुंचे, चकित हो गए। दूर से ही उसके घर से ऐसी सुगंध उठ रही थी! उसने घर को फूलों से सजाया था, धूप जलाई थी और घर में दीयों से रोशनी की थी। दीपमालिका बनाई थी। घर खाली था। फूलों के बंदनवार थे, धूप जल रही थी, दीये जले थे। मगर घर तो खाली था। सम्राट भीतर गया। उसने कहा कि घर भरा नहीं है, इस लड़के ने शर्त पूरी नहीं की।
फकीर ने कहाः जल्दी न करो। यह लड़का सच में बुद्धिमान है। जरा गौर से देखो। सम्राट ने फिर गौर से देखा। मकान खाली था। उसने कहाः मकान खाली है! फकीर ने कहा कि तुम भी असल में सांसारिक आदमी हो। तुम इस बेटे को न समझ पाओगे। यह देखो, इसने घर को रोशनी से भर दिया है! रोशनी एक-एक कोने में पहुंच गई है। घी के दीये जलाए हैं। मगर तुम्हारी आंखें अंधी हैं। रोशनी से घर भरा है और तुम इसे खाली कहते हो। और फूलों की गंध से घर भरा है और तुम इसे खाली कहते हो! और धूप की सुवास से घर भरा है और तुम इसे खाली कहते हो! और उसने एक बांसुरीवादक को भी बुलाया था, जो बगीचे में बैठ कर बांसुरी बजा रहा था। उसके बांसुरी के स्वर महल में गूंज रहे थे। और उस फकीर ने कहाः और देखो! बांसुरी के स्वरों से घर भरा है। इस लड़के ने चार तरह से शर्त पूरी की है, एक तरह से भी नहीं! रोशनी से घर भर दिया, उतना ही काफी था। फूलों की गंध से घर भर दिया, वह भी काफी था। धूप की सुगंध और धुएं से घर भर दिया, वह भी काफी था। फिर बांसुरी के स्वरों से घर भर दिया, संगीत से घर भर दिया, उत्सव से घर भर दिया--वह भी काफी था। तुमने तो एक ही चीज से चाहा था घर भरना; इसने चार-चार तरह से घर भर दिया। एक घर! और चमत्कार कर दिया है, जैसे चार घर हों। इसने चार घर भर दिए हैं एक घर में! इसने चारों आयाम भर दिए। यही बेटा सम्राट होने के योग्य है। मगर यह सांसारिक नहीं है। इसके पास अंतर्दृष्टि है पार की, दूर की, परलोक की।
तुम्हारे जीवन में दुख है, उसका कारण यह है कि तुमने अपने भीतर का दीया नहीं खोजा। वहां जल रहा है दीया, कभी बुझा नहीं। बुझ जाए तो तूमे जी ही नहीं सकते। तुम्हारा जीवन ही तो वह दीया है। वहां बज रही है बांसुरी, एक क्षण को बंद नहीं होती। वही तो अनाहत नाद है। उसी नाद की तो संतों ने चर्चा की है। वहां प्रतिपल सुवास उठ रही है, धूप जल रही है। उसी धूप के प्रतीक के अर्थों में तो मंदिरों में धूप जलाते हैं। मजारों पर धूप जलाते हैं। वह बाहर की धूप भीतर की धूप के लिए सिर्फ प्रतीक है। और वहां भीतर सुगंध ही

सुगंध है फूलों की। सहस्रदल कमल खिले हैं! हजारों पंखुड़ियों वाले कमल खिले हैं! तुम्हारी चेतना की झील में चमत्कारी फूल खिले हैं! मगर तुम वहां देखो तब न! वहां तुम देखते नहीं। वहां तुम पीठ किए हो। नजरें तुम्हारी बाहर अटकी हैं।
और स्वभावतः तुम बाहर देखोगे तो अंधेरे में जीओगे--अंधेरे में जीना दुख है। तुम बाहर देखोगे तो खाली अनुभव करोगे--खाली होना दुख है। तुम बाहर रहोगे तो अर्थहीन पाओगे--अर्थहीनता दुख है। फिर इस अर्थहीनता को, खालीपन को, इस रिक्तता को किसी तरह भरोगे--धन से, पद से, प्रतिष्ठा से। मगर कभी भर न पाओगे। इस तरह भरोगे तो तुम्हारे जीवन में दुर्गंध उठेगी। इसलिए राजनीतिज्ञों के जीवन में जैसी दुर्गंध उठती है, कम ही लोगों के जीवन में उठती है, क्योंकि पद की दौड़ अत्यंत निम्न दौड़ है। वह अहंकार की दौड़ है। धन के पागलों के जीवन में जैसी गंदगी हो जाती है, वैसी गंदगी और किसी के जीवन में नहीं होती। क्योंकि धन की दौड़ विक्षिप्तता है।
लेकिन जो अपने भीतर उतरेगा, उसके जीवन में एक नये लोक के द्वार खुलते हैं। नये रहस्य के द्वार खुलते हैं। वहां फिर रोशनी है। और वहां ऐसा भराव है कि फिर और कुछ मांग नहीं रह जाती। जहां मांग गई वहां दुख गया।
तुम पूछते हो सहजानंदः "दुख क्या है?"
चाह दुख है। मांग दुख है। वासना दुख है। तृष्णा दुख है। और जिस दिन तुम अपने को जानोगे, सब तृष्णा गिर जाएगी, सब चाह गिर जाएगी। क्योंकि मालिकों का मालिक वहां विराजमान है, सम्राटों का सम्राट वहां विराजमान है! तुम्हारे भीतर इस जगत की सबसे बड़ी संपदा है--प्रभु का राज्य है!
इसलिए सिर्फ बुद्धों पर दुख हमला नहीं कर पाता। कारण? बस एक ही है, छोटा सा कारण है, सीधा-साफ कारण हैः वे अपने भीतर के आनंद से परिचित हो गए हैं। अब कैसे दुख उन पर हमला करे?
तुमने कभी अंधेरे को दीये पर हमला करते देखा? चाहो भी तो भी नहीं उपाय जुटा सकते। अंधेरे को कितना ही समझाओ कि कर दे हमला, लग छू, कितना ही समझाओ-बुझाओ, रिश्वत दो, अंधेरे से कहो कि देख मालपुआ खिलाएंगे, रबड़ी पिलाएंगे, सदा तेरी सेवा करेंगे, एक दफा कर दे हमला इस दीये पर, जरा सा तो दीया है, दे- दे पछाड़, कर दे इसको चारों खाने चित्त! मगर अंधेरा कुछ नहीं कर सकता। अंधेरा तो दीये से दूर ही दूर रहेगा। न तो तुम अंधेरे को दीये पर हमला करने के लिए राजी कर सकते हो, न अंधेरे में सामर्थ्य है कोई।
अंधेरे की कोई सत्ता ही नहीं है। ऐसे ही दुख की भी कोई सत्ता नहीं है। बुद्ध का अर्थ होता हैः जो जाग गया; जो अपने भीतर होश से भर गया; जो आत्मवान हुआ; जो ध्यानस्थ हुआ; जिसने समाधि को चखा, अनुभव किया; जिसने पहचान लिया कि मेरे भीतर परमात्मा है। बस फिर बात समाप्त हो गई। सब दुख समाप्त हो गए। फिर कभी कोई हमला नहीं होगा। फिर दुबारा संसार में आगमन नहीं होगा। तुम्हारी पकड़ ही छूट जाएगी।
तृष्णा ही तुम्हें लाती है संसार में। जब तृष्णा ही न होगी, आने का कोई कारण न रह जाएगा। तुम विराट में लीन हो जाओगे। उस लीनता को हमने मोक्ष कहा है, निर्वाण कहा है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मुझे कभी कविता करनी नहीं आई, मगर आपके मिल जाने
से पगला गया हूं शायद। लगा कि जिसकी तलाश थी वह मिल गया है।
जो फिजा का रंग बदल सके, मुझे हवा की तलाश थी।
जो लहू में बिजलियां भर सके, मुझे उस दवा की तलाश थी।।
वो जो डाकुओं के थे हमसफर, वही कारवां के हैं रहनुमा।
जिसे दिल मिला हो कबीर का, उसी रहनुमा की तलाश थी।।
वो शजर न जिनमें हैं पत्तियां, जहां उल्लुओं की हैं बस्तियां।
जो जड़ों से इनको उखाड़ दे, मुझे उस हवा की तलाश थी।।
मेरी आंख जिसको थी ढूंढती, कभी साहिलों पे मिला नहीं।
मुझे फिर भंवर में जो ले चले, उसी नाखुदा की तलाश थी।।
जो रहे जमीं से परे-परे, उसे आसमां पर ही छोड़ दे।
जो जमीं पे हो, जो जमीं का हो, मुझे उस खुदा की तलाश थी।।

अभी आसमां की फिकर न कर, अभी आसमां का जिक्र न कर,
जो जमीं की जुल्फें संवार दे, उसी बासफा की तलाश थी।।
जो फिजा का रंग बदल सके, मुझे उस हवा की तलाश थी।
जो लहू में बिजलियां भर सके, मुझे उस दवा की तलाश थी।।

प्रेम विक्रम! इस सत्संग में बैठो और कविता न उठे, यह असंभव है। इस सत्संग में बैठो और तुम्हारे भीतर घूंघर न बजने लगें, यह असंभव है। हां, इस सत्संग में सिर्फ शरीर की तरह बैठे रहो और आत्मा की तरह कहीं और, तो तुम यहां बैठे ही नहीं, तो तुम यहां आए ही नहीं। जो यहां आ गया, जो सच में आ गया, जिसका मुझसे तालमेल बैठा, उसके भीतर गीतों पर गीत जन्मेंगे। जन्मने ही चाहिए। और पहले-पहले ऐसा ही लगेगा कि जैसे पागल हो गया हूं। तुम्हें ही लगता है, ऐसा नहीं; खुद मोहम्मद को ऐसा लगा था।
जब पहली दफा मोहम्मद के भीतर कुरान जगी तो मोहम्मद को भी ऐसा ही लगा
था कि कहीं मैं पागल तो नहीं हो गया हूं। वे वचन मोहम्मद के बड़े प्रीतिकर हैं, जो उन्होंने घर आकर अपनी पत्नी को कहे थे। पहाड़ पर थे, जब पहली दफा उनको ध्यान की अवस्था में कुरान की आयतें उतरनी शुरू हुईं। घबड़ा गए। बेपढ़े-लिखे आदमी थे। काला अक्षर भैंस बराबर था उनको। और ऐसे अदभुत गीत उतरने लगे, जाहिर था कि ये उनके तो नहीं हैं। अस्तित्व उनके भीतर से जैसे बोल रहा है। ये बोल उनके अपने तो नहीं हैं। ये कहीं और से आ रहे हैं। ये किसी और लोक से अवतरित हो रहे हैं। यह रोशनी उनकी अपनी तो नहीं है। उनके पास तो यह रोशनी कभी भी न थी। न ये शब्द थे, न ये गीत थे, न कभी गाया था, न शब्दों के वे धनी थे। यह हुआ क्या है!
वे घबड़ा गए। उन्हें लगा कि कहीं मैं पागल तो नहीं हो गया हूं? वे भागे हुए घर आए, बिस्तर पर लेट गए और पत्नी से कहा कि मेरे ऊपर जितने घर में कंबल-रजाइयां हों सब डाल दे, मुझे बड़ी ठंड लग रही है। और वे जरूर कंप रहे थे, जैसे कि कोई तेज बुखार चढ़ा हो। पत्नी ने सब उनके ऊपर रजाइयां डाल दीं। मगर कंपन है कि छूटे ही न। दांत किटकिटा रहे थे! पत्नी ने पूछा कि अचानक, घर से ठीक-ठाक गए थे, हुआ क्या? बात क्या है?
मोहम्मद ने कहाः तुझसे कैसे छिपाऊं! तुझे कह दूं तो शायद मन हलका हो। कुछ अजीब हो रहा है। अदभुत गीत मेरे भीतर उतर रहे हैं। या तो मैं पागल हो गया हूं या कवि हो गया हूं।
और जब उन्होंने पहली आयतें अपनी पत्नी को सुनाईं... उनकी पत्नी पढ़ी- लिखी भी थी, उनसे उम्र में बड़ी भी थी, चौदह साल बड़ी थी। अनुभवी भी थी, सुसंस्कृत भी थी। उसने कहाः तुम भय छोड़ो। परमात्मा ने तुम्हें चुना। तुम उसके वाहन बने। तुम्हारे भीतर पैगाम आया है। तुम्हें इलहाम हुआ है। यह कोई सन्निपात नहीं है। फेंको यह कंबल, हटाओ ये दुलाइयां! तुम्हें कोई बुखार नहीं। तुम पगला नहीं गए हो। तुम्हारे भीतर तुम्हारे हृदय की वीणा को परमात्मा ने छेड़ दिया है। मैं स्पष्ट देख रही हूं। ये वचन तुम्हारे नहीं हैं और पागल ऐसे वचन नहीं बोल सकते हैं। महाकाव्य तुम्हारे भीतर पैदा हो रहा है।
कुरान के वचन अदभुत हैं। उनकी तरन्नुम! उन्हें जो गा सके तो उनकी चोट बड़ी गहरी है। उन्हें कोई गुनगुना सके प्राणों से, हृदय से, तो उसकी वीणा भी झंकृत हो जाए।
नहीं यह बात किसी और शास्त्र की है। और शास्त्र तो शास्त्रीय हैं, लेकिन कुरान अनूठा है। और अनूठेपन का कारण है, क्योंकि मोहम्मद पढ़े-लिखे नहीं थे, नहीं तो कुछ न कुछ अपना ज्ञान कचरा उसमें मिला देते। मिलाने को उनके पास कुछ था ही नहीं। कोरे आदमी थे, सीधे-साफ आदमी थे। पंडित होते तो बात कभी सीधी-सादी बह नहीं सकती थी। उसमें व्याख्या जुड़ जाती। लेकिन अपनी तो कोई बात थी ही नहीं उनके पास। जैसे कोई कोरा कागज होता है, ऐसे आदमी थे। इसलिए जो परमात्मा ने लिखना चाहा, वही लिखा गया है। जो परमात्मा बोलना चाहा, वही बोला गया है। और इसलिए आयतें... कोई महीने में दो महीने पूरा कुरान नहीं लिखा गया, वर्षों लगे। कभी एक आयत उतरी, कभी दस आयतें उतरीं। जब जितनी उतरीं उतरीं। खयाल रखना शब्द--उतरना। जितनी अवतरित हुई, उतनी

अवतरित हुईं। फिर कभी महीनों के लिए सब खो जाता। लोग पूछते भी मोहम्मद सेः बहुत दिन से कोई आयत नहीं कही?
वे कहतेः क्या करूं? बहुत दिन से उसने नहीं कही। वह कहे तो मैं बोल दूं। वह कहेगा तो बोल दूंगा।
इसलिए कुरान बड़े लंबे समय में उतरी। कुरान गीता जैसी नहीं है कि कुछ थोड़े से समय में कृष्ण ने पूरी गीता कह डाली। कुरान को वर्षों लग गए उतरते- उतरते। इसलिए कुरान में तारतम्य नहीं है, एक व्यवस्था नहीं है। कुरान बिल्कुल अव्यवस्थित है। उसमें कोईशृंखला नहीं है। कोई फूल आज खिलता, कोई कल खिला, कोई महीनों बाद खिला, कोई वर्षों बाद खिला--तारतम्य हो तो कैसे हो; एक अराजकता है कुरान में। मगर उस अराजकता में एक सौंदर्य है। आदमी का हाथ नहीं है उसमें, बिल्कुल हाथ नहीं है!
तुम कहते हो प्रेम विक्रम कि मुझे कभी कविता करनी नहीं आई, मगर आपके मिल जाने से मैं पगला गया हूं शायद।
शुभ हुआ। काव्य जन्मेगा।
मेरा संन्यास कोई त्यागवादी संन्यास नहीं है, कोई जीवन से पलायन नहीं है। मैं तो ईश्वर की एक ही परिभाषा मानता हूंः रसो वै सः। परमात्मा रस है, रस-रूप है। और जब रस तुम्हारे भीतर झरेगा, जब रस तुम्हारे भीतर लहरें लेगा, तो गीत उठेंगे, नाच उठेगा।
शुभ हुआ है। रोकना मत। दुनिया शायद पागल ही कहे, चिंता न लेना। मेरे तुम्हारे लिए आशीर्वाद हैं। और जरूरी नहीं है कि कविता शब्दों का ही रूप ले। जीवन बन सकती है कविता। तुम्हारा उठना-बैठना कविता हो सकती है। तुम्हारा चलना, तुम्हारा व्यवहार महाकाव्य हो सकता है। कविता कितने ही रूप ले सकती है!
और संन्यासी का पूरा व्यक्तित्व काव्यमय हो जाना चाहिए। चेष्टा से नहीं, आरोपित नहीं, अभ्यास से नहीं--स्वस्फूर्त।
इस संदर्भ में ही, रंजन ने भी पूछा हैः ओशो! जब यह अनुभव होता है कि संसार में कुछ मिलने को नहीं, फिर एक प्रकार की विरक्ति उठती है। कोई संबंध बनाने का मन नहीं होता। और फिर भी दिन ढलते-ढलते नाच कर उत्सव मना लेती हूं। बस यह अनुभूति प्रगाढ़ होती जाती है। आपके साथ रोज बैठते-बैठते। संसार में तो कुछ मिलने को नहीं है, मगर संसार ही सब कुछ थोड़े ही है। संसार से भी बड़ा संसार संसार में छिपा है। संसार तो केवल आवरण है, पर्दा है। इस पर्दे के पीछे असली राज छिपा है। जो पर्दे में ही उलझ गए, जो पर्दे की ही चिंता में लगे रहे और जिन्होंने पर्दा उठा कर ही न देखा, वे पागल हैं, वे निपट पागल हैं। वे ऐसे पागल हैं जैसे गए थे चित्रों को देखने और देखते रहे चित्रों में लगी चौखट को। फ्रेम कितनी ही सुंदर हो, चौखट कितनी ही सुंदर हो, उससे क्या लेना-देना है! असली सवाल तो चित्र का है। लेकिन बहुत ऐसे पागल हैं जो चौखटों में उलझ गए हैं; जो गए थे सत्य को खोजने, उलझ गए शब्दों में, शास्त्रों में।
संसार में तो कुछ भी नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कहीं भी कुछ नहीं है। संसार तो केवल परिधि है। लेकिन परिधि में अगर कुछ नहीं है तो इसका यह मत समझ लेना अर्थ कि केंद्र में कुछ नहीं है। परिधि के भीतर छिपा है केंद्र। जरा खुदाई करनी पड़ती है रंजन, और तब रस के झरने फूट पड़ते हैं। दोनों अनुभूतियां तेरी ठीक हो रही हैं। तू कहती हैः जब यह अनुभव होता
है कि संसार में कुछ मिलने को नहीं है तो फिर एक प्रकार की विरक्ति उठती है। कोई संबंध बनाने का मन नहीं होता। फिर भी दिन ढलते-ढलते नाच कर उत्सव मना लेती हूं।
शुरू-शुरू में ये दोनों बातें होंगी। एक तरफ जो व्यर्थ है उससे विरक्ति उठेगी और जो सार्थक है उसका उत्सव जगेगा। फिर धीरे-धीरे व्यर्थ दिखाई पड़ना ही बंद हो जाएगा; तब एक नई दृष्टि आएगी कि व्यर्थ भी सार्थक की सुरक्षा है। जैसे बागुड़ लगा देते हैं हम बगीचे को बचाने के लिए। बागुड़ में फूल नहीं लगते, सो सच है। कांटों की बागुड़ बनाते हैं। बागुड़ में क्या फूल लगेंगे! लेकिन बागुड़ की भी जरूरत तो है ही। बागुड़ ही बगीचा नहीं है, लेकिन बागुड़ के बिना भी बगीचा नहीं हो सकता है।

इसलिए यह विरक्ति जो अभी उठ रही है, प्राथमिक है। यह विरक्ति भी चली जाएगी। धीरे से तुझे दिखाई पड़ेगा कि वह जो नृत्य है जो उत्सव है, उसको बचाने के लिए, उसकी सुरक्षा के लिए चारों तरफ एक बागुड़ है। वह बागुड़ ही संसार है।
संसार परमात्मा का घर है। घर में ही मत उलझ जाना। मालिक को पहचानना।
और मालिक को पहचान लोगे तो घर से विरक्ति की क्या जरूरत है? न तो घर से आसक्ति की कोई जरूरत है, न विरक्ति की कोई जरूरत है।
दुनिया में दो तरह की मूढ़ताएं हैं। एक--जो घर में आसक्त हो गए हैं; जो दीवालों से प्रेम कर रहे हैं; जो ईंटों को छाती से लगाए बैठे हैं। और दूसरे--जो दीवालों से विरक्त हो गए हैं, जो दीवालों से डर कर भाग गए हैं; जो ईंटों से अपने को मुक्त करने में लगे हैं। दोनों एक से पागल हैं, कुछ फर्क नहीं है। दोनों का उलझाव ईंटों से है। मालिक को न पहले ने देखा है, न दूसरे ने देखा है। जो मालिक को देख लेगा, वह तो फिर इन ईंटों को भी स्वीकार कर लेगा। आखिर यह उस मालिक का ही भवन है! फिर तो इस भवन की ईंट-ईंट भी प्यारी लगेगी। आसक्ति तो नहीं, न विरक्ति; क्योंकि मालिक ने जिसे रहने को चुना है वह जगह भी तो पवित्र हो गई!
मूसा के जीवन में यह उल्लेख है कि मूसा जब पर्वत पर परमात्मा के दर्शन करने को गए, तो उन्होंने अदभुत दृश्य देखा। एक हरी झाड़ी--रही होगी गुलाब की झाड़ी, गुलाब की ही होनी चाहिए--जिसमें फूल खिले थे। और हरी थी, लेकिन उसके भीतर से लपट उठ रही थी आग की। लेकिन लपट अदभुत थी! आग बड़ी रहस्यपूर्ण थी! झाड़ी जल नहीं रही थी। जलना तो दूर, पत्ते कुम्हला भी नहीं रहे थे। फूल ताजे के ताजे थे, नाच रहे थे लपटों में। आग की लपटों ने फूलों को और रंग दे दिया था; पत्तों की हरियाली को और चमक दे दी थी, एक आभा दे दी थी। मूसा तो थोड़े घबड़ाए थी, थोड़े डरे भी, लेकिन एक अदम्य आकर्षण से खिंचे हुए उस झाड़ी की तरफ बढ़े। झाड़ी से एक आवाज आई, जैसे लपट बोली, जैसे आग बोलीः मूसा, जूते उतार दो क्योंकि तुम पवित्र भूमि पर हो! जहां भी मैं हूं वह भूमि पवित्र है। तत्क्षण मूसा ने जूते उतार दिए और जब वे पास गए झाड़ी के तो उन्होंने देखा, वह आग की लपट परमात्मा थी, परमात्मा का स्वरूप थी। आग तो थी, मगर ठंडी थी, शीतल थी।
परमात्मा शीतल आग है। उसमें फूल और खिल जाते हैं, जलते नहीं। लेकिन जो वचन उन्होंने सुने उस आग से--मूसा, जूते उतार दो, क्योंकि तुम पवित्र भूमि पर हो। जहां भी मैं हूं वह भूमि पवित्र है। लेकिन परमात्मा कहां नहीं है? परमात्मा सब जगह है। सब झाड़ियों में वही है। तुम्हें दिखाई पड़े, न दिखाई पड़े--यह और बात है; यह तुम्हारी आंख की बात है। मैंने तो उसे हर झाड़ी में देखा है। मैंने तुम में उसे देखा है। मैं तुममें उसे देख रहा हूं। मैं झाड़ी-झाड़ी में उसे देख रहा हूं। हर फूल में उसकी लपट है। जीवन उसकी लपट है। और कैसी ठंडी लपट है--आग है, और जलाती नहीं! आग है और जिलाती है, जलाना तो दूर। यह सारी पृथ्वी, यह सारा जीवन पवित्र है, तीर्थ है। न जाओ काबा, न जाओ काशी, न जाओ कैलाश। तुम जहां हो वहीं इस परमात्मा की उपस्थिति को अनुभव करो। वही काबा है, वही काशी है, वही कैलाश। जहां भी कोई व्यक्ति शांत, मौन, आनंदमग्न हो, रंजन, उत्सव में लीन हो जाता है--वहीं तीर्थ निर्मित हो जाते हैं।
नाचना मेरे पास होने के उपायों में एक है, उत्सव मेरे निकट आने की विधि है। यह तो मधुशाला है, मयखाना है मयकदा है।
पहली घटना घट रही है अभी तेरे जीवन मेंः संसार व्यर्थ मालूम पड़ता है।
यह स्वाभाविक है। पहली दफा जब सार्थक दिखाई पड़ेगा तो व्यर्थ दिखाई पड़ेगा।
पर जल्दी ही यह भी दिखाई पड़ेगा, दूसरे कदम में, कि वह जो सार्थक है वह व्यर्थ को ही तो अपने चारों तरफ बसाए हुए है। उसमें भी कारण है, राज है।
व्यर्थ के बिना सार्थक नहीं हो सकता। तब संसार भी सम्मान के योग्य हो जाता है। तब न आसक्ति, न विरक्ति। जहां परमात्मा का वास है, वह प्रत्येक वस्तु पवित्र है।
फिर, अभी तू कहती हैः "संबंध बनाने का मन नहीं होता।"

स्वभावतः, संबंध यानी संसार--मित्रता बनाओ, प्रीति बनाओ, प्रेम करो।
यह सब संसार का निर्माण होता है। स्वभावतः देख कर की संसार में कुछ मिलने को नहीं है, क्या प्रीति बनाओ, क्या संबंध बनाओ! रंजन सब संबंध, प्रीति, परिवार छोड़ कर यहां आ गई है। पति तो अमरीका में हैं। प्रतिष्ठित हैं, ठीक अच्छे व्यवसाय में हैं। रंजन यहां आई सो आई, गई नहीं फिर लौट कर। जैसे फिर उसे याद ही नहीं आई परिवार की। पति ने बहुत प्रतीक्षा की कि क्या हुआ पत्नी को! साल भर प्रतीक्षा करने के बाद बेचारे स्वयं आए--देखने कि मामला क्या है। और यहां आए तो, भले आदमी हैं, आए तो डूब गए, आए तो संन्यस्त हो गए। आए तो अब गए हैं वहां सब काम निबटा कर समाप्त करके चले आने को। प्यारे आदमी हैं।
लेकिन रंजन को दिखाई पड़ गया कि कुछ सार नहीं है। बने-बनाए संबंध थे जब उनमें सार नहीं दिखाई पड़ा, तो अब नये संबंध बनाने में क्या सार दिखाई पड़ेगा! लेकिन जब उत्सव पैदा होगा जीवन में, आनंद पैदा होगा, तो एक नये तरह के संबंध बनने शुरू होते हैं। वे बिल्कुल ही गुणात्मक रूप से भिन्न होते हैं। उनको संबंध कहना ठीक नहीं है, क्योंकि संबंध से भ्रांति हो सकती है। वे संबंध नहीं होते। तब आदमी प्रेम को बांटता है। तब प्रेम बंधन नहीं बनता। तब प्रेम मुक्तिदायी होता है। तब आदमी बांटता हैः इतना है भीतर कि करेगा क्या! इतना उठता है भीतर कि करेगा क्या! फूल खिलेंगे ही, गीत जगेंगे ही। उनको बांटना ही पड़ेगा। और जो भी अपनी झोली फैला कर उनको प्रीति से ले लेगा, उसका धन्यवाद भी मानना पड़ेगा।
प्रेम की दो स्थितियां हैंः एक तो संबंध, संबंध से संसार बनता है; और फिर एक प्रेम की और भी स्थिति है, वह है आत्मदशा, संबंध नहीं। व्यक्ति प्रेमपूर्ण हो जाता है। फिर जिससे भी जुड़ता है, बैठता है, जिसके पास भी, वृक्ष के पास कि चट्टान के पास, उसके प्रति उसके भीतर से प्रेम विकीर्णित होता रहता है। जैसे फूल से गंध उड़ती रहती है और दीये से किरणें झरती रहती हैं, ऐसे प्रेमपूर्ण व्यक्ति से प्रेम बहता रहता है; संबंध नहीं बनते। मेरे तुमसे क्या संबंध हैं? लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरा तुमसे कोई प्रेम नहीं है। मेरा ही तुमसे प्रेम है। बुद्धों ने ही प्रेम किया है, और दूसरे तो प्रेम क्या करेंगे! और दूसरों के पास तो प्रेम है ही क्या देने को! वे तो भिखारी हैं; खुद ही मांगने बैठे हैं, देंगे क्या? वे तो झोली फैलाए बैठे हैं कि कोई दे दो। और जहां झोली फैलाते हैं वहीं कहा जाता हैः आगे बढ़ो! क्योंकि जिनके सामने झोली फैलाते हैं वे खुद भी भिखमंगे हैं। सारी दुनिया भिखमंगों से भरी है।
रंजन, जल्दी ही सम्राट पैदा होगा। ये पहली-पहली किरणें हैं। यह सुबह
का पहला-पहला आगमन है। अभी लगेगी विरक्ति सी संबंधों में। ठीक लग रहा है। मगर उत्सव पैदा हो रहा है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण बात है। उत्सव पैदा हुआ तो संबंध तो विदा हो जाएंगे और प्रेम रह जाएगा। संबंध-मुक्त प्रेम। संबंध को अतिक्रमण करने वाला प्रेम। तेरी एक आत्म-दशा। तेरे भीतर अहर्निश बजने वाला एक नाद। फिर जो तेरे पास बैठेगा, सुनेगा; जैसे कि नदी का कलकल नाद! नदी कोई बैठे पास तो भी नाचती रहती है, गाती रहती है; कोई न बैठे पास, तो भी नाचती रहती है, गाती रहती है। इसको ही मैं कहता हूं जीवन को कविता की तरह जीना। मेरा संदेश यही है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! जब मैंने चिन्मय से स्त्रियों के प्रति आपके आदर
और प्रेम की चर्चा की, तो उसने कहा कि स्त्रियों को आदर और प्रेम और सम्मान देने के लिए केवल कोई बुद्धपुरुष ही चाहिए।

शीला! चिन्मय भी बेचारा ठीक ही कहता है। स्त्रियों को ही सम्मान देने
के लिए और प्रेम देने के लिए बुद्धपुरुष नहीं चाहिए; वह आधी बात है। चिन्मय को दूसरी बात भी कह देना। पुरुषों को भी प्रेम देने के लिए और सम्मान देने के लिए कोई बुद्धपुरुष ही चाहिए। प्रेम ही कोई बुद्धपुरुष दे सकता है, या कोई बुद्धत्व को उपलब्ध स्त्री। प्रेम होगा तो ही तो दे सकोगे न!

वायदे तो सब करते हैं, मगर वायदे पूरे कहां होते हैं, कैसे हो सकते हैं? स्वर्ग कौन नहीं बनाना चाहता! सभी आशा से भरे हुए चलते हैं कि स्वर्ग बनाएंगे, मगर बनता नरक है। असली सवाल यह नहीं है कि तुमने क्या चाहा थाः असली सवाल यह है कि अंततः परिणाम क्या हुआ? फलों से वृक्ष जाने जाते हैं। तुम्हारे जीवन का अंतिम परिणाम क्या होता है? उससे ही तो पता चलता है, तुम किस आशा से चले थे। तुम्हारी आशाओं का क्या मूल्य है? आशाएं तो सभी सुंदर करते हैं।
कहावत है कि नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से भरा पड़ा है, पटा पड़ा है। नरक का रास्ता बना ही शुभाकांक्षाओं से है। जैसे पत्थरों से रास्ता बनाया जाता है, ऐसे ही शुभाकांक्षाओं से नरक का रास्ता बना है। उन्हीं पर चल-चल कर लोग नरक तक पहुंच जाते हैं।
एक टैक्सी वाले ने टैक्सी रोक कर राहगीर से पूछाः कहां चलिएगा?
राहगीर कुछ भन्नाया हुआ था। घर से झगड़ कर आ रहा था। पत्नी से झड़प हो गई थी। अभी किसी से कुछ बात भी करने की इच्छा नहीं थी। और यह दुष्ट टैक्सी रोक कर पूछता है कहां चलिएगा! तो राहगीर ने गुस्से में कहाः जहन्नुम!
टैक्सी वाला बोलाः तो फिर ऐसा करो भैया, शादी कर लो! टैक्सी वहां तक नहीं जाती। टैक्सी की एक सीमा है। अगर जहन्नुम जाना है तो शादी ही ले जा सकती है।
चिन्मय भी बेचारा ठीक कहता है कि स्त्रियों को प्रेम और सम्मान देने
के लिए कोई बुद्धपुरुष ही चाहिए। मगर शीला, तू भी चिन्मय को कहना कि पुरुषों को सम्मान देने के लिए भी कोई बुद्ध स्त्री चाहिए। नहीं तो पुरुषों को कैसे सम्मान दो? मैं तो किसी स्त्री में अपने पति के प्रति सम्मान का भाव नहीं देखता। हो भी तो कैसे हो? और न मैं किन्हीं पतियों में उनकी पत्नियों के प्रति सम्मान का भाव देखता हूं। हां, दिखावा करते हैं। हर तरह से दिखावा करते हैं।
एक मित्र ने पत्र लिखा है, साथ में प्रार्थना की है कि उनका नाम न बताऊं। लिखा हैः ओशो, विगत कुछ दिवसों से प्रतिदिन प्रातः प्रवचन में निरंतर आपके द्वारा विवाह जैसे पवित्र, धार्मिक तथा सुखदायी संबंध पर की जाने वाली विषैले व्यंग्य बाणों की घनघोर वर्षा से मुझ विवाहित का हृदय छलनी होकर आक्रोश व प्रतिशोध की ज्वालाओं में जल-भुन रहा है। यदि आपने शीघ्रातिशीघ्र शादी का मजाक उड़ना बंद नहीं किया तो आपके चेतावनी दिए देता हूं कि इसका परिणाम ठीक नहीं होगा। यह धमकी नहीं, सौ प्रतिशत सत्य एक पूर्व-घोषणा है कि अगर आपने आगे से अब पति-पत्नी का कोई भी लतीफा सुना कर मेरी सामाजिक व दांपत्य भावनाओं पर प्रहार किया... वह दुष्ट अभी-अभी बाहर चली गई है... तो मैं सह न सकूंगा और भावावेश में आकर अपनी बीवी को तलाक दे बैठूंगा और फिर जो होना हो सो हो। फिर फिकर नहीं है। आपका आशीर्वाद तो सदा साथ है ही! प्रवचन में मेरा नाम न ले देना ओशो, इतनी कृपा रखना। थोड़ा लिखा ज्यादा समझना। वह फिर वापस आ रही है। अतः अब बंद करता हूं।

पांचवा प्रश्नः ओशो! लगता है आप बचपन में बहुत उपद्रवी रहे होंगे। इतने उपद्रव, तौबा!

रंजन भारती! तू सोचती है मैं अभी भी बदल गया हूं? मुझे तो कुछ भेद दिखाई पड़ता नहीं।
वह झेन-कथा तो मैंने बहुत बार तुमसे कही है, आज फिर कहता हूं। एक आदमी झेन सदगुरु रिंझाई से मिलने गया था। उसने रिंझाई से पूछा कि आप जब ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए थे, बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुए थे, तो क्या करते थे? रिंझाई ने कहाः कुएं से पानी भर कर लाता था, लकड़ियां जंगल से काटता था। भूख लगती थी तब खाना खाता था। नींद आती थी तब सो जाता था।
उस आदमी ने कहा कि ठीक, फिर जब आप बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, उसके बाद आप क्या करते हैं? उसने कहाः कुएं से पानी भर कर लाता हूं, जंगल से लकड़ी काटता हूं। जब भूख लगती है खाना खाता हूं। जब नींद आती है तब सो जाता हूं।
उस आदमी ने कहाः यह तो बड़ी हैरानी की बात हुई? इन दोनों में भेद क्या?

रिंझाई ने कहाः वही तो मैं सोचता हूं कि भेद क्या! इतना ही भेद है कि
तब जो हो रहा था, सब नींद में था; अब सब जाग कर है।
यूं बाहर से तो सब वही का वही है। बचपन में भी जो उपद्रव मैं कर रहा था,
वे उपद्रव नहीं थे; आज जो कर रहा हूं, उसकी पूर्व-भूमिका थी। नींद में टटोलना था। अब जो कर रहा हूं वह रोशनी में कर रहा हूं, मगर वही कर रहा हूं। स्वभावतः अब विस्तार बड़ा हुआ है। जो भी कर रहा हूं, परिपूर्ण रूप से सजग हूं। लेकिन आज जब लौट कर देखता हूं तो ऐसा मुझे नहीं लगता कि बचपन में भी मैंने कोई उपद्रव किए। आज तो लौट कर देखता हूं तो मुझे उनमें भी एक अंधेरे में टटोलती हुई अन्वेषक की दृष्टि ही मालूम पड़ती है। आज लौट कर देखता हूं तो जरूर अस्त-व्यस्त था उपक्रम, अराजक था; लेकिन तलाश ठीक दिशा में ही चल रही थी।
जैसे उदाहरण के लिए तुझे कहूंः हाई स्कूल के दिनों में मुझे सबसे बड़ी तकलीफ टोपी से रही। टोपी लगाना मुझे कभी रास न आया। यूं टोपी से मुझे कुछ दुश्मनी न थी। ऐसे तरह-तरह की टोपियों से मुझे लगाव है। मेरे पास करीब-करीब दुनिया भर से टोपियां आती हैं, मित्र ले आते हैं, क्योंकि उनको पता है कि मुझे टोपियां पसंद हैं। तब भी पसंद थीं। मगर एक कारण से मुझ अड़चन थी कि स्कूल में टोपी जबरदस्ती लगवाई जाती थी। टोपी लगानी ही पड़ेगी, बस वहां मेरा विरोध था। स्वभावतः मेरे अध्यापक, मेरे प्रधान अध्यापक, मेरे परिवार के लोग, मेरे गांव के लोग समझतेः यह उपद्रव है। और कोई भी कहेगा उपद्रव है। मैंने लेकिन बहुत सहा उसके लिए, मगर टोपी नहीं लगाई तो नहीं लगाई। कितने दिनों कक्षाओं के बाहर ही खड़ा रखा गया। कितने बार कहा कि जाओ स्कूल के सात चक्कर लगा आओ। मैं सात चक्कर की जगह सत्रह चक्कर लगा आया। शिक्षक सिर पीट लेते कि हमने तुम से सात कहे, तुमने सत्रह क्यों लगाए?
मैंने उनसे कहा कि व्यायाम करने में कोई हर्ज नहीं है। और बाहर रहना मुझे ऐसे भी पसंद है। शुद्ध हवा भी मिलती है, पशु-पक्षियों, पौधों से भी दोस्ती बनती है और भीतर तुम जो हजार तरह की व्यर्थ की बकवास करते हो उससे भी बचना हो जाता है।
सो अंततः उन्होंने मुझे भीतर बिठालना शुरू कर लिया--ऐसे आदमी को बाहर बिठालने से क्या फायदा! मुझे सजा में डंड-बैठक लगाने को कहते थे, तो मैं लगाए ही चला जाऊं। वे कहेंः अब रुको भी!
मैंने कहा कि जरा और लगा लेने दें, आज सुबह मैंने व्यायाम किया ही नहीं।
वे कहते कि तुम आदमी कैसे हो! तुम्हें इस बात की भी समझ नहीं है कि हम दंड दे रहे हैं!
तुम दे रहे होओगे दंड, मगर हम दंड लें तब! हम तो हर चीज से जो भी लाभ ले सकते हैं लेते हैं। टोपी नहीं लगाएंगे--जब तक कि सिद्ध न कर दो कि टोपी लगाने की वैज्ञानिकता क्या है। इससे बुद्धि बढ़ेगी? अगर बुद्धि बढ़ती हो तो टोपी क्यों लगाएं, फिर सरदारों जैसा साफा क्यों न बांधें? अगर बुद्धि ही बढ़ती हो तो फिर साफे से तो और भी बढ़नी चाहिए। तो फिर सरदारों के पास जैसी बुद्धि होनी चाहिए, किसी के पास होनी ही नहीं चाहिए। तो टोपी क्यों, साफा बांध कर आएंगे।
मेरे प्रधान अध्यापक अपने सिर से हाथ लगा कर बैठ जाते थे। कहते: कौन तुमसे बकवास करे! या तो साफा बांधोगे या टोपी भी न लगाओगे!
मैंने कहा कि मैं सीधा-सीधा विचारपूर्वक उत्तर चाहता हूं। अगर बुद्धि बढ़ती हो तो फिर साफे से ज्यादा बढ़ेगी और जितना लंबा साफा होगा उतनी ज्यादा बढ़ेगी। तो सरदार तो गजब कर देते। फिर तो सरदारों के संबंध में सब जो मजाक हैं वे गलत हैं।
स्कूल में सिर्फ बंगालियों को आज्ञा थी कि वे टोपी चाहें तो लगाएं चाहें न लगाएं, क्योंकि बंगाली टोपी लगाना पसंद नहीं करते। और मैं उनसे कहता कि तुम देखते हो कि इस देश में बंगालियों के पास जितनी बुद्धि होती है उतनी सरदारों के पास तो नहीं होती। जरूर टोपी न लगाने से बुद्धि को कुछ खुलापन मिलता है, खिड़कियां खुलती हैं।
वे कहतेः क्या बकवास लगा रखी है?

मैंने कहाः फिर आखिर बंगालियों के पास बुद्धि कैसे है? और सरदार जो कस
कर बांध हुए हैं साफा, उसका परिणाम स्वभावतः यह होता है कि लड़ने-झगड़ने को तत्पर... । साफा इतना बंधा हुआ है कि वे तैयार ही बैठे हुए हैं कि आ जा, हो जाए दो हाथ, कि कुछ तो राहत मिले। वाहे गुरुजी की फतह, वाहे गुरुजी का खालसा! हो जाने दो। साफा बंधवाया ही इसीलिए था कि उनका तत्क्षण हाथ कृपाण पर चला जाए।
मैंने कहाः मुझे कोई कृपाण चलानी नहीं है, टोपी मैं लगाऊं क्यों? कोई कारण मेरे सामने साफ कर दो।
कारण वे मुझको समझा नहीं पाए, सजा मुझको जितनी दे सकते थे दिए। मैंने कहाः सजा मैं झेलूंगा, लेकिन कारण जब तक नहीं बताओगे तब तक तुमको भी सजा देने की अंतःकरण में पीड़ा रहेगी।
और उन सबको पीड़ा थी, क्योंकि वे अकारण सजा दे रहे हैं। फिजूल की बात है--टोपी। मगर यह भी जिद्दी है। और एक को अगर आज्ञा दे कि टोपी मत लगाओ तो सब गड़बड़ खड़ी हो जाए। और जो टोपी के संबंध में मेरा हिसाब था, वही मेरा हर चीज के संबंध में हिसाब था। कवायद करना--क्यों घूमें बाएं, क्यों घूमें दाएं? क्या फायदा बाएं-दाएं घूमने से?
मुझे रोज करीब प्रधान अध्यापक के कमरे में जाना पड़ता था--बेंत खाने के लिए। मैं अभ्यस्त हो गया था। वे भी अभ्यस्त हो गए गए। पहले-पहले तो पूछते थे कि क्या किया इसने, फिर आज क्या किया? फिर धीरे-धीरे उन्होंने सोचा पूछने से सार क्या, यह कुछ न कुछ रोज करता ही है। तो मैं पहुंचूं, मैं हाथ आगे करूं, वे बेंत मारें, मैं विदा। एक दिन यूं हुआ, संयोग से हुआ कि जो विद्यार्थी कक्षा में सबसे ज्यादा तगड़ा था, जिस पर कक्षा के शिक्षक को भरोसा था कि मुझे ले जा सकेगा प्रधान अध्यापक के कमरे तक, जो मुझे हमेशा ले जाता था, उसने कुछ गड़बड़ की। और शिक्षक ने कहा कि अच्छा, आज अच्छा मौका है! मुझसे कहा कि आज तुम इसे ले जाओ। यह रोज तुम्हें ले जाता है, तुम इसे आज ले जाओ।
मैं भी बड़ा खुश। उसको लेकर पहुंचा। मैं अंदर पहुंचा कि उन्होंने उठाया बेंत और बस मेरे हाथ पर बेंत जड़ दिया। मैंने उनसे कहा कि आज आपको माफी मांगनी पड़ेगी। उन्होंने कहाः क्यों?
मैंने कहा कि आज मैं इसको लाया हुआ हूं, मैं नहीं आया हुआ हूं। बेंत मुझे दो आप। आज बेंत मैं आपको मारूंगा। कम से कम पूछा तो होता, इतना शिष्टाचार तो होना ही चाहिए कि कौन किसको लाया है!
मैंने कहाः मैं यहां से हटूंगा नहीं, वह बेंत आप मुझे दे दो। धीरे से मारूंगा, हालांकि तुमने मरे साथ कभी कोई रियायत नहीं की है।
वे प्रिंसिपल मुझे बाद में भी मिल जाते थे तो वे कहते थेः याद है कि तूने मुझे बेंत मारा था? किसी ने मेरी जिंदगी में मुझे बेंत नहीं मारा। विद्यार्थी और अध्यापक को बेंत मारे! मगर मुझे भी बात तो जंची कि तू ठीक तो कह रहा है कि मुझे कम से कम पूछ तो लेना चाहिए। मैंने पूछना ही बंद कर दिया था। यह बात इतनी तय हो गई थी कि तुझे रोज आना है, मुझे रोज मारना है; फायदा क्या है पूछने से कि कसूर क्या है, होगा ही कुछ न कुछ कसूर।
टोपी लेकिन मैंने नहीं लगाई। ऐसे कभी-कभी स्कूल के बाहर मैं टोपी लगा
कर निकलता था। एक दिन हेड मास्टर मुझे रास्ते पर मिल गए। टोपी लगाए चला जा रहा था। उन्होंने कहाः सुनो! यह टोपी क्यों लगाए हुए हो?
मैंने कहाः मैं अपना मालिक हूं। जहां लगाना है वहां लगाएंगे और जहां नहीं लगाना है वहां नहीं लगाऐंगे। इधर कोई हमसे लगवा नहीं रहा, खुद लगाए हुए हैं।
आज लगता है कि उपद्रव था, लेकिन मैं जानता हूं कि उपद्रव नहीं था। मैं अपनी निजता की तलाश में था। वही खोज बढ़ती रही। उस खोज में कोई फर्क नहीं आया। किसी को परेशान करने के लिए भी मैं नहीं कर रहा था। मैं सिर्फ यह देखना चाहता था कि जिस समाज में पैदा होना पड़ा है, वह समाज कितनी स्वतंत्रता देता है, कितनी बुद्धिमत्ता देता है, कितने बुद्धि को विकास के अवसर देता है? मगर नहीं, यह समाज मारता है बुद्धि को, मिटाता है बुद्धि को, नष्ट करता है बुद्धि को।

जब मैं स्नातक हुआ और एम. ए. में प्रथम श्रेणी में प्रथम आया, तो मेरे अध्यापक, मेरे प्रोफेसर, मेरे विभागाध्यक्ष, मेरे वाइस चांसलर सब बड़े गौरवान्वित थे। फिर जब दीक्षांत समारोह हुआ तो स्वभावतः मैं प्रथम खड़ा किया गया था। वह मौका मैंने नहीं छोड़ा। मैंने खड़े होकर कहा कि मैं कुछ बातें पूछना चाहता हूं--इसके पहले कि आप आशीर्वाद दें, क्योंकि अब मैं विदा हो रहा हूं, यह आखिरी दिन है मेरा इस विश्वविद्यालय में--यह काला चोगा मुझे क्यों पहनाया गया है? और ये आप सब डीन और चांसलर और वाइस चांसलर और मेहमान जो बुला गए हैं और जिनको डी.लिट्. दी जाने वाली है, ये सब काले चोगे क्यों पहने हुए हैं? क्योंकि यह काला रंग तो मातम का रंग है। क्या आप समझ रहे हैं हम लोग मर गए?
वे बहुत चौंके। एक क्षण को सन्नाटा छा गया पूरे दीक्षांत भवन में, कि उपद्रव इसने कुछ किया। उनको लगा ही होगा कि यह उपद्रव है। लेकिन मैं कोई उपद्रव नहीं कर रहा, मैं सिर्फ यह पूछ रहा था कि काला रंग तो हमेशा लोग मातम के समय पहनते हैं। यह उत्सव मनाया जा रहा है कि मातम मनाया जा रहा है, यह मैं जानना चाहता हूं। ये काले कपड़े, यह काला रंग, यह तो मौत का लक्षण है। आज के दिन तो कम से कम हमारे साथ शिष्टता का व्यवहार किया होता। और ये सब भूत-प्रेत बन कर तुम खड़े हुए हो, शर्म नहीं आती? क्या तुम आशीर्वाद दोगे! तुम मर गए, अब तुम घोषणा हमारी कर रहे हो कि हम भी मर गए! मैं जिंदा हूं!
और मैंने वह चोगा निकाल कर फेंक दिया और वह टोपी निकाल कर फेंक दी। मुझे जल्दी से भवन के बाहर ले जाया गया कि आओ बाहर चलो! तुम बाहर आओ, फिर पीछे बात करेंगे। उत्तर तुम्हें बाद में दिया जाएगा।
मैं बाद में रोज वाइस चांसलर के घर पहुंचता था कि उत्तर? वे कहते: क्या उतर दें तुम्हें! यूं तुम बात ठीक भी कह रहे हो। मानते हैं भई कि तुम बात ठीक कर रहे हो। मगर ऐसे वक्त पर तो उपद्रव खड़ा नहीं करना था। सबके सामने फजीहत करवा दी। हमारे पास कोई उत्तर नहीं है; बात तो ठीक है कि काला रंग मातमी रंग है। सारी दुनिया में मातमी रंग है।
काला रंग भूत-प्रेतों का रंग है, यमदूतों का रंग है। यमदूत भी बिल्कुल काले और काले भैंसे पर बैठ कर आते हैं। तो ये तुम क्या रंग बना रखे हो, मैंने कहा। मगर मैं समझता हूं इसका अर्थ। इसके भीतर, चाहे तुम्हें पता हो या न हो, इस बात की सूचना है कि विश्वविद्यालय इतने लोगों को मारने में, हत्या करने में सफल हो गया, इनकी जिंदगी खराब करने में सफल हो गया, इनकी बुद्धि मटियामेट कर डाली गई। मैं घोषणा करना चाहता हूं कि मैं मरा नहीं हूं, मैं अभी जिंदा हूं और मैं जिंदा रहूंगा! और मैं यह तुम्हारा काला चोगा डाले जाता हूं इस घोषणा की तरह।
वह तो यह उपद्रव ही समझा जाएगा, स्वभावतः। लेकिन उपद्रव यह था नहीं।
यह सब नकलपट्टी है। चूंकि पश्चिम में चलता है काला चोगा, भारत में भी चलता है काला चोगा। न पश्चिम के पास कोई दलील है, न भारत के पास कोई दलील है। यह काला चोगा किसलिए? अगर दीक्षांत समारोह में कोई रंग ही पहनाने का हो तो शुभ्र सफेद होना चाहिए, क्योंकि सफेद सारे रंगों का प्रतीक है। सफेद रंग का अर्थ होता हैः सारे रंगों का जोड़, इंद्रधनुष। अगर सारे रंगों को हम इकट्ठा मिलाएं तो सफेद रंग बनता है।
सफेद रंग जीवन का प्रतीक है और सफेद रंग निर्दोषता का भी प्रतीक है, बुद्धिमत्ता का भी प्रतीक है। सफेद रंग सरलता का भी प्रतीक है, स्वच्छता का भी प्रतीक है। काला रंग तो गंदगी का प्रतीक है--मौत का, मातम का। इसको क्यों लादे हुए हो सिर पर?
मैं सिर्फ जवाब चाहता था, लेकिन स्वभावतः समझा गया कि यह उपद्रव है।
यह उपद्रव नहीं था। आज भी मैं कहता हूं कि यह उपद्रव नहीं था; कहीं किसी को परेशान करने की कोई आकांक्षा नहीं थी। कभी जीवन में वैसी आकांक्षा नहीं रही। लेकिन स्वभावतः मैं उनकी भी स्थिति समझ सकता हूं, जो पदों पर बैठे हैं, प्रतिष्ठित हैं। उनको लगेगा कि मैं परेशान कर रहा हूं, मैं हैरान कर रहा हूं।
रंजन, तू पूछती है कि आप बचपन में बहुत उपद्रवी रहे होंगे। हां, औरों
की तरफ से उपद्रव कहा जा सकता है; मेरी तरफ से कभी उपद्रव मैंने किया नहीं।

और जो मैं तब करता था, वही मैं अब भी कर रहा हूं। सिर्फ उसका आयाम गहरा हुआ है, उसका विस्तार हुआ है। उस बात में और बल आया है। वही बगावत आज भी सिखा रहूं। वही जीवन आज भी सिखा रहा हूं। वही अन्वेषण सत्य का, वही खोज आज भी हजारों लोगों के हृदय में जलाने की चेष्टा में संलग्न हूं।
संन्यास मेरे लिए विद्रोह है, बगावत है। संन्यास मेरे लिए अन्वेषण है, आज्ञाकारिता नहीं। संन्यास सबसे बड़ी क्रांति है इस पृथ्वी पर। मगर क्रांति तो उपद्रव मालूम होगी न्यस्त स्वार्थों को।
मैं जो बचपन से करता रहा हूं वह भी क्रांति ही थी, यद्यपि एक बच्चे के द्वारा की गई क्रांति थी। तो इतना तो मानना ही होगा कि वह अंधेरे में टटोलने जैसी क्रांति थी। वे कदम स्पष्ट नहीं थे। स्पष्ट हो नहीं सकते थे। मगर धीरे-धीरे स्पष्ट होते चले गए।
मुझे न मालूम कितने विश्वविद्यालय और कालेजों से निकाला गया--सिर्फ इसीलिए कि मैं अध्यापकों में बेचैनी पैदा कर रहा था। मैं किसी को बेचैन नहीं करना चाहता था। मैं सिर्फ चैन की तलाश में था। मैं चाहता था कि जीवन के जो प्रश्न हैं उनके उत्तर मिलने चाहिए। आखिर विश्वविद्यालय किसलिए हैं? तुम्हारी बुद्धिमत्ता पर जंग मार देने को? तुम्हारी बुद्धिमत्ता की धार को खत्म करने को, बोथला कर देने को या तुम्हारी बुद्धिमत्ता को धार देने को? अगर धार देने को हैं तो मैं जो कर रहा था वह उपद्रव नहीं था। वही होना चाहिए। और अगर तुम्हारी तलवार की धार को मारने को यह सब उपाय चल रहा है, तो स्वभावतः उपद्रव था। लेकिन तब मैं मानता हूं कि वह उपद्रव आदरणीय है, सम्मान-योग्य है।
मैंने कभी भी एक क्षण को भी ऐसा कोई काम नहीं किया जीवन में, जिसके लिए मैं पछताया होऊं। आज भी कोई पछतावा नहीं मुझे किसी बात का। जो मैंने किया, जैसा मैंने किया, वह मैंने, उस समय जितनी मुझमें सूझ-बूझ थी उसके अनुसार ही किया है। उसमें जरा भी मुझे पछतावा नहीं है। उससे ज्यादा सूझ-बूझ उस समय थी भी नहीं, इसलिए उससे ज्यादा कुछ कर भी नहीं सकता था। मगर कभी अपनी सूझ-बुझ के विपरीत नहीं गया। कभी अंधानुकरण नहीं किया। और उस सबका ही यह फल है कि आज जो मैं हूं, हूं; जैसा हूं वैसा हूं। उस सबने मेरे जीवन को एक बल दिया है, एक केंद्र दिया है, जड़ें दी हैं।
मेरी आस्तिकता थोथी नहीं है। मेरी आस्तिकता नास्तिकता की आग से गुजरी है। मेरे उत्तर किताबी नहीं हैं, शास्त्रीय नहीं हैं। मैंने खुद पूछे हैं वर्षों तक। मैंने खुद खोजा है, सब तरफ से परखा और जांचा है। और उस परख और जांचने में जो भी मुझे सहना पड़ा है, उसे सहने में मैंने कभी कोई किसी तरह का समझौता नहीं किया, सदा सहने को राजी रहा हूं। किसी विश्वविद्यालय से मुझे निकाल दिया गया तो मैंने कोई समझौता नहीं किया। मैं चुपचाप निकल गया हूं। शान से निकल गया हूं। गौरव से निकल गया हूं। जिन्होंने मुझे निकाला है उनके भीतर अपराध भाव रहा। उन्होंने मुझसे कहा कि हमें दुख है कि हमें तुम्हें विश्वविद्यालय से अलग करना पड़ रहा है, क्योंकि इतनी शिकायतें हैं कि हम क्या करें! और हम जानते हैं कि शायद तुम जो कहते हो ठीक ही कहते हो, कि विश्वविद्यालय में तो प्रतिभा पर निखार रखने की चेष्टा होनी चाहिए। मगर हम क्या करें, संस्था चलानी है।
मैंने कहाः तुम संस्था चलाओ। मुझे समझौता नहीं करना है। मैं शान से विदा हो रहा हूं। मैं गौरवान्वित हूं कि तुमने मुझे निकाला।
जब मेरी बात लाखों-हजारों लोगों को प्रीतिकर लगने लगीं और जब लाखों लोग उत्सुक होकर मेरी बात सुनने लगे और मेरे अध्यापक, मेरे वाइस-चांसलर, पुराने मेरे शिक्षक मुझे मिल जाते थे कभी तो वे कहते थेः हमने कभी सोचा भी न था। हम कभी मान भी न सकते थे कि तुम जैसा व्यक्ति धार्मिक हो सकता है! मैंने कहाः मैं उस दिन भी धार्मिक था। वह बीज था, आज फूल खिले हैं। न तुम उस दिन धार्मिक थे, न आज तुम धार्मिक हो। तुममें बल ही नहीं है। तुम निर्वीर्य हो।
मैं अध्यापक हुआ एक विश्वविद्यालय में। वहां के कुलपति थेः पंडित कुंजीलाल दुबे। न तो बुद्धिमत्ता थी कुलपति होने की, न शिक्षण था ऐसा उनका। राजनीतिज्ञ थे--होशियार राजनीतिज्ञ थे। सारा प्रदेश उनको पंडित

चाबी लालदुबे कहता था। कुंजी लाल दुबे तो उनका नाम था, मगर लोग कहते थे चाबीलाल दुबे। क्योंकि उनके हाथ में बड़े-बड़े नेताओं की चाबी थी। वे खुशामद में बड़े कुशल थे। वे किसी का भी ताला खोल लेते थे। और खुशामद के बल वे चढ़ते-चढ़ते... वकालत उनकी चली नहीं। वकील की भी योग्यता नहीं थी उनमें, वकालत चली नहीं, कभी कोई मुकदमा जीते नहीं। धीरे-धीरे कोई उनके पास आता भी नहीं था मुकदमा लड़ने के लिए, लड़वाने के लिए। फिर वे राजनीति में घुस गए और वहां उन्होंने अच्छी सफलता पाई। वे मध्यप्रदेश में विधान-सभा के अध्यक्ष हो गए। फिर उपकुलपति हो गए विश्वविद्यालय के। न उनकी योग्यता थी, न कोई क्षमता थी।
एक सभा में उनके साथ बोल रहा था। वे मुझसे पहले बोले, मैं उनके पीछे बोला। मैंने कहा कि अभी आपने पंडित चाबीलाल दुबे को सुना। एकदम सन्नाटा फैल गया, लोग घबड़ा गए। मैंने कहाः घबड़ाएं मत, भूल से सच्ची बात मेरे मुंह से निकल गई। चाबीलाल तो बहुत नाराज हो गए। वे उठ कर जाने लगे। मैंने कहा बैठिए! उठ कर कहीं जाना नहीं। मैं जो कह रहा हूं, इस प्रदेश का एक-एक आदमी कहता है, सिर्फ आपके सामने नहीं कहते ये लोग। इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। यही आपका नाम है और यही आपका काम है। आप भी भलीभांति जानते हो। जाते कहां हो? बैठ जाओ!
वे वहां तो घबड़ा कर बैठ गए, क्योंकि एकदम से जाएं भी कहां! और जनता ने एकदम तालियां पीटीं और लोगों ने कहा कि बात तो सच्ची है। मैंने कहाः इतने लोग हैं। मैं पूछता हूं लोगों से कि लोग हाथ उठा दें कि मैंने भूल से सच्ची बात कही है या नहीं? तो लोगों ने हाथ उठा दिए कि बात तो सच्ची है। सब इनको चाबीलाल ही कहते हैं। इनको कोई कुंजीलाल तो कहता ही नहीं।
उन्होंने मुझे घर बुलवाया और कहा कि मुझसे कुछ नाराज हो, क्या बात है? क्यों ऐसा उपद्रव किया?
मैंने कहाः मैंने कोई उपद्रव नहीं किया। मैं नाराज नहीं हूं। और आप खयाल रखना, आपकी चाबी मुझ पर काम नहीं करेगी। वह आप राजनेताओं को मनाते रहें।
तो उन्होंने कहाः फिर यह विश्वविद्यालय तुम्हें छोड़ना पड़ेगा।
मैंने कहाः मैं गौरव से छोड़ सकता हूं। यह दो कौड़ी की नौकरी है, इसका कोई मूल्य नहीं है। नौकरी की कीमत पर जो सच है उसको मैं छिपा नहीं सकता। और जो मैंने वहां कहा है उसको मैं वापस नहीं ले सकता। आप ही चाबीलाल नहीं हो, इस देश के सारे राजनीतिज्ञ चमचे हैं। उनका सबका धंधा यही है। सच तो यह है कि आपमें अगर थोड़ी भी अकल हो तो आपको उपकुलपति से इस्तीफा दे देना चाहिए। इन सज्जन ने एक दफा टूर्नामेंट का उदघाटन किया, तो उनके बाबत कहानी प्रचलित थी पूरे गांव में कि उन्होंने टूर्नामेंट का उदघाटन करते वक्त कहा कि आप सब जानते ही होंगे कि तीन तरह के खेल होते हैं--फुटबॉल, वॉलीबॉल और टूर्नामेंट।
ये उपकुलपति हैं विश्वविद्यालय के। उनकी हिम्मत तो पड़ी नहीं कि मुझे निकाल सकें विश्वविद्यालय से, क्योंकि उनको पता था कि मैं शोरगुल मचाऊंगा, कुछ और उपद्रव हो जाएगा। और आए दिन यह हो जाता कि सभाओं के मंच पर संयोगवशात वे मुझे मिल जाते--धार्मिक सभाओं के मंच पर--जहां मैं भी बोल रहा, वे भी बोल रहे। वे मेरी खुशामद के लिए मुझको पंडित जी कहने लगे--आइए पंडित जी!
मैंने कहा कि देखिए, पंडित शब्द मेरे लिए गाली है। भूल कर आप मुझसे पंडित जी मत कहना। अरे--उन्होंने कहा--आप आदमी कैसे हैं! यह तो मैं आदर में कह रहा हूं।
मैंने कहाः यह मेरे लिए आदर नहीं है।
इस देश में लोग पंडित जी तो आदर में ही कहते हैं।
मैंने कहाः मैं पंडित हूं ही नहीं और मैं इसको अनादर मानता हूं। आप मुझको और कुछ भी कहें, पंडित भूल कर मत कहना। आप सोचते होंगे ऐसे मेरी खुशामद करेंगे कि आइए पंडित जी!
एक बार तो वे इतने क्रुद्ध हो गए कि माइक पर वे बैठे थे, बोल रहे थे और तभी बीच में मैं पहुंचा। बस उन्होंने मुझे देखा, होश-हवास खो दिया। अब वे

भूल ही गए कि माइक मुंह के सामने है। कहा कि हम दोनों में से कोई एक ही इस सभा में हो सकता हैः या तो मैं बोलूंगा या ये बोलेंगे। बाद में उनको समझ में आया कि माइक था, सारी जनता ने सुन लिया। मैंने कहा कि मुझे अकेले में मिलते हो तो कहते हो पंडित जी! मुझे अकेले में मिल कर खुशामद करते हो और यहां भूल से सत्य निकल गया, जो तुम्हारे हृदय में छिपा हुआ है। खयाल तुम्हें न रहा कि माइक है।
वे असल में कह रहे थे संयोजक से कि अगर ये सज्जन बोलेंगे तो मैं नहीं बोलूंगा, हम दोनों साथ नहीं बोल सकते, हमारा मेल बैठता नहीं। मगर यह सारी बात माइक से पूरी सभा में विस्तीर्ण हो गई। मैंने कहाः जो सच्ची बात है कहो।
वे मुझे देखते ही एकदम थर्राने लगते थे, एकदम कंपने लगते थे। एकदम उनको ज्वर-ताप चढ़ आता था। बड़े नेता थे। मैंने उनसे कहा कि आप जैसे लोग इस देश को नेतृत्व दे रहे हैं, कहां किस गड्ढे में गिराएंगे! सो गिराया इस तरह के लोगों ने। घसिट रहा है यह मुल्क गड्ढों में। चार कौड़ी के लोग छाती पर सवार हैं--जिनकी कोई न योग्यता है, न क्षमता है।
लेकिन हमारी आदतें गलत हैं। हमारे सोचने-समझने के ढंग गलत हैं।
मेरी बात उपद्रव लग सकती है। मगर मैं सीधा-साफ आदमी हूं। मुझे जो कहना है, जैसा कहना है, ठीक वैसा ही कह देता हूं। शिष्टाचार के कारण झूठ नहीं बोल सकता। सभ्यता और औपचारिकता के नाम पर झूठ नहीं बोल सकता। शिष्टाचार अगर सत्य के साथ मेल खाता हो तो ठीक, अगर नहीं मेल खाता हो तो शिष्टाचार जाए भाड़ में। सत्य अपनी जगह रहेगा और अपनी बात कहेगा।
और हमें जरूरत है, ऐसे लोग पृथ्वी पर अधिक संख्या में हों तो ही हम इस पाखंडी समाज को बदलने में सफल हो सकेंगे, अन्यथा बदलने में सफल न हो सकेंगे।
रंजन, दूसरों की दृष्टि में तो वह भी उपद्रव था; आज भी मैं जो कर रहा हूं, वह भी उपद्रव है। पुरी के शंकराचार्य से पूछो तो वे यही कहेंगे कि जो मैं कर रहा हूं वह उपद्रव है। मेरा संन्यास उनके लिए उपद्रव है। उनको लगता है मैं संन्यास देकर संन्यास की सारी परंपरा को भ्रष्ट कर रहा हूं। उनको लगता है कि मैं भारतीय संस्कृति को नष्ट कर रहा हूं। वे भारतीय संस्कृति के पोषक, रक्षक--और मैं भारतीय संस्कृति को नष्ट करने वाला! उनको लगता है कि मैं लोगों को नास्तिक बना रहा हूं। मैं लोगों को भौतिकवादी बना रहा हूं। मैं लोगों को भोगवादी बना रहा हूं। स्वभावतः वे मुझे पर नाराज हैं। कुछ आश्चर्य नहीं कि कोई धर्मांध आकर यहां छुरा फेंक कर मुझे मार डालने की कोशिश करे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। उनको कुछ नहीं सूझ रहा है। जवाब उनके पास नहीं है। जवाब मैं बचपन से नहीं पा रहा हूं किसी के पास। अब तो बहुत मुश्किल है उनके पास जवाब होना। जब मैं छोटा था तब भी मैंने जवाब नहीं पाए, तब भी मैं चकित हुआ, हैरान हुआ कि किस तरह के लोग छाती पर सवार हैं--जिनके पास कोई जवाब नहीं हैं! मगर लोगों को उन्होंने ऐसी गुलामी का पाठ पिलाया है, ऐसा जहर पिलाया है कि आज अगर स्वतंत्रता की बात करो तो उपद्रव मालूम होती है; अगर सत्य की बात करो तो बगावत मालूम होती है।
मगर मुझे विद्रोह से प्रेम है। मैं तो विद्रोह को ही धर्म मानता हूं।

अंतिम प्रश्नः ओशो! मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की का नाम क्या है?

रश्मि भारती! सवाल तो जरूर महत्वपूर्ण है, क्योंकि मुल्ला नसरुद्दीन
के लड़के फजलू के संबंध में तो काफी चर्चा हो चुकी। और तेरी बात भी ठीक है कि लड़की भी होगी मुल्ला नसरुद्दीन की तो गजब की ही होगी। गजब की ही है! मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन फरीदा से पूछ रहा था... फरीदा उसका नाम है। तुकबंदी रखनी पड़ती है न बच्चों के नामों में--फजलू, फरीदा।... फरीदा से पूछ रहा था कि अच्छा बताओ, ढब्बू जी ने चोरी की, इसका भविष्यकाल क्या होगा? फरीदा बोलीः इसका भविष्यकाल होगा कि ढब्बू जी जेल जाएंगे।

रमजान ने अपनी प्रेमिका फरीदा से कहाः फरीदा, माफ करना। कल मैंने तुमसे मिलने का वायदा किया था, परंतु मैं यह बिल्कुल भूल गया कि कहां मिलने का वायदा किया था।
कोई बात नहीं। मैं भी भूल गई थी। मुझे इतना तो याद था कि किसी ने मिलने
का वायदा किया है, परंतु यह भूल गई थी कि किसने मिलने का वायदा किया है। फरीदा ने जवाब दिया।
फरीदा ने अपने पति से तलाक लेने के लिए अदालत में बयान देते हुए यह दलील दीः मुझे विश्वास है कि मेरे पति मेरे प्रति वफादार नहीं हैं। मेरे एक बच्चे की शक्ल भी उनसे नहीं मिलती।
रमजान अपनी प्रेमिका फरीदा से पूछ रहा था कि क्या मैं ही वह पुरुष हूं, जिसका चुंबन तुमने सबसे पहले लिया है?
फरीदा बोलीः हां-हां, तुम्हारा ही चुंबन मैंने सबसे पहले लिया है और तुम ही वह पुरुष हो जिसने मेरा चुंबन सबसे पहले लिया है। और यह भी मैं तुम्हें बता दूं कि यही चुंबन मुझे सबसे ज्यादा मधुर भी लगा।
रमजान का फरीदा से गाढ़ा प्रेम हो गया था। वह फरीदा को नई-नई वस्तुएं भेंट करता था--जैसे मूल्यवान कपड़े, कीमती साड़ियां, इत्र, शैम्पू, रिस्ट-वॉच इत्यादि-इत्यादि। आखिर उसने फरीदा को शादी करने का वचन दिया। तिथि भी निश्चित कर ली। दुर्दैववशात फरीदा अचानक बीमार हो गई और उसको अस्पताल में भरती करना पड़ा। बीमारी की जांच-पड़ताल शुरू हो गई। डाक्टरों ने कहा कि उसको रक्त देना जरूरी होगा, तब वह जल्दी सुधर जाएगी। उसका प्रेमी, रमजान रक्त देने को तैयार हो गया। रक्त दे दिया गया और आहिस्ता-आहिस्ता उसको आराम पड़ने लगा। इसके पश्चात क्या हुआ, पता नहीं। लेकिन दोनों का प्रेम घटता चलता गया। झगड़े-झांसे शुरू हो गए। एक दिन रमजान इतना बिगड़ गया कि उसने फरीदा से कहाः कैसी बेईमान लड़की है तू! मैंने इतना तुझसे प्यार किया, कीमती वस्तुएं दीं! वे सब वस्तुएं मुझको वापस कर दो।
बेचारी ने सारी चीजें लौटा दीं। फिर भी रमजान बोलाः मैंने तुमको मेरा रक्त भी दिया है, उसको भी वापस कर दो।
फरीदा जरा मुश्किल में पड़ी। फिर थोड़ी देर बाद सोच कर बोलीः हर महीना थोड़ा-थोड़ा रक्त चुका दूंगी।

आज इतना ही।